भाग १३] जनवरी, सन् १९१७—पौष [सं...

हमारा नया वर्ष।

आज से "मर्यादा" अपने सातवें वर्ष में प्रवेश करती है। अबतक यह जीवित है और आशा है यह अभी बहुत दिनों तक विघ्न-बाधाओं की तनिक भी परवाह न कर जीवित रहेगी। हमारी काहिली से, अर्थाभाव से या अपने दुर्भाग्य से अभी तक इसमें त्रुटियाँ हैं तथापि यह प्रसन्नता की बात है कि अब "समय न प्रकाशित होने का रोग" इसका दूर हो गया है और प्रत्येक मास के प्रथम सप्ताह में ठीक समय से यह निकल जाती है।

विगत वर्ष में यही बात प्रधान रही हो सो भी नहीं है। विगत वर्ष इसमें राजनीति संबन्धी लेख अधिक निकले हैं और आशा है कि इस ओर उन्नति होती रहेगी...

यूरोपीय यु...

...के कारण सभी वस्तुएँ महँग... समय पर तो बाज़ार में क... अभाव ही हो जाता है। ... और ५॥) रीम के कागज़... किन्तु इस वर्ष वह ७॥-)... स्याही छपाई आदि का ख... भी कमी की गई किन्तु तब... इधर कमी की गई जो अ... साथ ही साथ लेख ब...

और अत्याचार के विरोध के
ने अब
स्वराज्य
की है । उसका विश्वास
संसार में यदि कोई जाति
है तो वह भारतवासियों की
अब स्वराज्य बहुत दिनों तक
लिए
चन्द्रखिलौना
ा । इसी विश्वास से स्वराज्य के
अपने भाइयों में ज्ञान फैलाने के

विशेष संख्या
शित होगी उसकी सूची इस प्रकार

स्वराज्य क्यों चाहते हैं ?
राज्य का अर्थ क्या है ।
जातन्त्र–उसकी आवश्यकता ।
भारतीय अर्थ-कोष ।
स्वर्ण कोष–उसके सर्वोत्तम उपयोग के उपाय ।
उद्योग धन्धे ! देश पर उनका प्रभाव ।
भारतीय कृषि–उन्नति के सर्वोत्तम उपाय
प्रान्... राज्य ।
राज्य–इसकी आवश्यकता ।
रतीय राज्य-प्रबन्ध में जनता
ज़ ।
राज्य की प्राप्ति में किस
यक हो सकते हैं ।
-कौशल ! उनको पुन-
के उपाय ।
भारत की माँग ।
लिखनेवाले भी बड़े २
ला० लाजपत राय,

मि० बीसेन्ट, माननीय मि० सी० वाई० चिन्तामणि सम्पादक "लीडर"; मि० एन० सी० केलकर, सम्पादक मराठा; मि० जी० एस० अरंडेल एम० ए० स्वराज्य समिति के मंत्री; मि० एम० एस० कामथ बी० ए० "न्यू इन्डिया" के सहकारी सम्पादक; प्रो० श्रीप्रकाश एम० ए० आदि प्रधान हैं। यह भी आशा है कि द्वितीय लेख श्रीमान तिलकजी का रहेगा। तार दिया गया है किन्तु अभी तक लेख नहीं मिला है। स्वराज्य की चर्चा करना, उसके लिए भाइयों को जगाना, उनको उसकी महिमा सुनाना और उसकी प्राप्ति के लिए आन्दोलन करना इस वर्ष "मर्यादा" का सर्वप्रथम उद्देश्य होगा।

स्त्रियों की विशेष संख्या

नहीं प्रकाशित होगी यद्यपि इस वर्ष तिलाक; प्रेम स्वातन्त्र, विवाह आदि पर कई महत्वपूर्ण लेख प्रकाशित होंगे। और क्या हो सकेगा यह भविष्य के कुहर में गुप्त है और इसलिए कुछ कहा नहीं जा सकता यद्यपि यह निश्चित है कि इस वर्ष पिछले वर्षों की अपेक्षा "मर्यादा" महत्वपूर्ण निकलेगी।

"मर्यादा" के आदरास्पद लेखकों की संख्या दिन दिन बढ़ रही है और उनकी कृतज्ञता के भार से "मर्यादा" सदा नत है। उनका इसे सद-अभिमान है और उनसे यह गौरवान्वित है। उदार ग्राहकों को हमको कोई उलाहना नहीं देना है। यह सत्य है उनकी संख्या बहुत कम है और इस कारण से हमको हानि सहनी पड़ रही है किन्तु यदि वे चमक दमक के पुजारी हैं, यदि लोभावने चित्र के बिना उनकी तृप्ति नहीं हो सकती तो हम असमर्थ हैं। यह नहीं है कि ह[म] चित्र न देंगे या मर्यादा के कलेवर को आकर्ष[क] बनाने का प्रयत्न न करेंगे किन्तु हम उन ग्राहकों से सन्तुष्ट नहीं हो सकते जो बाहरी खूबसूरती और आडम्बर के चेरे हैं। "मर्यादा" में परिवर्तन होगा, उसके रंग रूप में भी विशेष बातें दिखलाई देंगी किन्तु यह उनके लिए न होगा जो "मर्यादा"

वर्णानुक्रमिक विषय-सूची ।

…हीं। अराजकता का उपदेश करना और …क मिलता है, महापाप है। भारतवासी तो स्वभाव से …जभक्त" होते हैं, उनके पवित्र धर्मशास्त्रों …क्ति का पद २ पर उपदेश दिया गया …इतिहास भी यही साक्षी देता है। जिनको …पर सन्देह हो वे धर्म-ग्रन्थों को देखें …उनका भ्रम दूर हो जाय।

…सेवा की और एक सुगम उपाय यह …देश-सेवा-समिति इतनी व्यापक हो कि …शाखाएँ ग्राम २ में फैलें। इनसे भी …सियों का बड़ा उपकार होगा।

यद्यपि अपने देश और जाति की वर्तमान दशा देख हृदय वश में नहीं रहता और निराशा की घटा दृष्टि गोचर पड़ती है, परन्तु केवल इस सिद्धान्त से कि "माफलेषु कदाचन" कुछ कुछ साहस बँधा जाता है।

कल्पना कीजिये कि ह… एक ऐसी नाव में बैठे हैं जो … है, नाव में छिद्र भी हो गया … भी पड़ने लगो, तो क्या निरा… में हमारा यह कर्तव्य नहीं कि … में से पानी बाहर फेंके?

स्पष्ट है, परमेश्वर की कृपा … लग जाय। ठीक यही दशा भारत… की होगई है। आपस के झग… नौका में अनेक छिद्र कर दिये हैं। शत्रुजल छिद्रों में वेग से घुसा च… आलस्यरूपी मदिरा मस्त किये है … की घटाएं चहुंओर छाई हुई हैं। अब … डूबो, की दशा हो रही है। पाठक वृन्द … करिये हमारी स्थिति कैसी है? … कर्तव्य-पालन पर ध्यान दीजिये।

प्रतिज्ञा-पालन।

वचन कहि मुख क्यों मोड़त यार।
देश काज में प्रिय मिलि है
अति संकट वारम्वार।
यश अपयश धनधान्य छोड़कर
सेवा धर्म विचार ॥ १ ॥

हहरत काहे डरत काहि को
धर धीरज दुख टार।
भारत उन्नति अवशि होयगी,
यह निश्चय हियधार ॥ २ ॥

मातृभूमि हित मरना जीना
है जीवन को सार।
इस भारी तप को हिय सोचहु
मोचहु दुखियन भा…
कहहु करहु सब सहहु रहहु दृढ़
चहहु देश के लिए
उदित करहु अन्तर्ज्योती को देश
मेटहु भ्रान्तियां,
वचन कहि मुख क्यों …

[भा]रत व्यवसाय-वाणिज्य में पिछड़ा क्यों है ?

[लेखक—श्रीयुत ए० आर० शेपेयर ।]

[व्यवसा]य-वाणिज्य में सफलता प्राप्त करने के लिए सब से पहिले इसके जानने की आवश्यकता है कि यूरोप और एमेरिका- [उ]न्नति प्राप्त करने के लिए किन का अवलम्बन किया था। भारत के लिए कुछ लोगों को छोड़कर व्यवसाय-वाणिज्य के मूल-तत्वों तक [बिल्कु]ल ही अनभिज्ञ हैं। यदि व्यक्तिगत [दे]खा जाय तो दिखाई देगा कि अपने [औ]र कपड़े का एक स्वतन्त्र "पुतली घर" [खोलने की] शक्ति या योग्यता बहुत कम लोगों में [है।] इसके जो थोड़े लोग हैं भी वे व्यव[साय-वा]णिज्य को अज्ञानता से व्यापार में रुपया [लगाने की] अपेक्षा ज़मीन खरीदने और ऋण [देने में] धन लगाना श्रेयस्कर समझते हैं। [कु]छ उत्साही लोग नये रोजगारों के [लिये] उत्सुक दिखाई देते हैं। अपने आत्म-[विश्वास] के बल पर ही वे अपने ध्येय के लिए [अपना] मूलधन या उसका बहुत बड़ा भाग [लगा]ने में समर्थ होते हैं, परन्तु वे यह नहीं [जानते] कि उनके 'पुतली-घर' या 'कारख़ाने' [के लिये अ]च्छे यन्त्र कहां से मिलेंगे ? ... जिसने उनके व्यवसाय के ... उसी देश में प्राप्त की हो, ... हैं। उस विषय से अभिज्ञ ... वे उसके हुकम को मानते ... से इन यन्त्रों को मँगाने ... [हो]कर कितने ही ऐसे सलाह-[कार पैदा हो ग]ए हैं। वे 'फर्म' भी अधिक [ला]भ्य होने के कारण थोड़े ... [पु]राने और निरुपयोगी ... के लाभालाभ ... कोई सम्बन्ध

नहीं रहता। जब, कल खराब हो जाती [है तब] कारख़ाने के जन्मदाताओं के मन में, उस[के इंजीनियर] या सलाहकार द्वारा ठगाये जाने का [सन्देह] होने लगता है। उस समय से इनमें [परस्पर] विश्वास नहीं रहता। थोड़ी सी बात [पर झगड़ा होता है।] वह कारख़ाने की नौकरी छोड़ने पर तै[यार हो] जाता है या कारख़ानेवाले ही उसके द्वा[रा अपने] प्रिय व्यापार के चौपट होने से असन्तुष्ट [होकर] उसे निकाल देते हैं। ऐसा ही दृश्य ट्यूटीको[रिन] की 'स्वदेशी स्टीम नेविगेशन या जहाज़ी कम्पनी' में देखने को मिला था। उसमें भी पुराने और बाबा आदम के समय के जहाज़ खरिदवाये गये थे। कलकत्ते या बम्बई की जहाज़ी कम्प-नियों के मालिकों की तरह यदि मद्रास की इस कम्पनी के संचालक भी जहाज़ी व्यवसाय के जानकार होते तो कभी यह कम्पनी न डूबती। ऐसे ही कारण, मद्रास ग्लास वर्कस्, मदुरे की सोनौला सूत निकालनेवाली कम्पनी, पोदानूर के चीनी के कारख़ाने आदि के नाश होने में सहायक हुए हैं।

यदि सचमुच ही देश की भलाई और व्यवसाय-वाणिज्य की उन्नति करने की हम लोगों की आन्तरिक इच्छा हो, तो सब से पहिले हमें कुछ एमेरिकन और यूरोपियन मशीनें बेचनेवाले फर्मों की अवस्था, योग्यता और [गुण] दोषों की अभिज्ञता प्राप्त कर उनमें से सब [से] अच्छे कारख़ाने को चुनना चाहिये। जभी को[ई] नई मशीन ईज़ाद की जाती है तभी इसक[ी] आवश्यकता होती है। कारण इससे पुराने कारखाने की मांग कम हो जाती और नये की बढ़ती है। ऐसी अवस्था में पुराना कारख़ाना भी अपना सुधार करता है। व्यवसाय के कुछ मर्मज्ञ, जिन्हें सिर्फ पुराने कारख़ाने की ही जानकारी होती है और जिनसे कमीशन भी

अधिक मिलता है, उन्हीं को पुरानी कलें खरीदने को सलाह देते हैं। कारण इसका यही होता है कि जिन कारखानों को वे सलाह देते हैं, उनके नफा नुकसान से उनका कोई सम्बन्ध नहीं रहता। यदि हम लोगों को सुरक्षित राह का अवलम्बन करना है, तो हमको उन भारतवासियों की, जिन्होंने यूरोप और एमेरिका का परिभ्रमण कर इस विषय की जानकारी प्राप्त की हो, सलाह लेनी चाहिये। उन्हें भी व्यापार में सम्मिलित कर लेना चाहिये। कारबार के आरम्भ करने के पहिले उसके ३। ४ मर्मज्ञों की राय लेकर उनमें जो ठीक दिखाई दे उसीको करना चाहिये। परन्तु ऐसे भारतीय लोग बहुत कम हैं; इसलिए हमें कलकत्ते की "विज्ञान और कलाकौशलोन्नति सभा" जैसी सभाओं की प्रतिष्ठा करनी चाहिये। इन सभाओं को परदेश में अपने विद्यार्थी भेजकर उन्हें वहां इतने दिनों तक रखना चाहिये, जबतक वे अपने चुने हुए विषयों में पूर्ण अभिज्ञता लाभ न कर लें। अपने देश में जो थोड़े से शिल्प-भवन हैं उनमें 'पुतली घर' या कारखानों के बहुत ही कम काम सिखलाये जाते हैं। उच्चशिक्षा प्राप्त करने के अभिलाषी विद्यार्थियों को शिक्षा प्राप्त करने के लिए परदेश जाने के सिवा और कोई मार्ग ही नहीं रहता। परम देशभक्त परलोकवासी जे० एन० टाटा और उनके सुयोग्य पुत्र, जिन्हें कभी किसी रोजगार ही में घाटा नहीं बैठा, उन्हें भी बेङ्गलोर के 'विज्ञान-विद्यालय' की स्थापना से कोई फललाभ नहीं हुआ। यह संस्था ५। ६ वर्षों से काम चला रही है सही परन्तु अभीतक यह 'व्यवसाय-वाणिज्य' का एक भी मर्मज्ञ या उपकारकर्ता तैयार नहीं कर सकी है। कुछ दिनों के पहिले खबर मिली थी कि यह संस्था विज्ञान के नये आविष्कार करने के ऐसे साधन एकत्रित कर रही है, जैसे पहिले किसी संस्था ने संग्रह नहीं किये थे। भारत को व्यवसाय वाणिज्य को उस ज्ञान की बड़ी ही आवश्यकता है, जिसके पाश्चात्य लोग पूर्ण जानकार हैं और आजकल की अवस्था में यहां जिसका पूर्ण प्रचार बिलकुल ही असम्भव है। इसलिए यदि यह संस्था आविष्कार के कामों के साथ २ पाश्चात्य लोगों द्वारा आयत्त उस विद्या का प्रचार, उन व्यग्र विद्यार्थियों में करने की ओर अपना ध्यान दे तो टाटा के इस बड़े स्वार्थत्याग से भी बहुत कुछ उपकार मिलने की आशा की जा सकती है। परन्तु क्या कभी यह ऐसा करेगी ?

देश की भलाई के लिए दूसरा काम यह होना चाहिये कि यूरोप, एमेरिका, जापान आदि वाणिज्य के केन्द्रस्थानों में भारतवासियों के लिए निरामिष भोजन और भारतीय रीति से जीवन-निर्वाह के साधन प्राप्त होने के लिए 'यंग मेन्स क्रिश्चियन एसोसियेशन' की तरह भारतीय सभाओं की शाखाएँ प्रतिष्ठित हों। इन संस्थाओं की स्थापना से भारतवासियों को आजकल की अपेक्षा विदेश के अधिक स्थानों में आसानी से घूमने की सुविधा होगी और वे इससे अधिक स्थानों में परिभ्रमण कर सकेंगे। यह सच है कि ऐसी संस्थाओं को चलाने के लिए बहुत द्रव्य की आवश्यकता है परन्तु मेरा विश्वास है कि इस देश में बहुतेरे लोग ऐसे हैं जो परदेश में अपने देशवासियों की होनेवाली दुर्दशा और दुःस्थिति को दूर करने के लिए यथासाध्य चेष्टाकर उनकी सेवा 'ईश्वरो- करने के पूर्ण इच्छुक हैं। ...साथ देगा में भी व्यापार-वाणिज्य क। हमारी स्त्रियां, संस्थाओं की स्थापना ...ही भूल जायँगी पश्चात्पद होंगे ? बहुतेरे ...वा कभी विस्मृत श्यक मूलधन होने पर ...था ऐतिहासिकों प्राप्त और कम खर्च देशो ...उस आशा और ही रहता है। यदि उपर्यु... ही उदय हो, वाले लाभ उनको अच्छी हैं। जायँ तो वेही इस काम में सहायता देंगे।

[भा]रत व्यवसाय-वाणिज्य में पिछड़ा क्यों है ?

[लेखक—श्रीयुत ए० आर० शेषैयर ।]

वि[वाणिज्य-व्यव]साय-वाणिज्य में सफलता प्राप्त करने के लिए सब से पहिले इसके जानने की आवश्यकता है कि यूरोप और एमेरिका-[उ]न्नति प्राप्त करने के लिए किन का अवलम्बन किया था। भारत के लिए कुछ लोगों को छोड़कर व्यवसाय-वाणिज्य के मूल-तत्वों तक [बि]ल्ल ही अनभिज्ञ हैं। यदि व्यक्तिगत [दे]खा जाय तो दिखाई देगा कि अपने [औ]र कपड़े का एक स्वतन्त्र "पुतली घर" [ऐ]सी शक्ति या योग्यता बहुत कम लोगों में [है। इ]सके जो थोड़े लोग हैं भी वे व्यव-[साय-वा]णिज्य की अज्ञानता से व्यापार में रुपया अपेक्षा ज़मीन खरीदने और ऋण धन लगाना श्रेयस्कर समझते हैं। [कु]छ उत्साही लोग नये रोजगारों के [लिए] उत्सुक दिखाई देते हैं। अपने आत्म-[बल] के बल पर ही वे अपने ध्येय के लिए [ए]क मूलधन या उसका बहुत बड़ा भाग [लगा]ने में समर्थ होते हैं, परन्तु वे यह नहीं [जानते] कि उनके 'पुतली-घर' या 'कारख़ाने' [के अ]च्छे यन्त्र कहां से मिलेंगे ? [...] जिसने उनके व्यवसाय के [...] उसी देश में प्राप्त की हो, [...]ते हैं। उस विषय से अभिज्ञ [...] वे उसके हुकम को मानते [...] से इन यन्त्रों को मँगाने [...]कर कितने ही ऐसे सलाह-[...]ए हैं। वे 'फर्म' भी अधिक [...]ध्य होने के कारण थोड़े [...]ाने और निरुपयोगी [...] के लाभालाभ [...] कोई सम्बन्ध नहीं रहता। जब, कल खराब हो जाती [है तब] कारख़ाने के जन्मदाताओं के मन में, उक्त [फर्म] या सलाहकार द्वारा ठगाये जाने का [संदेह] होने लगता है। उस समय से इनमें [परस्पर] विश्वास नहीं रहता। थोड़ी सी बात [पर] वह कारख़ाने की नौकरी छोड़ने पर तै[यार हो] जाता है या कारख़ानेवाले हो उसके द्वा[रा अपने] प्रिय व्यापार के चौपट होने से असन्तुष्ट [होकर] उसे निकाल देते हैं। ऐसा ही दृश्य ट्यूटीक[ोरिन] की 'स्वदेशी स्टीम नेविगेशन या जहाज़ी कम्पनी' में देखने को मिला था। उसमें भी पुराने और बाबा आदम के समय के जहाज़ खरिदवाये गये थे। कलकत्ते या बम्बई की जहाज़ी कम्प-नियों के मालिकों की तरह यदि मद्रास की इस कम्पनी के संचालक भी जहाज़ी व्यवसाय के जानकार होते तो कभी यह कम्पनी न डूबती ऐसे ही कारण, मद्रास ग्लास वर्कस्, मदूरे की सोनौला सूत निकालनेवाली कम्पनी, पोदानूर के चीनी के कारख़ाने आदि के नाश होने में सहायक हुए हैं।

यदि सचमुच ही देश की भलाई और व्यवसाय-वाणिज्य की उन्नति करने की हम लोगों की आन्तरिक इच्छा हो, तो सब से पहिले हमें कुछ एमेरिकन और यूरोपियन मशीनें बेचनेवाले फर्मों की अवस्था, योग्यता और [गुण] दोषों की अभिज्ञता प्राप्त कर उनमें से सब से [अ]च्छे कारख़ाने को चुनना चहिये। जभी को[ई] नई मशीन ईज़ाद की जाती है तभी इसक[ी] आवश्यकता होती है। कारण इससे पुराने कारखाने की मांग कम हो जाती और नये की बढ़ती है। ऐसी अवस्था में पुराना कारख़ाना भी अपना सुधार करता है। व्यवसाय के कुछ मर्मज्ञ, जिन्हें सिर्फ पुराने कारख़ाने की हो जानकारी होती है और जिनसे कमीशन भी

अधिक मिलता है, उन्हीं को पुरानी कलें खरीदने को सलाह देते हैं। कारण इसका यही होता है कि जिन कारखानों को वे सलाह देते हैं, उनके नफा नुकसान से उनका कोई सम्बन्ध नहीं रहता। यदि हम लोगों को सुरक्षित राह का अवलम्बन करना है, तो हमको उन भारतवासियों की, जिन्होंने यूरोप और एमेरिका का परिभ्रमण कर इस विषय की जानकारी प्राप्त की हो, सलाह लेनी चाहिये। उन्हें भी व्यापार में सम्मिलित कर लेना चाहिये। कारबार के आरम्भ करने के पहिले उसके ३। ४ मर्मज्ञों की राय लेकर उनमें जो ठीक दिखाई दे उसीको करना चाहिये। परन्तु ऐसे भारतीय लोग बहुत कम हैं; इसलिए हमें कलकत्ते की "विज्ञान और कलाकौशलोन्नति सभा" जैसी सभाओं की प्रतिष्ठा करनी चाहिये। इन सभाओं को परदेश में अपने विद्यार्थी भेजकर उन्हें वहां इतने दिनों तक रखना चाहिये, जबतक वे अपने चुने हुए विषयों में पूर्ण अभिज्ञता लाभ न कर लें। अपने देश में जो थोड़े से शिल्प-भवन हैं उनमें 'पुतली घर' या कारखानों के बहुत ही कम काम सिखलाये जाते हैं। उच्चशिक्षा प्राप्त करने के अभिलाषी विद्यार्थियों को शिक्षा प्राप्त करने के लिए परदेश जाने के सिवा और कोई मार्ग ही नहीं रहता। परम देशभक्त परलोकवासी जे० एन० टाटा और उनके सुयोग्य पुत्र, जिन्हें कभी किसी रोजगार ही में घाटा नहीं बैठा, उन्हें भी बेङ्गलोर के 'विज्ञान-विद्यालय' की स्थापना से कोई फललाभ नहीं हुआ। यह संस्था ५। ६ वर्षों से काम चला रही है सही परन्तु अभीतक यह 'व्यवसाय-वाणिज्य' का एक भी मर्मज्ञ या उपकारकर्ता तैयार नहीं कर सकी है। कुछ दिनों के पहिले खबर मिली थी कि यह संस्था विज्ञान के नये आविष्कार करने के ऐसे साधन एकत्रित कर रही है, जैसे पहिले किसी संस्था ने संग्रह नहीं किये थे। भारत को व्यवसाय वाणिज्य को उस ज्ञान की बड़ी ही आवश्यकता है, जिसके पाश्चात्य लोग पूर्ण जानकार हैं और आजकल की अवस्था में यहां जिसका पूर्ण प्रचार बिलकुल ही असम्भव है। इसलिए यदि यह संस्था आविष्कार के कामों के साथ २ पाश्चात्य लोगों द्वारा आयत्त उस विद्या का प्रचार, उन व्यग्र विद्यार्थियों में करने की ओर अपना ध्यान दे तो टाटा के इस बड़े स्वार्थत्याग से भी बहुत कुछ उपकार मिलने की आशा की जा सकती है। परन्तु क्या कभी यह ऐसा करेगी ?

देश की भलाई के लिए दूसरा काम यह होना चाहिये कि यूरोप, एमेरिका, जापान आदि वाणिज्य के केन्द्रस्थानों में भारतवासियों के लिए निरामिष भोजन और भारतीय रीति से जीवन-निर्वाह के साधन प्राप्त होने के लिए 'यंग मेन्स क्रिश्चियन एसोसियेशन' की तरह भारतीय सभाओं की शाखाएँ प्रतिष्ठित हों। इन संस्थाओं की स्थापना से भारतवासियों को आजकल की अपेक्षा विदेश के अधिक स्थानों में आसानी से घूमने की सुविधा होगी और वे इससे अधिक स्थानों में परिभ्रमण कर सकेंगे। यह सच है कि ऐसी संस्थाओं को चलाने के लिए बहुत द्रव्य की आवश्यकता है परन्तु मेरा विश्वास है कि इस देश में बहुतेरे लोग ऐसे हैं जो परदेश में अपने देशवासियों की होनेवाली दुर्दशा और दुःस्थिति को दूर करने के लिए यथासाध्य चेष्टाकर उनके साथ देगा
करने के पूर्ण इच्छुक हैं। हमारी स्त्रियां,
में भी व्यापार-वाणिज्य क भूल जायँगी
संस्थाओं की स्थापना कभी विस्मृत
पश्चात्पद होंगे ? बहुतेरे ऐतिहासिकों
श्यक मूलधन होने पर स आशा और
प्राप्त और कम खर्च देशो उदय हो,
ही रहता है। यदि उपर्यु।
वाले लाभ उनको अच्छी
जायँ तो वेही इस काम के
सहायता देंगे।

'व्यवस्थापक सभा' में हमारे बहुतेरे मित्र इस विषय में सरकार को कुछ करने को कहते हैं, परन्तु इन विषयों में उनसे हमें बहुत कम सहायता की आशा करनी चाहिये। स्वावलंबन, यद्यपि यह कुछ कठिन है, व्यक्तिगत हित के लिए जितना अच्छा है, उतना ही राष्ट्र की भलाई के लिए भी हितकारी है। इसलिए हमें बिना विलम्ब के जितने मनुष्य विदेश भेजे जा सकें, उतने भेजने चाहियें। सिवा इसके हमें 'विज्ञान-उन्नति' संस्था की तरह कितनी ही संस्थाएँ स्थापित करनी चाहियें। हर एक प्रान्त में धनागार से पूर्ण ऐसी संस्थाओं की प्रतिष्ठा होनी चाहिये। एमेरिका और जापान के बहुतेरे विश्वविद्यालय लोगों के धन से ही प्रतिष्ठित हुए हैं। यदि अभी इतने अधिक खर्च से ऐसे विश्व-विद्यालय स्थापित करना भारत में असम्भव हो तो आरम्भ में कलाकौशल की उन्नति के लिए ऐसी संस्थाओं का प्रतिष्ठित करना कुछ कठिन नहीं। यूरोप और एमेरिका के केन्द्र स्थानों में हमने जिन संस्थाओं के स्थापित करने की बात कही है, वे यहां से बाहर जाने-वाले विद्यार्थियों के बड़े काम की और सहायक होंगी। ये उन्हें वहां के सब ज्ञातव्य विषयों, विशेषतः व्यवसाय के केन्द्रों के मर्म थोड़े समय में समझा सकेंगी।

सूक्ष्म दृष्टि से इस देश के व्यवसाय-वाणिज्य ...ष्टि से इसमें कई दोष दिखाई ... जिससे दिखाई देता है कि जब ... उस रोजगार में लाभ उठाता है, ...त हैं दूकान खोलते हैं। इससे ...वे ...आ उत्पन्न होकर दोनों के ... से हो जाता है। यदि ऐसे ... स्व... ० वै...क्रय में अपना मूलधन खर्च ...ाय कि...ए ...वसाय में लगावें, तो उन्हें ...ाद मिश्र, ...ता है। इसके लिए हम ...-भारतीय आ...शी दे सकते, कारण उनको स्थिति-अ...री रोजगारों का पता भी नहीं रहता। ऐसी अवस्था में हम उनसे पड़ोसी के रोजगार से भिन्न नये रोजगार के चलाने की आशा कैसे कर सकते हैं। इस अवस्था में हर एक गांव, नगर और प्रान्त के प्रत्येक ज़िले में 'वाणिज्यशिक्षा' की आवश्यकता दिखाई देती है और जनसमुदाय का अज्ञान बिलकुल नष्ट करने की आवश्यकता प्रतीत होता है। इसके लिए ऐसी संस्थाओं की आवश्यकता है जो उन्हें नित्यव्यवहार की सब उपयोगी चीजों के मिलने का पता, बनने के स्थान और कम खर्च में अपने यहां लाने का मार्ग बता सकें। आनन्द का विषय है कि इसीके सम्बन्ध में मैसूर सरकार अपने राज्य के पण्यद्रव्य की बिक्री का सर्वोत्तम स्थान ढूंढने के लिए कुछ प्रतिनिधियों को व्यवसाय-वाणिज्य के केन्द्र स्थानों में भेजने का विचार कर रही है। यदि मैसूर सरकार अपने राज्य में उत्पन्न होनेवाले दियासलाई, कांच, साबुन; कागज़, ब्रश आदि बनाने के योग्य कच्चे माल की खोज कराने के लिए मर्मज्ञों को नियुक्त कर उनकी सलाह से ये कारखाने खोलने की चेष्टा करे तो युद्ध से प्राप्त सुअवसर से पूर्ण लाभ हो सकता है।

लंदन, न्यूयार्क, हम्बर्ग आदि जैसे पृथ्वी के महत्वपूर्ण वाणिज्य के केन्द्र स्थानों में हमारी 'एजेन्सियां' या शाखाओं के न रहने से भी हमें बड़ी हानि उठानी पड़ती है। हमारी एजे-न्सियों के द्वारा ही हमारे देश की पूरी भलाई हो सकती है। इस दुर्दशा का दोष हमारे देश-वासियों की वाणिज्य-विषयक अज्ञानता ही पर है। यदि हमारे यहां के बड़े व्यवसायियों के हृदय में देश के स्वार्थ की सच्ची सहानु-भूति हो, तो उन्हें सिर्फ देश के अन्तर्गत व्यापार की ओर ध्यान न देकर सहयोग से, वाणिज्य के उपर्युक्त केन्द्र में अपनी शाखाएँ प्रतिष्ठित करनी चाहियें। इससे सिर्फ उनका व्यक्तिगत लाभ ही न होगा, वरन् अन्त में समूचा देश ही धनी हो जायगा। इससे वे

भारत से होनेवाले अधिकांश वाणिज्य पर अधिकार जमाने में समर्थ होंगे। जब हम लोग इस अवनति का कारण ढूंढते हैं तो जातिभेद, राष्ट्र की पुरानी लकीर का फकीरपन, जनसाधारण की अज्ञानता और व्यापारियों में 'वाणिज्य-शिक्षा' का अभाव ही इसकी उन्नति की राह में प्रधान बाधक दिखाई देता है। उदाहरण के लिए भारत की कुछ बड़ी बड़ी व्यवसायी जातियों का, जैसे कि मद्रास के नट्टुकोट्टई शिट्टी, उत्तर के मारवाड़ी, बम्बई के भाटिये और बनियें, काठियावाड़ और पश्चिमीय प्रदेशों के बोरिस, मेमन और खोजाओं आदि का, जो वाणिज्य और एकता के लिए विख्यात हैं, उल्लेख किया जा सकता है। परन्तु उनमें भी शिक्षा का अभाव है। मद्रास के लब्बियों का हाल भी ऐसा ही है। यद्यपि महाराष्ट्र और मद्रासी ब्राह्मणों तथा बङ्गालियों में विद्या का प्रचार है तथापि उनमें बड़े व्यवसाय-वाणिज्य की प्रवृत्ति कम है। सौभाग्य से यहां की पारसी जाति में विद्या और उद्यम का एकत्र वास दिखाई देता है और इसीसे यह जाति उन्नति के शिखर पर आरूढ़ है। व्यापार को चाहनेवाली कुछ दूसरी जातियों की राह में समुद्र-यात्रा की बाधा आ पड़ती है। इससे बहुतेरे लोग देश के बाहर नहीं जाते। जब तक इस प्रकार या दूसरे प्रकार की छोटी मोटी बाधाएँ हमारी राह में रहेंगी, तब तक हम भविष्य की उन्नति की पूरी आशा नहीं कर सकते। आनन्द का विषय इतना ही है कि क्रमशः संयुक्त-भारत की भलाई के विचारों के सामने ये बाधाएँ दूर हो रही हैं। प्रचलित महायुद्ध और पाश्चात्य देशों के विचार और ख्यालात, जातिगत सामाजिक वैमनस्यों का बड़ी शीघ्रता से नाश करने में सहायक हो रहे हैं। मैंने आरम्भ में वाई० एम० सी० ए० के ढंग पर जिन संस्थाओं के प्रतिष्ठित करने का प्रस्ताव किया है, यदि वे भी स्थापित हो जायँ तो इस उद्देश्य की पूर्ति में वे बड़ी सहायक होंगी।

इस परिवर्तनशील जगत में किसी भी विषय की उन्नति, बिना स्वार्थत्याग के नहीं होती। समूची पृथ्वी—विशेषतः यूरोप में चलने वाले भयङ्कर स्वार्थत्याग—की ओर देखिये; रोज रोज होनेवाले मनुष्य और धन के भयानक नाश की ओर देखिये, यह सब स्वार्थ-त्याग, सत्पक्ष और न्याय प्राप्ति के लिए ही हो रहा है। हम लोगों को भारत के उज्वल भविष्य की आशा करने के बहुतेरे कारण हैं। युवक लोग विचार करने लगे हैं। उनका यह विचार भारत के पूर्व गौरव का है। यह विचार पूर्व काल के साम्राज्य के बड़े २ राजाओं को रेशमी और सूती वस्त्रों, मलमल और सुन्दर तलवारों के पहुंचानेवाले और न्याय तथा सम्मान के लिए लड़नेवाले तैयार भारत के लिए है। यह देश महानिद्रा में मग्न था, अब ऊषाकाल आ रहा है और भारतवसी जाग उठे हैं। क्या ऐसी अवस्था में भी यह आशा दुराशामात्र है कि जिन पर भारत का भविष्य अवलम्बित है और जिन पर भारत माता की आँखें लगी हैं, वे उसका काम न करेंगे? उसकी सेवा 'ईश्वर-सेवा' ही है। वही सेवा बराबर साथ देगा और सब अलग हो जायँगी। हमारी स्त्रियां, धन आदि पार्थिव चीज़ें शीघ्र ही भूल जायँगी परन्तु हमारी अमर माता की सेवा कभी विस्मृत नहीं होगी और हमारे भाटों तथा ऐतिहासिकों द्वारा बराबर गाई जायगी। उस आशा और सुख्यातिपूर्ण भविष्य का शीघ्र ही उदय हो, यही हमारी आन्तरिक कामना है।

भारतीय स्वराज्य का मसौदा ।

[प्रस्तावक—मि० जे० बैप्टिस्टा, बैरिस्टर ।]

भारत के सम्बन्ध में कानून बनाने का अधिकार "भारतीय राष्ट्रीय सभा" को होना चाहिये। इस सभा में सम्राट् के प्रतिनिधि भारतीय सभा और प्रान्तिक सभाओं का समावेश होगा। भारत में शान्ति और सुव्यवस्था रखने और सुराज्यपद्धति चलाने के विषय में सब कानून बनाने का अधिकार इस सभा को होगा, पर ब्रिटिश पार्लामेंट की आज्ञा के बिना इन विषयों में इस सभा को कानून बनाने का अधिकार न होगा,—(अ) सैन्य-सम्बंधी कानून, (आ) भारत के किसी अंश पर के. पार्लामेंट या सम्राट् के अधिकार में बाधा पड़ने योग्य कानून, (इ) युद्ध, बलवा या सर्वव्यापी अशांतता के सिवा हेबियस "कार्पस् एक्ट" के अनुसार दिये हुए अधिकार छीन लेना, (ई) अभियुक्त के १२ देश-बन्धुओं की ज्यूरी के सहमत के बिना पिनल-कोड के १२४ अ कानून के अनुसार दंड देने के सम्बन्ध में कानून बनाना।

२१ वर्ष से अधिक उम्र के प्रत्येक ब्रिटिश अधिवासी को भारतीय-सभा के प्रतिनिधित्व के लिए खड़े होने और वोट देने का अधिकार होगा।

भारतीय प्रतिनिधि सभा की रचना।

(क) प्रत्येक प्रान्त को दश लाख बस्ती के पीछे एक प्रतिनिधि चुनने का अधिकार हो, पर किसी प्रान्त से २५ से अधिक प्रतिनिधि न चुने जायँ।

(ख) प्रतिनिधि चुनने के लिए, १ हिन्दू (जैन, सिक्ख, बौद्ध, ब्रह्मो ई० समेत), २ मुसलमान और (३) अन्य धर्मावलम्बी (क्रिश्चियन, पारसी, यहूदी आदि) मिलाकर, तीन निर्वाचक-संघ हों। ये लोग अपनी अपनी जनसंख्या के अनुसार प्रतिनिधि चुनकर भेजें। प्रतिनिधियों का कार्यकाल पांच वर्ष का हो।

(ग) भारतीय प्रतिनिधि सभा में कम से कम ५० प्रतिनिधियों के उपस्थित होने पर काम आरम्भ किया जाय। सभा अपना सभापति स्वयं ही चुने और इसका कार्यकाल सभा के कार्यकाल ही के बराबर हो।

(घ) इस सभा को कार्यकारिणी सभा से चाहे जिस विषय की पूंछ तांछ करने काम अधिकार हो।

प्रांतिक प्रतिनिधियों की सभा।

प्रान्तिक प्रतिनिधि-सभा के लिए हर एक प्रान्त की ओर से ४० लाख जनसंख्या में एक या अधिक से अधिक ५ प्रतिनिधि चुने जायँ। यह चुनाव भारतीय प्रतिनिधि सभा ही को अपने मताधिक्य से करना चाहिये। जब ऐसा मताधिक्य न हो, तब फिर से चुनाव कर जिसका नम्बर जिस संख्या के भीतर होगा उसीका चुनाव मंजूर किया जायगा। प्रान्तिक सभा का कार्य आरम्भ होने के लिए कम से कम १० प्रतिनिधि उपस्थित होने चाहियें।

साधारण नियम।

१—कर बढ़ाना, कर, घटाना, नये कर बैठाना आदि के सम्बन्ध में भारतीय-प्रतिनिधि सभा के पास किये हुए बिल में प्रान्तिक सभाएं कोई परिवर्तन न कर सकेंगी। यदि किसी अन्य विषय में मतभेद उपस्थित होगा, तो दोनों सभाओं का सम्मिलित अधिवेशन कर बहुमत से इसका फैसला किया जायगा।

२—हर एक बिल को भारतीय सभा और प्रांतिक सभा की सम्मति मिलने के बाद सम्राट् की सम्मति मिले बिना कानून का स्वरूप प्राप्त

नहीं होगा। सम्राट् के नाम से सम्मति देने का अधिकार वाइसराय को हो, पर महत्व के विषय में उनकी इच्छा होने से वे उक्त बिल स्वयं सम्राट् के पास भेजें। ऐसे बिल को १ वर्ष के भीतर सम्राट् की सम्मति मिले बिना कानून का स्वरूप प्राप्त न होगा। जिस बिल पर सम्राट् के नाम से वाइसराय ने सम्मति दी हो, यदि वह सम्मति १ वर्ष के भीतर बादशाह अस्वीकार करें तो उस दिन से वह कानून रद्द समझा जायगा।

३—भारतीयसभा या प्रान्तिक सभा के हर एक प्रतिनिधि को माहवारी ५ सौ रुपया वेतन दिया जाय। प्रतिनिधि चुनने के लिए वोट देने या उम्मीदवार होने का अधिकार पागल, दोषी, दीवालिये, सरकारी नौकर, सरकारी ठेकेदार आदि को न होगा। कोई अनधिकारी मनुष्य सभासद होकर सभा में उपस्थित हो तो उसे प्रत्येक दिन के लिए १ हज़ार रुपया जुर्माना देना पड़ेगा।

गवर्नर जनरल और उनका मन्त्रि-मंडल।

१—गवर्नर जनरल की नियुक्ति सम्राट् द्वारा हो और उनका कार्यकाल भी उन्हीं के इच्छानुसार हो।

२—प्रत्येक बारह महीनों के भीतर गवर्नर जनरल को राष्ट्रीय सभा और प्रान्तिक सभाओं का अधिवेशन कराना होगा। नियमों के अनुसार इन सभाओं को बन्द करने या फिर से निर्वाचन करने की आज्ञा देने का अधिकार गवर्नर जनरल को होगा, पर इस विषय में अपने मन्त्रिमंडल की राय से काम करना अनिवार्य होना चाहिये।

३—सम्राट् की प्रत्यक्ष आज्ञा के बिना गवर्नर जनरल भारत या भारत के बाहर के किसी राजा से सन्धि या युद्ध न करें। जब कोई राजा स्वयं ही बगावत या बलवा करे तो उस समय यह नियम काम में न लाया जायगा, पर इसकी खबर शीघ्र सम्राट् को देनी पड़ेगी।

४—अपने राजकाज के सुभीते के लिए गवर्नर जनरल भिन्न २ प्रकार के १५ दफ़्तर खोल कर इनपर एक एक मन्त्री नियुक्त करें और उन्हीं में से एक को प्रधान मन्त्री का पद दें परन्तु सेनापति और नौ-सेनापति की नियुक्ति स्वयं सम्राट् ही करें।

५—यदि मन्त्रीपदारूढ़ कोई अधिकारी राष्ट्रीय सभा के सदस्य न हों तो उन्हें तीन महीने के भीतर किसी सभा के प्रतिनिधियों में अपना चुनाव करा लेना चाहिये। उक्त समय के बाद वे मन्त्री के पद पर काम कर न सकेंगे।

६—किसी मन्त्री को निकालने की आवश्यकता हो तो वैसा करने के बाद गवर्नर जनरल उन कारणों को राष्ट्रीय सभा में लिख भेजें। यदि राष्ट्रीय सभा किसी मंत्री के विरुद्ध निन्दाव्यंजक प्रस्ताव पास करे तो उसे काम पर से हटा देना होगा। परन्तु यह नियम युद्ध-मंत्री, परराष्ट्र-सचिव, सेनापति या नौ-सेनापति के सम्बन्ध में लागू नहीं होगा।

जमा-खर्च की व्यवस्था।

१—आय-व्यय के लेखे में पहिले से स्वीकृत रकमों के सिवा भारत के धनागार से सरकार कोई रकम नहीं खर्च कर सकती।

२—२५ जनवरी के भीतर मंत्रि-मंडल को अगले साल के आय-व्यय के लेखे को राष्ट्रीय सभा में पेश करना होगा। ऋण लेना या देना, कर बढ़ाना या घटाना, नया कर बैठाना या पुराना उठाना आदि सूचनाओं का समावेश इस लेखे में होना चाहिये।

३—३१ जनवरी के भीतर ही राष्ट्रीय सभा आय-व्यय के लेखे को ज्यों का त्यों या आवश्यक सुधारों के बाद प्रान्तिक प्रतिनिधि सभा में भेज दे। उक्त सभा राष्ट्रीय सभा की सूचनाओं को ज्यों की त्यों या आवश्यक सुधार कर मंजूर कर सकती है। जिन रकमों के लिए दोनों

सभाओं ने अपनी सम्मति दी हो, आय-व्यय के लेखे के उतने ही अंश को ठीक समझकर उसको अमल में लाना होगा। जिन विषयों में दोनों सभाओं में मतभेद होगा, उनके विषय में सम्मिलित अधिवेशन कर बहुमत से उसका निपटारा कर लेना पड़ेगा।

४—फ़ौजी या नौ-सेना के खर्च में और जिस समय युद्ध चलता हो या छिड़ने की सम्भावना हो, उस समय युद्ध-व्यय की रकम में युद्ध-मंत्री या सेनापति की राय के सिवा राष्ट्रीय सभा कोई फेर बदल न कर सकेगी।

५—यदि भारत पर शत्रु की चढ़ाई हो या वैसी कोई सम्भावना न हो तो उसके खर्च के सिवा सीमा के बाहर के किसी युद्ध का व्यय भारत के धनागार से सिवा सम्राट की आज्ञा के न लिया जा सकेगा।

प्रांतिक राज्य-व्यवस्था।

१—भाषा और मानवकुल की समानता की नीव पर भारत के चाहे जितने प्रान्त बनाये जायँ, परन्तु कोई भी प्रान्त ५० लाख की आबादी से कम का न हो, इसके लिए यदि आवश्यक हो तो दो तीन विभागों को एकत्र कर एक प्रान्त बनाया जाय।

२—प्रान्त का राजकाज गवर्नर और उनकी कौंसिल की सम्मति द्वारा चलाया जाय।

३—प्रान्तिक कौंसिल को भारत सरकार या पार्लामेंट से विरोध होने योग्य कानून बनाने का अधिकार न होगा। इसके सिवा राष्ट्रीय ऋण, चुङ्गी और भारत सरकार के लगाये हुए अन्यान्य कर, सिक्के, नोट, पोस्ट और तार विभाग, फ़ौजदारी अपराधों के कानून, धर्म-सम्बन्धी कानून, सैन्य, जङ्गी-बेड़ा, परराष्ट्रीय सम्बन्ध, पेटेन्ट और कापीराईट आदि के सम्बन्ध में कानून बनाने का अधिकार इस कौंसिल को न होगा। प्रान्तिक कौंसिल में किसी बिल के पेश करने के पहिले उसमें गवर्नर जनरल की सम्मति लेनी होगी।

४—प्रान्तिक कौंसिल के बहुमत से पास किये हुए बिल गवर्नर जनरल की सम्मति मिलते ही काम में लाये जायँ, अस्वीकृत बिल गवर्नर जनरल १ महीने के भीतर कौंसिल के पास भेज दें। इस प्रकार के अस्वीकृत बिल को यदि फिर कौंसिल के सदस्यों के दो तिहाई मत मिलें तो गवर्नर जनरल की मंजूरी की कोई आवश्यकता न रहकर वह अमल में आना चाहिये।

प्रान्तिक गवर्नर और वाइस-गवर्नर।

१—प्रान्तिक कौंसिल के गवर्नर का चुनाव प्रान्त के निर्वाचक तीन वर्ष के लिए करें। राष्ट्रीय सभा के चुनाव में जिनको वोट देने का अधिकार है उनको ही चुनाव में वोट देने का अधिकार होगा। यदि अन्य किसी नियम में बाधा न पड़ती हो तो २१ वर्ष आयु के चाहे जिस ब्रिटिश नागरिक को गवर्नर के स्थान की उम्मीदवारी के लिए खड़े होने का अधिकार रहेगा।

२—गवर्नर के साथ ही साथ उन्हें वाइस गवर्नर का चुनाव भी करना चाहिये। तीन महीने से अधिक समय तक प्रान्त के बाहर रहने या किसी समय भारत की सीमा के बाहर जाने, इस्तीफ़ा देने या और कोई कारण से गवर्नर का स्थान खाली रहने पर उतने दिनों के लिए वाइस-गवर्नर नियुक्त किये जायँ। यदि किसी कारण से इनका स्थान भी खाली हो तो कौंसिल का मुखिया उस स्थान पर नियुक्त किया जाय।

३—गवर्नर को अपनी कौंसिल में उपस्थित रहने, व्याख्यान देने और वोट देने का अधिकार हो। कौंसिल का चुनाव होने पर ३० दिन के भीतर गवर्नर, कौंसिल का अधिवेशन करावें। एक अधिवेशन के बाद १ वर्ष के भीतर दूसरा अधिवेशन होना ही चाहिये। अधिवेशन का

समय निर्धारित करने, काम समाप्त होने पर उसको बन्द करने का अधिकार गवर्नर को होगा पर कौंसिल तोड़ने का अधिकार उसको न होगा।

४—वाइस गवर्नर को भी कौंसिल में आने, बोलने और सम्मति देने का अधिकार रहेगा। वाइस गवर्नर, गवर्नर का स्थान प्राप्त करने पर अपनी कार्यकारिणी सभा के अपने स्थान पर राष्ट्रीय सभा के चाहे जिस सदस्य को नियुक्त कर सकता है।

प्रान्तीय कौंसिल।

१—प्रान्तिक राज्यव्यवस्था के लिए हर एक प्रान्त में कानून बनाने के लिए एक राष्ट्रीय कौंसिल होना चाहिये। इस कौंसिल में हिन्दू, मुसलमान और अन्य धर्मावलम्बियों के चुने हुए सदस्य होंगे। प्रति ढाई लाख बस्ती में एक के हिसाब से प्रतिनिधि चुने जायँ और प्रान्त कितना भी छोटा क्यों न हो पर २० से कम सदस्य उसके किसी अवस्था में न हों। इस कौंसिल के सदस्यों का चुनाव गवर्नर द्वारा निर्द्धारित दिन को हर एक भाग की वोट देनेवाली संस्थाओं की ओर से एक दिन ही हो। सदस्यों का कार्यकाल तीन वर्ष का हो और उन्हें माहवारी वेतन ३ सौ रुपया मिले।

२—राष्ट्रीय सभा के सदस्यों की योग्यता के लिए जो नियम हैं वे ही इनके लिए होंगे।

३—दस सदस्यों की उपस्थिति के बिना प्रान्तिक कौंसिलों का कार्य न चलाया जाय, चुनाव के बाद कौंसिल अपने सदस्यों ही में से सभापति को चुने। जब २ किसी कारण से सभापति का स्थान खाली हो तब २ कौंसिल ही नये अध्यक्ष का चुनाव करे। अच्छी तरह से काम चलाने का भार सभापति पर ही रहे। कौंसिल में जब किसी प्रस्ताव पर बराबर वोट आवें तब सभापति को अपनी वोट देनी चाहिये सिवा ऐसी घटना के उसे अपनी वोट देने की आवश्यकता नहीं।

४—सभापति का वेतन कौंसिल ही निर्धारित करे, परन्तु एक बार सभापति का चुनाव होकर उसका वेतन निर्द्धारित हो जाने के बाद फिर वेतन नहीं बढ़ाया जा सकता।

५—प्रान्तिक कौंसिल को कार्यकारिणी सभा से आवश्यक पूछताछ करने और कागज़ात पेश करने का हुक्म देने का अधिकार है।

प्रान्तिक कार्यकारिणी कौंसिल।

१—प्रान्त का काम चलाने का भार गवर्नर पर होगा। इसके लिए वह एक वाइस गवर्नर और पांच तक कार्यकारी कौंसिलर्स चुनकर उनपर एक २ विभाग का काम सौंप सकता है। ये चुने हुए कौंसिलर्स प्रान्तिक कौंसिल के सदस्य हों यदि वे सदस्य न हों तो वे तीन मास के भीतर अपना निर्वाचन करालें।

२—जिस कौंसिलर के विरुद्ध प्रान्तिक कौंसिल में निन्दाव्यंजक प्रस्ताव पास हुआ हो, उसको इस्तीफा देना होगा।

३—प्रांतिक कौंसिल, भारतीय सभा, प्रांतिक प्रतिनिधि सभा आदि के चुनाव के लिए वोट देनेवालों की सूची बनाने, वोट लेने, और आवश्यकता होने पर अन्तर्गत चुनाव करने आदि के काम कार्यकारिणी कौंसिल के द्वारा ही होने चाहियें।

४—प्रान्तिक कौंसिल द्वारा निर्द्धारित समय पर कार्यकारिणी कौंसिल को आय-व्यय का लेखा कौंसिल में पेश करना चाहिये। आवश्यक सुधार कर प्रान्तिक कौंसिल उसे मंजूर करे। उसी के अनुसार सब काम हों।

अन्यान्य विषय।

१—प्रीवी कौंसिल के नमूने पर उन्हीं अधिकारों से युक्त एक 'सुप्रीम् कोर्ट' सम्राट् यहां

स्थापन करें। उसमें एक प्रधान और दो अन्य विचारपति रहें। ये विचारपति ग्रेट-ब्रिटेन और आयर्लैंड के बैरिस्टर या भारत की हाईकोर्ट में दस वर्ष तक वकील या एडवोकेट का काम किये हुए मनुष्य ही सम्राट् द्वारा नियुक्त किये जायँ।

२—हर एक प्रान्त में एक एक हाईकोर्ट प्रतिष्ठित कर उनमें एक प्रधान विचारपति और आवश्यकतानुसार दूसरे जज बादशाह की ओर से नियुक्त किये जायँ। परन्तु आजकल हाई-कोर्ट में जो यह नियम है कि एक तिहाई जज सिविलियन हों, रद्द कर दिया जाय।

३—भारत और इङ्गलैंड में सिविल सर्विस की परीक्षा एक ही समय में हो।

४—आजकल फौज की बड़ी २ नौकरियाँ जैसे इङ्गलैंड के अधिवासियों ही को मिलती हैं वैसे ही वे भारतवासियों को जाति, वर्ण या धर्म का बिलकुल भेद न रखकर मिलने की व्यवस्था हो।

५—जिन राजा या सरदार को उपर्युक्त नियमों के अनुसार अपने राज्य को भारत का एक प्रान्त बनाने की अभिलाषा हो, उन्हें वैसा करने का अधिकार हो। परन्तु उस प्रान्त की गवर्नरी का अधिकार पुश्त दर पुश्त उन्हीं के वंशजों को रहना चाहिये।

६—जो राज्य बहुत छोटे २ हैं, वे कई एक सम्मिलित होकर अपना एक प्रदेश बनावें और आपस में सलाह कर यह स्थिर करें कि गवर्नर का पद पुश्त दर पुश्त किस घराने के अधिकार में हो।

नई व्यवस्था को अमल में लाने का क्रम।

इस व्यवस्था को अमल में लाने का निश्चय होते ही भाषा और जाति की साम्यता के अनुसार प्रान्तों का विभाग करने के लिए वाइसराय एक कमीशन नियुक्त करें। उक्त कमीशन दो वर्षों में प्रान्तों का विभाग करे। इसके बाद पहिले चुनाव में उपर्युक्त नियमों के अनुसार कौंसिल के लिए जितने प्रतिनिधि चुनने हों, उनमें एक चौथाई चुने जायँ और सरकार भी उतने ही सदस्य नियुक्त करे। दो बार ऐसा चुनाव होने पर तीसरे चुनाव के समय निर्वाचित सदस्यों की संख्या दूनी हो, पर सरकार के चुने हुए सदस्यों की संख्या पहिले के बराबर ही रहे। दो बार ऐसी व्यवस्था हो जाने के बाद पाँचवें निर्वाचन में निर्वाचित सदस्यों की संख्या कुल प्रतिनिधिसंख्या की तीन चतुर्थांश होनी चाहिये। इस चुनाव में सरकार अपने सदस्यों को नियुक्त करे। परन्तु पहिले से जो सदस्य सरकार की ओर से कौंसिल में काम करते हों, वे ही रहें। सप्तम निर्वाचन के समय सब प्रतिनिधि ही लोकनिर्वाचित हों। इतना ही नहीं, पर इसके साथ ही साथ प्रान्तिक गवर्नर और वाइस-गवर्नर का चुनाव आरम्भ किया जाय। भारतीय सभा के चुनाव का क्रम भी इसी तरह से क्रमशः बढ़ाया जाय। सारांश यह कि इस कानून के पास होने के बाद प्रदेशों के विभाग करने के दो वर्ष और प्रथम छः निर्वाचनों के १८ वर्ष मिलाकर २० वर्षों के बीत जाने पर २१वें वर्ष यह सच्चा होमरूल या 'स्वराज्य' अमल में लाया जाय।

शिक्षा ।

[लेखक—एक युवा राजनैतिक ।]

सन् १८५४ ई० से हमारी शिक्षा का प्रबन्ध भारत सरकार ने अपने हाथों में लिया। उसके पहिले इस देश के विद्यालयों में कुल ९ लाख विद्यार्थी शिक्षा लाभ करते थे। इन विद्यालयों से सरकार का कोई सम्बन्ध नहीं था। शिक्षा का प्रबन्ध सरकार के हाथों में जाने के बाद २८ वर्षों में या सन् १८८२ ई० तक विद्यार्थियों की संख्या बढ़कर २५ लाख या सैकड़े १.२ होगई। फिर आगे के २८ वर्षों में या १९१० तक यही संख्या २९॥ लाख हुई। इन ५६ वर्षों के कठिन परिश्रम के बाद शिक्षित पुरुषों की संख्या सैकड़े कोई ७ हुई। सन् १८८२ ई० तक प्रति विद्यार्थी की शिक्षा के लिए एक पैसे से कुछ अधिक खर्च होता था पर १९१० तक यह खर्च भी बढ़ कर प्रति विद्यार्थी तीन पैसे हो गया। परन्तु इसी समय में सरकारी मालगुज़ारी बढ़ाकर सवा आठ करोड़ रुपये कर दी गई। परन्तु इसमें अधिकांश रुपया रेल बढ़ाने और फौज में ही खर्च किया गया।

गत शताब्दी के अन्त में फिलीपाइन द्वीप, एमेरिका के शासनाधिकारभुक्त हुआ। गत सन् १९०३ ई० में वहां सैकड़े कुल दो मनुष्यों को शिक्षा मिलती थी। १९०८ तक यही संख्या बढ़कर सैकड़े ५ हो गई। इसी अवसर (१९०३–८ तक) में भारत में यही संख्या सैकड़े १.६ से १.९ हुई। इसी उन्नति को एंग्लो-इंडियन-दल अद्भुत उन्नति कहा करता है।

अन्य सभ्य देशों से भारत की शिक्षा की तुलना करने के लिए नीचे एक तालिका दी जाती है। इसके देखने से पाठकों को बहुत कुछ हाल मालूम हो जायगा।

देश	शिक्षा का प्रचार।	व्यय।
जापान	सन् १८७२ ई० में इस देश में सैकड़े २८ बालक शिक्षालाभ करते थे, पर १९०० में सैकड़े ९० बालक शिक्षा पाने लगे। १९१० में कुल मनुष्य संख्या में सैकड़े ११ मनुष्यों को शिक्षा मिलती थी।	यह देश शिक्षा के लिए १४ आने फ़ी आदमी व्यय करता है, पर इतनी किफ़ायत होने पर भी सब से बढ़कर है। भारत की तुलना में यह खर्च १४ गुना अधिक है।
इङ्गलैंड	१९वीं शताब्दी में इङ्गलैंड का हाल भी भारत कासा ही था। यहां १८७० में शिक्षा की ओर ध्यान दिया गया। एक ही वर्ष या १८७१ में यहां के शिक्षा पाने योग्य बालकों में सैकड़े ४३.३ बालक शिक्षा पाने लगे। १८७६ में यही संख्या सैकड़े ६६ और १८९२ में सौ में सौ हुई। २२ वर्षों में सब के सब बालक शिक्षा पाने लगे। १९१० में यह संख्या कुल मनुष्य संख्या में सैकड़े २० थी।	ब्रिटिश सरकार अपने बच्चों की शिक्षा के लिए फी मनुष्य ७॥) खर्च करती है। भारत की तुलना में यह रकम १२० गुनी अधिक है।

देश।	शिक्षा का प्रचार।	व्यय।
अमेरिका	इस देश की तुलना में किसी देश में शिक्षा का प्रचार नहीं है। यहां सौ में सौ मनुष्य ही पढ़े लिखे हैं। १९१० में कुल मनुष्यसंख्या में सैकड़े २१ शिक्षा पाते थे।	यहां शिक्षा में सबसे अधिक या फी मनुष्य की शिक्षा के लिए १२) रुपये खर्च किया जाता है।
भारत	१८५४ ई० से १९१० तक यहां कुल १.९ फीसदी पढ़ने लगे।	यहां प्रत्येक मनुष्य की शिक्षा के लिए एक आना खर्च होता है।

उपर्युक्त तालिका को देख कर शायद कोई पाठक, एंग्लो-इन्डियनों की तरह विचार कर यह कहने लगें कि पश्चिमी और पूर्वी सभ्यता में बहुत अन्तर है, इसलिए उनसे भारत की बराबरी करना भूल है। यहां अनिवार्य और मुफ़्त शिक्षा का प्रबन्ध बिलकुल ही असम्भव है।

इसका उत्तर यह है कि जापान और फिलीपाइन तो पश्चिमी देश नहीं हैं। वहां तो पूर्वी सभ्यता का ही दौरदौरा है। हमसे भी अधिक पूर्व में रहते हुए इन देशों में अधिक उन्नति है। अब रही बात अनिवार्य और मुफ़्त शिक्षा की। इसके लिए हमारे देश के देशी रजवाड़ों की प्रजा की ओर ध्यान देना चाहिये। उनमें और हम में, और कोई बात का अन्तर तो है ही नहीं, सिर्फ अन्तर है तो इतना ही कि वे राजा महाराजाओं के अधिकार में हैं और हम ब्रिटिश सरकार की छत्र छाया में।

पहिले पहिल प्रयोग के लिए १८९३ ई० में महाराज बड़ौदा ने १० गांवों में अनिवार्य और मुफ़्त शिक्षा का प्रारम्भ किया। इस कार्य में सफलता प्राप्त हुई। इसके बाद १९०६ ई० में उन्होंने समूचे राज्य भर में प्राथमिक शिक्षा अनिवार्य और मुफ़्त कर दी। उस समय से ६ से १२ वर्ष आयु के प्रत्येक बालक विद्यालय में जाने लगे। सिवा इसके ६ से १० वर्ष आयु की प्रत्येक बालिका भी ज़बर्दस्ती स्कूल में बिठाई गई। १९०९ में बड़ौदा राज्य में फी सैकड़े ७९.६ बालक और फी सैकड़े ४७.६ बालिकाएँ स्कूलों में विद्यालाभ करने लगीं। ऐसी अवस्था में ब्रिटिश भारत में सैकड़े २१.५ बालक और सैकड़े ४ बालिकाएँ शिक्षा लाभ करती हैं। इतना ही नहीं पर १९१४–१५ में बड़ौदा राज्य के प्रत्येक गांव में स्कूल खुल गये और इनमें फी सैकड़े ८१.६ बालक-बालिकाओं को शिक्षा मिलने लगी। इस राज्य में प्रत्येक विद्यार्थी के लिए ।=)॥ आने खर्च किये जाते हैं।

बड़ौदे के बाद दूसरा नम्बर मैसूर का आता है। उस राज्य में आरम्भ ही से प्रत्येक मनुष्य के लिए बारह आना खर्च किया जाता है। अब तो वहां विश्वविद्यालय भी खुल गया है। रङ्ग ढङ्ग से दिखाई देता है कि यह इस दृष्टि में बड़ौदे से भी आगे बढ़ जायगा।

इसके सिवा ट्रावनकोर और कोचिन के राजागण भी अपने यहां के प्रत्येक मनुष्य की शिक्षा के लिए यथाक्रम साढ़े सात और छः आने खर्च करते हैं। परन्तु हमारी शिक्षा पर एक आने से अधिक खर्च करना शायद 'पालिसी' के विरुद्ध पड़ेगा तथा मुफ़्त और अनिवार्य शिक्षा इतने में नहीं दी जा सकती। इसीलिए यदि परलोकवासी महात्मा गोखले का Free and Compulsury Education Bill वाइसराय की कौंसिल से नामंज़ूर करके फेंक दिया गया तो कोई आश्चर्य की बात नहीं।

चेतावनी।

[लेखक—श्रीयुत गोविन्दवल्लभ पंत।]

अरे मन सोच समझ मत भूल।
नवमुकुलित जो दीसत सन्मुख चारु बसंती-फूल॥
सावधान! नहिं चुनना उसको बेधेंगे तिरशूल।
कष्ट सहनकर चुन भी ले यदि हो करके प्रतिकूल॥
मुरझा करके ललित कुसुम वह अवसि होइ है धूल
अतः मन सोच समझ मत भूल॥

मैं अपने बच्चे को सिपाही क्यों बनाती हूं।

[स्विस माता द्वारा लिखित।]

हाल ही में मैं अपनी जन्मभूमि स्वीज़रलैंड की महत, प्रगतिशील और उत्साही छोटी बहिन संयुक्तराज्य-एमेरिका की राजधानी में सफ़र करने गई थी। उस समय मुझे दिखाई दिया कि वहां की आभ्यन्तरीण सुव्यवस्था के विषय में घोर आन्दोलन हो रहा है, कारण वहां की बहुत सी व्यवस्थाएँ बाबा आदम के समय की होने के कारण निरुपयोगी हो गई हैं। सिवा इसके, वह अपनी 'तैयारियां' बिलकुल ही नये ढङ्ग पर करने के विषय में भी विचार कर रही है। परन्तु उसके घर के बहुतेरे लोग इस परिवर्तन की आवश्यकता नहीं समझते और इससे उनके विचार भिन्न हैं। कुछ लोगों का ख्याल है कि इस परिवर्तन से शान्ति और सुख नष्ट हो जायगा। दूसरों का कहना है कि परिवर्तन और तैयारियों से ही अपने देश की रक्षा हो सकती है।

हमारे छोटे से सुहावने देश में कई वर्षों के पहिले ही सब तैयारियां हो गई हैं। इनके होने से जो आनन्ददायक और सुखकर परिणाम हुए हैं, मैं आप लोगों के सामने पेश करने की चेष्टा करती हूं। कारण यदि मैं अपने पड़ोसी को पूर्ण व्यवस्था और रक्षा के उपाय किये बिना ही अपने मकान में विद्युत प्रवाह लाने की चेष्टा करते देखूं तो मैं उससे कई वर्षों की परीक्षा से प्रमाणित मेरे घर की सर्वाङ्गसुन्दर, सुरक्षित और सादी व्यवस्था को एक बार देख जाने के लिए अनुरोध करूंगी। विद्यु[illegible] तरह 'तैयारी' भी खतरनाक है और [illegible] नकली ठीक व्यवहार न किया जाय [illegible] आपने सुनी घर को जलाकर भस्म कर [illegible]इच्छा प्रकट करने [illegible]ई में आने के लिए

देश की सैनिक-व्यवस्थ[illegible]या गया था। वहां प्रधान आवश्यक वस्तु है [illegible]ने का अवसर दिया अपेक्षा स्त्रियों ही का स[illegible]जाज़ी और दृढ़ता घनिष्ट रहता है, कारण कि[illegible]थे। करती हैं, पुरुषों से सर[illegible] सरकार युद्धादि करती [illegible]क सिपाही के पास सबसे अधिक दुःखजन[illegible]में कोई सन्देह नहीं दिखाई देगी कि हाथ [illegible] पर तुम्हारी संख्या [illegible]ख अपने २ फौजी [illegible] लाख है। यदि मैं अपनी उनकी आंखों [illegible]ख सिपाही यहां लेकर आऊँ, पानी दिखा[illegible]कर सकते हो?"

कमल[illegible] सिपाही ने खमीज़ कहा, "क्यों [illegible]शय, यह तो बहुत ही सहज बात है[illegible]

राष्ट्र की दुःखपूर्ण घटनाओं के विवरण लिखे हुए हैं।

हम लोग स्विज़रलैंड को तुम्हारे प्रजातन्त्र-राज्य की बड़ी बहिन कहना अधिक पसन्द करते हैं। इसका हमें अभिमान है कि टामस जेफ़रसन ने हमारी संस्थाओं का अध्ययन करने के लिए एक कमीशन भेजा था और हमारे यहां के 'अलाबामा' नामक 'हाल' में तुम्हारा एक अन्तर्जातीय झगड़ा तय हुआ था। हम लोगों को यह देखकर आनन्द होता है कि हमारे ख्यालात भी तुम्हारे महत देश के बराबर ही हैं। हमें यह विश्वास है कि तुम्हारे प्रश्नों को हल करने में हमारे अनुभव बड़े काम के होंगे, कारण ऐसे ही प्रश्न हम लोगों के सामने भी उपस्थित हुए थे।

हम लोगों का राज्य कई भिन्न जातियों के समावेश से संगठित हुआ है। इसमें आधे से कुछ कम जर्मन, आधे फ्रांसीसी और कुछ इटैलियन जाति के हैं। इससे यहां होनेवाले तीन भिन्न भाषाओं के व्याख्यान और भिन्न भाषाओं में छपनेवाले सरकारी कागजातों के विषय में हम में, अकरिये। यद्यपि हमारे जातीय जीवन में सिर्फ अन्तर विचार-स्वातन्त्र्य का बीमा है तथापि राजाओं के अधिक की पूर्व कीर्तियां, विश्वास सरकार की छत्र छाय लक्ष्य और एक आदर्श का

पहिले पहिल प्र र्थ हुई है। हमारा मूलमन्त्र में महाराज बड़ौदा ने लिए और एक सब के और मुफ़्त शिक्षा का प्र

में सफलता प्राप्त हुई। हिले स्विज़रलैंड लोगों की में उन्होंने समूचे राज्य उसी समय से आसपास अनिवार्य और मुफ़्त करके लोग इसमें सम्मिलित से १२ वर्ष आयु के वेश तब तक बराबर होता में ...ने लगे। सिवा इसके स्वतंत्र २२ राज्यों का आयु को प्रत्येक बालिका भी ज़...स्वसि आत्मा—में बिठाई गई। १९०९ में बड़ौदा के लोगों ने सेवा ... कि क्या ...मींदार

सबका एक ही कर्तव्य है और उससे किसी को निष्कृति नहीं। उसे अपने देश की सेवा अवश्य ही करनी चाहिये, कारण यह सेवा ही धर्म के रूप में सबको प्यार करना सिखलाती है।

स्विस फौजी प्रथा के सम्बन्ध में तुमको अपने साप्ताहिक और मासिकपत्रों द्वारा बहुत कुछ हाल मिला होगा। हमारे लिए यह बहुत आसान है, कारण इसकी उत्पत्ति आवश्यकता से हुई थी। सब पुरुषों के सिपाही होते हुए भी हमारी कोई स्थायी सेना नहीं है। कारण प्रथमतः हमारा पेशा सैनिक नहीं। हम लोग कलाकौशल और व्यापार की उन्नति और अच्छी व्यवस्था पर निर्भर करनेवाले एक छोटे से देश के अधिवासी हैं। कारण हम सब का विश्वास है कि कुछ लोगों को उद्यम और उद्योग से छुड़ाकर एक ऐसे पेशे में लगाना—जब हमें कोई सैनिक-इच्छा या पीतल के बुताम का मोह नहीं—सुरक्षित या अच्छा काम है। किन्तु इस दृष्टि से हमारे यहां के सब लोग सैनिक-शिक्षा से सुशिक्षित किये जाते हैं क्योंकि हमारा देश प्रचण्ड खड़ी सेनाओं के रखनेवाले देशों से घिरा हुआ है। वे, उसी समय के लिए तैयार किये जाते हैं, जो आज उपस्थिति है और जब कि हमारे पड़ोसियों द्वारा एकत्रित शस्त्रास्त्र, वज्रपात करनेवाले मेघों की तरह, हमारी समूची सीमा पर छाये हुए हैं।

किस तरह से हम लोग अपने बालकों को सिपाही, हमारे विचारों के पोषक, स्वतन्त्रता के रक्षक और लोगों के स्वत्वों के लिए लड़नेवाले बनाते हैं, यह नीचे दिया जाता है।

बाल्यावस्था से ही उन्हें इसकी शिक्षा दी जाती है। हम—माताएँ—उनके कोमल हृदयों में यह बात जमा देती हैं कि उन्हीं पर उस छोटे से देश की, जिसमें उन्होंने जन्मग्रहण किया है, रक्षा का भार है। हम उनको यह समझाने की चेष्टा करती हैं कि उनकी सेवा के बिना

उनका देश नहीं रह सकता। उनका काम यह नहीं कि वे अपने पूर्वजों द्वारा स्थापित उन आराम देनेवाली संस्थाओं का आनन्द उपभोग करें, बल्कि भविष्य में जातीय आदर्श —प्रजातन्त्र स्वाधीनता के उस सच्चे आदर्श जिसके लिए वह देश खड़ा है—के सम्मान की रक्षा करना है। हम उनको शिक्षा देती हैं कि युद्ध भयङ्कर विषय है, परन्तु उन्हें शान्ति-रक्षा के लिए सच्चा सिपाही बनना आवश्यक है। उन्हें यह समझा दिया जाता है कि उनमें प्रत्येक को सबके लिए और व्यक्तिगत स्वाधीनता के अधिकारों की रक्षा करने के लिए अवश्य सेवा करनी चाहिये।

उनको स्वदेश से प्रेम करने की शिक्षा भी दी जाती है कारण वह ईमानदार और सुन्दर देश है। सिर्फ इसीकी शिक्षा उन्हें नहीं दी जाती कि "हमारा देश पृथ्वी में सब से बड़ा और ईश्वर का अपना देश है। हमारी संस्थाएँ और जीवन-निर्वाह की रीतियां ही ठीक हैं।" कारण हमारी सीमा ही में रहने और विचार करने की भिन्न २ रीतियां हैं। हमारे देश में आनेवाले भिन्न २ देश के लोगों की भिन्न २ भाषाएँ और रीतियां हैं। यही सच्ची सहनशीलता और समझ, जो शिष्टता की नींव है, प्रत्येक स्विस को सीखनी पड़ती है। इससे उसकी 'देशभक्ति' विस्तृत होकर बड़ी भारी अन्तर्राष्ट्रीय इमारत बनाने का साधन तैयार करती है।

१० वर्ष की अवस्था में स्विस बालक स्वयंसेवक दल में भर्ती किये जाते हैं। वहां उन्हें पोशाक और एक छोटी बन्दूक मिलती है। उस समय से उन्हें ड्रिल (कवायद) और ज्येम्नास्टिक (कसरत) सिखलाई जाती है। आधी छुट्टियों के दिन, उन्हें निशाना मारना सिखलाया जाता है। कई प्रदेशों में ये शिक्षाएँ अनिवार्य हैं, पर ऐसे उदाहरण कम हैं।

१६ वर्ष की उम्र में हमारे बालक प्रारम्भिक सैनिक-शिक्षा में भर्ती किये जाते हैं। हाल ही में यह शिक्षा अनिवार्य की गई है। रविवार और अन्य छुट्टियों के दिन हमारे कुछ वयोवृद्ध अफ़सर उन्हें नयनसुखकर पहाड़ों में ले जाते हैं। चमकीले पोशाकों में अफसरों के साथ पहाड़ों पर चढ़ते हुए ये बालक बहुत ही सुन्दर जान पड़ते हैं। प्रकृत सिपाही बनने के लिए इनको रोज कड़ी कवायद करनी पड़ती है।

२० वर्ष की अवस्था में वे 'रिक्रूट' के क्लास में भेजे जाते हैं। यहां से सच्ची सैनिक-शिक्षा का आरम्भ होता है और सिपाही के जानने के सब विषयों की शिक्षा उन्हें दी जाती है। निशाना चलाने के लिए बड़े २ सरकारी मैदान बने हैं। अन्तर्जातीय लक्ष्य-भेद (निशानाबाज़ी) के कितने ही पुरस्कार स्विस लोगों को मिले हैं। २० से ४५ वर्ष तक के प्रत्येक स्विस को वर्ष में २ सप्ताह तक नकली लड़ाइयों में सम्मिलित होकर सैनिक-सेवा करनी पड़ती है। प्रथम वर्ष की सेवा का समय ८ सप्ताह है। ग्रीष्म ऋतु में होनेवाली इन नकली लड़ाइयों को देखने के लिए पृथ्वी भर के प्रधान २ सैनिक अधिकारी उपस्थित हुआ करते हैं।

लड़ाई के १।२ वर्ष पहिले की एक नकली लड़ाई में कैसर के आने की बात आपने सुनी होगी। स्विज़रलैंड जाने की इच्छा प्रकट करने के कारण उनको नकली लड़ाई में आने के लिए उत्साहपूर्वक निमन्त्रित किया गया था। वहां उन्हें सब मुख्य २ बातें जानने का अवसर दिया गया था। वे उनकी निशानाबाज़ी और दृढ़ता देखकर आश्चर्यान्वित हुए थे।

उस समय कैसर ने एक सिपाही के पास खड़े होकर कहा था, "इसमें कोई सन्देह नहीं कि तुम लोग प्रतापी हो, पर तुम्हारी संख्या तो हद से हद ४ ही लाख है। यदि मैं अपनी सेना के १० लाख सिपाही यहां लेकर आऊँ, तो तुम क्या कर सकते हो?"

उस सिपाही ने सगर्व कहा, "क्यों महाशय, यह तो बहुत ही सहज बात है,

हममें प्रत्येक के दो २ फेरे करने ही से काम हो जायगा।"

आगे चलकर इसी बात चीत का कुछ परिणाम भी हुआ। कहा जाता है कि जब जर्मनी में स्विज़रलैंड या बेलजियम की राह से फ्रांस पर चढ़ाई करने के विषय में विचार करने के लिए कौंसिल का अधिवेशन हुआ था, तब सिर्फ दो वोटों के कम मिलने से स्विज़रलैंड की रक्षा हुई। इसके विरुद्ध वोट देनेवाले वेही फौज़ी अफसर थे, जो नकली लड़ाई के समय कैसर के साथ स्विज़रलैंड पधारे थे।

यद्यपि उपर्युक्त कथन के अनुसार प्रत्येक मनुष्य को कुछ दिनों तक सेना में काम करना पड़ता है, तथापि इससे व्यवसाय-वाणिज्य को कोई क्षति नहीं पहुंचती, कारण प्रायः छुट्टियों के दिनों में ही उनसे यह काम लिया जाता है। प्रत्येक मनुष्य कुछ सप्ताहों के लिए सिपाही बनता और फिर अपने काम पर वापस जाता है। उनकी स्त्री उसे वर्दी पहिनाती और वह अपनी बंदूक साफकर उसमें तेल छोड़ता है, कारण उसके शस्त्रास्त्र घर ही पर रहते हैं। जो लोग शारीरिक अस्वस्थता या और किसी कारण से सैनिक-सेवा के अयोग्य होते हैं, उनको वार्षिक ७ 'फ्रांक' और आय से सैकड़े १॥ कर देना पड़ता है। इससे उन्हें सेवा से निष्कृति मिलती है।

४५ वर्ष की उम्र होने के बाद प्रतिवार्षिक सैनिक-सेवा से अव्याहति मिलने पर भी उनकी पोशाक और शस्त्रास्त्रों की जांच होती और वे "लैंडस्टर्म" दल में सन्निवेशित किये जाते हैं, कारण उसके बाद भी समय पर उन्हें रेलों और पुलों तथा कम खतरे के अन्यान्य स्थानों की रक्षा करनी पड़ती है। स्विज़रलैंड जिस सेवा की प्रार्थना करे उससे किसी को भी छुटकारा नहीं मिलती। यह भी सच है कि सरकार बारूद-गोले के कारखाने आदि जारी रखती है और जिनकी खास इच्छा अधिक दिनों तक सैनिक-सेवा करने की होती है उसे नौकरी पर रख कर अच्छी तरह से फौजी शिक्षा देती है। क्रम क्रम से उन्नति प्राप्त कर भविष्य में येही फौज़ी अफसर और संचालक नियुक्त हुआ करते हैं।

जब इस भयङ्कर महायुद्ध का आरम्भ हुआ तब सब से शीघ्र हमारी सेना ही एकत्रित होने में समर्थ हुई। जिस दिन इसकी घोषणा हुई; उस दिन रविवार था। देशभर के प्रत्येक शहर और प्रत्येक गांव में जातीय चिह्न से चिह्नित बड़े बड़े विज्ञापन चारों ओर चपकाये गये थे। सिवा इसके एक डुगडुगी पीटनेवाले के साथ एक मनुष्य चिल्ला २ कर यह कहता जाता था कि स्विज़रलैंड अपने पुत्रों को अपनी रक्षा करने के लिए बुला रहा है। दूसरे ही दिन सवेरे प्रत्येक शहर और गांव की खिड़कियों में सिपाहियों की वर्दियां लटकती हुई दिखाई देने लगीं और अपने दर्वाज़ों पर लोग बन्दूकों को पालिश और साफ करते हुए दिखाई देने लगे। दूसरे दिन वे सब लोग सम्मिलित होने के स्थानों पर एकत्रित होगये। वहां दुबारा शपथ ग्रहण करने के बाद वे अपनी अपनी कम्पनियों में भेजे गये।

सरकारी मांग के कारण खेतों के मज़बूत घोड़े, रेलगाड़ियों के डब्बे और मोटरगाड़ियां सब एकत्र की गईं। उनमें सबसे अच्छी २ चीज़ें लेकर उनका मूल्य निर्द्धारित कर दिया गया। इस पर किसी ने भी असन्तोष या आपत्ति नहीं की। प्रत्येक को अपने देश के लिए—जिसमें सुख से रहने के कारण वह अपने को उसका ऋणी समझता था—ऐसा होने का विश्वास था और वह जानता था कि उसकी सब सम्पत्ति देश के लिए है और उसको भेंट करना उसका कर्तव्य है।

इसके बाद वे सिपाही, अपने पीछे पके हुए हरे भरे खेतों के धान्य को घर में लाने का भार अपनी स्त्रियों, वृद्ध पुरुष और बच्चों पर

छोड़कर अपने गन्तव्य स्थान की ओर प्रस्थित हुए। इससे कमज़ोरों पर बहुत बड़ा भार पड़ गया। परन्तु शीघ्र ही इन सैनिक सिपाहियों में से बहुतेरे लोग ज़रूरी कामों के लिए कुछ दिनों की छुट्टी देकर वापस भेजे गये। सिवा इसके सीमा के निकटवर्ती ज़िलों में पके हुए शस्य को घर लाने और जाड़े की फसल के लिए खेतों को तैयार करने में बहुतेरे सिपाही व्यस्त दिखाई देते थे। इससे उन कामों में भी कोई विशेष असुविधा नहीं हुई।

उनके ये काम स्विज़रलैंड की पुकार पर स्वेच्छा से जाने के प्रमाणस्वरूप थे। उसकी पुकार सुन सैकड़ों मनुष्य विदेश में अपना सर्वस्व छोड़कर फौरन घर आपहुंचे।

मुझे सेना के जमाव के समय का एक मज़ेदार दृश्य सदा स्मरण रहेगा। यह घटना एक रेलवे स्टेशन पर हुई थी। ६० वर्ष से अधिक उम्र के एक तेजस्वी वृद्ध, कप्तान की पोशाक पहिने हुए स्टेशन पर खड़े होकर आनेवाली ट्रेन की बाट जोह रहे थे। वे बहुत लम्बे थे और स्विज़रलैंड के उच्च शिरस्त्राण ने उन्हें और भी ऊँचा बना दिया था। वे, सफेद दस्ताने से ढँके हुए अपने हाथ से १२ वर्ष उम्र के एक बाल-जासूस का सुन्दर हाथ पकड़े खड़े थे। वह बालक अपनी पूरी वर्दी पहिने था और उसकी छाती पर उसके दल का नाम लिखा हुआ था। जैसे ही गाड़ी प्लेटफार्म पर पहुंची वैसेही उनकी तेज़ आंखों ने खिड़कियों की राह से गाड़ी के सब मनुष्यों को देख लिया।

इतने में हठात् एक गाड़ी से एक युवक उतरा और दौड़ता हुआ उक्त वीर के हृदय से लिपट गया। निःसन्देह यह उनका पुत्र था, जो स्वदेश की पुकार सुनकर बड़ा भारी समुद्र उल्लंघन कर अभी आरहा था।

उसी स्थान पर वे—तीन पीढ़ी के मनुष्य—खड़े थे। उन्हें देखते ही मेरे हृदय से कुछ शब्द निकलने लगे और मैंने आपही आप कहा—"स्विज़रलैंड के पुत्रों ने उसकी पुकार का उत्तर दिया।"

× × ×

यह सेवा बड़ी कठिन है। अकर्मण्यता के कारण यह कठिन से भी कठिनतर है। हमारी सीमा के संरक्षक उन सिपाहियों का धैर्य और सहनशीलता तथा हमारे छोटे से पीड़ित देश का धैर्य तथा त्याग की सजीवता और पवित्रता, जो मनुष्य के सद्गुणों में सर्वश्रेष्ठ है, उनकी शिक्षा का फलस्वरूप है। इसीके लिए वह उद्योग-धंधे, स्त्री, पुत्र यहां तक कि सब कुछ का त्याग करता है। जो इसके अस्तित्व का होना स्वीकार नहीं करते और इसकी निन्दा करते हैं (दुर्भाग्यवशतः कुछ लोग ऐसे हैं जो ऐसी भूल करते हैं) वे ऐसी अनोखी सामग्री को फेंक देते हैं, जिससे बहुत बड़ी चीज़ें बन सकती हैं। सेवा से प्रकाशित होनेवाली देशभक्ति उस ईश्वरी शक्ति का प्रमाण है जो मनुष्यजाति की उन्नति की गारंटी है।

हमारे उस जातीय त्योहार के दिन, जिस दिन कोई छः सौ वर्ष के पहिले अगस्त मास में स्विज़रलैंड के वे तीन उग्र पूर्वज, धर्मतः और न्यायतः पारस्परिक स्वाधीनता की रक्षा करने की प्रतिज्ञा कर एकता-सूत्र में परस्पर आबद्ध हुए थे—कुछ धार्मिक आचार होते और धन्यवाद दिये जाते हैं।

मुझे गत वर्ष का वह उत्सव सदा स्मरण रहेगा, जो मैंने वौड कैन्टन की अंगूर की लतरों में बने प्राचीन राजप्रासाद की छत पर से देखा था और जहां से नीलवर्ण लेमन झील दिखाई देती है। देश के सब लोग क्या वृद्ध और क्या युवा सभी वहां एकत्रित हुए थे। अंगूर से ढँके हुए पत्थर के मीनार के पीछे इसके लिए मंडप बना था। टेबुल पर एक बड़ा भारी झंडा पड़ा था और उसके पास ही हमारे इति-

हास से सम्बन्ध रखनेवाले उक्त राजप्रासाद के रौप्यवर्ण केशयुक्त वृद्ध स्वामी बैठे थे।

यह मंत्री एक स्विज़ और मज़बूत युवा थे, इनका स्वर ऊँचा और सुन्दर था। उन्होंने हम लोगों को देशभक्ति का उपदेश देकर पृथ्वी में शान्ति और प्रजातन्त्र की प्रज्वलित अग्नि की रक्षा करने और स्मरण रखने योग्य पहाड़ों की चोटियों पर से निरीक्षण करनेवाले—स्विज़रलैंड के—कर्तव्य के विषय में भी उपदेश दिया, जिसमें लड़नेवाले क्लान्त सिपाहियों को उसकी ओर देखकर ढाढ़स बँधे। आपने और भी कहा कि हम जिन धर्मार्थ कामों में लगे हैं वे पर्याप्त नहीं हैं। सिवा इसके हम शान्ति में हैं, इसलिए हमारा यह भी कर्तव्य है कि जैसे हम सब ने अपने देश की आवश्यकताओं को समझकर उसकी सेवा की, वैसे ही हम लोगों को अपने पड़ोसियों की सेवा के लिए तैयार रहना चाहिये।

इसके बाद सैकड़ों वर्षों से पुनरुच्चारित होनेवाली शपथ फिर उच्चारित हुई और जातीय गान के बाद पृथ्वी में अपनी मशाल पूर्ववत् प्रज्वलित रखने के लिए परमेश्वर की प्रार्थना की गई।

कितनी ही आतशबाज़ी छुटा देने पर भी ऐसा उपदेश नहीं मिल सकता था। कितनी ही ताली पीटने पर भी इससे अधिक पुनीत उत्साह पैदा नहीं किया जा सकता था। देशभक्ति ही हमारा सम्प्रदाय हो रहा है। जब कि झंडा पास होकर निकलता है और सब के टोप उठते हैं उस समय यह बात सब से अधिक स्पष्ट हो जाती है। शान्ति का होना ही हमारी सर्वोच्च उत्कंठा है। देशभक्ति का अर्थ स्वदेश के प्रति प्रेम और सेवा तथा मनुष्यजाति की सेवा है। जब इन गुणों का सच्चा अस्तित्व होता है तब ये सब साथ २ रहते हैं।

जापान की शीघ्र उन्नति।

[लेखक—श्रीयुत ब्रह्मदत्त मिश्र, बी० ए० ।]

जापान की २०-२५ वर्ष पहिले साधारण स्थिति थी। यूरोपवाले उसको विशेष महत्व की दृष्टि से नहीं देखते थे। वे जापान को सुरम्य प्राकृतिक दृश्यों का देश ही समझते थे। वहां के मनुष्य कारीगर, देशभक्त और साहसी समझे जाते थे, और वे अभिमानी, दुराग्रही और जीवन के गहन विषयों से अभिज्ञ थे। उस समय देश में धन और व्यापार बहुत थोड़ा था। वहां के व्यापारी विश्वास के पात्र नहीं समझे जाते थे। उनकी नाविक-शक्ति नगण्य ही थी। उनके जहाजों को अँगरेज़ जाति बच्चों के खिलौने समझती थी। उनके किसानों की सेना यूरोप की महाशक्ति की सेना के बराबर नहीं समझी जाती थी। बिचारे किसान बहुत समय से छोटे २ रईसों और ज़मींदारों के अत्याचारों से पीड़ित, जर्जर और हेय हो गये थे। पार्लमेंट की अवस्था भी अच्छी नहीं थी। बहुत से राजद्रोही मनुष्य उसमें भरे हुए थे। २००० वर्ष के इतिहास का अभिमान करनेवाली एक ऐसी प्राचीन जाति की उन्नति के लिए २० वर्ष कुछ भी नहीं हैं, परन्तु इस थोड़े समय में ही इतने शीघ्र परिवर्तन हुए, जिससे उसकी वर्तमान उन्नति होकर संसार की महाशक्तियों में उसकी गणना होने लगी। देश की अन्तर्राष्ट्रीय और घरेलू उन्नति के विषय की इसी उन्नति का हाल पाठकों

के अवलोकनार्थ इस लेख में संक्षेप में देने का विचार हमने किया है।

अन्तर्राष्ट्रीय उन्नति के दो अङ्ग हैं, एक तो यह कि पाश्चात्य जातियों से स्वतंत्र राष्ट्र समझा जाना और दूसरे अपनी सेना की शक्ति को बढ़ाना, सुधारना और ऐसी स्थिति पर लाना, जिससे अन्य जातियां उससे सामना करने से डरें। पहिले पहिल जब जापान का द्वार अन्य देशों के व्यापार के लिए खोला गया तब पाश्चात्य महाशक्तियों से जो २ सन्धियां हुईं, उनपर जापान के अन्तर्राष्ट्रीय नियमों से अभिज्ञ मंत्रियों ने उन नियमों पर अपने हस्ताक्षर कर दिये जिनसे अन्य जातीय मनुष्यों के झगड़े उनकी अदालतों में उनके कानूनों के अनुसार ही फैसल किये जायँ। उस समय जापान के नियम अच्छे नहीं थे। प्रायः अनेक प्रकार के अपराधों ही में प्राण दंड दिया जाता था। कचहरियां भी अच्छी शैली पर स्थापित नहीं थी। किसी बात को पुष्ट करने को अनेक प्रकार के शारीरिक कष्ट दिये जाते थे। जब जापान में शान्ति हुई तब अदालतें भी नये ढङ्ग की खुलीं और पुलीस का संस्कार भी किया गया। यूरोप के कानून और नियमों के आधार पर नये २ कानून बनाये गये। ये परिवर्तन जापान देश की रीतियों के अनुसार ही किये गये थे। शारीरिक कष्ट देकर गवाही लेने की प्रथा उठा दी गई तथा कैदखानों का भी उचित संस्कार किया गया जिसके अनुसार इङ्गलैंड आदि अन्य यूरोपीय जातियां अब भी अपने कारागृहों का सुधार कर सकती हैं।

यह सब कार्य एक दिन में नहीं वर्षों में हुआ। अब जापान इस स्थिति पर पहुंच गया है कि उन सन्धियों के पुनः संशोधन करने का अधिकारी है। अब उसको एक स्वतन्त्र जाति के साधारण स्वत्व प्राप्त हो गये हैं।

उसको यह अधिकार उस सन्धि से प्राप्त हुआ, जो इङ्गलैंड और जापान के बीच १६ जुलाई सन् १८९४ को हुई थी। इसी समय मिकाडो ने एक विज्ञापन निकालकर जनसाधारण को यह सूचना दी थी, कि हमारे वर्षों के कठिन परिश्रम और लिखापढ़ी का फल हमें अब प्राप्त हो गया है और हमारी चिरकाल की इच्छाएँ भी अब कार्य में परिणत हो गई हैं।

न्यायालयों के सुधार के अतिरिक्त सेना का सुधार भी पाश्चात्य महाशक्तियों के ढंग पर किया गया। दुर्बल पूर्वीय जातियां शक्तिशाली पाश्चात्य महाशक्तियों के चंगुल में फँसती जाती थीं और जापान ने यह समझ लिया था कि यदि वह अपनी शक्ति को न बढ़ावेगा तो उसकी भी वही दशा होगी जो उसके अधिक विस्तृत चीन देश की हुई है। सबसे पहिले इङ्गलैंड ने हो जापान सम्राट् की स्वतन्त्रता के अधिकार स्वीकार किये हैं। व्यापार के विषय में भी उसका ही पहिला नम्बर था। एमेरिकावाले थे परन्तु उनकी संख्या कम थी। जापान ने इंगलैंड को अपना आदर्श बनाया था। चिरकाल से उसकी यह इच्छा थी कि वह अपने देश को पूर्व का ग्रेटब्रिटेन बनाकर प्रशान्त महासागर में एक महानाविक शक्ति और व्यापारी संस्था स्थापित करे। इसके लिए एक शक्तिशाली नाविक शक्ति की आवश्यकता थी। इस कार्य के लिए वह अविरत परिश्रम करता रहा और अन्त को उसकी इच्छा पूरी हुई। उसकी नाविक शक्ति अब पूर्वीय सागर में सबसे अधिक और विशाल है। चीन से मिली हुई हरजाने की रकम उसने इसी उपयोगी काय में खर्च की। प्रारम्भ में थोड़े से छोटे २ जहाज़ उसने बनवाये बाद में प्रवीण अंगरेज़ अफसरों की अध्यक्षता में धीरे २ उसने अपने जहाज़ों को सुधार कर एक आश्चर्यप्रद उन्नति कर दिखलाई। अन्त में उक्त नौ-सेना ने विगत रूस-जापान युद्ध में अपने अतुल बल और पराक्रम से संसार को चकित कर दिया।

अब तक छोटे २ जमींदारों के आधीन क्षुद्र सेना रखने की प्रथा दूर न की गई तब तक जापान के सिपाही केवल एक "समूराई" जाति के थे। देश की रक्षा करने का भार इन्हीं पर रहता था। व्यापारी, किसान और मज़दूर हथियार चलाने के योग्य नहीं समझे जाते थे। नई गवर्नमेंट ने यह जान लिया कि केवल एक ही जाति से शक्तिशाली राष्ट्रीय सेना नहीं बन सकती और इसीलिए उसने सब लोगों को फौजी शिक्षा और कार्य करने के लिए बाध्य किया। इसके लिए कई स्थानों में फौजी कालेज खोले गये। कितने ही सुसज्जित शस्त्रागार भी धीरे २ तैयार किये गये। प्रत्येक प्रकार की ड्रिल (Drill) (व्यायाम विशेष) स्कूलों में सिखलाई जाने लगी। छुट्टियों में पेन्शन प्राप्त पुराने अफसर उन्हें छोटी २ बन्दूकें और तलवारें देकर सच्चे सिपाहियों की तरह ड्रिल और क़वायद सिखलाया करते थे। इससे युवावस्था को प्राप्त होकर ये लड़के ही थोड़ी शिक्षा से ही पूर्व अभ्यास के कारण शूरवीर योद्धा बन जाते हैं। सन् १८९४ ई० में जापान ने चीन से लड़ाई छेड़ी। युद्ध-विद्या-विशारद उसकी मूर्खता पर हंसने और भावी आपत्ति की आशंका करने लगे। परन्तु उसको अपनी सेना और जङ्गी-बेड़े पर पूरा विश्वास था। उसकी स्थल और जल-सेना की सर्वत्र जीत हुई। पहिली ही बार संसार के सामने एक महाशक्ति के रूप में प्रकट होकर जापान ने चीन कैसे विशाल साम्राज्य को परास्त किया और रूस-जापान युद्ध में उसने अपनी शक्ति का पूर्ण परिचय दिया। उसकी सेना का संगठन, शक्ति और उचित व्यवहार अँगरेज़ों और एमेरिका की सेना के तुल्य था। इस समय उसकी खड़ी सेना में १४६,००० और रक्षित सेना में ४३०,००० सिपाही हैं। यह सेना युद्ध में यूरोप के किसी राज्य की सेना से, जो बड़े २ फौजी कार्य सम्पादन करने का अभिमान करती हैं, कोई बात में कम नहीं है। इस समय जापान में १४०० बड़े २ स्टीमर (धूम्रपोत) हैं, जिनमें बहुतेरे अर्वाचीन प्रथा के अनुसार सब प्रकार से सुसज्जित हैं। लंडन और बेलजियम के एन्टवर्प से सिंगापुर तक जहाज़ का किराया जापान की कम्पनी ही निश्चित करती है। ये ही जहाज़ आवश्यकता पड़ने पर सैन्य-वाहक और सामान ढोनेवाले जहाज़ों का काम करते हैं। एक बात और विशेष महत्व की हुई, जिसने उसकी स्थिति को पूर्णतया संसार में स्थापित कर दिया। सन् १९०२ की ११वीं फरवरी को जापान और ग्रेटब्रिटेन में मित्रता की एक सन्धि (Treaty of Alliance) हुई। उसके देशभक्त राजनीतिज्ञों को इस विचार से प्रसन्नता हुई कि उनका कार्य समाप्त हुआ और उनका देश अब उन्नति के शिखर पर पहुंच गया। कारण २० वर्षों के पूर्व उन्हें ऐसा होना स्वप्नवत् जान पड़ता था।

सुधारक-निर्णय।

कौन सुधारे देश—बतादे हमें ॥ अंतरा ॥
जाके हिय नित शुद्ध प्रेम हो, स्वारथ को नहिं लेश ॥ १ ॥
मन वच-कर्म एक ही राखे, अपनो भाषा वेश ॥ २ ॥
सत्य सत्य अनुभव से मिश्रित, भेजे सदा सँदेश ॥ ३ ॥
उदित करे आदर्श उच्च, हिय रखे न चिन्ता शेष ॥ ४ ॥

स्वर्गीय परिडत विशननारायण दर ।

[लेखक—श्रीयुत श्यामसुन्दर लाल गुप्त ।]

आज हम इस पत्रिका के पाठकों को एक ऐसे नर-रत्न का संक्षिप्त जीवन-चरित्र भेंट कर रहे हैं, जिसने स्वदेश के लिए सर्वस्व अर्पण कर दिया था। महापुरुषों के जीवन-चरित्र अत्यन्त शिक्षाप्रद होते हैं। वासनाओं को भड़कानेवाले कल्पित उपन्यासों और श्रृङ्गार-रस की थोथी कहानियों को छोड़ युवा पुरुषों को उचित है कि महापुरुषों के जीवनचरित्रों का सदैव पाठ किया करें। वे, दुर्बल हृदयों में साहस और पुरुषार्थ कूट कूट कर भर देते हैं। जब हम चारो ओर से विविध आपत्तियों से घिर जाते हैं, तो वे हमें सिखलाते हैं कि हम अपनी कठिनाइयों पर किस प्रकार विजय प्राप्त कर सकते हैं। वे हमें उपदेश देते हैं कि हम अपने जीवन को किस प्रकार उच्च बना सकते हैं। उनके चरित्रों का निरन्तर अध्ययन करने से हम सीखते हैं कि मृत्यु के पश्चात् भी हम किस प्रकार अपने पदचिह्न कालरूपी रेत पर छोड़ सकते हैं। संसार का इतिहास महापुरुषों द्वारा सम्पादित कार्यों का ही इतिहास है। महापुरुष के मार्ग का स्वल्प अनुगमन भी सुख-प्रद और उपादेय होता है।

हमारे चरित्रनायक का जन्म सन् १८६४ ई० में लखनऊ नगर में हुआ था। बहुतेरे अन्य महापुरुषों की भांति आप में भी बाल्यावस्था में भावी महत्ता के कोई चिह्न नहीं पाये जाते थे। ज्यों त्यों आप प्रवेशिका परीक्षा पास कर केनिङ्ग कालेज में उच्च-शिक्षा प्राप्त करने लगे। आरम्भ ही से आपको उर्दू और अँगरेज़ी से अनन्य प्रेम था। जब आप 'फर्स्ट ईयर' में थे तब ही आपको एक निबन्ध के लिए पदक मिला था। निबन्ध-रचना में बी० ए० और एम० ए० के छात्रगण भी थे, किन्तु आपका निबन्ध ही सर्वोत्कृष्ट ठहराया गया। आपके विचार पवित्र और आकांक्षाएँ उच्च थीं। आप साहित्य के अत्यन्त प्रेमी थे और सर्वदा श्रेष्ठ कवियों की रचना ध्यानपूर्वक मनन किया करते थे।

बिना डिग्री प्राप्त किये ही आप यहां से इङ्गलैंड चले गये। विलायत जाने में आपने पूज्यपाद माता पिता की कुछ भी सम्मति नहीं ली। काश्मीरी जाति उस समय समुद्रयात्रा की कट्टर विरोधिनी थी। पंडित विशननारायण दर कैसे स्वतन्त्र प्रकृति के पुरुष ऐसे बन्धनों की कब परवाह करने लगे। अधोगति के गड्ढे में पड़े हुए देश को छोड़, उन्नत पाश्चात्य देशों में जा, वहां शिक्षा प्राप्त कर अपने प्यारे देश की उन्नति के शिखर पर आरूढ़ करने की प्रबल आकांक्षा उनके हृदय में बलवती हो उठी। वे अपने आवेश और अदम्य उत्साह को न रोक सके। बीस वर्ष की अवस्था में आप भारत से भाग गये। अदन जाकर आपने तार दिया कि मैं इङ्गलैंड जा रहा हूं। आपका विवाह हो चुका था किन्तु आपने गृहस्थी की किसी प्रकार की चिन्ता न कर प्रस्थान किया। वहां आपने तीन वर्ष तक रह कर कानून का अध्ययन किया और बैरिस्टर-एट-ला की परीक्षा पास की।

वहां प्रसिद्ध प्रोफेसर मैक्समूलर से आपकी जान पहिचान होगई। प्रोफेसर मैक्समूलर ने आपको होनहार समझ कर आपका परिचय तत्कालीन प्रसिद्ध २ साहित्य-सेवी माथ्यू, आरनोल्ड, हक्सले, मिल, स्पेन्सर इत्यादि से करवा दिया। आपने हक्सले के व्याख्यान भी सुने और अत्यंत चाव से उनके लेख पढ़े। स्पेंसर और मिल की फ़िलासफी का आप पर बड़ा प्रभाव पड़ा और कुछ दिन तक आपकी चित्तवृत्ति अनीश्वरवाद की ओर रही, किन्तु समय ने आपके

जब तक छोटे २ जमींदारों के आधीन क्षुद्र सेना रखने की प्रथा दूर न की गई तब तक जापान के सिपाही केवल एक "समूराई" जाति के थे। देश की रक्षा करने का भार इन्हीं पर रहता था। व्यापारी, किसान और मज़दूर हथियार चलाने के योग्य नहीं समझे जाते थे। नई गवर्नमेंट ने यह जान लिया कि केवल एक ही जाति से शक्तिशाली राष्ट्रीय सेना नहीं बन सकती और इसीलिए उसने सब लोगों को फौज़ी शिक्षा और कार्य करने के लिए बाध्य किया। इसके लिए कई स्थानों में फौजी कालेज खोले गये। कितने ही सुसज्जित शस्त्रागार भी धीरे २ तैयार किये गये। प्रत्येक प्रकार की ड्रिल (Drill) (व्यायाम विशेष) स्कूलों में सिखलाई जाने लगी। छुट्टियों में पेन्शन प्राप्त पुराने अफसर उन्हें छोटी २ बन्दूकें और तलवारें देकर सच्चे सिपाहियों की तरह ड्रिल और क़वायद सिखलाया करते थे। इससे युवावस्था को प्राप्त होकर ये लड़के ही थोड़ी शिक्षा से ही पूर्व अभ्यास के कारण शूरवीर योद्धा बन जाते हैं। सन् १८९४ ई० में जापान ने चीन से लड़ाई छेड़ी। युद्ध-विद्या-विशारद उसकी मूर्खता पर हंसने और भावी आपत्ति की आशंका करने लगे। परन्तु उसको अपनी सेना और जङ्गी-बेड़े पर पूरा विश्वास था। उसकी स्थल और जल-सेना की सर्वत्र जीत हुई। पहिली ही बार संसार के सामने एक महाशक्ति के रूप में प्रकट होकर जापान ने चीन कैसे विशाल साम्राज्य को परास्त किया और रूस-जापान युद्ध में उसने अपनी शक्ति का पूर्ण परिचय दिया। उसकी सेना का संगठन, शक्ति और उचित व्यवहार अँगरेज़ों और एमेरिका की सेना के तुल्य था। इस समय उसकी खड़ी सेना में १४६,००० और रक्षित सेना में ४२०,००० सिपाही हैं। यह सेना युद्ध में यूरोप के किसी राज्य की सेना से, जो बड़े २ फौजी कार्य सम्पादन करने का अभिमान करती हैं, कोई बात में कम नहीं है। इस समय जापान में १४०० बड़े २ स्टीमर (धूम्रपोत) हैं, जिनमें बहुतेरे अर्वाचीन प्रथा के अनुसार सब प्रकार से सुसज्जित हैं। लंडन और बेलजियम के एन्टवर्प से सिंगापुर तक जहाज़ का किराया जापान की कम्पनी ही निश्चित करती है। ये ही जहाज़ आवश्यकता पड़ने पर सैन्य-वाहक और सामान ढोनेवाले जहाज़ों का काम करते हैं। एक बात और विशेष महत्व की हुई, जिसने उसकी स्थिति को पूर्णतया संसार में स्थापित कर दिया। सन् १९०२ की ११वीं फरवरी को जापान और ग्रेटब्रिटेन में मित्रता की एक सन्धि (Treaty of Alliance) हुई; उसके देशभक्त राजनीतिज्ञों को इस विचार से प्रसन्नता हुई कि उनका कार्य समाप्त हुआ और उनका देश अब उन्नति के शिखर पर पहुंच गया। कारण २० वर्षों के पूर्व उन्हें ऐसा होना स्वप्नवत् जान पड़ता था।

सुधारक-निर्णय।

कौन सुधारे देश—बतादे हमें ॥ अंतरा ॥
जाके हिय नित शुद्ध प्रेम हो, स्वारथ को नहिं लेश ॥ १ ॥
मन वच-कर्म एक ही राखे, अपनो भाषा वेश ॥ २ ॥
सत्य सत्य अनुभव से मिश्रित, भेजे सदा सँदेश ॥ ३ ॥
उदित करे आदर्श जब, हिय रखे न चिन्ता शेष ॥ ४ ॥

स्वर्गीय पण्डित विशननारायण दर ।

[लेखक—श्रीयुत श्यामसुन्दर लाल गुप्त ।]

आज हम इस पत्रिका के पाठकों को एक ऐसे नर-रत्न का संक्षिप्त जीवन-चरित्र भेंट कर रहे हैं, जिसने स्वदेश के लिए सर्वस्व अर्पण कर दिया था । महापुरुषों के जीवन-चरित्र अत्यन्त शिक्षाप्रद होते हैं । वासनाओं को भड़कानेवाले कल्पित उपन्यासों और शृङ्गार-रस की थोथी कहानियों को छोड़ युवा पुरुषों को उचित है कि महापुरुषों के जीवनचरित्रों का सदैव पाठ किया करें । वे, दुर्बल हृदयों में साहस और पुरुषार्थ कूट कूट कर भर देते हैं । जब हम चारो ओर से विविध आपत्तियों से घिर जाते हैं, तो वे हमें सिखलाते हैं कि हम अपनी कठिनाइयों पर किस प्रकार विजय प्राप्त कर सकते हैं । वे हमें उपदेश देते हैं कि हम अपने जीवन को किस प्रकार उच्च बना सकते हैं । उनके चरित्रों का निरन्तर अध्ययन करने से हम सीखते हैं कि मृत्यु के पश्चात् भी हम किस प्रकार अपने पदचिह्न कालरूपी रेत पर छोड़ सकते हैं । संसार का इतिहास महापुरुषों द्वारा सम्पादित कार्यों का ही इतिहास है । महापुरुष के मार्ग का स्वल्प अनुगमन भी सुख-प्रद और उपादेय होता है ।

हमारे चरित्रनायक का जन्म सन् १८६४ ई० में लखनऊ नगर में हुआ था । बहुतेरे अन्य महापुरुषों की भांति आप में भी बाल्यावस्था में भावी महत्ता के कोई चिह्न नहीं पाये जाते थे । ज्यों त्यों आप प्रवेशिका परीक्षा पास कर केनिङ्ग कालेज में उच्च-शिक्षा प्राप्त करने लगे । आरम्भ ही से आपको उर्दू और अँगरेज़ी से अनन्य प्रेम था । जब आप 'फर्स्ट ईयर' में थे तब ही आपको एक निबन्ध के लिए पदक मिला था । निबन्ध-रचना में बी० ए० और एम० ए० के छात्रगण भी थे, किन्तु आपका निबन्ध ही सर्वोत्कृष्ट ठहराया गया । आपके विचार पवित्र और आकांक्षाएँ उच्च थीं । आप साहित्य के अत्यन्त प्रेमी थे और सर्वदा श्रेष्ठ कवियों की रचना ध्यानपूर्वक मनन किया करते थे ।

बिना डिग्री प्राप्त किये ही आप यहां से इङ्गलैंड चले गये । विलायत जाने में आपने पूज्यपाद माता पिता की कुछ भी सम्मति नहीं ली । काश्मीरी जाति उस समय समुद्रयात्रा की कट्टर विरोधिनी थी । पंडित विशननारायण दर कैसे स्वतन्त्र प्रकृति के पुरुष ऐसे बन्धनों की कब परवाह करने लगे । अधोगति के गड्ढे में पड़े हुए देश को छोड़, उन्नत पाश्चात्य देशों में जा, वहां शिक्षा प्राप्त कर अपने प्यारे देश को उन्नति के शिखर पर आरूढ़ करने की प्रबल आकांक्षा उनके हृदय में बलवती हो उठी । वे अपने आवेश और अदम्य उत्साह को न रोक सके । बीस वर्ष की अवस्था में आप भारत से भाग गये । अदन जाकर आपने तार दिया कि मैं इङ्गलैंड जा रहा हूं । आपका विवाह हो चुका था किन्तु आपने गृहस्थी की किसी प्रकार की चिन्ता न कर प्रस्थान किया । वहां आपने तीन वर्ष तक रह कर कानून का अध्ययन किया और बैरिस्टर-एट-ला की परीक्षा पास की ।

वहां प्रसिद्ध प्रोफेसर मैक्समूलर से आपकी जान पहिचान होगई । प्रोफेसर मैक्समूलर ने आपको होनहार समझ कर आपका परिचय तत्कालीन प्रसिद्ध २ साहित्य-सेवी माथ्यू, आरनोल्ड, हक्सले, मिल, स्पेन्सर इत्यादि से करवा दिया । आपने हक्सले के व्याख्यान भी सुने और अत्यंत चाव से उनके लेख पढ़े । स्पेंसर और मिल की फ़िलासफ़ी का आप पर बड़ा प्रभाव पड़ा और कुछ दिन तक आपकी चित्तवृत्ति अनीश्वरवाद की ओर रही, किन्तु समय ने आपके

विचारों में और परिवर्तन कर अन्त में आपको सच्चा वेदान्तवादी आस्तिक बना दिया। बैरिस्टरी की परीक्षा पास कर आप भारत लौट आये। भारतागमन के समय आपकी आयु २३ वर्ष की थी।

यहां आने पर आपने विधिपूर्वक प्रायश्चित्त ग्रहण किया, किन्तु कट्टर और पुराने विचार के काश्मीरियों ने आपको जाति में मिलाना अस्वीकार किया। उस समय भारत में पाश्चात्य शिक्षा फैल रही थी। कुछ शिक्षित काश्मीरी युवकों ने आपका साथ दिया। इससे 'बिशन-पार्टि' और 'धर्म पार्टि' नामक दो दल होगये। प्रारम्भ में नवीन सुधारों का सब विरोध करते हैं किन्तु अन्त में सब उन्हें स्वीकार कर लेते हैं। दर महाशय का यह दृढ़ विश्वास था कि बिना सामाजिक सुधार के भारतवर्ष में राजनैतिक सुधार और उन्नति नहीं हो सकती। आपने उसी वर्ष समुद्रयात्रा पर अत्यन्त गवेषणापूर्ण एक निबन्ध लिखा था जो Indian Social Reform में प्रकाशित हुआ था। डाकूर सप्रू ने उसकी कड़ी समालोचना कर आक्षेप किया था। दर महाशय ने उसका प्रतिवाद कर प्रमाणित कर दिया था कि भारतवासियों के लिए समुद्रयात्रा आवश्यक है।

यहां आकर लखनऊ में आपने वकालत आरम्भ की। धन की ओर कभी आपका ध्यान नहीं रहा, नहीं तो आप जैसे विद्वान और प्रतिभाशाली पुरुष के लिए सर्वोत्कृष्ट वकील होना कुछ भी कठिन नहीं था। सर्वदा आप दीन दुःखियों की सहायता किया करते थे। मातृभूमि की सेवा ही आपके जीवन का उद्देश्य था। इसी महाव्रत के व्रती हो आपने अपनी जीवनयात्रा समाप्त की।

आपका विद्याव्यसन सराहनीय था। आप सर्वदा कुछ न कुछ पढ़ा करते थे। आप अत्यन्त विचारशील थे। यह रहस्य है कि आप अधिक पढ़ते थे, किन्तु अधिक लिखते भी थे। आप भारतवर्ष के सर्वोत्कृष्ट लेखकों में गिने जाते थे। 'एडवोकेट' पत्र के आप प्रथम सम्पादक थे। कई वर्षों तक आपके अमूल्य लेख इसीमें प्रकाशित हुए हैं। 'लीडर' में भी प्रायः आपके प्रभावशाली लेख प्रकाशित हुआ करते थे। आपकी दो छोटी पुस्तकें 'समय के चिह्न' और "आजमगढ़ गऊहत्या विप्लव" अत्यन्त प्रसिद्ध और सराहनीय हैं। बड़े २ अँगरेज़ी के आचार्य और पण्डित आपके लेखों और अँगरेज़ी की विद्वत्ता की प्रशंसा किया करते थे। आपकी अँगरेज़ी की योग्यता किसी विद्वान से न्यून नहीं थी। उर्दू के तो आप आचार्य ही थे। उर्दू में आप उच्चकोटि के गद्य और पद्य की रचना किया करते थे। हमें आशा है कि आपके मित्रगण डाकूर सप्रू आदि शीघ्र ही आपके अमूल्य लेखों का संग्रह प्रकाशित करने का यत्न करेंगे।

जिस वर्ष आप विलायत से लौट आये, उसी वर्ष आप Indian National Congress में शामिल हुए थे। उस समय आपकी आयु केवल २३ वर्ष की थी, किन्तु उस वर्ष आपने जो व्याख्यान दिया उसकी बड़ी प्रशंसा हुई। आपका वक्तव्य उस वर्ष के उत्तम व्याख्यानों में समझा गया, तब से आपका कांग्रेस से निरन्तर सम्बंध रहा। सन् १९११ ई० में कलकत्ते की कांग्रेस में आप ही सभापति निर्वाचित हुए थे। आप पिछले नौ वर्षों से राज्ययक्ष्मा से रुग्न थे और डाकूरों ने कहीं जाने, आने, पढ़ने आदि के लिए मना कर रक्खा था, किन्तु देशवासियों के इच्छानुसार आप अपना कर्तव्य समझकर कलकत्ते गये। सभापति के मञ्च से आपने जो व्याख्यान दिया उसकी बहुत प्रशंसा हुई। कांग्रेस के सर्वोत्तम भाषणों में आपके व्याख्यान की गणना होती है।

आप इस प्रान्त के अधिवासियों की ओर से बड़े लाट की व्यवस्थापक सभा के सदस्य चुने गये थे किन्तु आप राज्ययक्ष्मा से पीड़ित होने के कारण विशेष कार्य नहीं कर सके। इस

वर्ष आप लखनऊ कांग्रेस की 'रिसेप्शन कमेटी' के सभापति निर्वाचित हुए थे। अलमोड़े से इसी कार्य के लिए आप यहां आये थे। कराल काल से कुछ वश नहीं चलता। मनुष्य विचारता है और ईश्वर बिगाड़ता है। आपके अमूल्य व्याख्यान को श्रवण करने का सौभाग्य हमारे भाग्य में नहीं बदा था। आप १८ नवम्बर को यह नश्वर शरीर त्याग कर स्वर्ग सिधारे। पिछले ८ वर्ष से आपका एक फेफड़ा खराब हो गया था। ऐसी अवस्था होने पर भी स्वाध्याय में कुछ भी कमी नहीं पड़ी। आप पिछले कई वर्षों से अलमोड़े में वास किया करते थे। नवीन पुस्तकों के निकलते ही उन्हें मँगा कर आप पढ़ा करते थे। ऐसे विद्वान, राजनीतिज्ञ और उत्तम लेखक की मृत्यु से भारतवर्ष की जो हानि हुई है वह अवर्णनीय है। भारत का एक सच्चा-सेवक और अमूल्य रत्न खोगया। इस प्रान्त की जो क्षति हुई है, उसका शीघ्र पूर्ण होना अत्यन्त कठिन है। बाबू गङ्गाप्रसाद वर्मा, डाक्टर सतीशचन्द्र बैनर्जी और पंडित एकबाल नारायण मसलदान (जिनको दर महाशय भाई से भी अधिक प्यार करते थे और जिनकी मृत्यु ने आपका हृदय विदीर्ण कर दिया था) के बाद आप जैसे गम्भीर विद्वान की मृत्यु हमें और भी रुलाती है। ईश्वर आपकी पवित्र आत्मा को शान्ति और सद्गति दे।

युद्ध और राज्य के नेताओं का कर्तव्य।

[लेखक—श्रीयुत शारदाप्रसाद एम० ए० वकील।]

यूरोप के वर्तमान महायुद्ध के विषय में इङ्गलैंड की 'लेबर-पार्टी' या 'मज़दूर-दल' के भ्रम-पूर्ण विचारों को यहां दिखलाना अनुचित न होगा। इसके लिए पहिले यह बतलाने की आवश्यकता है कि इस दल के उद्देश्य क्या हैं। यह दल मज़दूर और व्यवसायियों का पक्षपाती तथा हितचिन्तक है। सिवा इसके इसका काम यह भी है कि यह उनको हानि पंहुचानेवाले कोई भी कानून न बनने दे। प्रजा के सम्बन्ध में इसके विचार 'लिबरल' या 'उदार दल' के से ही हैं। उनकी उन्नति कर उनके सुखों को बढ़ाना और इसके बाधक रीति रस्मों का संशोधन करना, यह अपना कर्तव्य समझता है। एक बात में इसका सिद्धान्त "वसुधैव कुटुम्बकम्" ही है। इसमें कई शाखाएं हैं। सामान्यतः उदारदलवाले बँधे हुए नियमों और प्राचीन रीति-रस्मों को बिलकुल उठा देना नहीं चाहते बलिक इनके विषय में बुद्धि और विचारों को उदार रखना चाहते हैं। इसमें की एक शाखा 'रेडिकल' कहलाती है। इसका कहना है कि सब प्रकार के सामाजिक नियम बदल दिये जायँ और किसी को कोई रुकावट न हो और सब स्वतंत्र रहें। मज़दूर दल के अधिकांश विचार 'रेडिकल' दल के से हैं। परन्तु जर्मनी के सोशियलिस्ट (साम्यवादिक) दल से ये सहमत नहीं हैं कारण सोशियलिस्टों का सिद्धान्त है कि सब समाज तोड़ कर ऐसे ढंग पर बनाये जायँ कि धन और अधिकार का बँटवारा यथासम्भव समान हो। प्रचलित महायुद्ध के विषय में पहिले 'लिबरल' या उदारदल का चाहे जो विचार क्यों न रहा हो पर अब वह भी मन्त्रियों की तरह यही चाहता है कि बिना सन्तापजनक फल के यह बन्द न किया जाय।

परन्तु मज़दूर पक्ष के लोगों का कहना है कि युद्ध से व्यवसाय-वाणिज्य के नष्ट हो जाने

से सामान्य प्रजा को बड़ी हानि पहुंच रही है, इसलिए अब सन्धि कर लेनी चाहिये। उनकी यह भ्रम धारणा विचारपूर्ण युक्तियों से दूर कर दी गई है। इससे अधिकांश लोग यद्यपि शान्त हो गये हैं तथापि कुछ लोग समाचार-पत्रों में लेख लिखकर या व्याख्यानों द्वारा मंत्रियों को युद्ध न रोकने के कारण दोष देते हैं। इङ्गलैंड के 'नेशन' पत्र में एक ऐसा ही लेख छपा है। उसमें की प्रधान बातों का उल्लेख करने से उक्त दल की युक्तियों का अन्दाज़ा मिल जायगा। सिवा इसके उनकी भूलें दिखलाने से यह भी मालूम हो जायगा कि किस तरह से ब्रिटिश सरकार अपना कर्तव्य पालन कर रही है। 'नेशन' के उक्त लेख में लिखा है, "यह भ्रमपूर्ण सिद्धान्त प्रचलित हो गया है कि मनुष्य की प्रकृति में स्वभावतः पशुओं की तरह युद्ध की चेष्टा और इच्छा होती है। १९वीं सदी में लोग विचारों द्वारा युद्ध का स्वप्न देखते थे उनकी यह धारणा थी कि युद्ध निकट भविष्य में अवश्यम् भावी है। यह स्वप्न अब चरितार्थ होगया है। सैनिक जर्मनी में ही नहीं वरन् समस्त यूरोपीय समाज ने अब युद्ध के महत्व को स्वीकार कर लिया है। यह सच है कि संसार के प्रत्येक स्थान, यहां तक कि प्रत्येक वस्तु और पदार्थ में परस्पर युद्ध होता है—डार्विन का सिद्धान्त है कि युद्ध के बाद उत्तम बच जाते और निकृष्ट नष्ट हो जाते हैं, इससे संसार की उन्नति होती है—पर 'नेशन' के उक्त लेखक ने लिखा है, कि युद्ध-मंत्री लायड जार्ज की एमेरिकन पत्र में प्रकाशित वक्तृता से युद्ध का कोई उद्देश्य ही नहीं मालूम होता। इसमें युद्ध-मंत्री ने कहा है कि सब जातियां परस्पर उन्मत्त कुत्तों की तरह लड़ रही हैं। सैनिक, पशुओं की तरह उन्मत्त हो रहे हैं, यदि थोड़े परास्त भी हो जायँ, तो भी हटनेवाले नहीं। इन योद्धाओं से पहलवानों का सादृश्य है, जो युद्ध में धोखे की चाल अयोग्य समझ कर प्रतिद्वन्द्वी से अन्त तक लड़ने को तैयार रहते हैं। ऐसी अवस्था में कोई दूसरा मनुष्य इनके बीच कैसे बोल सकता है? 'नेशन' का लेखक, मन्त्री की इस युक्ति पर आक्षेप कर कहता है कि युद्ध में सैनिकों की इच्छा कैसी? और वे कब अपनी इच्छा के अनुसार काम करने पाते हैं। वे तो नेताओं के वश में रहते हैं। यद्यपि शारीरिक कष्ट उन्हें ही सहना पड़ता है तथापि उनके कार्य का उत्तरदायित्व उनके विवेकयुक्त नेताओं ही पर होता है। सिवा इसके युद्ध का उद्देश्य भी पशुओं और मल्लयोद्धाओं कासा साधारण नहीं है। इसका उद्देश्य आत्मिक सदाचार और सद्गुण की उन्नति करना होना चाहिये। निष्पक्ष राष्ट्रों के अधिकारों का ध्यान रखकर इसका भी ध्यान रखना चाहिये कि अपने कार्य से शत्रु क्रुद्ध होकर युद्ध की विभीषिका और भी न बढ़ा दे। सन्तोष का विषय है कि एमेरिका जैसा प्रबल राष्ट्र युद्ध में बीचबचाव करने के लिए तैयार है। यही जाति सन्धि की शर्तों को पालने के लिए दूसरे राष्ट्रों को बाध्य कर सकती है। एमेरिकनों से अँगरेज़ जाति के रक्त मांस के सम्बन्ध का हवाला देकर उक्त लेखक कहता है, "क्या राज्य के नेताओं का कर्तव्य नहीं कि उक्त एमेरिकन जाति द्वारा वे सन्धि की चेष्टा करें? बस इसी लेखक की तरह और लोग भी राज्य के नेताओं पर आक्षेप किया करते हैं। अब यह देखना चाहिये कि ये आक्षेप कहां तक यथार्थ हैं। इसके लिए पहिले युद्ध-मंत्री लायड जार्ज की वक्तृता को अच्छी तरह समझना चाहिये। इसी के लिए उनकी दूसरी वक्तृताओं को भी देखना चाहिये। इनमें उन्होंने कहा है कि सभ्यता का मुख्य अङ्ग आत्मिक उन्नति और सदाचार है। जर्मनी ने तो "जिसकी लाठी उसकी भैंस" के सिद्धान्त को ही प्रधानता दी है। धर्म तो उसके लिए कोई चीज़ हो नहीं। ऐसी दशा में सभ्यता और उन्नति आदि के नष्ट होने की सम्भावना है। इसलिए यही आवश्यक है कि उसकी युद्ध की प्रवृत्ति नष्ट कर दी जाय। यही सम्मति

राज्य के नेताओं की है । यह समझना भूल है कि सैनिक अपने जातीय गौरव, मान, मर्यादा आदि का ध्यान न रखकर उन्मत्त पशुओं की तरह लड़ रहे हैं। युद्ध-मंत्री के विचारों को देखते हुए यह कहना अनुचित न होगा कि पशुओं से तुलना करने का उनका उद्देश्य उनके दृढ़ विश्वास से है । उनका यह आशय नहीं कि शतरंज के मोहरों की तरह सिपाही सिर्फ दूसरों की इच्छा से प्रचलित हैं और इस युद्ध को चलाने में नेताओं का कोई उद्देश्य नहीं। मि० आस्क्विथ ने भी 'गिल्ड हाल' की वक्तृता में कहा है, "धैर्य और धन दोनों को एकत्र कर इस युद्ध में सफलता प्राप्त करनी चाहिये ।" उन्होंने कहा है, क्या हम यह नहीं जानते कि साम्राज्य की शक्ति और उन्नति के आधार असंख्य युवकों के गाढ़े रक्त से धरणी आर्द्र हो रही है और उनके शव से मैदान पट रहे हैं ? इन बातों को सोच कर हमारा हृदय विदीर्ण होता है। हम यह भी समझते हैं कि हमारे देश की कैसी दुःखद दशा है, परन्तु हमें इन बातों से और भी दृढ़ होकर इसकी व्यवस्था करनी चाहिये कि सदाचार और उन्नति को नष्ट करनेवाले ऐसे अत्याचार फिर न उत्पन्न हों।

स्वराज्य की योग्यता।

[लेखक—श्रीयुत कृष्णदेव प्रसाद गौड़ ।]

(भाग १२ संख्या ५ के आगे)।

समकालीन इतिहास ।

समकालीन इतिहास पर विचार करिये । बेल्जियम अस्सी वर्षों से स्वतंत्र है। उसने शिल्प, वाणिज्य, विद्या, कला आदि में बड़ी उन्नति की है। जर्मनी ने उसे जीत लिया है, पर इङ्गलैंड, फ्रांस और रूस इसके विरुद्ध हैं और वे उसके उद्धार की चेष्टा कर रहे हैं । इसी प्रकार बल्गेरिया और जर्मनी ने मिलकर सर्विया को जीत लिया है, परन्तु उसे मित्र-दल स्वाधीन करने की चेष्टा कर रहे हैं । पोलैंड तीन भागों में बंटा है। रूस, जर्मनी और आस्ट्रिया उस पर राज्य करते थे। रूस और जर्मनी ने उसे स्वतन्त्र कर देने का वचन दे दिया है। यदि बहुत दिनों की पराधीनता से स्वराज्य की योग्यता निकल जाती है तो इतनी जल्दी पोलैंड स्वराज्य के योग्य कैसे बन गया ?

भारतवर्ष का परिमाण, भिन्न जातियां, भिन्न भाषाएँ इत्यादि ।

भारत के लिए 'होमरूल' ठीक नहीं समझा जाता क्योंकि यह बहुत बड़ा देश है । यहां भिन्न भिन्न भाषाएँ और जातियां हैं । रूस की ठीक ऐसी ही दशा है परन्तु वहां स्थानीय स्वराज्य है। आस्ट्रिया-हंगेरी भी बड़ा राज्य है और उसमें भिन्न २ जातियाँ हैं। वहां के राज्य-शासन में प्रजा का विशेष भाग है। एमेरिका का संयुक्त-राज्य भी कई जातियों तथा भाषाओं के होते हुए प्रतिनिधि राज्य है । भारतवर्ष में बोलने की भाषाओं की संख्या अधिक हो सकती है परन्तु साहित्य के रूप में व्यवहृत होनेवाली भाषाओं की (Languages) संख्या अत्यन्त बढ़ा दी गई है। सन् १९०१ की जनसंख्या के अनुसार यहां १४७ भाषाएँ थीं और १९११ में वेही २२०

हो गई। क्या इतनी लिपिवाली भाषाएँ भारत में हैं? पाठक ही इसका निर्णय करलें। भारतवर्ष की मुख्य भाषाएँ हिन्दी, मराठी, बंगाली, गुज़राती, तामील इत्यादि ही हैं। यदि कुल भारत को स्वराज्य देने में भाषा की बाधा हो तो एक २ भाषा बोलनेवाले प्रान्त को स्वराज्य दे दिया जा सकता है। मेरा तात्पर्य (Provincial Autonomy) या प्रान्तिक-स्वराज्य से है। सिवा इसके सर्वमान्य हिन्दीभाषा, राष्ट्रभाषा के योग्य है और होने की आशा भी है। जात पांत, भिन्न धर्म आदि के उत्तर में केवल इतना ही कहना है कि भारतवासी पश्चिमीय देशवालों से कम सहनशील नहीं हैं।

भारत में निरंकुशता (DESPOTISM)।

कहा जाता है कि बहुत दिनों से भारतवासियों को निरंकुश-शासन का अभ्यास रहने से वही उन्हें भाता है। न वे स्वराज्य पसन्द करते हैं, न वे उसके योग्य ही हैं। पहिली बात तो मिथ्या ही है। इसकी असारता दिखाने के लिए ऊपर बहुत से उदाहरण दिये गये हैं। यूरोप के कितने ही प्रजातन्त्र-राज्य किसी न किसी समय एक राजा के शासन में थे। जापान ही को देखिये, पचास वर्षों में कितनी उन्नति उसने की है। प्रतिनिधि राज्य, उसे पिछले पचास वर्षों में मिला है। ईरान भी यदि यूरोप के झगड़ों से अलग हो सकता तो प्रजातन्त्र राज्य अच्छी तरह चलाता, परन्तु इन झगड़ों ने उसे चलने न दिया।

हिन्दुस्तानी राजाओं का शासन।

हिन्दुस्तानी राज्यों (Native States) में सब कर्मचारी ही हिन्दुस्तानी होते हैं, इसपर भी ब्रिटिश सरकार की तरह मैसूर, बड़ौदा, ग्वालियर, ट्रावेन्कोर आदि राज्यों का शासन अच्छी तरह से होता है। बल्कि इनमें कुछ तो विद्या, कला-कौशल, वाणिज्य आदि में अँगरेज़ी भागों से भी अच्छे हैं। यह माना कि ब्रिटिश सरकार ने बाहरी आक्रमण तथा भीतरी झगड़ों से इन राज्यों की रक्षा की है। परन्तु भारतीय यह कब चाहते हैं कि अभी एकदम अँगरेज़ों का सम्बन्ध टूट जाय। कांग्रेस तथा मुसलिम लीग, दोनों ही ब्रिटिश छत्रछाया में स्वराज्य चाहते हैं। नेपाल भी भारत का ही भाग है और उसका कार्य बिना अङ्गरेज़ों की सहायता से चला जाता है।

यह कह सकते हैं कि हिन्दुस्तानी राजाओं को छोटी २ जगहों का शासन करना पड़ता है, इससे यह नहीं मालूम हो सकता कि वह भारत कैसे बड़े देश का यथोचित प्रबन्ध कर सकेंगे अथवा नहीं। इसका हम दोहरा उत्तर देते हैं,—(१) यदि यह मान लिया गया कि हम लोग छोटे राज्यों का उचित प्रबन्ध कर सकते हैं तो ऐसा क्यों नहीं किया जाता कि सूबे सूबे अलग शासित हों या कमिश्नरी ही में अलग २ स्वराज्य दे दिया जाय। (२) दूसरा यह कि कम आबादी के उपनिवेश अपना काम अच्छी तरह चला रहे हैं। इस भीषण युद्ध के बाद ब्रिटिश साम्राज्य के शासन में उन्हें बोलने का अधिकार भी मिलनेवाला है। इसीसे यह सिद्ध होता है कि छोटे राज्यों के शासन से वे बड़े साम्राज्य का शासन करने के योग्य भी होते हैं। लार्ड चेम्सफोर्ड पहिले 'क्वीन्सलैंड' तथा 'न्यू साउथ वेल्स' के गवर्नर थे और अब भारत कैसे बड़े देश के वाइसराय बनाये गये हैं। क्या भारतीय राजाओं के दीवान, सालारजंग, शेषाद्री ऐयर, दिनकर राव, रमेशचन्द्र-दत्त आदि इस बात को नहीं सिद्ध करते कि भारतीय लोग भी शासन कर सकते हैं? देशी राज्यों में उन्होंने बड़ी सफलता से कार्य किया है। यूरोप के बहुत से छोटे राज्य छोटे होने के कारण क्या स्वराज्य के योग्य नहीं हैं? निम्नलिखित सूची से विदित होगा कि अँगरेज़ी तथा देशी राज्यों का परिमाण और जनसंख्या कितनी है,—

देशी राज्य	क्षेत्र-फल (वर्गमील)	जन-संख्या
ग्वालियर	२५,१०७	३०,९३,०८२
ट्रावन्कोर	७,१२९	३४,२८,९७५
बड़ौदा	८,१८२	२०,३२,७९८
मैसूर	२९,४५९	५८,०६,१९३
हैदराबाद	८२,६९८	१,३३,७४,६७६
ब्रिटिश उपनिवेश		
न्यू फौंडलैंड	४०,०००	२,४०,०००
न्यूज़ीलैंड	१,०५,०००	१०,००,०००
न्यू साउथ वेल्स	३,१०,४००	१६,५०,०००
क्वीन्सलैंड	६,७०,५००	६,०६,०००
यूरोप के छोटे राज्य ।		
बेल्जियम	११,३७३	७५,७१,३८७
डेनमार्क	१५,५८२	२७,७५,०७६
हौलैंड	१२,५८२	६५,१२,७०१
स्विज़रलैन्ड	१५,९७६	३८,३१,२२०
मान्टीनिग्रो	५,६०३	५,१६,०००
सर्विया	१८,६५०	२९,११,००१

देखिये पाठक ! देशी राज्यों से छोटे और कुछ बड़े देश भी स्वराज्य-सुख उपभोग कर रहे हैं ।

आत्मरक्षा का बल ।

'इङ्गलिशमैन' का कहना है कि जो देश अपनी आत्मरक्षा तथा अपनी आवश्यकता के योग्य धन नहीं पैदा कर सकता वह स्वराज्य के योग्य नहीं है। क्या कोई उपनिवेश ऐसा है, जो अपनी रक्षा आपही कर सकता है ? ब्रिटिश साम्राज्य की रक्षा में न होने से आस्ट्रेलिया को जापान तथा कैनेडा को संयुक्तराज्य हड़प जाते । बुअर युद्ध में भारतीय सेना ने दक्षिण एफ्रिका को सहायता दी थी । आत्मरक्षा के अयोग्य होने पर भी उपनिवेश स्वराज्य के अयोग्य नहीं समझे जाते ।

क्या फ्रांस स्वयं आत्मरक्षा कर सकता है ? कभी नहीं । यदि ऐसा होता तो फ्रांस की भूमि पर ब्रिटिश तथा भारतीय सैनिकों के जाने की आवश्यकता न होती । इङ्गलैंड भी अपनी रक्षा अपने उपनिवेश तथा मित्रों की सहायता से कर रहा है। यहां तक कि तुच्छ भारतीय सैनिक भी ब्रिटिश साम्राज्य के लिए एफ्रिका, एशिया तथा यूरोप में लड़ रहे हैं । जर्मनी भी अपने मित्रोंकी सहायता पर निर्भर है । क्या इससे यह सिद्ध होता है कि आत्मरक्षा के अयोग्य राष्ट्र स्वराज्य के पात्र नहीं ?

धन-सम्बन्धी स्वाधीनता ।

मालूम नहीं कि संसार का कोई सभ्य देश विदेशी पूंजी के सिवा अपना काम चला सकता है। चीन, जापान, ईरान आदि को छोड़िये, रूस केसे यूरोपीय देश भी विदेशी पूंजी से उन्नति कर रहे हैं । इङ्गलैंड में जर्मनी और जर्मनी में इङ्गलैंड की करोड़ों रुपये की पूंजी लगी हुई है । वर्तमान युद्ध में इङ्गलैंड ने मित्रों को और एमेरिका ने इङ्गलैंड को रुपये दिये हैं । धन-सम्बन्धी स्वाधीनता से स्वराज्य का कुछ सम्बन्ध नहीं है । यहां पर यह कह देना अप्रासंगिक न होगा कि इङ्गलैंड की वर्तमान धनाढ्यावस्था भारत की पूंजी ही की बदौलत है । जिन्हें इसका विश्वास न हो वे मिल कृत भारत का इतिहास* और ब्रूक्स एडम्स की 'सभ्यता तथा क्षय की व्यवस्था'† पुस्तक को पढ़ें। इनमें साफ ही कहा गया है कि यदि भारत के करोड़ों रुपये न मिलते तो इङ्गलैंड की व्यवसायिक उन्नति कभी न होती ।

"रोम एक दिन में नहीं बना था"।‡

बहुतेरे अँगरेज़ कहा करते हैं कि "रोम एक दिन में नहीं बना ।" इसका तात्पर्य है कि

* Mills History of India.

† Law of Civilization and Decay by Brooks Adams.

‡ Rome was not built in a day.

जैसे इंगलैंड तथा अन्य स्वराज्यप्राप्त देशों ने शताब्दियों के श्रम और उन्नति से तथा राजनैतिक संस्थाओं के बहुत दिनों के सुधार से इसे प्राप्त किया है वैसे ही भारतवर्ष को भी इसकी प्राप्ति में सैकड़ों वर्ष लगेंगे। भारतवर्ष को इतनी जल्दी स्वराज्य मिलने की आशा न करनी चाहिये। छोटी २ ऐतिहासिक पुस्तकों से अवश्य मालूम होता है कि रोम के बनने में सैकड़ों वर्ष लगें। पहिले वहां छोटे २ झोपड़े थे, बाद में रोमुलस और रीमस् ने बड़े बड़े बगीचे और महल बनवाये। परन्तु उसके बाद वाशिङ्गटन, न्यूयार्क, मेलबोर्न, शिकागो आदि के बनने में कितने दिन लगे? या नवीन दिल्ली में कितने दिन लगेंगे? एंजिन के आविष्कार से ईसा के १३० वर्ष पहिले के 'हीरो' के उपकरण का सम्बन्ध मिलता है। अब यदि कोई इसका काम सीखना चाहे तो क्या उसे दो हज़ार वर्ष लगेंगे? कभी नहीं। कुछ ही दिनों में मनुष्य अब यन्त्रशास्त्रवेत्ता बन जाता है। रसायन शास्त्र और जहाज़ों के बनाने का भी ऐसा ही हाल है। जापानवालों ने कुल पचास वर्ष से ही नवीन वैज्ञानिक काम सीखना प्रारम्भ कर कितनी उन्नति प्राप्त की है।

इसी प्रकार राजनीति का ज्ञान भी एक ही जन्म में मनुष्य सीख सकता है। उसके लिए कई जन्म अथवा शताब्दियों की आवश्यकता नहीं। अँगरेज़ बच्चा बड़ा होने पर बड़ा भारी राजनीतिज्ञ होता है, परन्तु जब पैदा होता है तब भारतवर्ष के बच्चे का सा अज्ञान ही होता है। अँगरेज़ी बच्चे राजनीति का डिप्लोमा लेकर नहीं जन्म लेते और न हिन्दुस्तानी बच्चे फरसा लेकर पैदा होते हैं। यदि उनको भी अवसर तथा सामग्री मिले तो वे भी वैसे ही राजनीतिज्ञ हो सकते हैं। अब्राहम लिंकन, मि० आस्किथ, कौन्ट ओकूमा आदि ने इसी जन्म में शिक्षा पाई है। दादाभाई नौरोजी ने भी उसी प्रकार सीखा है। अशोक, चंद्रगुप्त, समुद्रगुप्त, शेरशाह, अकबर, औरँगज़ेब आदि ने भी उसी प्रकार सीखा था। उनके पूर्वजों ने राजनीति तथा शासनशास्त्र का विज्ञान बटोर बटोरकर शारीरिक विज्ञान द्वारा उनकी देह में नहीं प्रविष्ट किया था। मतलब यह कि किसी आविष्कार अथवा किसी वस्तु के विकास में बहुत दिन लगते हैं पर जब संसार में उसका जन्म हो जाता है तो उसके ज्ञान प्राप्त करने में उतने दिन नहीं लगते। उसी तरह राजनीति के सीखने में बहुत दिन नहीं लगते, चाहे उस विज्ञान के विकास तथा उन्नति में सैकड़ों वर्ष क्यों न लगे हों? और बातों को तो लोग मान लेते हैं परन्तु जब राजनैतिक संस्थाओं की बात आती है तो लोग आनाकानी करने लगते हैं। ऊपर लिखा जा चुका है कि बलगेरिया, सर्विया, रूमानिया आदि सैकड़ों वर्ष तुर्कों के आधीन थे, परन्तु स्वाधीनता मिलने पर शासनकार्य सीखने में उन्हें बहुत दिन नहीं लगे? यह कभी नहीं कहा जा सकता कि वे भारतवासियों से अधिक बली अथवा बुद्धिमान हैं। न तो कोई यही कह सकता है कि उनकी सभ्यता भारतवर्ष की सभ्यता से पुरानी है। यदि यह कहा जाय कि वे यूरोपीय हैं और हम एशियाई तो जापान का उदाहरण सम्मुख है। प्राचीनकाल में तो जापान की सभ्यता भारत से बढ़ी चढ़ी नहीं थी? यह भी न सही, फिलीपाइन वाले कब के सभ्य हैं, जिससे वे शासनकार्य के योग्य हो गये। दस ही वर्षों में उन्होंने स्वराज्य की योग्यता प्राप्त कर ली। हां, यदि यह कहा जाय कि हम भारतवासी हैं और डेढ़ सौ वर्ष से ब्रिटिश शासन में होने पर भी अयोग्य हैं तब कोई चारा नहीं।

किसी कार्य की योग्यता सापेक्ष हो सकती है? स्वराज्य की योग्यता का कोई निरपेक्ष प्रतिमान नहीं है।

अन्य योग्यताओं की तरह ही स्वराज्य की योग्यता भी है। हम यह नहीं कह सकते कि अमुक देश स्वराज्य के लिए उत्तम अथवा

अयोग्य है। हां, हम यह कह सकते हैं कि अमुक देश अमुक देश से योग्य अथवा अयोग्य है। संसार में कोई जाति पूर्ण रूप से स्वराज्य के योग्य नहीं मिल सकती। संसार में बहुतसी जातियाँ स्वराज्य भोग करती हैं। क्या अँगरेज़, जर्मन, बेल्जियन, नैपाल, जापान बुखारा आदि स्वराज्य प्राप्त राज्यों ने बराबर उन्नति की है? क्या ये, बल, धन, शासन आदि में बराबर हैं? ईश्वर ने स्वराज्य की योग्यता का कोई विशेष परिमाण नहीं बना रक्खा है और न मनुष्य ही कोई ऐसा परिमाण बना सकता है। ब्रिटिश लोग विशेषकर अपने को स्वराज्य के योग्य समझते हैं। परन्तु क्या अपने ही देश के शासन में उन लोगों ने पूरी योग्यता दिखलाई है। यदि वे पूरे योग्य होते, तो इङ्गलैंड में इतनी लड़ाइयां और बलवे न होते। सब जातियों के समान इस जाति ने भी कभी कभी भयंकर भूल कर डाली है। भूल करना मनुष्य का स्वभाव है। ईश्वर के अतिरिक्त कोई सर्वगुणसम्पन्न अथवा पूर्ण योग्य नहीं होता। परन्तु इस भूल के कारण कोई अपने देश के शासन से निकाला नहीं जाता। तब फिर यह क्यों कहा जाता है कि यदि भारतवासी स्वराज्य करेंगे तो बड़ी भूलें करेंगे और इसलिए उन्हें स्वराज्य देना ठीक नहीं। बिना गिरे बच्चा दौड़ने अथवा चलने में समर्थ नहीं हो सकता।

ब्रिटिश लोगों की स्वराज्य में योग्यता।

अँगरेज़ों ने अपने देश के स्वराज्य में बड़ी योग्यता दिखलाई है परन्तु वे भारतवर्ष के शासन में उतनी योग्यता न दिखला सके। यह सच है कि उन्होंने हम लोगों को विदेशियों के हमले से बचाया है, देश में शान्ति स्थापित की है, बड़ी योग्यता से मालगुज़ारी, कर इत्यादि वसूल और खर्च किया है। न्याय मिलने की भी पूरी व्यवस्था की है परन्तु इन दो सौ वर्षों के भीतर वे हम लोगों को छोटे से छोटे यूरोपीय जाति के बराबर भी न बना सके। हम लोगों की शिक्षा बड़ी ही निम्न श्रेणी में है। शारीरिक तथा मानसिक बल की अवनति से हम लोग अपने को अन्य देशीय वैरी से बचाने के योग्य नहीं हैं। हम लोग चोरों, जंगली जानवरों तथा आपत्तियों से भी अपनी रक्षा नहीं कर सकते। सभ्य जगत के किसी देश में भी भारतवर्ष का सा अकाल नहीं पड़ता। महामारी, प्लेग, ज्वर आदि भी कहीं इतना नहीं। इन सबसे बचने का उपाय अपनी हीनता से हम लोगों के पास नहीं रहा। सत्रह वर्षों में फिलिपाइनवाले सभ्य और शिक्षित बन गये हैं। वे आपत्तियों से अपने को बचा सकते हैं। फारमूसा से मलेरिया हटाने में जापान ने अधिक उन्नति की है। यह सच है कि कई अङ्गों में हमारे उन्नति हुई है पर अन्य देशों की तुलना में यह प्रमाण बहुत ही कम है।

आचार व्यवहार।

मेरी समझ में स्वराज्य की योग्यता में सदाचार का बहुत बड़ा असर पड़ सकता है। संसार के बड़े २ सभ्य देशों के मुकाबिले भारतवर्ष में अपराधों की संख्या बहुत कम है। इससे प्रत्यक्ष दीख पड़ता है कि हम अन्य देशियों से कम योग्य नहीं हैं। सर्वसाधारण का रुपया हड़प जाने में भारतवर्ष, संयुक्तराज्य अमेरिका से बढ़कर नहीं है। पार्लमेंट के शासन में कितने ही ओहदेदारों ने ऐसे कार्य किये हैं जो सदाचार के नियमों के विरुद्ध हैं। इंगलैंड के सिविल सर्विस विभाग में अपने रिश्तेदारों पर विशेष अनुग्रह दिखलाने के कितने ही उदाहरण मिलते हैं। हम यह नहीं कहते कि भारतवर्ष में ये बातें बिलकुल नहीं हैं, परन्तु अन्य सभ्य देशों से यहां बहुत कम हैं।

शिक्षा।

कभी कभी कहा जाता है कि बहुत से लोगों के अपढ़ होने से भारत में स्वराज्य नहीं हो सकता। परन्तु विचार करिये कि सरकार ने

हम लोगों में विद्या का कितना प्रचार किया है। सन् १८७३ में जापान में फीसदी २८ लड़के पाठशाला में भेजे जाते थे। १९०३ में उनकी संख्या फी सैकड़े ९० हो गई। भारतवर्ष में फी सैकड़े १९.६ लड़के पाठशाला में जाते हैं। यदि स्वर्ग० गोखले का बिल पास हो जाता तो बहुत कुछ उन्नति होती, परन्तु वह पास नहीं होने पाया। प्रारम्भिक शिक्षा मुफ़्त होनी चाहिये, पर ऐसा नहीं है। फीस देने के लिए तैयार लड़के भी स्कूल कालेजों में स्थान नहीं पारहे हैं। युक्तप्रान्त में कालेजों, स्कूलों तथा लड़कों की संख्या के विचित्र नियम हैं। नियमबद्ध संख्या से अधिक लड़के एक दर्जे में नहीं रह सकते। नियमों की कड़ाई के कारण लोग अपनी ओर से विद्यालय नहीं खोल सकते।

प्रतिनिधि राज्य के आरम्भ में, जापान में केवल सुमराई जाति में ही शिक्षा का प्रचार था। सब लोग पढ़े लिखे नहीं थे। भारतवर्ष में भी वही लोग जो कि देश के कार्य में हाथ बटाते हैं, बहुत पढ़े लिखे हैं। प्रत्येक प्रतिनिधि राज्य में पहिले उच्चकुल के लोग काम करते हैं, उसी प्रकार भारतवर्ष में भी उच्चजाति सब काम कर लेगी। स्वराज्य के लिए थोड़े से पढ़े लिखे लोगों की आवश्यकता है और इतने मनुष्य आसानी से यहां मिल सकते हैं।

यद्यपि इङ्गलैंड में सैकड़ों वर्षों से प्रतिनिधि संस्थाएँ जारी हैं तथापि वहां विद्या का प्रचार प्रायः एक शताब्दी से हा हुआ है। राजा जान के 'महापत्र' (Magna Charta) के समय बहुत से लोग लिखना पढ़ना तक नहीं जानते थे। इसके बाद भी वहां विद्या का अभाव ही था। यदि विद्या आवश्यक ही हो, तो सरकार दस पन्द्रह वर्षों में हमें योग्य बना सकती है। सौ वर्ष के पहिले विद्या में भारत और चीन, सब देशों के अगुआ थे। यदि विद्या के प्रचार का काम ठीक रीति से आरम्भ किया जाय तो बहुत जल्द उन्नति हो सकती है।

यदि अँगरेज हिन्दुस्तान से चले जायँ।

बहुत से लोग कहा करते हैं कि यदि भारतवर्ष से अँगरेज़ चले जायँ तो कोई दूसरी जाति आक्रमण करेगी और यहां के लोग अपनी रक्षा न कर सकेंगे। पहिली बात तो यह है कि हम लोग 'होमरूल'* या स्वराज्य चाहते हैं। ऐसी अवस्था में फिर अँगरेज़ क्यों चले जायँ ? हां, इतना अवश्य है कि स्वराज्य मिलने पर बड़ी बड़ी तनख्वाहें पानेवाले इतने अँगरेज़ यहां न रहेंगे पर अन्य उपनिवेशों की तरह वे यहां भी रहेंगे। कुछ व्यापारी भी अवश्य ही रहेंगे। कोई उपनिवेश बिना अँगरेज़ी सहायता के अपनी रक्षा नहीं कर सकता। ऐसी अवस्था में हमें उनसे क्यों सहायता न मिलेगी ? यह सच है कि उपनिवेश के अधिवासी उजले और हम काले हैं। हम 'अँगरेज़ों' के रिश्तेदार नहीं हैं। इसलिए कदाचित वे यह सोचें कि "हम किसी लाभ के बिना क्यों तुम्हारी रक्षा करें। हम कष्ट सहें और तुम आराम करो।" इसका उत्तर यही है कि बहुत से बड़े २ अँगरेज़ों ने कहा है कि 'हम भारतवर्ष के हितैषी हैं और हमारा कार्य मानव-प्रेम है।' हम बड़े अनुगृहीत होंगे यदि अँगरेज़ 'होमरूल' मिल जाने पर भी हमारी रक्षा के निमित्त यहां रहकर अपना प्रेम दिखलावें।

हम बलहीन हैं, अपनी रक्षा नहीं कर सकते। इसमें हमारा ही कसूर नहीं है। सरकार ने हम लोगों को बलवान होने में सहायता नहीं दी वरन् कमज़ोर कर दिया।†

एक तरकीब है। भारतीय सेना ने अपने बल का यथार्थ परिचय इस समर में दिया है। अब भारतीय युवकों को वालंटियर बनाना

* स्वराज्य का मतलब इस लेख में 'होमरूल' समझा गया है।

† जैसा 'सर सिनहा' और महाशय 'हक़' के भाषण से मालूम होता है।

चाहिये। रिसाले तथा पैदल सेना में भी उनको स्थान मिलना चाहिये। वे अफसर भी बनाये जायँ जल-सैनिक और वैमानिक भी वे बनाये जायँ। ऐसा होने से वे स्वदेश रक्षा के योग्य होने में समर्थ होंगे। उस समय इंगलैंड सगौरव कह सकता है कि उसने भारतवर्ष को बली बना दिया। इस समय यह बात नहीं है। इससे इंगलैंड को लाभ भी होगा। वर्तमान युद्ध संसार में अंतिम युद्ध नहीं है। कदाचित भविष्य में इससे भी भीषण युद्ध हो। उस समय तक यदि हम लोग युद्धकला में प्रवीण होंगे तो इंगलैंड के काम आवेंगे। हम इस बात को समझते हैं, पर इङ्गलैंडवालों की समझ क्या है कहना कठिन है। भारतवर्ष और इंगलैंड को परस्पर एक दूसरे की सहायता की आवश्यकता है।

आन्तरिक बाधाएँ।

कुछ लोगों की, विशेषतः भारतवासियों की समझ है कि जब अँगरेज़ यहां से चले जायँगे तो बड़ी दुर्घटनाएं उपस्थित होंगी। लोग आपस में लड़ मरेंगे। मेरा कहना है कि भारतवर्ष को संयुक्त तथा बली बनाये बिना वे क्यों चले जायँ? परन्तु यदि थोड़ी देर के लिए मान लिया जाय कि वे ज़िद करके चले जायँगे तो क्या होगा। बाहरी आक्रमण के विषय में पहिले ही कहा जा चुका है। भीतरी झगड़ों के विषय में कहना है कि कौन देश ऐसा है, जहां आन्तरिक झगड़े आदि नहीं होते। कुछ दिनों के बाद या तो दोनों ओर के लोग मिलकर सुलह कर लेते हैं या बली दूसरे को धर दबाता है। इस प्रकार से किसी रूप से शान्ति स्थापित हो जाती है। जो दूसरे देशों में हुआ है वही भारतवर्ष में भी होगा। हम लोगों का देश विशेष लड़ाकू नहीं है। इसे जाने दीजिये, और देशों में मज़दूर और पूंजीवालों के झगड़े, स्त्रियों के अधिकार के झगड़े भी बहुत हुआ करते हैं। यहां यदि कोई झगड़ा आरम्भ भी हुआ तो सदैव नहीं रह सकता। कदाचित् यह भी हो कि हम लोग लड़ाई झगड़ा बन्द कर दें। देशीय राज्यों में उतने धार्मिक दंगे और झगड़े नहीं होते, जितने सरकारी राज्य में हुआ करते हैं।

परन्तु हमें कोई कारण दिखलाई नहीं देता जिससे यह मान लिया जाय कि अँगरेज़ यहां से चले जायँगे।

उपसंहार।

हम लोग अँगरेज़ों के वैरी नहीं हैं और न यह चाहते हैं कि वे हमारे देश से चले जायँ। मनुष्यत्व का भाग जितना इस जाति में है, उतना किसी में नहीं। परस्पर-जन-समूह-संबंध सभी को अच्छा मालूम होता है और हम लोग भी मानव जाति में हैं। हम लोग अवसर चाहते हैं, मनुष्य के सब से बड़े गुण स्वतन्त्रता को चाहते हैं। कोई जाति नहीं चाहती कि कोई उसे सदैव दबावे। हम अपनी उन्नति चाहते हैं। हम जानते हैं कि हमारी माँग और स्पृहा सत्य है, ठीक है, नियमबद्ध है और इसलिए हमको भयभीत न होना चाहिये। प्रत्येक मनुष्य तथा जाति के भविष्य का कर्ताधर्ता सब से उच्च, शक्तिशाली है। हम लोगों का भविष्य उसीके हस्तगत है।

हम स्वराज्य के योग्य हैं या नहीं इसका उत्तर दादाभाई नौरोजी ने कलकत्ते में सन् १९०६ में एक वाक्य में दिया था।

'Not only has the time fully arrived, but had arrived long past.'

मान लिया कि हम लोग पूर्ण योग्य नहीं हैं। कोई जाति पूर्ण योग्य नहीं है। हम बिलकुल अयोग्य नहीं हैं और कोई जाति भी नहीं है। हम क्रमशः 'स्वराज्य' अथवा 'होमरूल' का काम सीख कर उन्नति करना चाहते हैं, जो बिना होमरूल के मिले नहीं हो सकती।*

---

* इस लेख के लिखने में एनसाइक्लोपिडिया ब्रिटानिका, माडर्न रिव्यू इत्यादि से सहायता ली गई है।

जापान के ज्ञातव्य विषय।

कैलोनियल बैंक आफ होकैदो।

यह अधिनिवेशिक कोठी होकैदो द्वीप में मनुष्यों को बसाने तथा इस द्वीप की सम्पत्ति को, जो बेकार पड़ी है, काम में लाने के लिए स्थापित की गई है। इसकी स्थापना संवत् १९५७ में हुई है। इसका मूलधन ४५००००० येन है। इसे अपने मूलधन से पँचगुना डिबेञ्चर बेचने का अधिकार है।

जापानी बैंक बिलकुल सरकारी हैं। इनके प्रधान व उपनिरीक्षक सरकार द्वारा नियुक्त होते हैं। याकोहामा स्पेसी बैंक के निरीक्षक सरकार की अनुमति से डाइरेक्टर नियुक्त करते हैं। जापान बैंक का संगठन बेल्जियम के बैंक के आधार पर हुआ है।

उपर्युक्त वृत्तान्त से भलीभांति प्रकट होता है कि जापान सरकार ने बड़ी जोखिम उठा कर देश के सराफ़ की कोठियों को सहायता दी है। खोज करने पर यह भी ज्ञात हुआ कि ये कोठीवाल बड़ी ईमानदारी से काम करते हैं। गत २५, ३० वर्षों में जुआचोरी के मामले प्रायः नहीं के बराबर ही हुए हैं।

यहां के औद्योगिक व हाइपोथिक बैंक वैसे ही काम करते हैं, जैसे हमारे यहां के स्वदेशी बैंक कर रहे थे। विशेषतः यह काम पञ्जाब के 'पीपुलस' बैंक के ढग पर होता है, अन्तर इतना ही है कि यहां ऐसी जांच होती है कि उन्हें जुआचोरी तथा व्यक्तिगत स्वार्थसिद्धि का अवसर बहुत कम मिलता है। इसीसे व्यापार और शिल्प की वृद्धि के साथ २ इन कोठियों की भी खूब उन्नति हो रही है।

सराफ़े के बारे में हमारे देश के पढ़े लिखे लोगों में बड़ा भ्रम है; कारण वे बिना अनुभव के अंगरेज़ी प्रथा की लकीर के फ़कीर बन कर वहीं का राग अलापते हैं। साधारणतः अपने देश में यह सिद्धान्त माना हुआ है व अँगरेज़ी सराफ़े के थोड़े बहुत जानकार भी कहते हैं कि सराफ़ी कोठियों का काम हुंडी पुर्जों का लेनदेन ही है और उन्हें अपनी पूंजी दस्तावेज़ी मामलों तथा शिल्प की उन्नति में न लगानी चाहिये। मतलब यह कि बैंक केवल व्यापार (Commerce) को सहायता दें, शिल्प (Industries) को नहीं। यह सिद्धान्त धनी अँगरेज़ी बैंकों का है पर इससे भारत जैसे निर्धन और शिल्परहित देश का काम नहीं चल सकता। भारत की बात तो दूर की है, उन्नत जर्मनी व फ्रांस तक ने इस सिद्धान्त पर सराफ़े को जकड़ बन्द नहीं कर रक्खा है।

देश की उन्नति उसी समय हो सकती है, जब राजा और प्रजा दोनों उस पर ध्यान दें व व्यर्थ के नियमों से सराफ़े को जकड़ न डालें। हां, सराफ़े पर सरकार को कड़ी जांच रखनी चाहिये, जिसमें संचालक निज के लाभार्थ जनता को हानि न पहुंचा सकें।

जापान में व्यवसायी कोठियों (Industrial Bank) को यहां तक सुविधा कर दी गई है कि वे चाहे जिस शिल्प-मण्डल को बिना किसी ज़मानत के भी मकान बनाने तथा यन्त्रक्रय करने के लिए ऋण दे सकें। ऐसे ऋण के लिए संचालक शिल्प-मंडल के सदस्यों की योग्यता तथा प्रस्तावित कार्य के लाभालाभ की खूब जांच कर लेते हैं।

७-७-१५।

जापानी उद्यान।

आज जापान के प्र० मन्त्री काऊण्ट ओकूमा के निज गृह के साथ जो उपवन है, उसे देखने को मैं गया था। अकस्मात् वहां आप से भी मुलाकात हो गई। आप बड़े ही सज्जन हैं। आपका जन्म १८९५ में हुआ है और इस समय आपकी

अवस्था ७७ वर्ष की है। यहां पर आपसे कुछ बातचीत भी हुई।

आपको उद्यान का बड़ा शौक है, इससे उपवन दर्शनीय है। आपने "आर्किड" का बड़ा ही सुन्दर संग्रह किया है। बाग़ में नाना प्रकार के सुन्दर पौधे लगे हैं। इस उद्यान में भारतीय आम, जामुन व गुलाबजामुन के वृक्ष भी दिखाई दिये।

जापान में उद्यान-रचना एक विशेष हुनर है। यदि समूचे जापान को बागों का देश कहा जाय तो कुछ अनुचित न होगा। टोकियो नगर के कुछ हिस्सों को छोड़कर समस्त जापान ही एक प्रकार की सुन्दर वाटिका है।

जापानी शिल्पकारों ने जितने नगर बसाये हैं, जितनी इमारतें बनाई हैं, सभी में प्राकृतिक दृश्य की सहायता ली है। योरप-एमेरिका की तरह यहां के नगर प्रकृति को उजाड़ कर नहीं वरन् प्रकृति की सहायता लेकर ही बनाये गये हैं। यहां प्रकृति तथा नागरिक-जीवन में ह्रास नहीं, मिलाप है।

यह प्राकृतिक मेल, वन्यदेवी की पूजा और जंगल व नद नालों के प्रेम से भलीभांति प्रकट होता है। नगरों के बीच २ में यहीं सघन बन दिखाई देते हैं। यहां के मानवसमाज पर इसका बड़ा प्रभाव पड़ा है। यहां का एक भी मकान, वाटिका-विरहित नहीं। यदि स्थानाभाव हो तो केवल गमलों में ही बौने वृक्ष लगा कर उन्हें मछलियों और पानी से भरे हुए एक कुण्ड के चारो ओर रखकर एक प्रकार का प्राकृतिक दृश्य बना लेते हैं।

जब साधारण जनता का हाल ऐसा है तो राष्ट्र के प्राचीन कुल के प्रधान मन्त्री के उद्यान का कहना ही क्या है। मोटे तौर पर यहां बहुत से बड़े २ वृक्ष लगाकर एक प्रकार का वन्यदृश्य बना लिया गया है। कुछ प्राकृतिक और कुछ मानुषी छोटे बड़े पहाड़ी टीले बनाकर जंगल को पहाड़ी दृश्य भी दिया गया है। इसमें भूलभुलैया की तरह एक नाला भी टेढ़ा मेढ़ा बनाया गया है। यह कहीं गहरा और कहीं छिछला है। इसमें एक ओर से पानी आता और दूसरी ओर बहकर निकल जाता है। इस पर लकड़ी और पत्थर के कई पुल भी बने हैं। इसे देखने से यह बिलकुल सच्चा प्राकृतिक झरना ही जान पड़ता है।

जगह २ घास युक्त मैदान भी बने हैं। इन ऊँचे नीचे और बीच २ में पत्थर के ढोंके निकले हुए मैदानों में ताड़ के छोटे २ वृक्ष भी लगे हैं। इससे सारा दृश्य ही प्राकृतिक जान पड़ता है।

काउण्ट महोदय ने बाग दिखलाने का विशेष प्रबन्ध करा दिया था, इससे पूरा आनन्द मिला।

चीड़ तथा अन्य प्रकार के बौने पेड़ों की विशेषता यह है कि वे छोटे २ गमलों में रक्खे जाते हैं, जो देखने में बड़े २ वृक्षों के सदृश दिखाई देते हैं, किन्तु ये बहुत छोटे होते हैं। इनमें कुछ वृक्ष पांच २ सौ वर्ष के पुराने भी होते हैं।

८-७-१५।

जापानी कायापलट।

जापान की कायापलट के सम्बन्ध में बहुतेरी किम्वदन्तियां प्रचलित हैं। कहा जाता है कि राजा की एक कलम से यहां के जातिपांति के सब भेद नष्ट हो गये। इस बात को अच्छी तरह समझने के लिए नीचे कुछ विवरण दिया जाता है,—

(१) जाति-भेद शब्द के उच्चारण मात्र से जो भाव हिन्दुस्तानी, विशेषतः एक हिन्दू के मन में पैदा होता है, वैसा संसार में कहीं भी नहीं होता। मेरे कहने का मतलब यह नहीं कि हमारा भाव खराब है या अच्छा, किन्तु जापान में क्या है, वही बताना मेरा अभिप्राय है। जिस प्रकार हमारे देश में एक जात का आदमी दूसरे के साथ खानपान, विवाहादि नहीं करे

सकता, वैसा रिवाज संसार में शायद और कहीं भी नहीं है। कम से कम योरु-एमेरिका व जापान में तो है ही नहीं, किन्तु यहां भेद है सिर्फ धन व शक्ति का। एक धनी, निर्धन से विवाह न करेगा, उसी प्रकार एक शक्तिशाली दूसरे शक्तिहीन मनुष्य को नीची निगाह से देखता है, इससे वह भी उससे व्यवहारादि नहीं कर सकता।

(२) पुरातन समय में यहां के मनुष्यों में तीन प्रकार के भेद थे,—समुराई, चोनिन और इटा।

समुराई—ये एक प्रकार के क्षत्री थे। इनका काम लड़ना भिड़ना था। इन्हें दो हथियार बांधने का अधिकार था।

चोनिन—इस समुदाय में व्यवसायी, किसान, शिल्पजीवी इत्यादि की गिनती होती थी। समुराइयों के भय से ये दो शस्त्र नहीं बांध सकते थे। जैसे, नवाबी अमल में मामूली जनता, क्षत्रियों के सामने तलवार नहीं बाँध सकती या मोछों पर ताव नहीं दे सकती थी, वैसेही यहां की यह प्रथा थी।

इटा—इनकी गिनती एक प्रकार के चांडालों में होती थी। इनका काम पशु-वध करना, चमड़ा सिझाना, दण्डनीय पुरुषों को फांसी देना इत्यादि था। इनसे लोग घृणा करते थे। इससे इनकी एक भिन्न जाति बन गई थी।

(३) उस समय यहां की राज्यपद्धति पुराने ढंग की थी। सारा देश छोटे २ राज्यों में बटा था। इन लोगों ने समुराइयों को वेतन के बदले ज़मीन दे रक्खी थी। युद्ध-विग्रह में ये अपने स्वामियों को सहायता दिया करते थे। संसार में प्रायः सभी जगह ऐसा ही नियम था।

मिकाडो—महाराजाधिराज मिकाडो अपनी राजधानी 'कियोटो' (साईकियो) में रहते थे। उन्हें प्रजा और राव-उमरावों से कर मिलता था। सिवा इसके उनकी कुछ अपनी भूमि भी थी, जिससे उनका व्यय चलता था।

संसार की रीति के अनुसार यहां के बली राव-उमराव भी निर्बल को दबा लिया करते थे। इससे प्रजा तथा राज दरबार में इनका नाम अधिक हो जाता था। इसी तरह से दो चार राव-उमराव प्रतिष्ठित कुल के बन गये हैं।

संवत् १६६० में टोकुगावा कुल का "येयासू" नामी एक सरदार अपने प्रताप से प्रतिद्वंद्वियों को हराकर सब से बड़ा प्रतापी बना। मिकाडो से "शोगून" की उपाधि पा इसने 'यदो' (आज-कल के टोकियो) में अपनी राजधानी स्थापित की। मिकाडो का प्रभाव अपने ऊपर न पड़ने के लिए इसने अपनी राजधानी 'यदो' मिकाडो की राजधानी 'कियोटो' से बहुत उत्तर में बनवाई थी। थोड़े ही दिनों में इसके वंशज बड़े प्रतापी हुए और एक प्रकार से येही देश के राजा बन बैठे। इससे मिकाडो, नाममात्र के राजा रह गये और सब शक्ति इन्हीं शोगूनों के हाथ आगई।

यह शक्ति १६६० से १६१५ तक शोगूनों के हाथों रही। इसी समय में जापान की हर प्रकार की उन्नति हुई और मिकाडो की शक्ति बराबर घटती ही गई। शोगून के अमल को लखनवी नवाबी की मिसाल देना अनुचित न होगा। उस ज़माने में रियासतों के उमरावों को "डाइमियो" की पदवी मिल गई थी। डाइमियो को थोड़ा बहुत अनिश्चित कर शोगून को देना पड़ता व वर्ष में ६ मास शोगून की राजधानी में अपने थोड़े सैनिकों के साथ रहना पड़ता था।

ये डाइमियो अपनी जमीन समुराई तथा किसानों को बटवारे की शर्त पर खेती करने को देते थे। यह बटवारा धान का ही होता था। उस समय धान ही एक प्रकार का सिक्का (Currency) माना जाता था।

संवत् १९१० में जब एमेरिका ने कोमोडोर पेरी को जापन भेजकर व्यवसाय के अधिकार न देने से लड़ने की धमकी दी, उस समय जापान के सामने कठिन समस्या उपस्थित हुई। उस समय शोगून की शक्ति घट गई थी। उनके प्रतिद्वन्द्वी 'चोसू' या 'सत्सूमा' के डाइमियो ने मिकाडो को शोगून की ओर से खूब भड़का रक्खा था। इससे जब विदेशियों ने शोगून पर दबाव डाला तब उन्होंने निरुपाय होकर मिकाडो से इसकी आज्ञा मांगी, पर उन्होंने कोई आज्ञा नहीं दी। इससे शोगून "केकी" बड़े चिन्तित हुए। वे अपनी शक्ति को खूब समझते थे। वैसी अवस्था में विदेशी शक्ति से लड़ना उनके लिए असम्भव था। विदेशियों की सहायता लेकर शत्रु को दबाना वे इस दृष्टि से घृणित समझते थे, कि इससे देश के टुकड़े २ हो जायँगे और देश, विदेशियों के चंगुल में फँस जायगा और वैरियों के साथ साथ अपने पैर में भी दासत्व-शृङ्खला पड़ जायगी।

इसलिए उन्होंने आत्माभिमान को छोड़ 'कियोटो' पहुंच राजा मिकाडो के पैरों पर गिर कर अपनी सारी शक्ति उन्हें सौंप दी। पहिले पहिल प्रतिद्वन्द्वी इसे चाल समझते थे किन्तु अन्त में उन्हें उनके उदार हेतु का विश्वास हो गया। इस त्याग को देखकर सभी देशभक्ति की उमंग से मस्त हो गये और सब सरदारों ने अपने स्वत्व मिकाडो को सौंप दिये।

यह स्वत्व कृषकों से आधी पैदवार लेने का ही था। इसके त्याग से १०,२० राव-उमरावों की जमींदारियाँ चली गईं, किन्तु राज-कोष में धन की वृद्धि होने से देश की राज्य-पद्धति बिलकुल नई हो गई। इसीसे आज दिन भी एशिया की आँखें पोंछने के लिए जापान वास्तव में स्वतन्त्र है। इस त्याग के लिए डाइमियों को उनकी सम्पत्ति का दशांश धन दिया गया, इससे समुराइयों की शक्ति व घमंड नष्ट हो गई। अकबर के समय राजा टोडरमल ने जमींदारों से सैनिक-सहायता के बदले धन लेकर स्वयं सेना रखने की व्यवस्था की थी, वैसे ही यहां के समुराई सैनिक-सेवा से छुड़ाकर, कर देने पर बाध्य किये गये व मिकाडो अपने खर्च से सेना रखने लगे। यही जापान का परिवर्तन और उदय है।

१८वीं शताब्दी के दो चरणों में हमारे देश की भी ऐसी ही अवस्था थी। यहां के राजा स्वार्थत्याग व आत्माभिमान के वशीभूत होकर फ्रांसीसी व अँगरेज़ी व्यापारियों की सहायता लेकर एक दूसरे से कट मरे। इसका परिणाम जो हुआ वह सभी पर विदित है।

संगीत

[लेखक—आचार्य लक्ष्मणदासजी।]

(गताङ्क से आगे।)

प्रायः एक सप्ताह में दोनों लड़कों ने उस सरगम को अच्छी तरह लय स्वरयुक्त याद कर लिया है। अब उसमें किसी प्रकार की कसर नहीं।

बाबूजी—वाह, तुम दोनों ने तो इस सरगम को खूब याद कर लिया।

लड़के—बाबाजी, यह सब आपकी कृपा का फल है। आपकी शिक्षाप्रणाली ही ऐसी सरल है कि हम लोग तुरन्त सब समझ जाते हैं।

बाबूजी—अच्छा, हमने उस दिन तुमसे कहा था कि इस सरगम के याद हो जाने पर तुम्हें देस रागिनी का एक भजन बतलावेंगे।

लड़की—जी हां, चाचाजी याद है।

बाबूजी—अच्छा पं० माधव शुक्ल की गीताञ्जलि मेरी अलमारी से निकालकर ले आओ। उसीमें से एक अच्छे भजन का नोटेशन कर दूंगा।

पुस्तक लाने के बाद बाबूजी ने निम्नलिखित भजन लिखवाया।

भजन।

जग बिच स्वर्ग हमारो देश।
भारत अस शुभ नाम लेत छिन,
उपजत प्रेम विशेष।
तापै जन्मभूमि शोभा लखि,
रहत न दुख लवलेश॥
पग तर उदधि बहुत शिर ऊपर
नील छत्र सहिनेश।
उत्तर हिम गिर परम मनोहर
जहँ नित रमत महेश॥
पावन निर्मल गंग नीर जेहिं
परसत कटत कलेश।
प्रकटे ब्रह्मरूप जगकारक
जहँ ब्रजेश अवधेश॥
धर्मध्वजा फहरात जहां नभ
रत्न खानि अशेष।
'माधव' अस लखात कतहूं नहिं
जस मम भारत देश॥

बाबूजी—देखो, मैं इस भजन का नोटेशन तुम्हें किये देता हूं। यह भजन मुझे बहुत ही प्रिय मालूम होता है। इस भजन का मतलब समझाने की आवश्यकता नहीं है।

भजन रागिनी देस—ताल तिताला।

अस्थाई।

२				०				४				×			
म	ग	स	स	रे	—	म	म	प	—	नी	—	सं	—	—	सं
ज	ग	बि	च	स्व	ऽ	र्ग	ह	मा	ऽ	रो	ऽ	दे	ऽ	ऽ	स
४				०				१				×			
सं	रें	सं	नी	ध	प	ध	म	प	ध	म	ग	रे	—	—	रे
ज	ग	बि	च	स्व	ऽ	र्ग	ह	मा	ऽ	रो	ऽ	दे	ऽ	ऽ	स

बाबूजी—देखो ध्यान रखना इसकी अस्थाई चौथे ताल से शुरू होती है और अंतरा खाली से।

अंतरा।

०				४				×				२			
रे	—	रे	रे	रे	रे	म	म	ग	—	रे	स	—	रे	नी	स
भा	ऽ	र	त	अ	स	शु	भ	ना	ऽ	म	ले	ऽ	त	छि	न
रे	रे	म	म	प	—	ध	नी	प	—	—	—	—	—	—	प
उ	प	ज	त	प्रे	ऽ	म	वि	शे	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ष
म	प	नी	नी	सं	—	सं	सं	—	सं	स	—	नी	सं	रें	रें
ता	ऽ	पै	ऽ	ज	ऽ	न्म	भू	ऽ	मि	शो	ऽ	भी	ऽ	ल	खि
सं	नीं	सं	सं	सं	रें	सं	नी	ध	प	—	प	(यहां से अस्थाई शुरू करो)			
र	हैं	त	न	दु	ख	ल	व	ले	ऽ	ऽ	श				

लड़के—चाचाजी यह भजन तो बहुत ही अच्छा है। किन्तु अकार की बड़ी पाई के नीचे का ऽ चिह्न क्या है?

बाबूजी—वह चिह्न सिर्फ़ अकार, इकार, उकार, एकार इत्यादि का है। भारत में भ के आगे आ की पाई है। इसलिए भ आ रत उच्चारण करना होगा, यदि इ हो तो ई ई उच्चारण करना होगा। अब इसका मतलब समझे।

लड़के—हां, चाचाजी यह तो समझ में आगया किन्तु आपने एक ही अंतरे का नोटेशन किया है और अंतरों का भी नोटेशन कर दीजिये।

चाचाजी—अन्य अंतरे भी उसी अंतरे के समान गाये बजाये जायँगे। वही स्वर काम में लाये जायँगे।

लड़के—किन्तु चाचाजी, यदि कोई कोई शब्दों में घटना बढ़ना हो तो किस प्रकार से ठीक होगा।

बाबूजी—मेरी बातें तुम्हारी समझ में नहीं आईं। मेरा मतलब है कि स्वर सब वे ही होंगे और उन्हीं स्वरों पर सब अंतरे बज सकते हैं। तुम पहिले अस्थाई याद करो फिर अन्तरा। अन्तरा याद हो जाने पर तुम सब अन्तरों का हाल समझ जाओगे।

लड़के—बहुत अच्छा, हम इसका मतलब कुछ कुछ अवश्य समझ गये हैं। जो न समझ में आवेगा वह फिर पूंछ लेंगे। अब इसके आगे हमें कौनसा राग बतलाइयेगा।

बाबूजी—(ताज्जुब से) अरे तुम्हें शान्ति नहीं? अच्छा है, विद्यार्थी को ऐसा ही उत्सुक रहना चाहिये। इसके बाद मैं तुम्हें भूपाली का सरगम और गुरु नानक का एक भजन नोटेशन कर दूंगा।

इसके बाद दोनों लड़के प्रणाम करके अपना अपना बाजा रखने लगे और बाबूजी नीचे चले गये। क्रमशः।

आलोचना प्रत्यालोचना।

ब्रह्मचर्य।

मिस्टर गांधी की भूलें।

I was agreeably surprised to read in the Hindi Magazine "Maryada" a translation of Lala Lajpat Rai's strictures on Gandhi's 'Ahinsa'. It is hardly necessary to say that I endorse every word of the Lala's article. What I want now is that some one should get to know all that Mr. Gandhi has said and done, says and does in advancing his ideal of Bramhacharya. I do not know his latest ideas nor do I possess the qualifications to handle the subject with as much delicacy and wire-drawn reasoning as a person like Mr. Gandhi would require before being convinced; however I make bold to assert that his ideal as preached to those whom he holds nearest and dearest to himself (and whose conduct he had every opportunity of watching) has not only been a shameful failure, but has been the cause of ruin and desolation to other people, on whom Mr. Gandhi has had no claim at all to inflict the dire consequences of a mistaken theory or a false ideal, which, Mr. Gandhi ought to have known, would certainly not have been left unpropounded by our great and ancient Smriti-Karas, had it been practicable. Mr. Gandhi, with all the qualities that his admirers see in him, is not to be compared for wisdom with the Hindu sages of hoary antiquity and it is

high time now for some competent persons, well-versed in Hindu scriptures and also western ideals of spiritual uplift to get into close touch with him and then try if possible to argue him out of his fallacious theories; but in any case (whether successful in converting him or not) to expose the errors of his beliefs to the generation of his blind admirers and save them from the dangerous pitfalls, into which puerile attempts to Brahmacharify themselves and their children are likely to betray them.

अर्थात, हिन्दी मासिक पत्रिका 'मर्यादा' में मि० गांधी की 'अहिंसा' पर लाला लाजपतराय का गुणदोष प्रकाशक अनुवाद पढ़कर मैं बहुत आश्चर्यान्वित हुआ। यह कहने की कोई आवश्यकता नहीं कि मैं लालाजी के लेख के प्रत्येक शब्द से सहमत हूं। सब के जानने के लिए यहां मुझे इतना ही कहना है कि मिस्टर गांधी ने ब्रह्मचर्य के विचारों की उन्नति के लिए क्या २ किया है और क्या कहा है। आजकल के उनके विचार मुझे मालूम नहीं हैं, न मुझ में इतनी योग्यता ही है कि इस विषय की सूक्ष्मता और तारकशी के कारण दिखाकर मिस्टर गांधी जैसे महाशय को प्रमाण देकर इसे स्वीकार कराने में समर्थ होऊं। तथापि मैं इतना कहने का साहस करता हूं कि उन्होंने जिन मानसिक विचारों का उपदेश दिया है वह अपने आत्मीय और प्रियपात्रों ही को (जिनके आचरण उन्हें अच्छी तरह से देखने और ध्यान देने का मौका मिला है) दिया है। परन्तु उनका यह उपदेश व्यर्थ ही नहीं पर उन मनुष्यों के—जिन पर अपने भ्रमपूर्ण सिद्धान्तों और झूंठे विचारों के भयानक परिणामों का आघात पहुंचाने का मिस्टर गांधी को कोई भी अधिकार नहीं—नाश और निर्जन बनाने का कारण है। मि० गांधी को यह जानना आवश्यक था कि यदि यह सिद्धान्त उपयुक्त होता तो हमारे प्राचीन और महत् स्मृतिकार इसे वैसा ही न छोड़ देते। मिस्टर गांधी के अनुरागी उनमें चाहे जितने गुण देखें पर उनकी बराबरी प्राचीनकाल के हिन्दू ऋषियों की बुद्धिमत्ता से नहीं हो सकती। हिन्दू धर्मग्रन्थों और पाश्चात्य धर्म की उन्नति के इतिहासज्ञ विद्वानों के लिए यह उपयुक्त समय है कि वे उनसे घनिष्ठता कर यदि सम्भव हो तो उनके भ्रमपूर्ण सिद्धान्तों का निरसन करें। इसमें कृतकार्य या अकृतकार्य होने पर भी वे उनके अंध अनुरागियों को उनके विश्वासों की भूलें दिखाकर, जिन बालकोचित विचारों द्वारा उनको और उनकी सन्तानों को ब्रह्मचर्यधारी बनाने की चेष्टा की गई है और जो उनके नाश का कारण है, उसकी भयङ्करता दिखाकर उनकी रक्षा करें।

मनीलाल, फ़ीज़ी।

हमारा पुस्तकालय।

"जर्मनी का अभिमान"—लेखक-श्रीयुत राधामोहन गोकुलजी, १६० हेरिसन रोड, कलकत्ता। मूल्य ।)।

पुस्तक प्रकाशन का उद्देश्य जहां तक प्रतीत होता है "समय की रस्म" किसी प्रकार से जर्मनी को बुरा कहना है। हम जर्मनी के हिमायती नहीं किन्तु साथ ही साथ अकारण उसे हम गाली देना भी पसन्द नहीं करते। साथ ही हममें इतनी कृतघ्नता भी नहीं कि आज दिन जर्मनी से विज्ञान, फिलासफी और प्रायः सभी साहित्यों को जो लाभ पहुंचा है, उसे हम भुला दें। अस्तु। पुस्तक में "बर्नेहार्डी" के प्रसिद्ध पुस्तक के अंशों को उद्धृत कर यह दिखाया गया है कि "जर्मनी का हृदय काला है" कुछ

समय पहिले संसार के समस्त क्षेत्रों में जर्मनी की प्रशंसा करते लोग नहीं थकते थे किन्तु युद्ध के छेड़ने से सब गुणों पर पानी फिर गया। आश्चर्य की बात नहीं, घबराहट में प्रायः लोगों का विवेक उनको छोड़कर दूर भाग जाया करता है।

"सिक्खों का परिवर्तन"—पृष्ठ संख्या ३२६, सजिल्द। यह पुस्तक पंजाब के स्कालर डाक्टर गोकुलचन्द एम० ए०, पी० एच० डी०, बैरिस्टर एट-ला महाशय की अँगरेज़ी पुस्तक "The Transformation of Sikhism" का हिन्दी अनुवाद है। इसके अनुवादक स्वामी सोमेश्वरानन्दजी बी० ए० हैं और प्रकाशक लाहौर का "पुस्तक भंडार"। मूल्य १।।) रुपया। इस पुस्तक में सब समेत १७ अध्याय और ३ परिशिष्ट हैं। इसका मसाला संग्रह करने में डाक्टर साहब ने बड़ा श्रम किया है। इसमें सिक्ख धर्म के प्रस्थापक गुरु नानक के समय से महाराज रणजीत सिंह के राजत्व तक की सब मुख्य २ घटनाओं का विवरण देकर यह अच्छी तरह से दिखलाया गया है कि सिक्खों का परिवर्तन कैसा होता गया। पुस्तक पढ़ने योग्य है। प्रकाशक से मिल सकती है।

"पंचारती"—इसमें श्री दत्तात्रेय महाराज और श्री नर्मदाजी की आरतियाँ मराठी में और श्री वासुदेवानन्द सरस्वती महाराज की एक हिन्दी और एक मराठी आरती दी हुई है। अन्त में मराठी में श्रीगुरुस्तोत्र-पंचक और श्री दत्ताष्टक भी दिया हुआ है। पुस्तिका भक्तजनों के काम की है। इसके प्रकाशक हैं, श्रीव्यङ्कटेश बलवंत बिडवई, सारंगपुर (मध्यभारत)। आपसे मिल सकती है।

"हिन्दी लेखमाला"—भाग पहिला। मूल्य ॥) आने, डाकव्यय भलग। प्रकाशक "सस्तुं साहित्य वर्धक कार्यालय", अहमदाबाद (गुजरात)। इस सुन्दर जिल्ददार पुस्तक में गुजराती लिपि में हिन्दी के मासिक पत्रों से हिन्दी भाषा के ४१ लेख दिये गये हैं। गुजराती लिपि में हिन्दी के लेख प्रकाशित कर गुर्जर भाइयों में हिन्दी का प्रचार करने का स्तुत्य उद्योग ही इसके प्रकाशन का उद्देश्य है। जिस तरह गुर्जर भाई इस पुस्तक द्वारा हिन्दी का अभ्यास कर सकते हैं उसी तरह हिन्दी भाषी इसकी सहायता से गुजराती लिपि की शिक्षा ग्रहण कर सकते हैं। "हिन्दी भाषा" को राष्ट्र भाषा बनाने में ऐसी पुस्तकों से बहुत लाभ है। पुस्तक के आरम्भ में हिन्दी और गुजराती व्यंजनों के भेद भी दिखा दिये गये हैं। इसके लिए हम प्रकाशक को धन्यवाद देते हैं।

(२) "लघुलेख संग्रह"—भाग दूसरा। मूल्य ॥)। उपर्युक्त कार्यालय से प्राप्तव्य। इसमें प्रताप कार्यालय से प्रकाशित "जर्मन जासूस की रामकहानी", फ़ीरोज़ाबाद के 'भारती-भवन' से प्रकाशित 'फ़ीजी द्वीप में मेरे २१ वर्ष और कोल्हापुर के 'श्री समर्थप्रसाद' प्रेस की छपी मराठी 'पृथ्वी के क्रान्तिकारक युद्ध' आदि तीन भिन्न पुस्तकों का गुजराती अनुवाद एक साथ दिया गया है।

(३) "आरोग्य विषे सामान्य ज्ञान"—भाग १ और २। लेखक-कर्मवीर श्रीयुत मोहनदास कर्मचन्द गांधी। प्रकाशक उपर्युक्त कार्यालय। आरोग्य रक्षा के उपयुक्त विषयों की चर्चा इसमें श्रीयुत गांधीजी ने बड़ी सरल रीति से की है। अब इस पुस्तक के प्रथम भाग का अनुवाद भी हिन्दी में प्रकाशित हो गया है। ऐसी पुस्तकों का जितना प्रचार हो उतना ही अच्छा है। मूल्य ।=)।

"विद्यार्थियों के कर्तव्य"—लेखक व प्रकाशक श्रीयुत शिवजीलाल काली, कैनेडियन मिशन कालेज, इंदौर। पृष्ठ संख्या ३५ ।० मूल्य

=)। "विद्यार्थी ज्ञानमाला" का यह 'प्रथम पुष्प' श्रीयुत नारायण गणेश चन्दावरकर के एक व्याख्यान का सारांश है। इस पुस्तिका में विद्यार्थियों के कर्तव्यों के विषय में अच्छा विवेचन किया गया है। विद्यार्थियों को इससे अवश्य लाभ उठाना चाहिये।

"रोहणी"—सामाजिक उपन्यास, मूल्य।)। पृष्ठ संख्या ६४। लेखक-श्रीयुत पाण्डे नवलकिशोर सहाय और प्रकाशक अघोरी सच्चिदानन्द सिंह, "सरस्वती-भण्डार", बांकीपुर। इस शिक्षाप्रद उपन्यास में पातिव्रतधर्म की श्रेष्ठता, स्त्री-शिक्षा के लाभ आदि कई उपयुक्त विषय भलीभांति समझाये गये हैं। कहानी कथाओं और गन्दे उपन्यासों की अपेक्षा यदि ऐसे उपन्यासों का प्रचार हो तो मनोरंजन होकर उपदेश भी मिल सकते हैं। प्रकाशक से उपर्युक्त पते से मिलती है।

सम्पादकीय टिप्पणियाँ।

कांग्रेस को धमकी।

प्रान्तीय सरकार ने कांग्रेस की स्वागतकारिणी समिति के सभापति और मंत्री के पास एक पत्र भेजा है। उसका अर्थ इतना ही है कि यदि कांग्रेस में वक्तृताएँ उचित सीमा का अतिक्रमण करेंगी तो सरकारी हस्तक्षेप होगा और कांग्रेस बन्द कर दी जायगी। हमको इस सम्बन्ध में अधिक नहीं कहना है। हमारी समझ में तो देश के नेता और राष्ट्रीय सभा केवल इसलिए इस प्रकार से अपमानित की गई है जिसमें वह स्वराज्य की प्राप्ति के आन्दोलन के लिए और भी सतेज हो जाय। जो हो क्या हम सरकार से यह प्रश्न कर सकते हैं कि

अकारण अपमान

क्यों और कैसा? कांग्रेस भारतवासियों की राष्ट्रीय-सभा है, इष्टदेव के अनन्तर वही उनकी पूजनीया देवी है, उसका उनको अभिमान है और उनका यह विश्वास था और है कि सरकार भी उसे उसी दृष्टि से देखती है। न्यायानुमोदित आन्दोलन और अपनी नम्रता के लिए वह प्रसिद्ध है। कितने विदेशी और स्वदेशी इसी कारण से उसपर मुग्ध हैं और कितने ही इसी कारण से उससे कुछ दिन पहिले अलग हो गये थे।

ऐसी अवस्था

में सरकार ने यह कैसे समझ लिया कि वक्तृताएँ सम्भव है उचित से अधिक कड़ी हों? क्या हम समझ लें कि आज के पहिले कांग्रेस में कटु बातें कही जाती थीं किन्तु सरकार उनको सुनी अनसुनी कर देती थी किन्तु अब वह उसके लिए तैयार नहीं है? या हम यह मानने को तैयार हों कि अबतक कांग्रेस में

स्वराज्य

का प्रश्न उस ज़ोर से, जिस ज़ोर से अब वह उठनेवाला है, नहीं उठा था? सरकार ने 'स्वराज्य' के सम्बन्ध में अपनी कोई सम्मति नहीं प्रकट की यह अच्छा ही हुआ। इसका अर्थ यह ज़रूर है कि वह उसे बुरा नहीं समझती किन्तु स्वराज्य का प्रश्न रुचिकर हो या नहीं यह 'भविष्यद्वाणी' कहां से सुनाई दी कि वक्तृताएँ विकट होंगी? इसका कारण यह तो नहीं है कि

मि० बीसेंट और श्री० तिलक

तथा मि० खापर्डे आदि इस वर्ष आरहे हैं। एक बात और भी है यह कौन तय करेगा कि कोई वक्तृता उचित सीमा का उल्लंघन कर गई। इस सम्बन्ध में तो बड़े बड़े राजनीतिज्ञों और जजों में भी मतभेद हो सकता है। दूसरी

बात यह है कि वक्तृता की जाँच के लिए पंडाल में न्यायालय के जज उपस्थित रहेंगे, सी० आई० डी० इंस्पेक्टर या लालपगिया की पुलीस? तीसरी बात यह है कि मान लिया जाय कि अधिकारियों की राय में कोई स्पीच अनुचित हुई, कांग्रेस रोकी गई और बाद में न्यायालय से यह तय हुआ कि वक्तृता न्यायानुमोदित और नियमानुकूल थी तो फिर कांग्रेस के न होने से जो हानि देश को पहुंचेगी, जो धन व्यर्थ में खर्च हो जायगा और जो लोग देखने आयँगे उनको जो हानि पहुंचेगी उसकी क्षतिपूर्ति कौन करेगा? यह भी प्रश्न हो सकता है कि सरकार ने स्वागतकारिणी समिति के सभापति और मंत्री को पत्र क्यों लिखा। इनपर प्रबन्धादि का भार रहता है। किसी वक्ता से यह कहने का कि तुम यह न कहो या यह कहो इनको अधिकार नहीं, साथ ही यह भी सम्भव है कि एक वक्तृता इन लोगों की राय में बिलकुल निर्दोष हो किन्तु सरकार उसे

विष की बुझी

समझे। जिस तरह से देखते हैं हमें यह कहने में संकोच नहीं कि प्रान्तीय सरकार के सलाहकारों ने गलती की और प्रान्तीय सरकार ने उनकी राय से चलकर बुद्धिमत्ता नहीं प्रदर्शित की है। काँग्रेस धर्म और न्याय पर स्थित है, वह न्याय और धर्म का झंडा लेकर आगे बढ़ रही है, आज तीस वर्ष से उसका इतिहास यही कह रहा है, बड़े बड़े विकट समय पर भी अपने को उसने डिगने नहीं दिया ऐसी अवस्था में सरकार को भी पत्र लिखने के पहिले अच्छी तरह सोच विचार कर लेना चाहिये था। ऐसी बातों से जोश घटता नहीं वरन् बढ़ता है।

❋

सन्धि की चर्चा।

जर्मनी ने सन्धि की चर्चा आरम्भ की है। रोमानिया की राजधानी बुखारेस्ट पर कब्ज़ा करने के बाद बड़े ज़ोर शोर से उसने यह

...या है, किसी मनुष्य से घोर विरोध की
खेला है ... और मि० लायड आर्ज सबको एक
नहीं हैं, ...हांक सकते हैं। मि० एस्क्विथ के
...निक थे साथ ही विरोधी अधिक
...और विद्वान भी थे। अनुदारदल-
यह जानमेंव हो अपने पूर्वजों की भांति मि०
कुछ लोगों का लार्ड डिज़रेली की भांति आदर
वह हीन नु प्रश्न यही है कि मि० लायड आर्ज
मैदान में यह सिद्ध करना है कि वे नेता हो
वह सन्धि अभीतक वे सर हेनरी केम्बल बेनर-
हीन हो गये० एस्क्विथ की अध्यक्षता में काम
विश्वास नय अकेले उनको मैदान में आना है।
दल के ि या नहीं, इस समय साम्राज्य को
ऐसी बातों । भरे हुए और आननफानन काम
हीन हो गयं त्रिमंडल की आवश्यकता थी, मंत्रि-
चाहिये कि ा ही मिल गया है और हम आशा
भी कहना साम्राज्य की भलाई के लिए वह
कह रहा है रक्खेगा।
उत्तरदायित
ही उसको

❋

युद्ध की गति

इसी बात ब
यह दिखला है। जर्मन जनरल वान मेकनसन
...ा को त्रस्त कर दिया है, बुखारेस्ट
नहीं, उसने ...ी पर भी जर्मन झंडा उड़ रहा है।
उसे कहने क... द्वीप की स्थिति अब जर्मनों के
से जीता हु... यूनान के राजा कान्स्टनटाइन भी
बढ़ाना नहीं ...न पक्ष में हैं। सोलानिका में अब
सन्धि की शर्... की अधिक फौज नहीं पहुंच जाती,
बात भी नह... सेना की दशा नहीं सुधरेगी।
विश्वास है कि... नष्ट होने से कुस्तुन्तुनियां पर
...की बात भी स्वप्न हो गई है। बाल-
...रंग जमाने के लिए मित्रदल को
और सार्वजनि... बड़ी सेना पहुंचानी चाहिये।
यदि जर्मनी ज...पान की सहायता के सहज नहीं।
होगा, उसीकी

फ्रेंच रणक्षेत्र

सौभाग्य सम... ी सेना धीरे धीरे विजय प्राप्त कर
ही देखते हैं कि ...दल की सेना के लिए अभी बहुत
करना यह प्र...

को अपने।
की बातें
। पाठक

?

रगों में
आस्ट्रिया-
न्त करने के
की हैं ।

ी सन्धि के
कैसर को
ने के लिए
इते हैं किन्तु
नहीं, सन्धि
कारण जो हो
में विश्वास
शान्ति नहीं

मनी का जोश
स, बेल्जियम
युद्ध का उद्देश्य
देन मित्र-राष्ट्रों
नों में घूमती
पहिले सन्धि

र से उन लोगों
ड़ाया है। सभी
संगठित हुआ
प्राप्त करने के
खेंगे।

मन्त्रि-मंडल में गड़बड़ाध्याय ।

भारत में यह कहा जाता है कि कोई ऐसा प्रस्ताव न उपस्थित करना चाहिये जिससे सरकार असमंजस में पड़ जाय किन्तु विलायत में ऐसे संकट के समय में, जब कि एक मित्र रोमानिया के अस्तित्व का फैसला हो रहा है लोग सरकार को असमंजस में डालना क्या, उसका अस्तित्व, उसके शिरच्छेद के लिए ही तैयार हो जाते हैं। पाठकों को विदित होगा कि प्रधान सचिव

मि० एस्क्विथ ने इस्तीफा

दे दिया है और मंत्रिमंडल में भीषण परिवर्तन हो गया है । मि० एस्क्विथ की योग्यता के सम्बन्ध में कुछ कहना वृथा है । हमें इसके कहने में संकोच नहीं कि भारत के सम्बन्ध में वे सदा उदासीन ही नहीं रहे वरन् मि० आस्टिन चेम्बरलेन, लार्ड रोनाल्डशे आदि की नियुक्ति कर उन्होंने उसको हानि पहुंचाई और इससे अधिक हानि मि० लायड जार्ज नहीं पहुंचा सकते किन्तु सब कुछ होते हुए भी यह मानना ही पड़ेगा कि वे

अद्वितीय पुरुष

हैं और राज्य-संचालन का कार्य उन्होंने बड़ी ही उत्तमता से किया। कठिन से कठिन समस्या के उपस्थित होने पर भी उनकी बुद्धि ने उनको कभी जवाब नहीं दिया और बड़ी से बड़ी विकट समस्याओं के हल करने में वे कृतकार्य हुए। किन्तु उनका

पतन

हुआ क्योंकि धूर्त शत्रुओं की चालें चल गईं। शत्रु भी कोई दूसरा नहीं अपना सहकारी, अपना दाहिना हाथ

आस्तीन का सांप

जिसे उन्होंने ही उठाया था । हम यह नहीं कहते कि मि० लायड जार्ज में योग्यता नहीं एक साधारण पटर्नी से प्रधान सचिव हो जाना

हाय और प्रकाशक अघोरी सच्चिदा-
"सरस्वती-भण्डार", बांकीपुर । इस
उपन्यास में पातिव्रतधर्म की श्रेष्ठता,
के लाभ आदि कई उपयुक्त विषय
समझाये गये हैं । कहानी कथाओं
उपन्यासों की अपेक्षा यदि ऐसे उप-
प्रचार हो तो मनोरंजन होकर उप-
ल सकते हैं । प्रकाशक से उपर्युक्त
जाती है ।

याँ ।

ऐसी अवस्था

ने यह कैसे समझ लिया कि वक्तृ-
ग्व है उचित से अधिक कड़ी हों ?
समझ लें कि आज के पहिले कांग्रेस
ातें कही जाती थीं किन्तु सरकार
ो अनसुनी कर देती थी किन्तु अब
लिए तैयार नहीं है ? या हम यह
तैयार हों कि अबतक कांग्रेस में

स्वराज्य

इस ज़ोर से, जिस ज़ोर से अब वह
है, नहीं उठा था ? सरकार ने 'स्वराज्य'
में अपनी कोई सम्मति नहीं प्रकट
च्छा ही हुआ । इसका अर्थ यह ज़रूर
उसे बुरा नहीं समझती किन्तु स्वराज्य
रुचिकर हो या नहीं यह 'भविष्यद्वाणी'
ुनाई दी कि वक्तृताएँ विकट होंगी ?
रण यह तो नहीं है कि

० बीसेंट और श्री० तिलक

० खापर्डे आदि इस वर्ष आरहे हैं ।
और भी है यह कौन तय करेगा कि
ृता उचित सीमा का उल्लंघन कर
सम्बन्ध में तो बड़े बड़े राजनीतिज्ञों
में भी मतभेद हो सकता है । दूसरी

ही इस बात को सिद्ध करता है कि मनुष्य में कुछ है, किन्तु इसके साथ ही साथ यह झलक दिखाई देती है।

वार केबिनट

में इस समय मि० लायड जार्ज, लार्ड कर्ज़न, मि० हेन्डरसन, लार्ड मिलनर और मि० बानर ला हैं। मि० लायड जार्ज यह चाहते थे कि वार कौंसिल में प्रधान सचिव ही प्रधान न रहें। मि० एस्क्विथ इसे पसन्द नहीं करते थे और इसीलिए वे अलग हो गये किन्तु अब वार कौंसिल में प्रधान सचिव ही प्रधान हैं क्योंकि मि० लायड जार्ज स्वयम् प्रधान सचिव हैं। यह विचारों की विचित्रता है, यद्यपि किसी से छिपा नहीं था कि यह होनेवाला है। चर्चिल के पतन के साथ ही साथ यह सन्देह होने लगा था कि

सर एडवर्ड ग्रे

और मि० एस्क्विथ का भी पतन होगा। लार्ड नार्थक्लिफ और उनके परम शिष्य मि० लायड जार्ज से यही आशा थी। केबिनट का संगठन भी विचित्र ही है, उदारदलवाले एकदम से अस्त दिखाई देते हैं यद्यपि अनुदारदल के काले बादलों के नीचे नीचे कहीं २ पर

मजदूर-दल

के दो एक नेताओं की रुपहली आभा सत्यता का नमूना है, बड़प्पन के नमूने के लिए यह काफी होगा कि मि० एस्क्विथ से कहा गया था कि मंत्रि-मंडल में वे कोई अप्रधानपद चुन लें। अस्तु हमको इन सब बातों से कोई सम्बन्ध नहीं

एस्क्विथ हों या लायड जार्ज

हमारे लिए दोनों एक से हैं। हम चाहते यही हैं कि युद्ध का अन्त हो, मित्र-राष्ट्रों को विजय हो और ग्रेटब्रिटेन सर्वोपरि हो। मि० लायड जार्ज ही के द्वारा यदि यह हो सकता है तो हमको इसमें कोई आपत्ति नहीं। इसमें सन्देह नहीं कि मि० लायड जार्ज का काम भी सरल हो गया है। मन्त्रिमंडल विचित्र विचारों के पुरुषों का मजमुआ है, किसी मनुष्य से घोर विरोध की आशा नहीं और मि० लायड जार्ज सबको एक ओर से हांक सकते हैं। मि० एस्क्विथ के विरोधी अनेक थे साथ ही विरोधी अधिक विचारवान और विद्वान भी थे। अनुदारदल-वाले अवश्य ही अपने पूर्वजों की भांति मि० लायड जार्ज का लार्ड डिज़रेली की भांति आदर करेंगे किन्तु प्रश्न यही है कि मि० लायड जार्ज को अभी यह सिद्ध करना है कि वे नेता हो सकते हैं! अभीतक वे सर हेनरी केम्बल बेनर-मैन और मि० एस्क्विथ की अध्यक्षता में काम करते थे अब अकेले उनको मैदान में आना है। यह सब हो या नहीं, इस समय साम्राज्य को एक जोश से भरे हुए और आननफानन काम करनेवाले मंत्रिमंडल की आवश्यकता थी, मंत्रि-मंडल वैसा ही मिल गया है और हम आशा करते हैं कि साम्राज्य की भलाई के लिए वह कुछ उठा न रक्खेगा।

✽

युद्ध की गति

अच्छी नहीं है। जर्मन जनरल वान मेकनसन ने रोमानिया को ग्रस्त कर दिया है, बुखारेस्ट की राजधानी पर भी जर्मन झंडा उड़ रहा है। बालकन प्रायद्वीप की स्थिति अब जर्मनों के आधीन है। यूनान के राजा कान्स्टनटाइन भी सरासर जर्मन पक्ष में हैं। सोलानिका में अब तक मित्रदल की अधिक फौज नहीं पहुंच जाती, मित्रदल की सेना की दशा नहीं सुधरेगी। रोमानिया के नष्ट होने से कुस्तुन्तुनियां पर धावा करने की बात भी स्वप्न हो गई है। बाल-कन में अपना रंग जमाने के लिए मित्रदल को वहां पर बहुत बड़ी सेना पहुंचानी चाहिये। यह बिना जापान की सहायता के सहज नहीं।

फ्रेंच रणक्षेत्र

में मित्रदल की सेना धीरे धीरे विजय प्राप्त कर रही है। मित्रदल की सेना के लिए अभी बहुत

काम है और वह सहज नहीं है। सब बातों को देखते हुए कहना पड़ता है कि यदि सन्धि नहीं होती तो मालूम नहीं होता कि युद्ध किसी निकट भविष्य में समाप्त होगा।

पातिव्रत इसे कहते हैं।

पाठकों से राय साहब लाला केदारनाथ छिपे हुए नहीं हैं। आप पंजाब 'हिन्दू-सभा' के एक स्तम्भ हैं और अनेक प्रकार से आपने हिन्दू समाज की सेवा की है। अभी आपने अपने स्वर्गवासी पिता के स्मरणार्थ "रामजस कालेज" दिल्ली में स्थापित किया है। इसके लिए आपने अपनी समस्त सम्पत्ति, प्रायः सवा लक्ष की, दे डाली है। सर्वस दान देने के पहिले आपने अपनी पतिवृता पत्नी के लिए ५०००) नगद, एक मकान और उसके आभूषण अलग कर दिये थे। दान देने के समय उन्होंने अपनी प्रिय पत्नी से कहा कि वे अपना सर्वस्व दान कर चुके हैं ऐसी अवस्था में पत्नी के लिए बचे हुए धन से वे एक कौड़ी भी न लेंगे, न वे उस गृह में रह सकेंगे। कालेज की कमेटी से ही जो कुछ उनको मिलेगा उसी पर वे निर्वाह करेंगे।

पतिव्रता

को यह किस प्रकार गवारा हो सकता था। उसने कहा जब इससे आप कौड़ी न लेंगे तो फिर यह है किसके लिए? मैं तो आपकी हूं, आपके साथ रहूंगी, सुख में दुःख में आपही की सेवा मेरा धर्म है। मैं अपने लिए कुछ नहीं चाहती। यह कह कर उस पतिवृता ने बचा हुआ अंश भी कालेज को दे दिया। पातिवृत का अर्थ यह है और पातिवृत इसे कहते हैं।

राष्ट्रीय सप्ताह।

राष्ट्रीय सप्ताह इस बार लखनऊ में बड़े ज़ोर शोर से मनाया गया। कम से कम प्रायः दस बारह सहस्र भारतवासी वहां पर बाहर से पधारे थे। कांग्रेस, सामाजिक कान्फरेंस, औद्योगिक कान्फरेंस, लेडीज़ कान्फरेंस, आर्य-कुमार सम्मिलन, हिन्दू सभा, सनातन धर्म महामंडल, थियासाफिकल कानवेन्शन, आर्य-समाज आदि के धूमधाम से अधिवेशन हुए।

स्वराज्य-कांग्रेस

की बड़ी धूम रही। प्रायः २५०० प्रतिनिधि एकत्र हुए थे। पंडाल ठसाठस भर गया था। जगह की कमी से कितनों ही को निराश लौट जाना पड़ा। लोग योग देने को कितने उत्सुक थे इसका पता इसी से चलता है कि एक १०) का टिकट ७०) को बिका था और स्वराज्य के प्रस्ताववाले दिन एक साधारण ३) का टिकट ६) को बिका था। क्या युवक, क्या वृद्ध सभी के मुख पर एक नई ज्योति खेल रही थी, जिधर देखिये लोग स्वराज्य की चर्चा कर रहे थे और एक मुख से उसीका जयगान कर रहे थे।

स्वराज्य का प्रस्ताव

भी बड़े ज़ोर शोर से उपस्थित और पास किया गया था। सुरेन्द्र बाबू, मिसेज बोसेंट, मि० हक़, मि० मुधोलकर, मि० तिलक, मि० पाल, मि० बैप्टिस्टा, मि० खापर्डे, मिसेज नैडू, डा० सप्रू आदि के इस सम्बन्ध में व्याख्यान हुए। सब वक्तृताओं का

सम

यही था कि भारत सब तरह से स्वराज्य के उपयुक्त है, वह स्वराज्य का अधिकारी है और इससे कम वह किसी प्रकार सन्तुष्ट न होगा। भारतवासी कभी भी उपनिवेशों के गुलाम न होंगे और वे चाहते हैं कि उनको भी उपनिवेश-निवासियों के बराबर ही राष्ट्र के पुनः संगठन में अधिकार दिये जावें।

अभ्युदय प्रेस प्रयाग में पं० बद्रीप्रसाद पाण्डेय के प्रबन्ध से छपकर प्रकाशित हुई।

भाग १३] फरवरी, सन् १९१७—माघ [संख्या २

स्वदेश-संगीत ।

[लेखक—श्रीयुत भगवन्नारायण भार्गव, बी० ए०, वकील ।]

(देस)

अयि ! तिहुं-लोक-सोक-नासिनी जननी ।
निर्मल-मान-खान-नित राखे
स्वाभिमान वर धरनी ॥
देसभगति-रस लालित-पालित-
लालन-तारन-तरनी ।
धरम धुरंधर धीर-बीर-सुत-
जननि विदित जगकरनी ॥
सुचि-स्वातंत्र्य-पियूस पानकरि
आतम-बन्धन हरनी ।
विद्या जोति जगाय जनन-मन
विमल भाव-नित भरनी ॥
लहि स्वराज्य साम्राज्य ब्रिटिश महँ
मंगल मचल विहरनी ।
त्रिभुवन पावन-पुन्य-पताका
सत्य-समीर-फहरनी ॥
निज-सन्तान-मान-मर्यादा-
त्रान करत उपकरनी ।
कूकर-सूकर-भाव-कुमति-छल-
असत-अनय-उद्धरनी ॥
उच्च-उग्र-सत-आत्म-भाव सुचि
अद्भुत जगत विस्तरनी ।
जननि ! सरन हम गहि अब तोरी
दारुन-दुःख-विदरनी ॥
भय विहाय स्वधरम पालें हम
हे मनसिज-रिपु-दमनी !
सत्य-पक्ष लै सीस उच्च करि
जियें अहो ! अघ-दमनी ॥
अयि ! तिहुं-लोक-सोक-नासिनी जननी ।

जापान की भविष्य नीति ।

[लेखक—श्रीयुत माधवरावजी सप्रे, बा० ए० ।]

वर्तमान महायुद्ध ने संसार के सब देशों को अपने २ हितचिंतन में प्रवृत्त कर दिया है । इस समय एक भी राष्ट्र ऐसा नहीं है, जो भविष्यत् में अपनी स्थिति, रक्षा, विस्तार, प्रभाव और उन्नति का विचार न करता हो । अध्यापक मसाबकँवे ने 'जापान की भविष्य नीति' पर हाल में एक विचारपूर्ण निबन्ध लिखा है । यह 'जापान मेगज़ीन' में प्रकाशित हुआ है । जापानी अध्यापक ने अपने देश की दशा पर ध्यान देकर जो विचार प्रकट किये हैं, उनका उल्लेख कई अँगरेज़ी पत्रों में किया गया है । इस लेख में अध्यापक महोदय ने जो कुछ लिखा है, उसका सार कुछ कुछ यों है:—

"यूरोप का महाभारत कितने ही यूरोपियन राज्यों की कमर लचका देगा; परन्तु जापान पर इसका कोई असर होने के बदले उसका बल और भी बढ़ेगा । हां, इस युद्ध से एमेरिका को भी फायदा होगा ; पर जापान से कम । इस प्रकार जापान का भला होते देख यूरोपियन राष्ट्र उसे घृणा की दृष्टि से देखने लगेंगे और आगे जापान के विरोधियों में जर्मनी भी शरीक हो जायगा । इसलिए इनकी घृणा से बचने अथवा किसी के मत्सर से अपने देश की रक्षा करने के लिए या यदि किसी भी प्रबल शत्रु से मुक़ाबिला करने की नौबत आजाय, तो ताल ठोंककर भिड़ जाने के लिए यह आवश्यक है कि जापान तैयारी किये हुए बैठा रहे । अतः जापान का पहिला कर्तव्य यह है कि वह वर्तमान युद्ध की पूर्णाहुति के अनन्तर चटपट तैयारी करके सज्जित हो जाय ।"

"ऐसी तैयारी करने के लिए, जापान को अपनी फैली हुई शक्ति को एकत्रित कर उसकी वृद्धि करनी पड़ेगी । इस प्रकार का बल प्राप्त करने में जापान को जर्मनी ही की नक़ल करनी होगी । उसे जर्मनी के व्यावहारिक तत्वज्ञान की कुंजी को समझकर हथिया लेना और उसके अनुकूल व्यवहार करना होगा । जर्मनी ने भली-भांति जान लिया है कि बिना कड़ी कलाई के—बिना ताक़त के—दुनियां में कुछ भी नहीं होता और जो अपने अधिकारों की रक्षा नहीं कर सकता; जिसमें अधिकार रक्षा की शक्ति नहीं है उसके हक़ों की पर्वाह कुत्ता भी नहीं करता—मनुष्य की तो बात ही और है ?"

"जर्मनी की हिम्मत का सारा दार-मदार शिक्षा पर है । समस्त जर्मन राष्ट्र के एक जीव हो जाने का एकमात्र कारण शिक्षा ही है । शिक्षा ने ही उसे इतना बलाढ्य कर दिया है । यदि ऐसा न होता तो इस युद्ध में उसकी धूल कभी उड़ गई होती । हमें इसी ढंग की शिक्षा चाहिये । जापानी राष्ट्र के हित तथा उसकी सुरक्षा की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट होने के बदले आज-कल वह व्यक्तिगत उन्नति में लगा हुआ है, यह बिलकुल बेजा है । जर्मन लोग आत्मिक और मानसिक शिक्षा में ही शिक्षा की इति श्री नहीं मानते थे, वे प्रजा की शारीरिक सम्पत्ति पर भी विशेष ध्यान रखते थे । यही कारण है कि जर्मन युवकों में न केवल संकटों के सहने का वरन् मौक़ा पड़ने पर युद्ध के लिए मुस्तैद रहने की हिम्मत भरपूर रहती है । जर्मनों को भलीभांति ज्ञात हो गया था, कि शरीर सबल रहे बिना मानसिक बल बढ़ नहीं सकता और इस बात को सोच समझकर ही वे नहीं रह गये, वरन् इसे वे काम में लाये ।"

'शारीरिक सम्पत्ति को सुधारने ही से जर्मनों को सन्तोष नहीं हुआ । उन्होंने अपने सामर्थ्य को शास्त्रीय ज्ञान की ढाल से और भी

सुदृढ़ कर लिया। जर्मन सरकार ने इस काम में अच्छा उत्साह दिखलाया। नितप्रति के बर्ताव के लिए उस राष्ट्र ने शास्त्रीय आविष्कार की उत्तम जोड़ी मिला दी है। जर्मन शास्त्रज्ञ को उसी समय बड़ा अवर्णनीय आनन्द होता है, जब वह देखता है कि मेरे आविष्कार से राष्ट्रीयसामर्थ्य की वृद्धि हुई है—मेरा प्रयत्न सफल होकर राष्ट्र की भुजा को सशक्त कर रहा है।"

"पश्चिमीय राष्ट्रों से जापान के झझकने का कारण वर्ण-विद्वेष ही है। इस वर्णविद्वेष का नमूना देखना हो, तो एमेरिका पर नज़र डालिये। जापान यद्यपि अव्वल दर्जे का राष्ट्र है, फिर भी जापानियों की आमदरफ़्त को बिला ज़रूरती समझ, उन्हें अपने यहां न आने देने की कोशिश एमेरिका कर रहा है। कौन कहता है कि यूरोप में इस वर्ण-विद्वेष का ग़दर नहीं मचा है? जब कि हम स्वतन्त्र हैं और हमारे देश में ही रहने के लिए हमें यथेष्ट स्थान है, तब तो हमारे साथ ऐसा सलूक होता है और यदि हम दैवयोग से इन दोनों में से एक या दोनों बातों से चूके, तो कौन जाने हमारी क्या दशा होगी। यहूदी लोग सभ्य और सुशील हैं, पर उनका कोई स्वदेश नहीं है; वे जहां जाते हैं, वहीं उनकी विचित्र रस्मों की वजह से उनकी दिल्लगी उड़ाई जाती है। फिर हब्शी लोग तो मन्द बुद्धि के कहे जाते ही हैं, इससे यदि उनकी अवहेलना होती हो तो कुछ आश्चर्य नहीं। लेकिन समझ लीजिये कि यदि हब्शी लोग एमेरिकनों के जोड़ के बुद्धिमान हो जायँ, तो भी उनकी विडम्बना कम होने की नहीं। क्योंकि वहां तो सारा मान-अपमान कलाई की मज़बूती पर तुला हुआ है। इसलिए जापानियों को खूब याद रखना चाहिये, कि जब तक हमारे राष्ट्र में ताक़त है, जबतक संसार की बल-वर्द्धक प्रदर्शिनियों में हमारी शक्ति की सुरीली आवाज़ सुन पड़ती है, तभी तक हमें अपनी मर्ज़ी के मुताबिक़ किसी भी देश में जाकर बस जाने की आज्ञा है।"

"आज हमने जर्मनों के दिल को दुखाया है; इसलिए युद्ध के समाप्त होने पर यदि जर्मनी, रूस या एमेरिका से गले मिलकर, हम पर चढ़ दौड़े तो क्या इसके लिए हमें तैयारी न कर रखनी चाहिये? इस युग में सामर्थ्य की कुंजी यही है, कि युद्ध छिड़ने पर किसी भी देश से आवश्यक वस्तु मँगाने की आवश्यकता किसी को न रह जाय। इस हेतु से हमें दक्षिण एमेरिका के साथ खूब व्यापार बढ़ाना चाहिये और उस प्रदेश पर अपनी व्यापारी धाक जमा देनी चाहिये। इस विषय में भी हमें जर्मनी का ही अनुकरण करके स्वावलम्बी होने की आवश्यकता है। जापानियों में राष्ट्रीयता की भावना को जगा कर, उसको और भी प्रबल करके, खर्च या और किसी भी सबब को आगे लाये बिना ही अपनी प्रजा के शरीर और मन सुदृढ़ कर देने चाहियें। इसके पश्चात् हमें अपने जङ्गी और आर्थिक-बल को बढ़ाने की ओर शास्त्रीय ज्ञान का उपयोगकर इतना सामर्थ्य उपार्जित करना चाहिये, कि मौक़ा आ पड़ने पर किसी भी शत्रु से हार जाने का भय न रह जाय। यह बात कुछ व्यक्तिगत प्रयत्नों से सिद्ध न होगी, इसकी जवाबदेही सारे राष्ट्र पर है। इस विषय में सरकार को अपना कर्तव्य बड़ी सावधानी से करना चाहिये। कैसा ही प्रसंग क्यों न आपड़े, जापान की इतनी तैयारी रहनी चाहिये कि जिसमें—चाहे तलवार के हाथ फिराने में, चाहे साम-दाम के पेंच-पेंच चलने में—जापान को किसी की टेढ़ी नज़र न देखनी पड़े।"

अध्यापक मसाव कँबे के इन विचारों को पढ़कर मन में अनेक तरंगें उत्पन्न होती हैं। अपने राष्ट्र को बलाढ्य करने की महत्वाकांक्षा कुछ अक्षम्य नहीं है। विज्ञान की सहायता से उसे पुष्ट करना भी अनुचित नहीं है और यदि

व्यक्तिमात्र में राक्षसों जैसा प्रचण्ड पराक्रम हो, तो वह भी एक शर्त पर अभिनन्दनीय ही होगा। वह शर्त यही है, कि देखना कहीं इस प्रचण्ड बल का पर्यवसान निर्दय राक्षसों के समान दुर्बलों को चकनाचूर कर डालने में न हो जाय। अध्यापक महाशय जर्मनी के वैज्ञानिक आविष्कारों के कितने ही राग क्यों न अलापें; पर आज जर्मनी ने अपने शास्त्रीय ज्ञान का जैसा दुरुपयोग किया है, वह किसी से छिपा नहीं है। कौन कह सकता है, कि जर्मनी के अनुकरण से जापान अपनी बल-वृद्धि कर उस बल का दुरुपयोग करने की बुद्धि से बिलकुल ही बचा रहेगा? कौन कह सकता है कि इस माया-सृष्टि के गूढ़ तत्वों के रहस्य को जानकर तथा राक्षसी सम्पत्ति के प्रभाव से उन्मत्त होकर, जापान हमारे प्राचीन समय के रावण, हिरण्यकश्यपु, कंस आदि के समान संसार के गो ब्राह्मणों (दीन दुखियों) को पीड़ा न देगा? सम्भव है कि आधिभौतिक अभिमान में फँसकर जर्मनी की नाईं जापान भी कहने लगे कि—

ईश्वरोऽहमहं भोगी सिद्धोऽहं बलवान सुखी।
आढ्योऽभिजनवानस्मि कोऽन्योऽस्ति सदृशो मया?

अर्थात् "मैं ईश्वर हूं, मैं भोक्ता हूं, मैं सिद्ध हूं, मैं ही बलवान् और सुखी हूं, मैं ही सम्पन्न और कुलवान हूं, मेरे समान दूसरा कौन है?" तात्पर्य यह कि ऐसे अहंकार, बल और दर्प की वृद्धि से—ऐसी आसुरी संपत्ति से—फिर भी भयानक महायुद्धों का भय बना ही रहेगा। इसी आसुरी सम्पत्ति की अमर्यादित वृद्धि के कारण प्राचीन समय में हमारे देश में कौरवों और पांडवों के बीच एक महभारत हो गया था। इसी आसुरी सम्पत्ति की लालसा ने वर्तमान समय में यूरोप में दूसरा घनघोर महाभारत उपस्थित कर दिया है और यदि जापान इसी आसुरी सम्पत्ति को अपना राष्ट्रीय ध्येय बना लेगा, तो भविष्यत् में शीघ्र ही एशिया की रणभूमि में तीसरा महाभारत भी छिड़ जायगा। अतएव हमारे सनातन वैदिक-धर्म का उपदेश है, कि पहिले शील को सुधारना और आत्मसंयम की शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये। क्योंकि सात्विक वृत्ति के बिना सामर्थ्य बढ़ जाने पर उसका दुरुपयोग रोके नहीं रुकता। यह कोई नहीं कहता कि तुम अपने आधिभौतिक सुखों के साधनों की वृद्धि मत करो; परन्तु कहना सिर्फ यही है कि आधिभौतिक सुख-वृद्धि के साथ साथ अपने शील को सात्विक अवस्था में रखने का प्रयत्न करते रहो—दैवी सम्पत्ति से एकदम विमुख न हो जाओ। जब कि दुनिया के सब लोग अपनी भावी उन्नति के विषय में विचार कर रहे हैं, जब कि जापानी अध्यापक अपने देशवासियों को ज्ञान और शक्ति की वृद्धि करने के लिए उपदेश दे रहे हैं—तब क्या भारत के विद्वानों का कर्तव्य नहीं है, कि वे भी अपने देशभाइयों को तथा अपनी परमदयालु सरकार को, इस प्राचीन राष्ट्र की भावी भलाई के लिए कुछ हितोपदेश करें? देखें, इस प्रश्न का उत्तर कब और क्या मिलता है?

भारतीय किसान ।

[लेखक—श्रीयुत जगन्नाथप्रसाद मिश्र, विद्यार्थी ।]

भारतवर्ष कृषि प्रधान देश है। यहां ९० फी सैकड़ा मनुष्यों की जीविका कृषि पर ही निर्भर है। सभी लोग स्वीकार करते हैं कि भारतीय किसानों की दशा सन्तोषजनक नहीं है। हां, कुछ लोग ऐसे भी हैं; जो देश की भीतरी दशा से बिलकुल अनभिज्ञ हैं। उनके लिए भारतवर्ष धन-जन पूर्ण अत्यन्त समृद्धिशाली एक देश है। यहां की प्राकृतिक शोभा तथा समयानुकूल ऋतु परिवर्तन आदि से ही मोहित होकर वे ऐसा अनुमान कर बैठते हैं। परन्तु जो लोग देश की दशा से पूर्णतया अभिज्ञ हैं और जिनको भारतीय किसानों से मिलने का मौका मिला है, वे भलीभांति जान सकते हैं कि इस देश के किसानों की दशा कैसी गई बीती है। भारतवर्ष की साम्पत्तिक उन्नति के मुख्य आधार ये किसान, अन्यान्य देशों की अपेक्षा अत्यन्त शोकजनक अवस्था में हैं। भारतवर्ष की उन्नति बहुत कुछ कृषि पर ही निर्भर है। व्यापारिक कम्पनियां यहां बहुत थोड़ी हैं और जो हैं भी उनका संचालन नये ढंग से नहीं हो रहा है। व्यापार तथा शिल्प की उन्नति के लिए बहुत दिनों से चर्चा हो रही है परन्तु अभी तक वास्तव में उस ओर बहुत कम सफलता प्राप्त हुई है। दुर्भाग्यवश हमारी सरकार भी हमें इस काम में समुचित सहायता नहीं दे रही है। १९वीं शताब्दी के प्रारम्भ में जर्मन सरकार तथा १८वीं शताब्दी के अन्त में जापान सरकार ने अपने देश के व्यापारियों को जैसी सहायता दी है और दे रही है, वैसी सहायता हमें आज नहीं मिल रही है। जबतक भारत सरकार की नीति इस विषय में नहीं बदलेगी तब तक इस देश की आर्थिक उन्नति, कृषि पर ही निर्भर रहेगी। यदि उपज अच्छी हो तो केवल कृषि के द्वारा ही देश सुखी हो सकता है, कैनेडा, अस्ट्रेलिया, न्यूजीलैंड तथा एमेरिका के कितने ही राज्य कृषि-प्रधान हैं। इस पर भी वहां के लोगों की दशा इस देश की अपेक्षा कहीं अच्छी है। कृषि के लिए सबसे अधिक आवश्यकता जल की है। यदि समयानुकूल वर्षा हो तो उपज अवश्य अच्छी होगी। भारतवर्ष के कुछ भागों में अत्यधिक और कुछ भागों में कम वर्षा होने से कृषि को अत्यन्त हानि पहुंचती है। यद्यपि सरकार ने कई नहरों को खुदवा कर सिंचाई के लिए जल का प्रबन्ध किया है, परन्तु करोड़ों किसानों के देखते यह दाल में नमक के बराबर ही कहा जा सकता है। अधिकांश लोगों को अब भी वर्षा ही पर निर्भर रहना पड़ता है। कृषि की उत्पत्ति के लिए सब से पहिले सिंचाई के प्रबंध की, जिसमें सरकारी सहायता की बहुत ज़रूरत है, आवश्यकता है। नहर, कुएँ तथा पम्प द्वारा जिस प्रकार सम्भव हो जल का प्रबन्ध करना उचित है। इस प्रकार का प्रबन्ध करना किसी एक आदमी के लिए सर्वथा असम्भव है। हां, कुछ लोगों की सम्मिलित चेष्टा से यह काम सुगमता से हो सकता है। परन्तु संघ-शक्ति का तो इस देश में नाम ही नहीं है। ऐसी अवस्था में किसानों को पूर्ण सहायता देना सरकार का प्रधान कर्तव्य है। पहिले ही कहा जा चुका है कि कृषि के लिए जल की आवश्यकता सब से अधिक है और सिवा इसके इसकी उन्नति सर्वथा असम्भव है। दूसरी बात भारतीय किसानों की मूर्खता है। हज़ारों वर्ष से प्रचलित खेती की पद्धति के अनुसार आज भी काम हो रहा है। अन्य देशों में विज्ञान के द्वारा कृषि की जो उन्नति हुई है उसका हाल वे बिलकुल ही नहीं जानते हैं। बीज तथा मिट्टी की पहिचान और नये नये औजारों का व्यवहार करने में वे बिलकुल

असमर्थ हैं। सारांश यह कि उनको वैज्ञानिक कृषि का ज्ञान कुछ भी नहीं है। अब प्रश्न यह है कि किसानों की दशा का सुधार किस प्रकार हो सकता है। कुछ लोगों का कहना है कि गांव २ में घूमकर किसानों को वैज्ञानिक खेती का महत्व समझाया जाय और देशी भाषा में उक्त विषय की पुस्तकें बाँटी जायँ। प्रत्येक ग्राम में कृषि की प्रदर्शिनी हो और उससे किसानों को उस विषय की शिक्षा दी जाय। कुछ लोगों का कहना है कि किसानों के लड़कों के मन नौकरियों से हटा कर नये ढंग की खेती सीखने के लिए उत्तेजित किये जायँ। उपर्युक्त बातें वास्तव में बहुत ठीक हैं। मेरे विचार से कृषि-शिक्षा की ओर ध्यान देना कृषि-विभाग का मुख्य कर्तव्य है, परन्तु हमें लिखते दुःख होता है कि सरकार इस विषय में बिलकुल उदासीन है। शिक्षा के प्रचार से बालकों की आँखें खुल जायँगी और आगे चल कर वे अच्छे किसान हो सकेंगे। देश के कई भागों में कृषि-कालेज खुले हैं, परन्तु इन कालेजों में असली किसानों के लड़के बहुत ही कम पढ़ते हैं। केवल कृषि-विभाग में उच्च नौकरियां पाने की इच्छा ही से, न कि उसे काम में लाने के लिए, ये छात्र कालेजों में शिक्षा प्राप्त करते हैं। इन में जिस ढंग से शिक्षा दी जाती है वह सर्वथा अनुपयुक्त है।

इन कालेजों में अँगरेज़ी भाषा द्वारा शिक्षा दी जाती है, अतएव जो लोग उसमें भर्ती होना चाहें, उनको इस भाषा का ज्ञान होना परमावश्यक है। अँगरेज़ी शिक्षितों की संख्या इस देश में बहुत कम है और ये कृषि आदि स्वतंत्र व्यापारों को अत्यन्त घृणा की दृष्टि से देखते हैं। इसलिए प्रत्येक बड़े गांव में कृषि सम्बन्धी छोटे २ स्कूलों का खुलना आवश्यक है। इससे गरीब लड़के भी थोड़े खर्च में शिक्षा पासकेंगे। इन स्कूलों में शिक्षा का माध्यम देशीभाषा होनी चाहिये। पाश्चात्य देशों में इस प्रकार के स्कूल अधिक संख्या में पाये जाते हैं। जबतक ऐसी शिक्षा का प्रबन्ध न होगा तबतक कृषि शिक्षा से लोगों को कुछ भी लाभ होने की सम्भवना नहीं है। कहा जाता है कि बम्बई प्रान्त में इस प्रकार के कई स्कूल स्थापित हुए हैं और उनमें अच्छी सफलता प्राप्त हुई है। यदि यह बात सच हो तो सरकार को उचित है कि वह इस प्रकार के स्कूलों की स्थापना अन्य प्रान्तों में भी शीघ्रता से करे। इसके अतिरिक्त एक बात और भी ध्यान देने योग्य है। आजकल की शिक्षा से बालकों की रुचि सरकारी नौकरी की ओर ही झुकती है। वे कृषि आदि स्वतंत्र व्यवसाय से दूर भागते हैं। अतएव उन देहाती लड़कों को इस प्रकार की शिक्षा दी जानी चाहिये, जिससे उनका चित्त खेती की ओर झुके। अनावश्यक विषयों की अपेक्षा कृषि संबंधी उपयोगी विषयों की ओर अधिक ध्यान दिया जाना अच्छा होगा। यदि हो सके तो जर्मनी, एमेरिकादि की तरह उन स्कूलों के पास ही एक बाग भी हो, इससे यह लाभ होगा कि जो कुछ शिक्षा दी जायगी, उसका उपयोग भी वहीं करके दिखला दिया जायगा। इसी प्रकार की शिक्षा की ज़रूरत इस देश में है, जिसकी आज उपेक्षा हो रही है। तीसरी बात यह है कि भारतीय किसानों को पूंजी की कमी है। कृषि की उन्नति के लिए पूंजी की अत्यन्त आवश्यकता है। बिना पूंजी के गरीब किसान नये २ औज़ार और बीज, खाद, मेशीन इत्यादि नहीं खरीद सकते। अधिकांश भारतीय किसान पूंजी-रहित हैं। वे लोग अत्यंत दरिद्र और ऋण के बोझ से दबे हुए हैं। उन लोगों के पास बीज तथा खाद खरीदने तक के लिए भी धन नहीं रहता। लाचार होकर उन्हें महाजन से अत्यन्त कड़े सूद पर रुपया लेना पड़ता है। ऋण अदा करने के लिए भी उपज काफी नहीं होती और इस प्रकार साल भर का खर्च चलाने के लिए और अगली फसल के लिए उन्हें फिर कर्ज़ लेना पड़ता है। इस तरह कई वर्षों में ऋण इतना

बढ़ जाता है कि बेचारों को ज़मीन बेंच कर महाजन का रुपया देना पड़ता है। वे जन्मभर दरिद्रावस्था में पड़े रहते हैं और उनके परिश्रमार्जित धन से महाजन लाभ उठाते हैं। इस प्रकार भारतीय किसानों का सत्यानाश यहां एक साधारण दृश्य हो रहा है। सरकार को उचित है कि वह इन बेचारों की पूर्ण सहायता करे, जिसमें वे इन क्रूर महाजनों के चंगुल में न फँसें। इसी उद्देश्य से देहातों में सहयोग-समितियां (co-operative society) स्थापित हुई हैं। परन्तु ये समितियां अभी प्रारम्भिक अवस्था में हैं और उनकी संख्या भी अत्यल्प है। इसलिए सरकार की सहायता ज़रूरी है।

यह सहायता दो तरह से की जा सकती है। पहिला उपाय यह है कि रैयतों को कानून के अनुसार रुपया उधार दिया जाय। दूसरा उपाय यह है कि कृषि-विभाग, कृषि सम्बन्धी नई २ चीज़ों को बेंचने का प्रबन्ध अपने हाथ में ले। किसानों को ज़रूरी चीज़ें उधार दी जायँ और उन चीज़ों का मूल्य किश्त द्वारा वसूल कर लिया जाय। ऐसे प्रबन्ध से सरकार को कुछ अधिक खर्च करने की भी आवश्यकता नहीं है। हां, इससे कर-विभाग के ऊपर कार्य का कुछ अधिक बोझ पड़ेगा, परन्तु इसके लाभों को देखते हुए वह कुछ भी नहीं है। ऐसा करने से उन लोगों को कृषि सम्बन्धी ज़रूरी चीज़ें ठीक समय पर मिल जायँगी और वे फिर किश्त पर रुपया भी सुगमता पूर्वक अदा कर सकेंगे। ऐसे प्रबन्ध से भारतीय किसानों की उन्नति अवश्य होगी और कृषि-विभाग का उद्योग भी फलीभूत होगा। सारांश यह कि किसानों को जल, शिक्षा तथा पूंजी इन्हीं तीन चीज़ों की ज़रूरत है। इन्हीं तीन चीज़ों के अभाव से यहां के किसानों की अवस्था आज ऐसी हृदयविदारक है। अच्छी उपज न होने से ही उन्हें साल भर अधपेट रह कर दिन बिताने पड़ते हैं और तिस पर भी महाजन के चंगुल से उनका छुटकारा नहीं होता। जबतक उपर्युक्त बातों पर समुचित ध्यान नहीं दिया जायगा तबतक किसानों की दशा में परिवर्तन होने की आशा दुराशामात्र है।

अरुणोदय।

[लेखक—श्रीयुत ठाकुर जयकृत सिंह विष्ट।]

"संसार परिवर्तनशील है" यह वाक्य आजकल साधारण मनुष्य के मुंह से स्वतः ही निकल पड़ता है; किन्तु यह परिवर्तन किस नियम से बद्ध है, इसका उत्तर देना उसके लिए अत्यन्त कठिन हो जाता है। यदि एक धातु का गोला सूत की एक पतली रस्सी से किसी खूंटी में लटकाकर हिला दिया जाय तो वह इधर से उधर और उधर से इधर फेरा फेरा लगाया करेगा। इस प्रकार की चाल (Motion) को सामयिक (Periodic) चाल कहते हैं। अर्थात परिमित समय में वही गोला किसी विशेष स्थान पर आया और जाया करेगा। घड़ी का लटकन और गाड़ी के पहिये भी इसी चाल के अनुयायी हैं। यदि आकाश की ओर दृष्टि डाली जाय, तो ज्ञात होगा कि चन्द्र, तारे और अन्यान्य ग्रह भी इसी नियम से जकड़े हुए अपनी यात्रा पूर्ण करते जाते हैं।

संसार के सुख, सम्पत्ति और ज्ञान-सूर्य को भी, इसी सामयिक नियम के अनुसार, पूर्व से पश्चिम की यात्रा करने के पश्चात् पुनः पूर्व ही में उदित होना पड़ता है।

अनेक शताब्दियों के पहिले यह सुख, सौरभ और ज्ञान का बालसूर्य, प्राचीदिशा (भारतवर्ष) में उदित हुआ था। इसकी मुख लालिमा से, भारत के उज्ज्वल झील, पवित्र नदी, सुन्दर समधरातल और उच्च २ पर्वत शिखरों में एक मनोहर और अनूठी छटा आगई थी। प्रातःकाल के त्रिविध समीर और सुन्दर सुनहले रविःकिरणों से यहां के ऋषियों के मानसिक फूल ऐसे विकसित हो गये थे, कि उनकी पूर्ण प्रभा और शान्तिमय सुगन्ध से अभीतक जागृत जगत् मुग्ध हो जाता है। उस समय यदि भारत एक चतुर्थांश मनुष्यजाति (शूद्रों) के दुःखाभिकुण्ड में, ऊपर से अत्याचार की आहुति न डालता, तो कदाचित् उसका आनन्द और स्वातन्त्र्य-सूर्य, उस आसुरिक यज्ञ की दुर्गन्ध और अप्राकृतिक धुएँ से धुंधला न पड़ता और कदाचित् इस मनोहर द्वीप की सुन्दरता में मग्न होकर वह अपने सामयिक नियम को भूल कर पश्चिम की यात्रा ही न करता*। किन्तु प्रकृति का ही नियम प्रबल रहा।

ज्यों २ सूर्य पश्चिम की ओर निकला, नये २ देशों में अरुणोदय और पूर्व में क्रमशः अंधकार होता गया। समय पाकर ईरान, एसीरिया, बेबिलोनिया और मिस्र देश ने बालसूर्य का स्वागत कर, अपने २ अस्तित्व और उन्नति का परिचय दिया। यूनान और रोम के पराक्रम और विद्याओं की उन्नति का हाल प्राचीन इतिहास का एक अनन्त भाण्डार (Inexhaustible Treasures) है। इस प्रकार अनेकानेक जातियों के उत्थान और पतन के बाद कहीं स्पेन, फ्रांस, जर्मनी और इङ्गलैंड की पारी आई और अब एमेरिका में वही सूर्य अपनी पूर्ण प्रभा से चमकता हुआ दीख पड़ता है। इसका परिचय वहां की उच्चशिक्षा, राजनैतिक उन्नति और जन-स्वातन्त्र्य से मिल रहा है। हा! यह एमेरिका वही देश है, जिसके अस्तित्व तक का, जब कि भारतवर्ष अपने गौरव के उच्च और प्रकाशमय शिखर पर आरूढ़ था, सन्देह था। आज वही एमेरिका एक स्वतन्त्र सुख-धाम है और उसकी आनन्द-ध्वनि चारो दिशाओं में गूंज रही है। जब इसके नित नये आविष्कारों से सारा संसार लाभ उठा रहा है, उस समय वृद्ध भारत दुःख और दारिद्र्य की आर्तनाद से सुखियों के सुख में भी बाधा डाल रहा है।

स्वार्थवश होकर आनन्द से कहना पड़ता है कि इस सूर्य की पश्चिम-यात्रा अन्तिम ही हुआ चाहती है; क्योंकि पश्चिम में उसका ज्ञान-प्रकाश मन्द हो चला है और कई प्रकार के कलहों ने वहां पर भी डेरा जमा लिया है। वे भी अब अपने सुख में भूलकर अंधकार-निशा के स्मारक अन्याय और अत्याचार की आहुति दे अपना दिग्विजय रूपी महायज्ञ का महोत्सव मानना चाहते हैं। सच पूंछिये तो सूर्य का सच्चा प्रकाश और तेज वहां अब है ही नहीं, वरन् केवल गोधूली की लालिमा शेष रह गई है। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण यह है कि पूर्वदिशा में जापान रूपी कुक्कुट (मुर्ग) ने फिर "अरुणोदय" के स्वागत की बांग दी है। अब कितनी देर में वही सूर्य इस भव्यभूमि भारत में उदित होगा यही समस्या है।

यद्यपि वंगदेश में विज्ञान, साहित्य, छन्द तथा राजनीति के प्रातःकालीन तारे उदित होकर

* लेखक महोदय को इसके कहने के पहिले इसे सिद्ध करने का भी प्रयत्न करना चाहिये था। आजकल प्रायः अन्त्यज जाति के प्रेमी ऐसा ही कहा करते हैं यही सिद्धान्त ठीक नहीं है। हम भी अन्त्यज जाति के प्रेमी हैं, हम भी उनको ब्राह्मणों के बराबर देखना चाहते हैं किन्तु इनके साथ ही साथ हम ब्राह्मणों, ऋषियों को अनुदार और स्वार्थ से प्रेरित होकर शूद्रों को नीचे रखनेवाले नहीं समझते। लेखक महोदय अन्य क्षेत्रों में देखेंगे तो उनको दिखाई देगा कि स्त्रियों की ओर से भी आजकल यही कहा जाता है कि पुरुष-समाज ने स्वार्थ के वश सदा स्त्रियों को नीचे रखने के लिए ही सब नियम गढ़े हैं। सं० म०

ब्रह्ममुहूर्त का शुभ समाचार दे रहे हैं तथापि उषा से कब साक्षात होगा, कहना कठिन है। स्मरण रहे कि जबतक भारत का अज्ञानरूपी अंधकार दूर नहीं होता, जबतक प्रत्येक भारी आँखें नहीं खुलतीं और जबतक भारत के आबाल-वृद्ध-वनिता पूर्व दिशा की ओर हाथ जोड़कर, सुख सूर्य के स्वागत की स्तुति. करने योग्य नहीं होते, तबतक सूर्योदय को दूर ही जानिये।

किन्तु भारत ! सावधान ! इस भूल में फिर न पड़ना कि यदि नियमानुसार सूर्य को उदित होना ही है तो चाहे हम जागृतावस्था में रहें या सोती हुई अवस्था में, वह अवश्य आवेहीगा। नहीं २ प्रकृति के सूर्य और सुख-सूर्य यद्यपि एक ही नियम से बद्ध हैं, तो भी उनमें विशेष भिन्नता है। पहिला तो बाह्य शक्ति (with forced vibration) पृथ्वी की परिक्रमा करता हुआ जान पड़ता है और दूसरा सामयिक नियम पालने के साथ ही स्वतन्त्रता से (with free vibration) भ्रमण करता है। उसमें दूसरी विशेषता यह भी है कि यदि उसका स्वागत शुद्धान्तःकरण से न हुआ और उसके सामने साहस, योग्यता और धर्मपरायणता से कार्य न हुए तो वह अपने तेज का पूर्ण प्रकाश नहीं करता।

सौभाग्य की बात है कि आज "स्वराज्य" की शुभध्वनि प्रत्येक प्रान्त के कोने तक में गूंज रही है। ज्ञान, शक्ति और स्वतन्त्रता के सूर्य की यही भजन-प्रभाती तो नहीं है ? तथापि भारत! तुझसे मेरा यही प्रश्न है कि तूने कौनसी युक्ति निकाली है, कि तू उस अति उत्कंठित सूर्य के स्वागत करने योग्य बने ? तेरी वर्तमान दशा को देखकर हृदय विदीर्ण हो उठता है। पारस्परिक बन्धु विरोध, मत मतान्तर और सामाजिक अहंकार कीसी प्रबल शक्तियां तेरे सच्चे राष्ट्रीय बल की खींचातानी करके तेरी कमर तोड़ रहे हैं, परन्तु अन्त में उनका असली फल शून्यमात्र ही है। कुछ समय के पहिले तेरे कुछ उत्साही पुत्र उन्नति के मार्ग में चलकर, तेरी सेवा में तन मन अर्पण कर अन्धकार दूर करने में प्रवृत्त हुए थे, किन्तु शोक ! वे भी अपने लक्ष्य का सच्चा अर्थ न समझकर, तेरे पवित्र नाम पर अपने को बड़ा समझने, अपनी बात को ऊँची रखने, अपने हो को कभी भूल न करनेवाला समझने लगे हैं। आपस में मनोमालिन्य और क्षुद्रहृदयता दिखाकर लड़ना ही उनके उद्देश्य रह गये हैं। क्या तू इन्हीं अनुदार भावों से अपनी भावी उन्नति के सूर्य का स्वागत करेगा ? नहीं २ ब्रह्ममुहूर्त में ऐसे होन विचार घोर अशकुन हैं। इनका अनिवार्य फल यही है कि तेरे आगामी दिवस फिर बुरी दशा में कटेंगे; फिर तू अन्य जातियों के धक्के खाकर पददलित हो जायगा और सूर्य भगवान भी तेरी विचारहीन सन्तानों की अयोग्यता और दुष्कर्मों की घनघोर घटा से आच्छादित होकर तुझे पुनः अन्धकूप में छोड़ देंगे। इसलिए यदि सदियों से कुचले जाने पर भी तुझे कुछ चेत हुआ है, तो तू अपने बच्चों को उन आसुरिक भावों से बचाकर उन्हें पूर्ण विश्वास दिला दे कि परस्पर प्रेम और "शिक्षा" के सिवा वे और किसी तरह, तेरा उत्थान नहीं कर सकते। क्योंकि आज यदि मनुष्य, मनुष्य हैं तो अपनी उच्चशिक्षा, उच्चविचारों और सद्व्यवहारों से ही हैं और यदि आज कोई देश जीवित है. तो अपने उच्च विचारयुक्त और सुशिक्षित मानव सन्तानों से ही है। भारत का कल्याण भी तभी सम्भव है, जब उसकी सन्तानें, सरस्वती माता की खोज में लगेंगी और उससे सुन्दर सुललित शब्दयुक्त स्तुति सीखकर सुख-सूर्य का स्वागत करेंगी।

चाहे कोई कुछ कहे, किन्तु मेरा पूर्ण विश्वास है कि "शिक्षा" से ही भारत की उन्नति सम्भव है; अन्यथा नहीं। जबतक विद्यारूपी ज्ञान-जल से भारत-सन्तान अपने हृदयों को स्वच्छ न

कर लेंगी तबतक उनमें जातीय-प्रेम और जातीय भाव नहीं आसकता और बिना जातीय-भाव के उन्नति कैसे सम्भव है ? सच पूछिये तो 'शिक्षा ही' (और वह भी जातीय-शिक्षा) प्रत्येक देश के राजनैतिक, व्यापारिक और जन-स्वतंत्रता के उत्थान की मूल-मंत्र है।

हे आर्य भूमि ! इस "शिक्षा-प्रचार" में तेरे पुत्रों को कौन से कार्य करने पड़ेंगे ? कौन २ आत्म-विसर्जन करने पड़ेंगे ? इन तीन प्रश्नों पर यदि तेरे पुत्रों का कुछ भी ध्यान लगा तो पूर्ण आशा है कि तेरा भावी दिवस पहिले की अपेक्षा भी अति उज्वल और लाभदायी होगा। इस शिक्षारूपी अश्वमेध यज्ञ की सफलता का उत्तरदायित्व तेरे नवयुवकों और नवयुवतियों पर निर्भर है। प्राचीनकाल से अबतक तेरे बालक और युवकों ने ही समय समय पर तेरे मलिन और शुष्क मुख को उज्ज्वल किया था। उदाहरणों की कमी नहीं ? पुराणों का अध्ययन करनेवाले भलीभांति जानते हैं कि भक्तवीर प्रह्लाद ने आसुरी अंधकार को अपने साहस, सदुपदेश और भगवत भजन से किस प्रकार दूर किया। कौन नहीं जानता कि मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम ने वीर लक्ष्मण के साथ कुमार अवस्था ही में असुरों का संहारकर विश्वामित्र के यज्ञ की रक्षा की थी। श्रीकृष्ण की अपूर्व बाललीला, दृढ़व्रती भीष्म की प्रतिज्ञा, वीर अभिमन्यु का व्यूहभेद, ध्रुव की कठिन तपस्या, धर्मवीर हकीकत का प्राण-विसर्जन, पार्वती का उग्र साधन, सीता का धनुष उठाना, मीराबाई की अटल भक्ति, सावित्री का पातिव्रत धर्म आदि अनेक उदाहरण हैं। इन युवकों पर अब भी तेरा भरोसा होना चाहिये, क्योंकि अरुणोदय के स्वागत का सौभाग्य उन्हीं को प्राप्त होगा। वृद्धजन तो प्रायः उत्साहहीन और बकवादी होते हैं, उनको दुःखों की स्मृति के अतिरिक्त भावी सुखों की आशा स्वप्नवत् दीख पड़ता है। भारतीय युवको ! तुम उत्साही हो, भव्य भारत के कोल-कब्जे हो; तुम्हारे ही नवीन कंधे भारतीय विद्यामन्दिर के स्तम्भ बनेंगे। इसलिए "शिक्षा-प्रचाररूपी" अश्वमेध यज्ञ के लिए उठो। चलो, प्रान्त २ के ज़िले २ में, ज़िले २ के ग्राम २ में, ग्राम २ के गृह २ में प्रवेश करो, घर के स्त्री, पुरुष, बाल व वृद्ध सब को अरुणोदय का संदेश दो; उनसे उनकी सच्ची दशा वर्णन करो; उनके दुःख उन्हें दर्शाओ और विद्या की महिमा और महत्व की चर्चा कर उन्हें बताओ कि इसके बल पर मनुष्य उड़नखटोले और पनडुब्बियां बनाकर कैसे अद्भुत कौतुक दिखा सकता है और प्रकृति की सारी शक्तियां बिजली, जलवाष्प इत्यादि किस प्रकार वश में हो सकती हैं।

जब विद्या की ज्योति से उनके शून्य हृदयों का अंधकार दूर हो जायगा, तब उनसे ग्रामपाठशालाओं के स्थापन का प्रस्ताव करो, प्रस्ताव ही नहीं अनुरोध करो, जो धनी हैं उनसे धन द्वारा सहायता लो ; जो अन्न दान दें, उनसे अन्न ग्रहण करो, किन्तु जो तन और मन देवें, उन्हीं को सच्चे देशप्रेमी समझकर अपनाओ और अपनी संघशक्ति बढ़ाकर, ग्राम २ में विद्यामंदिर बनाकर ग्राम ही के उत्साही युवकों को इन संस्थाओं के संरक्षक और संचालक बनाओ। जब देश के ग्राम २ में ऐसी पाठशालाएँ हो जायँगी तो देश के बालक व बालिकाओं के सुशिक्षित होने में कुछ भी सन्देह न रहेगा। यह प्रारम्भिक शिक्षा (Primary Education) के प्रचार का साधन हो सकता, (जिसके लिए स्वर्गीय मि० गोखले ने बहुत उद्योग किया किन्तु अभाग्यवश वे इस कार्य में कृतकार्य न हुए— उनकी असफलता का मुख्य कारण यह था कि उन्होंने अपने नवयुवकों की सहायता न लेकर किसी अन्य से सहायता चाही थी) यदि हमारे विद्यार्थी कुछ भी प्रयत्न करें तो स्कूल और कालेज के युवक इस प्रारम्भिक शिक्षा के सच्चे प्रचारक हो सकते हैं। छुट्टियों में जब वे घर आते हैं तब

उनको (अपने अमूल्य समय को व्यर्थ न खोकर) जातीय कार्य को करने का सुअवसर भलीभांति मिल सकता है। देशहितैषियों से यही आग्रह है कि वे चाहे जहां रहें, चाहे जिस कार्य में प्रवृत्त हों यदि उनमें उत्साह है तो वे धन नहीं तो समय देकर रात्रि-पाठशालाओं (Night Schoo) द्वारा इस पवित्र कार्य में सहायता दें। सच तो यह है कि मनुष्य अनन्त शक्तियों का पुञ्ज है, वह इच्छानुसार सब कर सकता है। इसलिए युवको! यदि तुम भी साहसी हो, जातीय कार्य के सच्चे कर्मवीर हो और देश के नेता (Nation builder) कहलाने का यश लूटना चाहते हो, तो ईश्वर का नाम लेकर इस महाकार्य में जुट जाओ, फिर देखें कौन तुम्हारे परिश्रम में बाधा डाल सकता है? यही शिक्षा का अंत नहीं है, यह तो प्रारम्भ और सच्ची शिक्षा के द्वार तक ले जाने का एक मार्गमात्र है। असली कार्य तब होगा जब तुमको इन छोटी २ बातों का पूरा अनुभव हो जायगा, जब इन कार्यों से तुमको अपनी शक्ति का परिचय मिल जायगा और जब तुमको आत्म-विश्वास हो जायगा, तब पांच २ दश २ मित्रों का गरोह बनाकर तुमको प्रान्त २ के केन्द्रों में एक २ जातीय संस्था (National institution) स्थापन करने का प्रयत्न करना पड़ेगा जिनका मुख्य उद्देश्य सदाचार और राष्ट्रशिक्षा होगा।

यद्यपि वर्तमान समय में भी शिक्षा का कुछ प्रबन्ध है किन्तु बिना जातीय संस्थाओं के हमारा उद्देश्य पूर्ण नहीं हो सकेगा। ये संस्थाएँ एक प्रकार की शक्तिशालाएँ (Power houses) रहेंगी। इनसे ग्राम्यपाठशालाओं का घना सम्बन्ध बना रहेगा। इनके लिए धन और जन की आवश्यकता तो अवश्य ही होगी, परन्तु प्राचीन महापुरुषों के जीवनचरित्रों का अवलोकन करने से ज्ञात होता है कि यदि तुम अपने प्रण पर सदा दृढ़ रहकर कुछ भी कर दिखलाओगे तो ईश्वर तुम्हारे मन के भाव को देखकर तुम्हारी यथोचित सहायता करेगा और फिर उस परम-पिता की कृपा से धन और जन स्वतः आकर्षित हो जायँगे।

इन संस्थाओं का मुख्य कार्य ग्राम्य-पाठशालाओं से आये हुए बालक-बालिकाओं को ऐसी शिक्षा देना है कि वे तुम्हारे सदुपदेश और उच्चतर आदर्शों से "जातीय शिक्षा" के कार्य को अपनावें और देश के कोने तक में जाकर इसी का प्रचार करें। ऐसा होने से तुम्हारा कार्य दिन दूना और रात चौगुना बढ़ेगा। इसकी सफलता के लिए अन्य देशों की सभ्यता का ऋण नहीं लेना पड़ेगा। यदि इस पवित्र कार्य में प्राचीन प्रथा या कोई व्यक्ति कुछ भी बाधा डाले, तो तुम्हें उसे ठोकर मारकर एक ओर करना पड़ेगा। इस प्रकार जब तुम्हारा आन्तरिक अंधकार दूर हो जायगा, तो तुम स्वयं भाई २ को पहिचानने लग जाओगे, फिर तो हिन्दू मुसलमान का झगड़ा, आर्य-ब्राह्मों का वादविवाद, ब्राह्मण-शूद्र की छुआछूत और बंगाली हिन्दुस्तानी का भेद दूर हो जायगा। तब यदि प्रेमभाव, शुद्धान्तःकरण और एक स्वर से समस्त भारत-सन्तान प्राची दिशा की ओर खड़ी होकर इस प्रकार प्रार्थना करे—

कि, "हे सूर्यदेव! तेजराशि अब बहुत हुआ। अपने २ दुष्कर्मों का और आपस के विरोध का जितना कठोर दंड सम्भव व असम्भव है, वह हमने पूरा २ भुगत लिया। यही नहीं! वरन् औरों के अत्याचारों का भी प्रायश्चित हमारे ही दारुण दुःखों द्वारा हो चुका। किन्तु हे नाथ! अब तो कृपा करिये और अपने मंद २ मुस्क्यान से भारत-जननी के मुख को उज्वल करके, परोपकार का यश लीजिये। इस प्रार्थना से सूर्यदेव सत्य ही शीघ्र आकर, हमारी आशाओं को अवश्य पूर्ण करेंगे। फिर तो हे मातृभूमि! तेरे सर्वोच्च आसन पर आरूढ़ होने में कुछ भी संदेह न रहेगा और फिर एक बार तू अन्य जातियों के लिए आदर्श-भूमि बनकर उन्हें दिखला देगी कि धर्म क्या है और न्याय क्या है।

आयुर्वेद तथा रसायनशास्त्र की उत्पत्ति।

[लेखक—श्रीयुत बी० के० मित्र ।]

वैदिक युग।

आयुर्वेद शास्त्र की उत्पत्ति के विषय में प्राचीन आयुर्वेदीय ग्रन्थों में जो विवरण दिये हैं उनमें ऐतिहासिक तथ्य विशेष नहीं मिलते। उनको केवल पौराणिक आख्यायिका कह सकते हैं। अतएव इसके विषय में हमें निष्पक्ष होकर प्राचीन और अर्वाचीन, प्राच्य और पाश्चात्य मनीषियों की सम्मतियों पर पर्यावेक्षण करना होगा।

सम्भवतः चिकित्सा शास्त्र की उत्पत्ति, मनुष्य जाति की ज्ञानुन्नति के साथ ही हुई है। वैदिक युग में भी इस देश में चिकित्सा-ज्ञान का पूर्वाभास पाया जाता है। यद्यपि ऋग्वेद में औषधियों की स्तुति मिलती है तथापि आयुर्वेदीय ज्ञान अथर्ववेद में ही, ग्रन्थरूप में संकलित हुआ है। आचार्य प्रफुल्लचन्द्र राय ने आयुर्वेद के तीन युग माने हैं। इन युगों का ठीक समय निर्णय करना असम्भव है। कारण ये, राष्ट्र-विप्लव वा ऐतिहासिक घटना के रूप से किसी विशेष समय पर उपस्थित नहीं हुए हैं प्रत्युत एक युग, दूसरे के साथ इस प्रकार से सम्मिलित था कि यह कहना कठिन है कि एक कब समाप्त और दूसरा कब आरम्भ होता है। मनुष्यजीवन की भिन्न २ अवस्थाओं में कोई विशेष-काल नियत नहीं है तथापि हम सुगमता से एक अवस्था को दूसरी से पृथक् कर लेते हैं, इसी तरह आयुर्वेद के भिन्न २ युगों में भी हमें स्पष्टता से उनके पार्थक्य के लक्षण दिखाई देते हैं। सुगमता के लिए युगों के ये काल एक एक सहस्र वर्ष के माने गये हैं। यथाः—

(क) वैदिक युग, १५०० से ५०० खृ० पू० तक।

(ख) आयुर्वेदीय युग, ६०० खृ० पू० ५०० खृष्टाब्द तक।

(ग) तान्त्रिक युग, ६०० से १५०० खृष्टाब्द तक।

(घ) आधुनिक युग, १६०० से अबतक।

वैदिकयुग—इस युग में आयुर्वेद के क्रमिक विकाश के सम्बन्ध में अति उत्तम प्रमाण मिलते हैं। हम देखते हैं कि अथर्ववेद के अधिकांश मन्त्र, शत्रु-नाश और स्त्री-पुरुषों के परस्पर प्रणय लाभ करने वा इसी प्रकार के कर्मकांड सम्बन्धी प्रयोजन मूलक होने के अतिरिक्त "आयुष्याणी" तथा "भैषज्यानी" भी हैं। इनमें आयुर्वेद के यथार्थ ज्ञान का उन्मेष होता हुआ प्रतीत होता है। यद्यपि इस युग में रोगी की चिकित्सा में मन्त्र, तन्त्र तथा औषधियों का "परिहाटक" (तावीज) के रूप में व्यवहार ही अधिकता से पाया जाता है तथापि अथर्ववेद के 'कौशिक सूत्र' से औषधियों के विषय का सम्यक् ज्ञान प्रकट होता है। दो एक उदाहरणों से पाठक इसका निर्णय कर सकेंगे कि वैदिक युग में चिकित्सा-शास्त्र की क्या अवस्था थीः—अथर्ववेद के प्रथम काण्ड के द्वितीय सूत्र और द्वितीय काण्ड के तृतीय सूत्र में अतिसार आदि रोगों के निवारणार्थ दो मंत्र हैं, परन्तु कौशिक सूत्र में उपर्युक्त मन्त्रों के उच्चारण के साथ ही निम्नलिखित विधान भी दिया गया है—

"इन दोनों मन्त्रों के उच्चारण करने के समय, तृणनिर्मित एक मुंज सूत्र रोगी के गात्र में ताबीज वा तागड़ी के आकार में बांध दिया जाय। इसके बाद दीमक की थोड़ी सी मिट्टी पानी में घोलकर रोगी को पिला दी जाय। तदनन्तर रोगी के शरीर में घी मसलना और उसके ...... फूंक देना चाहिये।"

इसी प्रकार कौशिक सूत्र में बहुतेरी प्रक्रियाएँ भी हैं जिनमें चिकित्साशास्त्र का यथार्थ ज्ञान पाया जाता है। यथा—कौशिक सूत्र (२५, १०, १६)।

इस मन्त्र को उच्चारण करने के समय रोगी के गात्र में ऐसे द्रव्य बांधे जिससे मूत्र का वेग हो। इसके अनन्तर दीमक को मिट्टी, मृत्तिका, सुर्ख और पीसा हुआ प्रमन्द तथा चूर्णित काष्ठ पानी में भिगोकर वह जल रोगी को पिलावें। इस सूत्र की शेष दो पंक्तियों को उच्चारण करते २ उसके......आदि। अन्त में रोगी को आलपद्म की जड़ तथा डल, इन तीनों पदार्थों का क्वाथ सेवन करावे।

शेषोक्त सूत्र में औषधियों की सेवनविधि के साथ जिस हस्तक्रिया का उल्लेख किया गया है उससे हमारे प्राचीन पूर्वपुरुषों की चिकित्सा के ज्ञान का परिचय मिलता है।

इसी युग में निम्नलिखित द्रव्य, भैषज्य रूप से व्यवहृत और तावीज के रूप से धारण किये जाते थे:—

कुष्ठ वृक्ष, रजनी (हरिद्रा), मुञ्ज (तृण), जङ्गिट, दश प्रकार के वृक्ष (क्या परवर्तीकाल का दशमूल ?), पृश्निपर्णी, पर्ण वृक्ष (पलाश), अश्वत्थ, शमीवृक्ष, पिप्पली, भरणी वृक्ष, अज श्रृङ्गी (जल संयुक्त यव), चीपुटु, झरने का जल, गुग्गुलु, कपित्थक, मलम, अरुन्धती (लाक्षा), अपामार्ग, नितत्नी, मुक्ता, स्वर्ण, शीशक, हिरन का सींग, जालम (गोमूत्र) और मधु।

निम्नलिखित रोगों का उल्लेख तथा उनकी चिकित्सा, अथर्ववेद में पाई जाती है। यथा:—कोष्ठबद्धता, मूत्राघात, पाण्डु (कमल), तक्मा (सम्भवतः मलेरिया ज्वर), पामन (खुजली), बलास (क्षय), कुष्ठ, रक्तस्राव, आस्राव (अतीसार), वक्षःपीड़ा, क्षेत्रीय (कुलज रोग), पक्षाघात, कृमी, नष्टवीर्य, विष, सर्प विष, क्षत (व्रण), चक्षुरोग, केशहीनता, शोथ, गंडमाला (कंठमाला) शूल रोग, यक्ष्मा, उन्माद, जायान्य (रसोली)।

इन रोगों के उल्लेख और इनकी चिकित्सा के कारण अथर्ववेद को जगत् में चिकित्सा का प्रथम ग्रन्थ कह सकते हैं। यद्यपि इसकी चिकित्सा में मंत्र तंत्रों के मिश्रित रहने से हम इसको विज्ञान का स्थान नहीं दे सकते, तथापि मिस्र, चीन आदि अन्य प्राचीन जातियों (मिस्र देश) की अपेक्षा इसकी प्रथा उन्नतावस्था में थी।

वैदिक युग में चिकित्सा-शास्त्र की हीन दशा को देखकर कोई पाठक क्षुब्ध हो सकते हैं। परन्तु शोक के बदले यह गौरव का विषय है कि हमारे पूर्वपुरुषों ने वैदिक ऋषियों की पैत्रिक ज्ञान सम्पत्ति की ऐसी उन्नति की, कि मध्य युग तक धर्म और अर्थ सम्बन्धी विद्याओं में वह जगत में अद्वितीय रही; यदि आश्चर्य का विषय कोई है तो वह यह कि हम लोगों की तरह उनके अयोग्य वंशधर विद्याबुद्धि में ऐसे पतित हो गये हैं कि वे अब विश्वास भी नहीं कर सकते कि कलियुग में भी हमारे पूर्वपुरुष वैदिक ऋषियों के वैज्ञानिक "पितृऋण" को उतारते हुए जगत में आदर्श समझे गये। इससे एक यह आशा भी होती है, कि जब इस देश में वैदिक युग से मध्ययुग तक निरन्तर विद्या का विकाश हुआ है तो अवश्य ही हम अपने पुरुषार्थ से अपने पितरों के डूबे हुए नाम को विज्ञान-जगत में पुनःस्थापित न कर सकेंगे ?

आयुर्वेदीय-युग।

(खिष्टपूर्व पञ्चम से खिष्ट पर पञ्चम शताब्दी तक)।

इस युग में चिकित्सा-शास्त्र की बड़ी उन्नति हुई। हम पहिले बतला चुके हैं कि वैदिक-युग में चिकित्सा शास्त्र की प्रारम्भिक अवस्था थी। उस समय चिकित्सकों की सामाजिक अवस्था भी बड़ी हीन थी। वे आजकल के जड़ी बूटीवालों, सींगी लगानेवालों, कानमैलियों की तरह रोगों के नाम पुकार २ कर बाज़ारों में घूमते थे। सम्भवतः ये चिकित्सुव्यवसायी और आजकल के 'ओझे' 'भगत' आदि वैदिक

युग के "भिषग अथर्वणों" के उत्तराधिकारी हैं। चिकित्सा-शास्त्र की उन्नति के साथ चिकित्सकों का आदर और मान भी समाज में बढ़ता गया। हम देखते हैं कि अश्विनी कुमारों को, जो देवताओं के वैद्य थे, औरों के साथ एक पंगत में बिठाने पर देवताओं ने आक्षेप किया। परन्तु परवर्तीकाल में धन्वन्तरि, अग्निवेश आदि ऋषि तथा चरक, सुश्रुत आदि मनीषियों का उल्लेख अति सम्मान के साथ हुआ है। शुक्राचार्य का एक और उदाहरण है। असुरों के वैद्य होने के कारण इनका इतना प्रभाव था कि इनकी कन्या देवयानी के साथ असुरराज ने अपनी कन्या शर्मिष्ठा को उसकी सहेली बनाकर उसके पति के घर भेज दिया था।

यद्यपि ये कथाएँ पौराणिक हैं और इससे इनका कोई ऐतिहासिक अस्तित्व प्रमाणित नहीं हो सकता, तथापि इनसे हम प्राचीन भारत के चिकित्सा व्यवसायियों की सामाजिक अवस्था को अपने मन में सुन्दर रूप से कल्पना कर सकते हैं। आयुर्वेदीय युग में यह भी दिखाई देता है कि ये चिकित्सा व्यवसायी दो सम्प्रदायों में विभक्त थे। एक धन्वन्तरि सम्प्रदाय के, जो शस्त्र चिकित्सा के और दूसरे आत्रेय सम्प्रदाय के, जो काय-चिकित्सा के विशेषज्ञ थे।

इस श्रम-विभाग की आवश्यकता से यह प्रमाणित होता है कि उस समय चिकित्सा-शास्त्र की सम्यक् उन्नति हो चुकी थी। उस समय छोटे २ राजाओं में निरन्तर युद्ध रहने के कारण इस युग के प्रारम्भ अर्थात् सुश्रुत के समय में शल्य-चिकित्सा का बड़ा आदर हुआ है। सुश्रुत के जटिल शस्त्र क्रियाओं का उल्लेख परवर्ती काल के यूनान देशीय शल्य-क्रिया से बहुत उच्चावस्था में है। नष्टनासिका और कर्ण जोड़ने की विधि आज भी नवीन शल्य-तंत्र में "भारतीय प्रथा" के नाम से प्रसिद्ध है। क्लोरोफार्म-जैसी कोई संज्ञापहारक औषधि के अभाव से उस समय एक प्रकार की सुरा व्यवहृत होती थी। सिर्फ इसी की सहायता से उन्होंने शल्यक्रिया में जो उन्नति प्राप्त की, वह आश्चर्यजनक है। यद्यपि इस युग में शल्य-तंत्र उन्नतावस्था में पहुंचा था तथापि इस पर आयुर्वेदीय युग के मन्त्र-तन्त्रों का भी पूर्ण प्रभाव था।

इस युग में काय-चिकित्सा की भी कुछ कम उन्नति नहीं हुई। चरक द्वारा कथित औषधियों के गण और उनके गुण वीर्यविपाक सम्बन्धी तर्क और दर्शन का स्थान अधिकार करते हैं। परन्तु शोक का विषय है कि ये प्रत्यक्ष प्रमाण पर स्थापित न होने के कारण, आधुनिक संज्ञा में "विज्ञान" (साइन्स) नहीं कहे जासकते। चरक का "वात, पित्त, कफ-वाद" यूनानियों से बहुत प्राचीन है। कारण वैदिक युग में भी इसका उल्लेख मिलता है। सुश्रुत जी ने इनमें एक चौथा शोणित भी सम्मिलित करने का प्रयत्न किया है, जिससे उनकी स्वाधीन चिन्ता का प्रमाण मिलता है। यूनानियों का यही "वातश्लेष्मपित्त-शोणिताद-दोष वाद" सम्भवतः हमारे पूर्व पुरुषों से ही लिया गया होगा।

इस युग के प्रधान चिकित्सा-ग्रन्थकार चरक, सुश्रुत, और वाग्भट हैं। इनके काल के विषय में बहुत मतभेद है। अध्यापक नियोगी महाशय इनका काल यथाक्रम खिष्ट पूर्व तृतीय, चतुर्थ और खिष्ट पर तृतीय शताब्दी नियत करते हैं। इस युग के उल्लेखयोग्य और तीन मनस्वी ये हैं,—दृढ़बल, नागार्जुन और माधवाचार्य। अध्यापक नियोगी जी ने इनका समय यथाक्रम खिष्ट पूर्व प्रथम शताब्दी और खिष्ट पर द्वितीय और पञ्चम शताब्दी बतलाया है। दृढ़बल ने चरक का संशोधन ही नहीं, बल्कि उसके नष्ट भाग को भी पूर्ण किया। इसी प्रकार नागार्जुन ने सुश्रुत का प्रतिसंस्कार किया। सम्भवतः उसके उत्तरतंत्र के ये ही प्रणेता हैं। माधवाचार्य ने प्राचीन ग्रन्थों से संकलन करके "रुग्विनिश्चय" नामक एक ग्रन्थ लिखा, परन्तु

आयुर्वेद के प्रधान ग्रन्थकार चरक, सुश्रुत और वाग्भट ही प्रसिद्ध हैं। यद्यपि इन ग्रन्थों में कितनी ही अन्य आयुर्वेद संहिताओं के नाम मिलते हैं तथापि वे उस समय भी बहुत प्रसिद्ध न थीं। ऐसा अनुमान किया जाता है कि सब से प्राचीन आयुर्वेदीय ग्रन्थ, चरक के अग्निवेशकृत किसी प्राचीन-संहिता से समय समय पर पतञ्जलि* और दृढ़बल द्वारा प्रतिसंस्कृत हुआ है। इसी प्रकार सुश्रुत भी शस्त्रचिकित्साविद् धन्वन्तरि सम्प्रदाय के प्राचीन ग्रन्थों में से सम्भवतः कोई संकलित संहिता होगी। कारण शल्यतंत्र में इतनी उन्नति करना एक व्यक्ति की शक्ति से बाहर है। यह भी पुनर्वार परवर्ती काल में बौद्ध नागार्जुन द्वारा प्रतिसंस्कृत हुई। नागार्जुन के अनन्तर आविर्भूत होनेवाले वाग्भट ने प्राचीन संहिताओं को मथकर ऐसे दो ग्रन्थ बनाये, कि चरक, सुश्रुत को छोड़कर बाकी सब संहिताओं का गौरव लुप्त होगया। इसका हाल उनके "अष्टाङ्ग हृदय" की एक व्यङ्गोक्ति से पाया जाता है,—

"ऋषि प्रणीते प्रीतिश्चेत् मुक्त्वाचरकसुश्रुतौ।
भेलाद्याःकिन्नपठ्यन्ते तस्मात् ग्राह्यं सुभाषितम्॥

इससे यह स्पष्ट है कि इन्होंने भेलादि आर्ष ग्रन्थों पर प्रत्यक्ष कटाक्ष किये हैं और व्यङ्ग से चरक, सुश्रुत को भी अनार्ष ग्रंथ कहा है। इसी विषय में अरुणदत्त टीकाकार ने लिखा है:— "तस्मात्स्थित मेतत् सुभाषितं ग्राह्यं, तत्तु मुनि प्रणीतमेवतंत्रम्। अतः चरक, सुश्रुतवत् अनार्ष मपीदं गुणवत्वात्मतिमद्भिर्ग्राह्यमेव।" इससे प्रतीत होता है कि दृढ़बल भी नागार्जुन के सदृश सम्भवतः बौद्ध था। वाग्भट तो बौद्ध था ही, जिसका प्रमाण उसके ग्रन्थों में बुद्ध, अर्हत तथा गत के नमस्कारादि से पाया जाता है।

अष्टम शताब्दी में चरक, सुश्रुत, वाग्भट और माधवनिदान बुग़दादराज की अनुज्ञा से अरबी भाषा में अनुवाद किये गये थे। अरबी ग्रंथों में वाग्भट को "सिन्धोचर" या सिन्धनिवासी चरक कहा गया है। इससे प्रतीत होता है कि वाग्भट भी आर्य ऋषियों के सदृश सम्मानित हुआ था।

आयुर्वेदीय युग के ग्रन्थों की संक्षिप्त समालोचना भी इस छोटे से निबन्ध में असम्भव है। हम पहिले ही बता चुके हैं कि चरक, काय-चिकित्सा सम्बन्धी ग्रन्थ है और सुश्रुत, शल्य-तन्त्र का प्रधान नेता है। वाग्भट्ट में सभी विषय संक्षिप्त रूप से वर्णित हुए हैं। इन तीनों ग्रन्थों में रसायन के सम्बन्ध में उतना ज्ञान नहीं मिलता, जितना परवर्ती, तान्त्रिक युग में मिलता है। साधारण प्रक्रियाएं और यन्त्रों के नाम भी इनमें नहीं मिलते। तथापि इन ग्रन्थों में साधारण खनिज पदार्थ तथा रासायनिक क्रियाओं के विषय में जो कुछ अभिज्ञता दिखाई देती है, वह तत्कालीन यूरोप से बहुत कुछ चढ़ा बढ़ी थी। चरक में भी धातुओं को चूर्ण कर आभ्यन्तरिक सेवन की विधि दी गई है। इस ग्रन्थ में सर्जिकाक्षार और यवक्षार का भेद बताया गया है। इसका हाल यूरोप में अभी ज्ञात हुआ है। सुश्रुत में मृदु, मध्यम और तीक्ष्ण क्षार बनाने में वृक्षादि के भस्म को जल द्वारा परिश्रुत कर उसमें शंखादि भस्म का चूर्ण मिला कर उसे उग्र बनाने और ऐसे क्षार को लोहे की कढ़ाई में रक्षा करने आदि विषयों का विवरण आधुनिक रसायन शास्त्र के वैज्ञानिकी प्रक्रियाओं के अनुसार ही दिया गया है। इसके अतिरिक्त सुश्रुत में धातु मारण का प्रथम उद्यम 'अयस्कृति' प्रक्रिया का प्राथमिक उल्लेख मिलता है। सुश्रुत का शरीरज्ञान भी उल्लेखयोग्य है। यद्यपि यह अत्यन्त संक्षिप्त है और इसमें कुछ त्रुटियां भी हैं, तथापि उस प्राचीनकाल में शरीर विषयक इतना ज्ञान कुछ कम गौरव का विषय नहीं है। महामहोपाध्याय. कविराज गणनाथ सेन महाशय का मत है कि बौद्ध युग

* किसी २ का विचार है कि पतञ्जलि ही का द्वितीय नाम चरक था।

में शरीर-व्यवच्छेद दण्डनीय होने के कारण इस विद्या की अवनति हुई। अतएव आधुनिक सुश्रुत के शारीरिक विषय की जो त्रुटियां हैं वे प्रतिसंस्कर्ताओं के प्रमाद के कारण हैं। सुश्रुत और वाग्भट्ट द्वारा कथित शस्त्र भी प्राचीन यूरोप से अधिक उन्नत हैं। इसके सिवा सम्भवतः आधुनिक शस्त्र भी उन्हीं के अनुकरण से बनाये गये हैं।

कब होगा भारत-दुख दूर।

[लेखक—श्रीयुत राघवप्रसाद सिंह।]

जहाँ वेद-ध्वनि नित होती थी
रहता था गूंजित वर व्योम।
थे निष्काम-कर्म-रत सबहीं
नित होता जप तप वृत होम॥
वही पुण्य-भुवि लखो आज है
कैसी अधरम से भरपूर।
हे आरत-दुख-भंजन-केशव!
कब होगा भारत-दुख दूर? ॥ १॥

जौन सरस्वति-धाम बना था
विष्णु-प्रिया का था भण्डार।
वहीं अविद्या आज बसी है
हुआ दरिद्रा-देवि-अगार॥
हाथ पसारत सब के आगे
क्षुत्पीड़ित होकर मजबूर।
हे आरत-दुख-भंजन-केशव!
कब होगा भारत-दुख दूर॥ २॥

शिल्पकला, विज्ञान, सभ्यता
में जो रहा जगत-सिरताज।
वहाँ वस्तु दमड़ो की भी
है आती अन्य-देश से आज॥
हाय! नवोन्नत-देश इसे अब
करते सभ्य-राष्ट्र से दूर।
हे आरत-दुख-भंजन-केशव!
कब होगा भारत-दुख दूर? ॥ ३॥

कर्म-विमुख सब हुए आलसी,
रहा एकता का नहिं नाम।
फूट दुष्ट सब का घर घाला
फैला द्वेष, डाह सब ठाम॥
नहीं किसी का कोई सहायक
सब हैं स्वार्थ-नशा में चूर।
हे आरत-दुख-भंजन-केशव!
कब होगा भारत-दुख दूर? ॥ ४॥

शिवि, दधीचि, हरिचन्द, कर्ण, बलि,
शुक, मिथिलेश, भर्तृहरि राय।
वाल्मीकि, भवभूति रु काली,
कृष्णचन्द्र, अर्जुन, रघुराय॥
इन समान फिर कब अवतरिहैं
दानी, ज्ञानी औ कवि, शूर।
हे आरत-दुख-भंजन-केशव!
कब होगा भारत-दुख दूर? ॥ ५॥

कब साहस, उद्योग, परिश्रम
फैलेगा घर २ यहि देश?
धन-सम्पन्न सुखी नर होंगे
कृषि-वाणिज्य-निरत सविशेष॥
फिर प्राचीन-छटा धारेगी
कब भारत-जग-जीवन-मूर?
हे आरत-दुख-भंजन-केशव!
कब होगा भारत दुख दूर? ॥ ६॥

प्रभो! कहो क्या कारण है? जो
दिया टेक अपना अब छोड़।
इसकी दीन-दशा कत दिन से
लखते पुनि लेते मुख-मोड़।
राघव क्या तेरी है इच्छा
भारत देश मिलाना धूर?
हे आरत-दुख-भंजन-केशव!
कब होगा भारत-दुख दूर? ॥ ७॥

ज्योतिर्विच्चंडू और चंडू पञ्चाङ्ग।

[लेखक—श्रीयुत मुन्शी देवीप्रसादजी।]

राजपूताने का प्रसिद्ध चंडू पञ्चाङ्ग, जो बम्बई आदि स्थानों से हज़ारों की सख्या में हर साल छपकर निकलता है, ज्योतिषी चंडूजी का चलाया हुआ है।

ये ज्योतिषी चंडू, पुष्करणा ब्राह्मण और जैसलमेर के रावल, लूनकरण के राज-पुरोहित थे। वहां से आप राव मालदेवजी की भटियाणी रानी ऊमादेवीजी के साथ जोधपुर आये थे। आपका जन्म, संवत १५५० में हुआ था। नीचे इनकी जन्म-पत्री दी जाती है।

सं० १५५० आषाढ़ बदी ३०, दिन शेष घटी।

पुरोहित श्री चंडूजी का जन्म।

दामोदरजी और विद्याधरजी नामक चण्डूजी के और भी दो भाई थे, परन्तु चंडूजी की रुचि ज्योतिष-विद्या में उनसे विशेषतर थी।

चंडूजी नित्य आकाश देखकर पञ्चांग में लिखे हुए ग्रहों के चार को उदयास्त से मिलाया करते थे। दोनों के न मिलने से उनके चित्त में जो शंका उपजती थी उसका समाधान करनेवाला मारवाड़ में उन्हें कोई नहीं मिला। इसलिए आप अहमदाबाद, गुजरात में, जहां से पञ्चांग आता था, गये और वहां मथेरण* विजयराज से "करण कुतूहल" ग्रन्थ को पढ़ने लगे। इसीसे वह पञ्चांग बनाया जाता था। फिर उन्होंने स्वयं पञ्चांग बनाकर दोनों पञ्चांगों को मिलाया तो उनमें कोई अन्तर नहीं मिला। फिर भी इन पञ्चांगों से आकाश का उदयास्त न मिलने पर आप ने सोचा कि यह अन्तर, ग्रहों के चार में परिवर्तन हो जाने से ही पड़ता है; इसलिए आगामी पञ्चाङ्ग बनाने में सिर्फ गणित का आधार न रखकर आकाश देखने के अनुभव से भी कुछ काम लेना चाहिये। इस पर जब उन्होंने सूर्य के उदयास्त पर कुछ समय तक ध्यान रखकर विचार किया तो उन्हें ज्ञात हुआ कि प्रति वर्ष सूर्य बहुत ही धीरे २ दक्षिण को ओर हटता जाता है और इसीसे ३०० सौ वर्ष पूर्व के बने हुए "करण कुतूहल" ग्रन्थ के गणित में अन्तर पड़ता है!

करणकुतूहल शाके ११०५ या संवत १२४० में बना था। उसमें ग्रहों के उदयास्त का जो इष्ट लिखा था और जो चंडूजी को आकाश देखने से ज्ञात होता था, दोनों का ठीक अन्तर उन्होंने पकड़कर पिछले वर्षों पर बाँटा तो जो अङ्क घड़ी, पल और विपल के लब्ध हुए, उनको पञ्चाङ्ग के गणित में जोड़कर देखने पर पञ्चाङ्ग और आकाश का चार मिल गया। इसलिए उन्होंने हर एक ग्रह का चार ठीक मिलने के वास्ते, करणकुतूहल से गणित करके निकले हुए कुछ ध्रुवांक ठहरा कर उनकी वर्षवार सारिणी बना ली। इसीके अनुसार अब करण-कुतूहल के गणित में वे अङ्क जो चंडोदास कृत बीज कहलाते हैं मिला दिये जाते है। इन बीजों को चंडवाणी ज्योतिषी बहुत गुप्त रखते हैं। और तो क्या, सगे भानजों को भी, जिसमें यह विद्या चंडूजी के घराने से निकल कर दूसरे घराने में न चली जाय, नहीं बतलाते।

* जैनी जती जो घरबारी होते हैं और महात्मा भी कहलाते हैं।

इस बात को मारवाड़ के दूसरे ज्योतिषी भी, जो चंडवाणी नहीं हैं, मानते हैं कि उन बीजों के मिलाये बिना करणकुतूहल से बनाया हुआ पञ्चाङ्ग, चंडू पञ्चाङ्ग के बराबर ग्रहों की चाल से मेल नहीं खा सकता। इसी कारण ३५० वर्ष में अबतक मारवाड़ का कोई ज्योतिषी चंडू पञ्चाङ्ग के मुक़ाबले पर नया पञ्चांग नहीं निकाल सका है और कभी किसी ने निकाला भी, तो ग्रहों का चार न मिलने से वह नहीं चला।

अपनी नई परिपाटी को पूर्ण रीति से ठीक कर चंडूजी ने पहिला पञ्चांग किस वर्ष में बना कर चलाया था, इसका अभी तक पूरा पता बहुतसी खोज करने पर भी नहीं लगा। संवत १६०५ से पहिले का कोई चंडू पञ्चांग भी हमको नहीं मिला और न चंडवाणी ज्योतिषियों के संग्रह में ही देखा गया है। सुना जाता है कि चंडूजी का पञ्चाङ्ग संवत १५८८ में या इससे १० वर्ष पीछे निकला था। संवत १५६८ के पञ्चांगों की हम खोज कर रहे हैं, मिलने से कुछ निर्णय होगा, परन्तु इसमें तो कुछ संदेह नहीं कि चंडूजी का पञ्चांग राव मालदेवजी के ही राज्य में, गुजरात का पञ्चांग बन्द होकर, प्रचलित हुआ है।

यह भी सुना जाता है कि राव मालदेवजी, चंडूजी को इस नये और शुद्ध पंचांग को बनाने के कारण इनाम में गांव देते थे, परन्तु उन्होंने दूरदर्शिता से उसके बदले जोधपुर की चांद पोल के बाहर की एक पहाड़ी के नीचे केवल एक खेत और बेरे के लेन पर संतोष किया।

चंडूजी का देहांत संवत १६२२ में हुआ। उनके पीछे उनके पुत्रों ने पञ्चाङ्ग में कुछ चित्त नहीं दिया, परन्तु भाई दामोदरजी ने उसके बनाने और प्रसिद्ध करने में बहुत परिश्रम उठाया। वे उसको लेकर अकबर बादशाह और उदयपुर के महाराणा प्रताप सिंह के दरबार में भी गये थे। दोनों स्थानों से सम्मान पाकर वे दूसरे राजा महाराजाओं से भी मिले थे। पञ्चाङ्गों पर लिखी हुई उनके जीवितकाल की सूचनाओं से यह भी जाना जाता है कि अकबर बादशाह के महामंत्री राजा टोडरमल खत्री उनका बहुत सत्कार करते और बादशाही डेरों में उनको अपने पास ही ठहराया करते थे।

पुरोहित दामोदरजी ने बादशाही लश्कर के साथ अजमेर, मालवा, पंजाब आदि देशों में पर्यटन किया था। इसका पता उन्हीं के पञ्चाङ्गों से, जिनमें बादशाह के कूच मुकाम हर एक तिथि में लिखे हैं, लगता है। इसके सिवा उस समय की कई बड़ी ऐतिहासिक बातें भी उनमें लिखी हुई मिलती हैं, यह प्रथा उनके पुत्र पौत्रों में भी प्रचलित थी। वे जोधपुर और बीकानेर के राजाओं के साथ बादशाही लश्करों में जीविका उपार्जन करने के लिए रहा करते थे। उनके खीसा पञ्चाङ्गों में, जो पाकेटबुक की भांति लम्बे होते थे, उस समय के अमीरों की बहुत सी जन्मपत्रियां और कई ऐतिहासिक बातें संक्षेपरूप से लिखी हैं। इनमें अबतक कोई परिवर्तन नहीं हुआ है और इसीसे अन्य प्रमाणों की अपेक्षा ये बहुत विश्वासयोग्य समझी जा सकती हैं।

६४ वर्ष की अवस्था में दामोदरजी का देहान्त फाल्गुण बदी ८ संवत १६३९ को मथुरा में हुआ। आपका जन्म १५७५ में हुआ था। दामोदरजी के पद्मनाभ, विश्वनाथ और शार्ङ्गधर नामक तीन पुत्र थे

पद्मनाभजी के वंश में १५, २० घर हैं, पर उनमें पञ्चांग बनाना कोई नहीं जानते। विश्वनाथजी संवत १६२७ में जन्मे थे। इनके कर्मचन्द, चक्रपाणि और शुकदत्त नामक तीन पुत्र हुए। इन तीनों की सन्तान बहुत बढ़ी, उसके ३ थांभे कहलाते हैं।

कर्मचन्दजी के थांभे में तिलोकचन्दजी, महाराज श्री मानसिंहजी के राज्यकाल में हुए।

उन्होंने केशवी का तर्जुमा, भाषा-कविता में किया है। चक्रपाणिजी का जन्म संवत १६६५ में हुआ था। इनके पुत्र रामेश्वरजी संवत १६७४ में और पोते श्रीनाथजी संवत १७०८ में जन्मे थे।

ज्योतिष-विद्या में श्रीनाथजी निपुण हुए। उन्होंने राजमृगांक ग्रन्थ के पढ़ने और समझने में बहुत परिश्रम उठाया था। इन्होंने चंडीदास कृत बीज को फिर से सुधार कर उसमें नये बीज बढ़ाये और करणकुतूहल के ऊपर "सिरे-ताज" नामक संस्कृत टीका भी लिखी है। अब यदि चंडू पञ्चांग के बनाने में कोई कठिनाई आपड़ती है, तो उसकी निवृत्ति इसी टीका से होती है।

शुकदत्तजी के थांभे में मँगनीरामजी, महाराज श्री बख़्तसिंहजी के एक सुयोग्य दैवज्ञ हुए थे। उन्होंने भी चंडीदासकृत बीज को फिर से सुधारा था।

शार्ङ्गधरजी बड़े भाग्यशाली हुए। वे नवाब ख़ानख़ानाँ के पास रहते और पालकी में बैठकर चलते थे। उन्होंने अकबर और जहाँगीर बादशाह की जन्मपत्री अति विस्तृत बनाई थी परन्तु नवाब से बिगाड़ हो जाने के कारण वे उसको बादशाह को बिना दिखाये ही ले आये। वह एक ऊँट पर लादी जाती थी। शार्ङ्गधरजी के मरने पर पहिले उनके बेटों ने और फिर पोतों और परपोतों ने फाड़ २ कर उसके टुकड़े टुकड़े बांट लिये थे। सब से आश्चर्यजनक घटना यह है कि उन्होंने प्रतिवार्षिक पञ्चांग बनाने के परिश्रम से बचने के लिए ४० वर्ष के पञ्चांग एकदम बना लिए थे। इसका परिणाम यह हुआ कि दूसरी ही पीढ़ी में पञ्चांग बनाने की विद्या शार्ङ्गधरजी के घराने से जाती रही।

अब केवल चक्रपाणी और शुकदत्तजी के परिवार में ही यह विद्या रह गई है। तीस वर्ष के पहिले जब मैं मारवाड़ में आया था, आठ दस आदमी पञ्चांग बनानेवाले थे, फिर मरते २ इस विद्या के दोही नामी उस्ताद, एक मेघराज जी और दूसरे मनोहरदासजी, रह गये थे किन्तु खेद है कि संवत १९५७ के लगते ही मेघराज जी का भी देहान्त हुआ और संवत १९६७ के उतरते २ मनोहरदासजी भी, जिनका दूसरा नाम नत्थूजी था, इस संसार में नहीं रहे। अब इस घराने में सब लड़के ही लड़के रह गये हैं, जो राज की नौकरी को सद्विद्या जानकर पञ्चाङ्ग बनाने की अलोनी शिला चाटने से कोसों दूर भागते हैं, परन्तु चंडू पञ्चाङ्ग मूल में श्रीदरबार का है और श्री मन्महाराजाधिराज मरुधराधीश के नाम से सुशोभित होकर निकलता है। इसलिए दरबार ने उसको नष्ट न होने देने के लिए कुछ वर्षों से मनोहरदासजी की देखभाल में 'चंडू सभा' स्थापित करा कर पञ्चाङ्ग बनानेवालों की जीविका का उचित प्रबन्ध कर दिया है। इससे यह पञ्चाङ्ग मानो पुनर्जीवित हो गया है। अब नत्थूजी के बेटे और दो चार चंडवाणी लड़के मिलकर पञ्चाङ्ग निकालते हैं, परन्तु पिछली बातों में बहुत फर्क़ आगया है। पहिले एक चंडू पञ्चाङ्ग श्रीधर शिवलाल बम्बईवाले के छापेखाने से ही निकलता था पर अब चंडवानी ज्योतिषियों की शिथिलता देखकर चंडांश चंडू और बृहद् चंडू के नाम से नये २ पञ्चाङ्ग निकलने लगे हैं। उन पर भी श्री मरुधराधीश का नाम होने से, वे चंडू पञ्चाङ्ग के समान देश-देशान्तरों में चल रहे हैं। यह उत्पात इस कारण से उठ खड़ा हुआ है कि पिछले वर्षों में चंडवाणी ज्योतिषियों ने श्रीधर शिवलाल को पञ्चाङ्ग न देकर हरिप्रसाद को छापने के लिए दे दिया था। इसपर श्रीधर शिवलालवालों ने मुकदमा चलाया कारण बहुत वर्षों से यह चंडू पञ्चाङ्ग उन्हीं के यहां छपता था। इस मुकदमे की तहक़ीकात के लिए बम्बई से कमीशन आया था और उसमें मुझको भी चंडवाणी ज्योतिषियों की ओर से गवाही देना पड़ी थी क्योंकि ये लोग भी प्रतिवादी पक्ष के माने गये थे।

चंडू पञ्चाङ्ग चैत्र सुदी १ से शुरू होता है परन्तु जैसे आजकल के चंडू पञ्चाङ्गों में उसी दिन से बिक्रम संवत् बदल दिया जाता है वैसा पुराने हस्तलिखित पञ्चाङ्गों में नहीं देखा जाता क्योंकि उनमें आषाढ़ सुदी २ से विक्रम संवत् बदला गया है, परन्तु शाके, चैत्र सुदी १ से नया लगता है। शाका आगे और संवत ३ महीने पीछे है, इससे जाना जाता है कि इस पञ्चाङ्ग का प्रधान वर्ष शाका ही है।

पञ्चाङ्ग में पहिले जोधपुर और बाद वर्तमान महाराज साहब और फिर ज्योतिषी का नाम लिखा जाता है। जैसे,—

स्वस्ति श्री जोधपुरनगरे श्रीमन्मुकुटमणि छत्रपति राजराजेश्वर महाराजाधिराज महाराजा श्री श्री श्री १०८ श्री सरदारसिंह जी महाराज कुमार श्री श्री १०५ श्री सुमेरसिंहजी श्रीमतां विजय राज्ये ज्योति श्रीचंडू।

यही लेख चंडूजी के समय के पञ्चाङ्गों में बहुत सूक्ष्म लिखा मिलता है। जैसे,—

स्वस्ति श्री योधनयरे महाराय श्री मालदेव राज्ये ज्योति श्रीचंडू।

कई पुराने पञ्चाङ्गों में चंडूजी का नाम भी नहीं है, उसकी जगह किसी में ज्योति श्री सविता और किसी में ज्योति श्री भगवान मार्तंड लिखा है। इससे भी विचित्र बात यह है, कि संवत १७०६ के पञ्चाङ्ग की २ प्रतियों में से १ में तो स्वस्ति श्री योधनयरे महाराजाधिराज महाराजा श्री यशवंतसिंह जी विजय राज्ये ज्योति श्री सविता और दूसरी में विजय राज्य के आगे ज्योति श्री चंडू है। इसके सिवा उनमें यह विभिन्नता भी है कि जिस पंचाङ्ग में चंडूजी का नाम है, उसमें तो हर महीने के साथ २ उसका अहर्गण भी चलता है। जैसे,—

चैत्र सितात संवत १७०६ शाके १५७५ प्र० १७१६६१ और वैशाख सितात ॥२॥ ८ १७२७२१ इत्यादि।

और जिन पञ्चाङ्गों में सविता वा मार्तंड का नाम है, उनमें अहर्गण नहीं है। जैसे,—

चैत्र सितात संवत १७०६ शाके १५७५ प्रवर्तमाने।

एक ही पञ्चाङ्ग की दो नकलों में ऐसी विभिन्नता होने का कारण हमारी समझ में तो इसके सिवा और कुछ नहीं आता कि ये दोनों पञ्चाङ्ग चंडूजी के घराने की पृथक २ शाखाओं के ज्योतिषियों के बनाये हुए हैं, परन्तु पहिचान के लिए एक ने तो चंडूजी का नाम और अहर्गण की संख्या अपने पञ्चाङ्ग में दी है और दूसरी ने सविता अर्थात् सूर्य का नाम लिख दिया है, क्योंकि ज्योतिष का अधिष्ठाता मूल में सूर्य ही है।

पुराने चंड पञ्चाङ्गों में जो ऐतिहासिक घटनाएँ लिखी हैं उनके कुछ नमूने इतिहास-प्रेमियों के मनोरञ्जनार्थ आगे के किसी लेख में देने की चेष्टा करेंगे।

जीवन-साफल्य।

[लेखक—श्रीयुत कृष्णविहारी मिश्र, बी० ए० ।]

'न्याय मूल' 'निज गौरव पल्लव' हरियाली छबि छावै।
'ज्ञान आपनो, विकच कुसुम' जब, जग सुगन्ध बगरावै ॥
'आतम संयम के मधुमय फल' रस रसना सरसावै।
'जीवन तरुवर' कुसुमित फल युत, तब सब भांति सुहावै ॥

चित्र का रंग।

[लेखक—श्रीयुत अचलेश्वरनाथ व्यास ।]

कुछ दिनों के पहिले हमारे नगर में एक चित्रकार रहता था। उसने एक चित्र रँगा। दूसरे चित्रकारों के पास बहुमूल्य रंग थे, जिनकी प्राप्ति प्रत्येक चित्रकार के लिए दुर्लभ थी और इसीसे उन्होंने सर्व-प्रशंसित चित्र लिखे। परन्तु हमारे चित्रकार ने एक ही रंग से चित्र अङ्कित किया—उसमें लाल रंग ही का अपूर्व सौंदर्य था। बहुत से मनुष्यों ने चित्रकार के पास जाकर कहा "यह चित्र और यह रंग बड़ा ही सुन्दर है। हमें बड़ा प्रिय जान पड़ता है।" उसकी प्रशंसा सुनकर दूसरे चित्रकार आये और मनमें कहने लगे—"इसने यह रंग कहां से प्राप्त किया ?" उनके पूंछने पर उसने हँसकर कहा "मैं तुम्हें न बतलाऊँगा" और नीची गर्दन करके वह काम में लग गया।

एक चित्रकार जयपुर गया और वहां से अच्छे २ रंग ले आया; पर थोड़े दिन के बाद ही सब रंग धुंधले पड़ गये। दूसरे ने पुरानी पुस्तकें पढ़कर बहुत अच्छा रंग बनाया परन्तु उस रंग से लिखा हुआ चित्र कुछ दिनों के बाद उड़ गया। किन्तु हमारे चित्रकार के रँगे हुए चित्र का रंग बराबर लाल ही लाल होता गया पर स्वयम् चित्रकार पीला पड़ने लगा। एक दिन लोगों ने देखा कि वह अपने चित्रों के पास आत्मारहित पड़ा है। वे उसको उठाकर जलाने को ले चले। एक मनुष्य ने उसकी सब दवातों तथा कुलियाओं की सावधानी से परीक्षा की परन्तु उनमें कुछ न मिला—उनमें था ही क्या ? परन्तु जब वे शव को नहलाने के हेतु उसकी देह पर के वस्त्र उतारने लगे तब उन्हें उसके हृदय के बाईं ओर एक घाव दिखलाई दिया। यह घाव बहुत पुराना प्रतीत होता था—शायद उसकी तमाम जीवनी तक रहा हो क्योंकि उसकी कोरें पुरानी और कड़ी हो गई थीं—परन्तु जो मृत्यु सब वस्तुओं के मुख बन्द कर देती है, घाव का मुख भी किनारे समेट कर बन्द कर गई थी। उन्होंने उसको जला दिया फिर भी सब मनुष्य कहते ही रहे कि "उसने वह रंग कहां से पाया ?"

थोड़े दिनों के बाद ही लोग चित्रकार को भूल गये परन्तु उसके चित्र !—अब भी हैं।*

त्रिवेणी-वन्दना।

(गंगा यमुना संगम, प्रयाग ।)

[लेखक—कविविनोद पं० सूर्यप्रसन्न वाजपेयी ।]

कल कल करके बहती है, आमोघनाशिनी गंगा।
वह शंकर की शीश-शोभिनी, भक्ती की अलकनंदा॥
जीवन के अति शुभ मुहूर्त में, इस संगम में आया।
अवगाहन से मन पवित्र हो अवर्णीय सुख पाया॥
वह देखो नीलाम्बर पहिने धीरे धीरे यमुना।
जाती है मिलने को तुमसे साज लिये सब अपना॥
तुम दोनों भारत की गौरव तिलक सोह ज्यों माथे।
अपनी पीयूष से भारत को पालो धान्य बढ़ा के॥
चिर कारारुद्ध गृही हम, न जानैं आराधना।
हीन दीन इस भारत सुत को, एक बिंदु दे करुणा॥

---

*"Oline Schreines की पुस्तक 'Dreams' से अनुवादित।"

आधुनिक शासन-प्रणाली ।

[लेखक—श्रीयुत अम्बिकाचरण मजूमदार ।]

यह एक ऐतिहासिक बात है कि १८वीं शताब्दी के मध्य में जब व्यापारियों के एक दल ने भारतवर्ष में ब्रिटिश शासन का प्रवेश कराया तो जिस प्रणाली के अनुसार यहाँ राज्य होने लगा वह अनियंत्रित-शासन-पद्धति थी। उस समय देश की जो अव्यवस्थित अवस्था हो रही थी और भिन्न भिन्न समुदायों में तथा एक ही समुदाय के भिन्न भिन्न लोगों में जो पारस्परिक झगड़े तथा विवाद उपस्थित थे, उनका ध्यान करके यह कहना पड़ता है कि राज्य की कोई दूसरी प्रणाली असम्भव होती। अनियन्त्रित राज्यपद्धति के अर्थ कुछ अव्यवस्थित राज्य, के होते ही नहीं परन्तु उदार अनियंत्रित राज्य, सुराज्य का अपवाद मात्र है। यह प्रत्येक काल और प्रत्येक देश के भाग्य में नहीं होता कि वह राम, हारुन-उल-रशीद, शार्लमेन या अकबर को उत्पन्न कर सके। ईस्ट इन्डिया कम्पनी की राज्यप्रणाली जिस पर ब्रिटिश पार्लामेंट का निग्रह नाममात्र का अथवा कुछ भी नहीं था और जिसकी स्वार्थता की बातों को छोड़कर "शासन समिति" नामधारी संस्था बहुत कम निरीक्षण करती थी, विशेषतः पक्षपात और आगे चलकर उत्कोचता के रूप में वर्तमान थी, पार्लामेंट के बारम्बर ध्यान दिलाने पर भी शिक्षा की उपेक्षा की जाती थी। न्याय का प्रबन्ध असावधानता से होता था और शक्तिमान् स्वेच्छापूर्वक अशक्तों पर अत्याचार करते थे। कम्पनी ने, जिसके छोटे २ कारख़ाने विस्तृत राज्यखंडों में परिवर्तित हो गये थे, स्वभावतः इस अभूतपूर्व प्राप्ति को अपने व्यवसाय का परिणाम मान रक्खा था और अपने व्यापार की उन्नति तथा लाभ की अधिकता के आगे देश के सुप्रबन्ध को तुच्छ गिन रक्खा था। वह देशभाइयों के हानि लाभ की अपेक्षा अपने हित का अधिक ध्यान रखती थी। यह आश्चर्य की बात है कि ऐसी राज्यप्रणाली इतने दिनों तक जीवित रह सकी और उसका अन्त शीघ्र न हो गया।

* * * *

नई भावना।

परन्तु लोग अब इस प्रणाली के आगे बढ़ गये हैं और देश में नई भावनाओं का संचार हो गया है। आप इसे स्वप्नमात्र कह सकते हैं, आप इसे अधीर भाववाद कह सकते हैं और यदि आप चाहें तो इसे उन्माद भी कह सकते हैं परन्तु यह भावना प्रजातंत्रात्मक शक्ति का आविर्भाव है, जो पुरानी दुनिया के भाग्य को नवीन व्यवस्था के रूप में परिवर्तित कर रही है। इस अदृश्य शक्ति के प्रभाव के आगे प्राचीनता के गौरव से सम्पन्न राज्य और शासन-पद्धतियां जर्जरित हो रही हैं और नयों को अपना स्थान दे रही हैं तथा प्राचीन दैविक वंशों के नृपतिगण इसके आगे बिना अश्रु या रक्तपात के चुपचाप स्थानच्युत हो रहे हैं। पुर्तगाल, रूम, ईरान और चीन ने इस शक्ति का बल देखा है। यह मिस्र के लोगों को आन्दोलित कर और भारतीय जीवन को स्फुरित कर रही है। भारतवर्ष में इसकी वृत्ति वैधिक हुई है। यह नई भावना चाहे आवेगपूर्ण हो परन्तु यह वास्तविक और देशभक्ति-सम्पन्न है। यदि इसके साथ सहानुभूति का बर्ताव किया गया तो यह उपयुक्त मार्ग पर लगाई जा सकती है। परन्तु इसकी उपेक्षा करना या इसे दबाना निर्बुद्धिता होगी। पुराने विचार बड़ी शीघ्रता के साथ बदल रहे हैं और यह भारतवासियों का दोष नहीं है कि वे कुलपैत्रिक या पितृ-तुल्य शासन-पद्धति को अब स्वीकार नहीं कर सकते।

आधुनिक शासनप्रणाली, चाहे उसने शांतिमय शासन को चलाने में कितनी ही सफलता क्यों न प्राप्त की हो, अब भूतकालिक हो चुकी। सर हेनरी काटन ने, जो इस बात को अभिमान के साथ स्मरण करते थे कि तीन पुश्तों तक उनका वंश भारतीय अधिकारी-तंत्र के शासन में सम्मिलित रहा, कहा है कि "भारतीय सिविल सर्विस, जैसी कि वह इस समय संगठित है; अब नहीं चल सकती।" उन्होंने जब कि वे अभी सेवा में थे सुधार की एक व्यवस्था निर्धारित की थी जिसे १८८७ के पबलिक कमीशन ने भ्रमात्मक माना था। अब जब कि दूसरा रायल कमीशन, पबलिक सर्विस की जांच के लिए बैठा है सर हेनरी काटन ने पुनः अपनी व्यवस्था उपस्थित की है। 'कंटेम्पोररी रिव्यू' नामक पत्र में सर हेनरी काटन ने एक लेख लिख कर इस कमीशन को जिन बातों की जांच करनी है, उन पर विचार करते हुए कहा है कि अब जिस बात की आवश्यकता है वह यह नहीं है कि एक जर्जरीभूत सर्विस के गुणानुवाद की व्यवस्था की जाय क्योंकि वह अवस्था अब बीत गई है और पुनः लौट नहीं सकती, जिसके लिए इस सर्विस की आयोजना की गई थी।

अनियंत्रित शासन-प्रणाली में प्रत्येक काम प्रजा के लिए कर दिया जाता है पर उसके द्वारा कुछ भी नहीं किया जाता। इस प्रणाली की बड़ी भारी त्रुटि यह है कि जिन लोगों पर इसका शासन होता है उन्हें यह अपने आप सहायता करने में असमर्थ बना देती है। यह प्रजा को सुखी बना सकती है पर उसे साधन-सम्पन्न, सन्तुष्ट, स्वावलम्बी तथा जीवन और व्यवहार में साहसी नहीं बना सकती। ऐसी प्रजा सदा राज्य पर भारस्वरूप रहेगी और "गोरे आदमियों का भार" जिसके विषय में आजकल इतना कुछ कहा सुना जाता है वह इसी अनियन्त्रित शासन का उत्पन्न किया हुआ है और जो लोग यह कहते हैं कि भारतवर्ष साम्राज्य के लिए कंटकस्वरूप है उन्हें इस बात का स्मरण रखना चाहिये कि यह इस शासन-प्रणाली की गत सौ डेढ़ सौ वर्षों की भूलों का समुच्चय है। उदार अनियन्त्रित-शासन में एक, और केवल एक ही देशाभिमानी है और वह या तो अनियन्त्रित शासक या अमेय अधिकारी-तन्त्र जिसके हाथ में राज्य की बागडोर है। अनियन्त्रित राज्य की प्रजा का विकास संकुचित होता है और वह उन बिगड़े हुए लड़कों के समान होती है जो न आप अपनी सहायता कर सकते हैं और न अपने वंश को ही कुछ सहायता पहुंचा सकते हैं।

शासन।

झगड़े का दूसरा विषय शासन ही है। किसी शिशु को तुतलाने के लिए उस समय बाध्य करना, जब कि वह बोल सकता है और घुटनों रेंगने के लिए उस अवस्था में विवश करना, जब कि वह अपने पैरों चल सकता है एक असंगत उद्योग है। किसी कुल के वयस्क सदस्यों का अपने पारिवारिक विषयों के प्रबंध में विवेक और विवेचन का प्रयोग करना, यहां तक कि उनमें कुछ हस्तक्षेप करना भी विद्रोह नहीं है और विचारवान् कुलस्वामी को ऐसा परिवर्तन, जोकि उसको विश्राम देने के लिए है और न कि पदच्युत करने के लिए, प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार करना चाहिये जो नियम एक परिवार के लिए ठीक है वही पितृतुल्य गवर्नमेंट के लिए भी सत्य है। गवर्नमेंट को परिवर्तित स्थिति के अनुरूप ही बनना चाहिये और उसे जिस समाज पर शासन करना है उसके विचारों और आवश्यकताओं के अनुसार ही स्वरूप धारण करना चाहिये। भारत में ब्रिटिश-शासन के सर्वोच्च अधिकार की नींव उसके नैतिक तेज पर स्थित है, न कि उसके सैनिक-बल पर। प्राण और सम्पत्ति की निश्चिन्तता निश्चित गवर्नमेंट का निःसन्देह एक मुख्य लक्षण है। पर यह लक्षण अनुन्नतशील और

असभ्य गवर्नमेंटों में भी, जो कि अपने स्वत्व के लिए चिन्तित हैं, न्यूनाधिक पाया जाता है। न्यायविवेचन की विमलावस्था सभ्य गवर्नमेंट की दृढ़ जड़ है और इसी न्यायकार्य ने अन्य सब कारणों से अधिक भारत में ब्रिटिश शासन की जड़ गहरी और दूर तक फैलाई है। जो कुछ भी इस जड़ को पोला करनेवाला है वह भवन के ऊपरी भाग के लिए हानिकारक है। मनुष्य, जन्म से स्वतन्त्र होते हैं, इसलिए वे स्वभाव से ही प्राण और स्वाधीनता का माहात्म्य, सम्पत्ति की अपेक्षा कहीं अधिक समझते हैं, क्योंकि सम्पत्ति दैवयोग की बात है और स्वाधीनता मनुष्य का जन्माधिकार है। इसलिए हर देश में अपराध सम्बन्धी न्यायविवेचन, जो कि जीवन और स्वाधीनता को प्रभावित करता है, अर्थात् सम्बन्धी सिविल (Civil) विवेचन की अपेक्षा कहीं अधिक महत्व का समझा जाता है और यही कारण है कि इस देश के वकील महाशय अपने व्यवसाय की अपराध सम्बन्धी शाखा को सिविल शाखा की अपेक्षा अधिक लाभकारी पाते हैं। वास्तव में किसी देश का अपराध सम्बन्धी शासन व्यक्तिगत झगड़ों को निपटाने की अपेक्षा विशेष राजनैतिक प्रश्न है। इस देश के अपराध सम्बन्धी न्यायविवेचन में सब से बड़ा दोष न्यायकारी और विधायक अधिकारों का संमिश्रण और सम्मेलन है। इस पद्धत्ति के अनुसार अभियोग लगानेवाला और न्यायाधीश एक ही व्यक्ति होता है। पुलीस का कार्याध्यक्ष जो अपराध का अन्वेषण कर किसी पर दोषारोपण करता है और जो उस अपराध का निर्णय करने बैठता है, दोनों व्यक्ति एक ही पुरुष में संयोजित कर दिये गये हैं। इस अपवित्र संयोग के भेदन के लिए कांग्रेस ३० वर्षों से गला फाड़ फाड़ कर चिल्ला रही है।···

······एक वाइसराय ने कांग्रेस के प्रस्ताव को "निर्दोष सम्मति" कह देने ही में अपने कर्तव्य की इतिश्री समझी। दो अनुवर्ती भारत सचिवों ने (Secretaries of State) इस सुधार को प्रचलित करने की अपनी पवित्र अभिलाषा प्रदर्शित करने में स्पर्धा दिखाई और कम से कम एक भारतस्थ शासक ने वर्तमान प्रणाली की यह कह कर निन्दा की कि वह "विचारयुक्त जीवों" के अनुपयुक्त है। पर यह प्रणाली अभीतक प्रचलित है। जान पड़ता है कि वह अमर है और स्वाभाविक अथवा अकाल मृत्यु किसी के भी वश में नहीं है। यह भी प्रकट हुआ था कि सन् १६०८ में सर हारवे एडमसन ने प्रस्तावित सुधार की व्यवस्था तक बना डाली थी और गत कई वर्षों में भांति भांति के अनुमान होते रहे, पर किसी को विदित नहीं है कि प्रस्ताव कहां पर अटका है और इन दिनों उसकी अवस्थिति शिमले में इन्डियन सेक्रेटरियट (भारतीय सरकारी कार्यालय) की अलमारियों के गर्द भरे किसी ऊपरी खाने में है या ह्वाइटहाल (इङ्गलैंड में भारतीय कार्यालय) के पत्र-रत्नागार में। जहां कहीं हो अभी तक उसके भाग्य के निर्णय में उस अधिकार-तंत्र भाव की ही प्रधानता रही है जो छोटे से छोटे अधिकार को भी छोड़ने में उद्विग्न हो उठता है। यदि यह एक सुधार हो गया होता तो वर्तमान असन्तोष के आधे कारण लोप हो गये होते और जो कुत्सित समस्याएँ गवर्नमेंट के सामने आज उपस्थित हैं उनका सम्भवतः दर्शन ही नहीं होता।

हथियार रखने का कानून (The Arm's act)

भारतवर्ष का 'आर्म्स ऐक्ट' दूसरा आदि कारण उस बिगाड़ का है, जिसने शासकों तथा शासित लोगों में दुर्भाव उत्पन्न कर दिया है। इस ऐक्ट के डाह पैदा करनेवाले तथा चिढ़ाने वाले गुणों के अतिरिक्त और भी गुण हैं जिसने समस्त जाति को नपुंसक बना दिया है, तथा उनको अपनी ही दृष्टि में आदर्श से नीचे नहीं गिरा दिया है किन्तु उन अन्य जातियों की दृष्टि से भी नीचे गिरा दिया है जो किसी प्रकार इनसे बढ़कर नहीं हैं और जिसने उनको पूर्णतया

निस्सहाय अवस्था में ला फेंका है। इसने जाति की उन्नति रोक दी है, मानसिक उच्चता को नीचा कर दिया है, सदाचार को जातीय आत्मगौरव के भाव से वंचित करके भ्रष्ट कर दिया है। इसने हमको एक ऐसी राजनैतिक शूद्रजाति बना दिया है, जो बिना किसी अपनी ज़िम्मेदारी को समझे हुए अपमान द्वारा दुःख सहती हो। महाराज ज़बरजंग बहादुर अपनी रक्षा के लिए एक भी तमंचा न रख सकें पर उनका गाड़ीवान जोन्स अपने विहार या क्रीड़ा के लिए तथा अनुचित विक्री के लिए और सिर्फ तीतरों के शिकार करने ही के लिए नहीं वरन् कभी कभी एक बेचारे हिन्दुस्तानी किसान के लिए भी, जिसपर सूवर के धोखे में निशाना लगाता है, जितने चाहे उतने तमंचे रक्खे। लेकिन सब कुत्सित उपाय शैतान के यन्त्र के समान हैं जो किसी न किसी समय पीछे हट कर उसके चलानेवाले पर उलट जाता है और जो घटना हुई है वह यही है। एक देश के समस्त मनुष्यों को अस्त्ररहित करके शासन करना वैसा ही सरल है जैसा कि एक सम्पूर्ण देश को कारागार में परिवर्तित कर देना है। अराजकता ने अपना सिर उठाया है और देश के कुछ भागों में अनियन्त्रता पुनः फैल रही है, दिन दोपहर को घने बसे हुए नगरों में नीच वध होते हैं और साहसिक डकैतियां एक नाट्यशाला में बत्ती की रोशनी के सामने होते हुए नाट्यों के सदृश होती हैं। इस सब का उत्तर जो कुछ अब तक दिया गया है वह यही है कि लोग कायर हैं और अपनी रक्षा करने में असमर्थ हैं। यदि लोग कायर हैं और अपनी रक्षा करने में असमर्थ हैं तो इसमें दोष किसका है? क्या यह दोष उन लोगों का है जो कायर बना दिये गये हैं या उन लोगों का है जिन्होंने उन्हें कायर बनाया है। हथियारबन्द डाकुओं का मुक़ाबला लाठियों और ढेलों से किये जाने की सच्ची शिक्षा सुनकर चित्त को शान्ति प्राप्त होती है। उपदेश देने की अपेक्षा किसी कार्य को करके दिखाना उत्तम कहा जाता है और वे, जो ऐसी हास्योत्पादक शिक्षा देने में प्रसन्न होते हैं, दूसरों को अपना अनुकरण करने के लिए उत्साहित करने के पहिले स्वयं उदाहरण दिखलाकर अत्यन्त उपकार कर सकते हैं। हरक्यूलीज़ने भी लारनिया के हैड्रा को बिना गदा लिये ललकारने का साहस नहीं किया था। आर्म्स ऐक्ट एक प्रकार से व्यर्थ हो रहा है। क्योंकि थोड़े से अनियन्त्रित मनुष्यों को तोप या बंदूक की कमी नहीं है, लेकिन नियमबद्ध मनुष्य बहुत हैं जो उनको काम में लाने से वंचित किये गये हैं। एक बड़े राज्य और छोटी समझ का साथ अच्छा नहीं होता। जिस राज्य के प्रबन्ध में विश्वास से काम नहीं लिया जाता उस राज्य के कारण तथा उपाय अवश्य आत्मप्रतिकूल और निर्बल होंगे और इस तरह अन्त में वह अपनी अभीष्टसिद्धि में सफलता न प्राप्त करेगा।

जातीय मिलिशिया

महाशयो! कोई मनुष्य वा जाति न तो स्वतः आदरणीय हो सकती है, न दूसरों से आदर पा सकती है जबतक उस जाति के मनुष्य अपनी रक्षा करने में आप समर्थ नहीं होते हैं। एक जाति, जो सदा अपने प्राण तथा धन की रक्षा के लिए गवर्नमेंट के अधीन रहती है, अवश्य राज्य पर एक असहनीय बोझ तथा उसकी निर्बलता का कारण होती है। ब्रिटिश भारतवर्ष के समान बड़े राज्य का बिना एक जातीय सेना के, नाममात्र के ७० हज़ार अँगरेज़ी योद्धाओं तथा १,४०,००० भारतीय योद्धाओं की सेना द्वारा रक्षित होना एक आश्चर्यजनक शूरता का कार्य हो सकता है, किन्तु यह एक बहुत भयानक परीक्षा है। यदि भारतवासियों ने अब से पांच वर्ष पहिले वलमटेरों की भांति शिक्षा पाई होती, जिसके लिए कांग्रेस २५ वर्षों से कह रही है, तो लायड जार्ज, लार्ड किचनर तथा लार्ड डरबी को ब्रिटिश प्रजा को २० लाख

सिपाहियों के लिए कभी धमकाने और कभी फुसलाने का मानहारी दृश्य न देखना पड़ता और कम से कम इस बात की आवश्यकता तो न पड़ती कि ब्रिटिश जाति के सब लोगों को ज़बरदस्ती सिपाही बनाने के लिए बाध्य होना पड़े। भारत की सन्तानों को सुशिक्षित और सुसज्जित किया गया होता तो आज इङ्गलैंड के लिए वह एक अजेय सेना उपस्थित करता जिसका सामना संसार की कोई भी शक्ति न कर सकती, परन्तु प्रश्न मनुष्यों और सामग्रियों का नहीं है किन्तु विश्वास तथा भरोसा करने का है। परन्तु क्या भारतवर्ष ने अपनी राजभक्ति का पूर्ण परिचय नहीं दे दिया है। यदि नहीं दिया है तो इंगलैंड को समस्त सभ्य संसार के सम्मुख स्वयं अपराधी बनना पड़ेगा। यह हमारी दशा है। अधिकारी तन्त्र ने अपना कार्य समाप्त कर दिया है, इसने शान्ति तथा सुप्रबन्ध स्थापित किया है किन्तु अब वह कुछ करने में असमर्थ है। इसकी निरन्तर स्थिति आपदाओं से परिपूर्ण है और सार्वजनिक संमति की बढ़ती शक्ति तथा नई भावनाओं से प्रेरित आकांक्षाओं को सम्हालने में असमर्थ होकर उसने जिस नीति का अवलम्बन किया है उससे सर्वसाधारण में असन्तोष की मात्रा बहुत बढ़ गई है। तब इसकी औषधि क्या हो सकती है? इसकी औषधि वही है जो सफलता के साथ ऐसी दशावाले अन्य देशों में प्रयुक्त हुई है। जो औषधि भारतवासियों के विचार में आती है और जो स्टूअर्ट मिल तथा एडमंड बर्क के ध्यान में आई थी वह भारतवासियों को

प्रतिनिधितन्त्र शासन

देना है। चाहे उसे आप होमरूल कहें चाहे सेल्फ रूल, चाहे उसे स्वराज्य कहें या सेल्फ गवर्नमेंट, बात एक ही है। यह प्रतिनिधि-गवर्नमेंट है।...
......श्रीमती एनी बीसेंट ने "कैसे भारतवर्ष ने स्वतन्त्रता के लिए उद्योग किया" इस नाम को अपनी प्रशंसनीय पुस्तक में भारत के वृद्ध-वशिष्ठ (दादाभाई नौरोजी) के उन वाक्यों का उल्लेख किया है जिनमें स्वराज्य के लिए भारतवासियों की होनेवाली स्वत्वाकांक्षा का प्रदर्शन है। तभी से ये विचार फैलते और दृढ़ होते गये और अन्त में कांग्रेस के सन् १९०६ के अधिवेशन में भारतीय राजनैतिक समुदाय के उन्हीं नेता ने 'स्वराज्य' के निनाद से इन विचारों को दृढ़ और स्पष्ट शब्दों में उद्घोषित किया; जिससे भारतवासियों के मन उस अव्यर्थ औषधि की प्राप्ति के लिए पूर्णतया उत्तेजित हुए जिसकी खोज अब तक निष्फल रही थी। इस बात को हुए एक पीढ़ी बीत गई, पर अब एक नई सन्तति उत्पन्न हो गई है जो अपनी आधुनिक असन्तोषप्रद स्थिति की अव्यर्थ औषधि स्वराज्य के माँगने में तन मन धन से लगी हुई है। यह चिल्लाहट मचाई गई है कि हम अभी स्वराज्य के योग्य नहीं हैं। यह तो प्रसिद्ध ही है कि टालमटोल समय का पुराना चोर है। फिर यह बहाना उन लोगों की मानसिक स्थिति का द्योतक है जो अरक्षणीय स्थिति को सम्हालने में असमर्थ होकर किसी काम को इसलिए टाल देते हैं जिससे राज़ीनामा अनुकूल रीति से हो जाय।

मिल की तीन शर्तें।

जान स्टूअर्ट मिल ने अपनी पुस्तक "प्रतिनिधि शासन" में स्वराज्य के लिए तीन शर्तें बतलाई हैं जिन्हें सब राजनैतिक विद्वान् मुक्तकंठ से स्वीकार करते हैं। वे शर्तें ये हैं—(१) जिन लोगों के लिए यह शासनप्रणाली अपेक्षित है वे उसे स्वीकार करें। (२) इसे स्थित रखने के लिए जो कुछ आवश्यक हो उसे करने के लिए वे उद्यत और योग्य हों। (३) उसके उद्देश्य की सिद्धि के लिए जो कुछ करना आवश्यक हो उसे करने के लिए वे उद्यत और योग्य हों। इन तीन शर्तों में मैं एक चौथी इसलिए जोड़ता हूं कि जिसमें हमारे छिद्रान्वेषियों को सन्तोष हो। वह यह है कि, लोगों ने इस बात का

सन्तोषजनक प्रमाण दिया हो कि वे स्वराज्य की योग्यता रखते हैं।

शिक्षा कसौटी नहीं।

इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि मिल ने स्वराज्य के लिए शिक्षा को कोई अलग और स्वतन्त्र कसौटी नहीं माना है। इसमें कोई संदेह नहीं कि शिक्षा दूसरी कसौटियों को उन्नत और उत्तेजित करती है परन्तु वह जातीय-शासन के लिए न एकमात्र अथवा मुख्य कसौटी हो सकती है। तेरहवीं शताब्दी के हिन्दुओं और १८वीं शताब्दी के भारतीय मुसलमानों के बांटे में विद्या का कम भाग नहीं पड़ा था। परन्तु इसने न तो उनकी जातीय दृढ़ता को पुष्ट किया और न उनके जातीय गुणों को मज़बूत किया वरन दोनों, सहज में एक बलवती शक्ति के शिकार बन गये। मुसलमान इतिहास-लेखक इस बात को स्वीकार करते हैं कि भारतवर्ष की विजय उत्तम शिक्षा के द्वारा नहीं हुई वरन् इसलामी धर्म की उत्तम जातीय दृढ़ता तथा शक्ति के कारण हुई। १६वीं शताब्दी के प्रारम्भ में एमेरिका के एक परदेशगामी अशिक्षित दल ने अपनी दासत्व-मुक्ति के अनन्तर लैबीरिया में प्रजातंत्र-राज्य स्थापित किया था। अच्छा, यूरोप ही का दृष्टान्त लीजिये। इस महाद्वीप के भिन्न देशों में शासनप्रणाली का रूप स्थिर करने में शिक्षा ने कोई प्रभावमय भाग नहीं लिया है। जो लेखा अबतक प्राप्त है उसके अनुसार नार्वे और स्वीडन में पढ़े लिखे लोगों की संख्या सबसे अधिक अर्थात् ६७ प्रति सैकड़ा है, इँगलैंड में ८७, फ्रांस में ७८, जर्मनी ६१ और पोर्तुगाल में ५६ प्रति सैकड़ा है। यदि शिक्षा ही निर्णायक कारण होती तो नार्वे और स्वीडन में अनियन्त्रित नृपति का राज्य न होता और न फ्रांस या पोर्तुगाल में प्रजातन्त्र राज्य होता तथा जर्मनी में, जहां सेना का छोटे से छोटा अधिकारी भी बिना किसी भय के जजों और मेजिस्ट्रेटों को इसलिए दंड दे सकता है कि उसकी वर्दी का यथोचित आदर नहीं किया गया, शस्त्र-जीवियों का अनियंत्रित शासन समाप्त हो गया होता और संसार में सब से अधिक प्रबुद्ध और व्युत्पन्न ८ करोड़ प्रजा के हृदयों पर "श्रेष्ठव्यक्ति" के सिद्धान्त का प्रभाव न पड़ता। पहिले चार्ल्स के राजत्वकाल में इंगलैंड में शिक्षा की क्या दशा थी? और फिर भी क्या वहां के अशिक्षित ज़िमीदारों के एक दल ने जो अपना नाम भी नहीं लिख सकते थे, स्वेच्छाचारी राजा से मैगनाचार्टा (अधिकार-पत्र) ज़बरदस्ती नहीं ले लिया था।

क्या भारतवासी स्वराज्य के योग्य हैं?

अब हमें उस बात पर विचार करना चाहिये जो इस प्रश्न के प्रारम्भ में उठाई गई थी। महाशयो! हमारे छिद्रान्वेषियों ने हमारे राजनीतिज्ञों को कई श्रेणियों में विभक्त करना आरंभ कर दिया है। मैं कोई राजनीतिज्ञ नहीं हूं। यदि मैं होता भी तो मैं नीच कोटि के राजनीतिज्ञों के साथ जाना पसन्द करता, परन्तु अपने दोषग्राहियों की दृष्टि में एक अंश भी नीचे ऊपर होना पसन्द नहीं करता। उनकी दृष्टि में सबसे ऊँचा दर्जा उनके लिए नियत है जिन्होंने अपने ही वंश की प्राचीन परम्परागत कथाओं और उक्तियों को भुला दिया है और स्वतन्त्रता और स्वाधीनता-प्रिय जाति के जातीय गुणों और भावों से अपने को सर्वथा वंचित कर दिया है। अब जिस प्रश्न का उत्तर देना है वह यह है कि "क्या भारतवासियों ने स्वराज्य के लिए अपनी योग्यता का पूरा पूरा प्रमाण दे दिया है?" मैं केवल अनुमानों और युक्तियों को वर्णन करना नहीं चाहता मैं चाहता हूं कि स्वयं घटनाएँ इसका उत्तर दें।

देशी राज्यों में।

भारत का क्षेत्रफल १८००,००० वर्गमील है और उसकी जनसंख्या ३१६०००००० है, इस में से ७००००० वर्गमील अर्थात् एक तिहाई से अधिक क्षेत्रफल और ७ करोड़ की अधिक

अर्थात् चौथाई के लगभग जनसंख्या स्वतंत्र देशी रियासतों की है। इन रियासतों का प्रबंध पूर्णतया भारतीय शासकों द्वारा किया जाता है और यह मानना पड़ेगा कि कुछ रियासतें कई बातों में, विशेषकर शिक्षा, न्याय सम्बन्धी सुधारों और औद्योगिक उन्नति में, जो एक नियन्त्रित राज्य के धार्मिक कर्तव्य हैं, ब्रिटिश इन्डिया से बढ़ी हुई हैं। यह स्मरण रखना चाहिये कि उन प्रसिद्ध शासकों में, जिन्होंने इन रियासतों का शासन करने में ऐसी अच्छी सफलता प्राप्त की है, अधिकतर ब्रिटिश इंडिया की भारतीय प्रजा में से हैं। सर सालार जंग, सर दिनकरराव, सर टी० माधवराव, श्रीयुत दादाभाई नौरोजी, रावबहादुर सरदार संसार चंद्र सेन, दीवान बहादुर रघुनाथराव, श्रीयुत रमेशचन्द्र दत्त, सर शेषैया शास्त्री, श्रीयुत रंगा चारलू, श्रीयुत गौरीशंकर ओझा, श्रीयुत शेषाद्री ऐयर, श्रीयुत बी० एल० गुप्त, श्रीयुत नीलाम्बर मुकर्जी तथा श्रीयुत ए० आर० बैनर्जी जैसे पुरुषों ने जिन्होंने अनेक देशी रियासतों का पूर्ण योग्यता और अद्भुत सफलता के साथ शासन किया है, राज्य के बड़े से बड़े पदों के लिए अपने देशवासियों की योग्यता को निर्विवाद स्पष्ट रूप से प्रगट कर दिया है। उन्होंने यह दिखला दिया है कि यदि सम्राट् की आज्ञा हो तो हम भारत के शासन में प्रत्येक कार्य को करने की योग्यता रखते हैं। यदि ऐसे प्रसिद्ध शासकों के भाग्य में ब्रिटिश भारत में ही रहना होता तो उनमें से अनेक सम्भवतः डिप्टी मेजिस्ट्रेटी में ही अपने जीवन को समाप्त कर देते, कुछ ज़िले के अधिकारी हो जाते, दो चार कदाचित् कुछ दिनों के लिए कमिश्नर हो जाते।*

हृदय।

[लेखक—श्रीयुत रामचन्द्र शुक्ल, बी० ए० ।]

हाय हृदय! क्या हुआ! बदल क्यों यों गये?
किस चिंता के महाभार से हो नये?
किस निर्दय ने तुम्हें छीन हम से लिया।
किसने तुमको हाय? पराया कर दिया ॥१॥

जिनसे तुमको कभी स्नेह निष्काम था।
गये उन्हीं को भूल भला क्यों सर्वथा?
बीत गई क्या शान्तिदायिनी वह निशा?
हृदय! तुम्हारी हुई अहो! कैसी दशा ॥ २ ॥

क्या उस निश्छल हृदय-हारिणी दृष्टि ने।
अथवा उस निष्पाप शान्तिमय मूर्ति ने॥
दास तुम्हें अपना बिन मोल बना लिया।
यों अपनाकर तुम्हें मुझे दुखिया किया ॥ ३॥

हा! हा! महा अनर्थ हुआ तव हाथ से।
अपने पर हो गये पराये साथ से॥
अरे बता दो तुम्हें मिलेगा क्या भला?
अपनों को दे कष्ट कौन फूला फला ॥ ४॥

नहीं प्रेम-परिणाम कभी सुखमय हुआ।
वही जला जिसने इस पावक को छुआ॥
प्रेम नदी की थाह मिली किसको कहां?
हृदय! नहीं निस्तार तुम्हारा है यहां ॥ ५ ॥

मानो मेरा कहा भटकना छोड़ दो।
सुख से रहो स्वतन्त्र, जाल यह तोड़ दो॥
सबके होकर रहो सहो सब की व्यथा।
दुखिया होकर सुनो सभी की दुख कथा ॥६

परहित में रत रहो प्यार सब को करो।
जिसको देखो दुखी, उसी का दुख हरो॥
वसुधा बने कुटुम्ब प्रेम-धारा बहे।
मेरा तेरा भेद नहीं जग में रहे ॥ ७ ॥

हा! ये बातें सभी वृथा, हमने बकीं।
कोई भी न हृदय तुमको समझा सकीं॥
मन मन्दिर में बसी वही प्रतिमा रही।
जिसकी जिससे लगी उसे जाने वही ॥ ८ ॥

---

* २९वीं नेशनल कांग्रेस के सभापति की वक्तृता का एक अंश।

स्त्रीत्वहीन स्त्री।

एक कुली शंघाई की दक्षिण दिशा से एक जहाज़ पर सवार हो कर सुमात्रा द्वीप को गया। वहां समुद्र के किनारे सूनसान जंगल में उसने काफ़ी (Coffee) और कपूर की खेती आरम्भ की। दूध के लिए उसने कुछ बकरियां भी रखलीं थीं।

प्रत्येक तीसरी पूर्णमासी को उसकी एक बकरी आश्चर्यजनक रीति से गायब हो जाती थी। एक दिन ओआला देश के एक निवासी ने वहां आकर सब देखभाल की और यह निश्चित किया कि बकरियों का चुराने वाला अवश्य ही कोई भयानक जीव है।

उसने इस जीव को पकड़ने का भार उससे इस शर्त पर लिया कि पकड़ने पर उसको वह ले लेगा। उक्त मनुष्य ने भी यह शर्त स्वीकार कर ली।

तीसरी पूर्णमासी को वह आदमी कुछ साथियों को साथ लेकर वहां पहुंचा। उसने जांघ के बराबर मोटे बांस कटवाकर रेत में वृत्ताकार एक घेरा बनाने की आज्ञा दी। उसमें जाने के लिए एक ओर से रास्ता भी बनाया गया था। इसके बाद उस आदमी ने घेरे के भीतर ऊपर से एक बकरी का बच्चा छोड़ दिया और अपनी राह ली। बकरी का बच्चा चिल्लाता रहा।

तीसरे दिन फिर वे मनुष्य वहां आये और रेत में मोटरगाड़ी के एक पहिये कासा निशान देखकर खुश हुए। उस समय बकरी के बच्चे की आवाज़ भी नहीं सुनाई देती थी। जब लोगों ने घेरे के भीतर देखा तो उन्हें बत्तीस फुट लम्बी एक मोटी साँपिन दिखाई दी। यह साँपिन जिस समय घेरे के अन्दर घुसी थी, भूखी थी। बकरी को निगलने पर यह मोटी हो गई और जिस राह से घुसी थी उससे बाहर न निकल सकी।

आदमियों ने ऊपर से चढ़कर रस्सी के एक फन्दे में उस साँपिन की पूंछ और सिर फँसा लिये और उसको कैदी की अवस्था में बाहर निकाल लाये।

एक महीने के बाद उक्त साँपिन को पकड़ने वाले ने उसको सिंगापुर जानेवाले एक व्यापारी के हाथ बेंच डाला। कप्तान के पूछने पर उसने कहा कि मैंने उसका नाम डाइना रक्खा है। उसने ठान लिया था कि उसको सिंगापुर में बेंचकर एक अच्छी रकम पैदा की जायगी। पांच वर्ष के बाद सिंगापुर में उसको एक एमेरिकन ने खरीद लिया।

* * * *

अस्पताल से निकलकर एक शराबी स्वतंत्रतापूर्वक नगर में घूम रहा था। वह अपने ध्यान में मस्त होकर जिधर गर्दन उठती उधर ही चल देता था। घूमता फिरता वह एक ऐसी जगह में जा निकला जहां पर दो मनुष्य लाल रंग से रँगे हुए एक बड़े बक्स को बड़ी कठिनता से किसी मकान की सीढ़ियों पर चढ़ाने की चेष्टा कर रहे थे।

काठ का यह सन्दूक बहुत मज़बूत और बड़ा बना हुआ था। उसके ऊपर छोटे २ छिद्र बने हुए थे। इसका रंग हलका और कुंडी पुरानी जान पड़ती थी। वह शराबी टकटकी लगाये उसको देखता रहा। थोड़ी देर में वह संदूक आपसे आप हिलता हुआ जान पड़ा। उसके ऊपर बड़े २ अक्षरों में लिखा हुआ था "डाइना! सबसे भयंकर जीव।"

वे मनुष्य उस सन्दूक को ऊपर रखकर चले गये। मकान का द्वार ज्यों का त्यों वे खुला

ही छोड़ गये थे। हमारे मनमौजी अपनी शंका मिटाने के लिए आगे बढ़े और सीढ़ियां तयकर ऊपर पहुंचे। थोड़ी दूर जाने के बाद वे कुछ देखकर वहां खड़े हो गये। उन्होंने देखा कि २० वर्ष की एक कुमारी युवती उक्त सन्दूक को खोलकर हाथ से कुछ हिला रही है।

देखने में उक्त युवती बड़ी बलवती जान पड़ती थी। वायु और धूप के प्रभाव से उसका रंग साँवला पड़ गया था। महीन कपड़ों के भीतर से उसके गठीले शरीर की आभा दिखाई दे रही थी। इसको देखते ही मौजी को बड़ा आनन्द हुआ। युवती ने आहट पाकर जब शिर ऊपर उठाया तो उसका रोबीला चेहरा देखकर मौजी ठिठक गया। युवती ने पूंछा,—"तुम क्या चाहते हो ?"

उसने कहा—मैं यह देखना चाहता हूं कि इस संदूक में क्या है ?

युवती—आप भलेमानुष तो हैं पर आपको विवेक नहीं है। मेरे सरकस में एक से एक हज़रत आते हैं पर आपने तो सबको मात कर दिया। अच्छा—आइये और देखिये।

उक्त पुरुष सन्दूक के पास गया और 'डाइना' की ओर एकटक देखने लगा। साँपिन सन्दूक के भीतर इस तरह सुरसुरा रही थी मानो उसे नवागन्तुक का ज्ञान हो गया हो। वह बड़ी २ आंखों से शराबी की ओर इस तरह निहार रही थी जैसे उसका भविष्यत् पढ़ रही हो। उसके मुंह से अकस्मात् निकल पड़ा कि "क्या ही सुन्दर जन्तु है।" युवती भी उसी भांति ध्यान-पूर्वक उसका कर्मलेखा अध्ययन कर रही थी। उसने उस नवयुवक को देखकर ही उसके स्वभाव का बहुत कुछ अनुमान कर लिया था, इस पर उसके मुंह से निकले हुए इन शब्दों को सुनते ही वह मुसकुराकर बोली—"बड़ी और भयङ्कर तो सब लोग ही इसे कहते हैं पर अब तक इसे सुन्दर कहते किसी को मैंने नहीं सुना। हां, शायद और लोग अंधे हों। यह सांपिन मेरे पास चार वर्ष से है। इससे मेरे सरकस का नाम हुआ, परन्तु अब मैंने सब सामान बेंच डाला है, अकेली यही साँपिन मेरे पास रह गई है।

युवक—क्यों, डाइना क्यों रह गई ?

युवती—इसलिए रह गई कि मेरे सिवा उसे कोई सँम्हाल नहीं सकता। इसके लिए आदमी रक्खे गये पर जिस दृष्टि से वे मेरे तरफ देखते थे वह सांपिन को स्वीकार नहीं था। वह मुझे खूब पहिचानती है। देखो मैं छूती हूं तो गर्दन तक नहीं उठाती जरा तुम छुओ तो। उसके स्पर्श करते ही 'डाइना' सचेत हो गई। यह देख युवती मुसकुराकर बोली—देखो जान गई, ना।

युवक ने गर्दन हिलाकर पूंछा कि तुम्हारी बांह पर यह निशान कैसा है ?

युवती—यह एक सिंघनी का है।

"क्या तुम जंगली जानवरों को सधाती हो ?"

"हां, यह तो मेरा काम ही है।"

"मुझे सधाओ तो जानूं।"

इतना सुनते ही युवती की नाक और भौएँ चढ़ गईं। उसने आवाज़ पहिचान ली और उसकी शराबियों कीसी हालत देखी। परन्तु उसके कुछ कहने के पहिले ही वह युवक क्षमा प्रार्थना करते २ पृथ्वी पर लोट गया। साँपिन ने भी गर्दन उठाकर मानो कमरे के बाहर कुछ देखा। इतने में संदूक का ढकना बन्द हो गया।

* * * *

होश में आने पर युवती ने उससे पूंछा, तुम कौन हो ? मौजी ने कहा कि मेरा नाम पुरुषोत्तम है। मेरे पिता ने मुझे घर से निकाल बाहर किया है। मेरे पास सब कुछ था, पर अब कुछ नहीं है। मुझे अस्पताल पहुंचवा दो। बस अब हो चुका। मुझे माफ करो। इतना कहकर उसने आंखें बन्द कर लीं। यह देखकर युवती को बहुत दुःख हुआ और इस पुरुष के

शब्द" "मुझे सधाओ तो जानूं" उसके कान में गूंजने लगे। उसने नौकरानी को बुलवाकर बगलवाला कमरा खाली करवाया और उसका इलाज कराने का विचार किया। यह देखकर नौकरानी को अचम्भा हुआ और वह कहने लगी कि तुम तो अपने को "स्त्रीत्वहीन स्त्री" कहती थीं। उसने क्रुद्ध होकर उत्तर दिया कि यह काम तो मैं एक भयंकर सिंह के लिए भी कर दूंगी। जाओ डाक्टर को बुला लेआओ। इससे यह न समझना कि मैं नर्मदिल की हूं। 'सबला' के अर्थ हृदय-हीना नहीं हैं। तुम मुझे अच्छी तरह जानती हो, मैं लोहे की कील की तरह बड़ी कठोर हूं।

डाइना ने सन्दूक का ढकना उठाकर फिर कमरे के बाहर कुछ देखा। युवती अपने कमरे में थी। होश में आने पर पुरुषोत्तम ने अपने को अकेला पाया। बड़ी कठिनता से खड़े होकर बगल के कमरे में झाँकने पर उसे फिर वही मोहिनी मूरत दिखाई पड़ी। कमरे में कहीं शृङ्गाररस का नाम भी नहीं था। एक ओर किताबों का ढेर और दूसरी ओर सरकस के पात्रादि पड़े थे। इसके सिवा कुछ भयंकर जीवधारी जन्तुओं की तसवीरें भी लगी थीं। पुरुषोत्तम पर दृष्टि पड़ते ही युवती ने उसे झिड़ककर बिछौने पर जाने को कहा। देखने से उसके मुख पर मुग्धता झलक रही थी।

युवती ने कहा, अब मैं तुमको विदा करने का विचार कर रही हूं कारण आज के पांचवें दिन मैं जहाज़ पर सवार होकर विदेश जानेवाली हूं।

"जहाज़ पर।"

"हां, मैं सिंगापुर जा रही हूं।"

"क्या कुछ और जानवर खरीदने हैं।"

"हां! रुपये कमाने का यही ढंग हैं।"

"क्या अकेले ही जाओगी।"

"हां केवल एक नौकर और डाइना के साथ।"

"डाइना कौन? क्या सांपिन?"

"हां, कारण उसे कोई सम्हाल नहीं सकता।"

"मुझे भी ले चलिये। नौकर ही के बदले सही। जो उसे दीजियेगा वही मैं लेने को तैयार हूं।"

"मगर तुम शराब पीते हो।"

"न पीऊँगा।"

"तो तुम मुझसे प्रेम जताना चाहोगे?"

इस पर युवक ने मुस्कुरा कर कहा,—"हां, मुमकिन है कि मैं प्रेम जताऊँ। हो सकता है—शायद इसलिए कि मैंने तुमसी स्त्री अभीतक नहीं देखी।"

"हां, अधिकतर औरतें तो विलासिनी ही होती हैं पर "मैं 'सबला' हूं।"

"क्या कहा 'सबला'? सबला किसे कहते हैं, वह पुरुषों से घृणा करती है।"

"नहीं यह कोई ज़रूरी बात नहीं। लेकिन वह स्त्री भी पुरुष की नाई स्वतंत्र हो सकती है। वह अपने बाहुबल पर भरोसा कर सकती है। मैंने ऐसा ही किया है। मैं प्रकृत सबला हूं। अपने को मैंने आप सँभाला है। अब तक कोई पुरुष न मेरी स्वतंत्रता हरण कर सका है, न कर सकेगा। मैं सर्वदा से सरकस में काम करती आई हूं। मुझे यह मालूम हो गया है कि पुरुष और प्रेम, दोनों स्त्रियों का नाश कर डालते हैं। वह प्रेम करे और कुटुम्ब बनाये, यह मूर्खता है। हमारी राय में उसे भी काम करके अपना जीवननिर्वाह करना चाहिये।"

"हां ठीक कहती हो। परन्तु इस समय तो मेरा मतलब आप और डाइना के साथ जाने से है।"

यह सुन युवती ने मुस्कुराकर कहा—डाइना भी एक सबला है। युवक ने कहा कि "मुझे पूर्ण विश्वास है कि पूर्व के जंगल में कहीं न कहीं इसका नर होगा।"

"यह तुम्हारी मूर्खता है, मैं उसको अच्छी तरह जानती हूं। वह ऐसी मूढ़ा नहीं है। चार वर्ष से वह मेरे पास है, यदि कुछ होता तो मुझे अवश्य ही मालूम हो जाता। उसको किसी दूसरे की आवश्यकता नहीं। वह बिना प्रेम की एक स्वतंत्र मादा है। यदि डाइना को यह विश्वास हो गया कि तुम मुझसे प्रेम जताना चाहते हो तो वह तुम्हें मार ही डालेगी।"

"खैर, इन सब बातों को जाने दीजिये। मैं सिर्फ नौकरी चाहता हूं, इसके साथ ही मैं प्रेम न जताने का वादा भी करता हूं।"

"और मदिरा?"

"मदिरा भी नहीं।"

इस समय पहिले पहिल युवती को कुछ सनसनाहट सी आन पड़ी। उसने अपने दोनों हाथों को बगल में दबाकर कहा,—

"अच्छा सुनो, यदि तुम मेरे साथ जाना चाहते हो तो तुमको यह बातें याद रखनी पड़ेंगी। तुमने मुझसे सधाने की प्रार्थना की थी। मैं बड़े २ जीव सधा चुकी हूं। मेरे तन में रत्ती भर भी प्रेम नहीं है। मुझे बिलकुल दया न आयेगी। यदि तुमने एक बूंद भी शराब पी—"तो समझ रखना।"

इस पर उसने अपनी गर्दन हिलाई। इसी समय सन्दूक के भीतर डाइना बेताबी से सरक रही थी।

* * * *

वृहस्पतिवार को वहां से जहाज़ चला। हमारे तीनों नायक भी इसी पर सवार हुए थे। एक जन्तुपालिका, व्यवसायिनी, तत्वज्ञान पाठिका, रूखी और अति सुन्दर युवती। दूसरा पुरुषोत्तम जिसने अपना नाम गोविन्द रख लिया था और जो सांपिन का संरक्षक बनाया गया था और तीसरी वही डाइना।

चलते २ जहाज़ बहुत दूर निकल गया। एक दिन ज़ोर का तूफ़ान आया। जहाज़ मालूम हुआ रसातल को चला जायगा। इसी समय बिजली का तड़ाका हुआ। मालूम हुआ जहाज़ फटकर नीचे चला गया। गोविन्द एकदम युवती के कमरे में गया। बिना बुलाये जाने पर उसने उसे एक कड़ी डांट बतलाई। कहने लगी तुमने समझा स्त्री है डर गई होगी। तुमसे कह चुकी हूं, मैं सबला हूं, मुझे मर्द के सहायता की, सहयोग की आवश्यकता नहीं। बस चले जाओ। गोविन्द लौट आया और सोचने लगा कि क्या ही अच्छा होता यदि मुझे ऐसा जीवन व्यतीत करने का अवसर प्राप्त होता जिसमें मैं उसको प्रेमपाश में आबद्ध करने का प्रयत्न कर सकता, कारण मैं तो सबला स्त्री को ही चाहता हूं। सन्दूक की ओर देखकर फिर उसने कहा यह दूसरी सबला है। यह कैसी नई और असम्भव बात है।

वह डाइना के सन्दूक के पास चला गया। डाइना सो रही थी। सन्दूक पर हाथ रखकर उसने कहा सोजा, जंगल का स्वप्न देख, वहां के पशुपक्षियों को देख और जब जगे तो जंगल के दूसरे जीवधारी का ध्यान कर। उसीका चिन्तन कर। डाइना सुन तेरा प्यारा नर यहां है।

लाल सन्दूक में वह सांपिन अपने फन से चारो ओर पीट रही थी। ऊपर के ढँकने पर धड़ से आवाज़ हुई। ढँकने का एक तख़्ता चरचराकर उसका कब्ज़ा टूट गया। गोविन्द हांपता हुआ उस पर जा बैठा। कहने लगा, यह समझो कि वह आगया।

* * * *

जहाज़ फेअल नामक स्थान पर पहुंचा। जहाज़वालों ने वहां चौबीस घंटे ठहरने की ठानी। गोविन्द अपनी तनख्वाह लेकर शहर में गया। वह कुछ देर बाद झूमता हुआ लौटा और अपनी कोठरी में चला गया। बत्ती जलाने के बाद उसने सन्दूक का ढँकना खोलकर डाइना के सर पर थपकी लगाई और कहा,—"तुम भी सबला हो। लोग कहते हैं तुम इन

पुरुषों को मार डालती हो, जो तुम्हारी मलकिन से प्रेम करते हैं। नशे में हँसकर वह उसके मुंह के पास सीटी बजाने लगा। सांपिन ने सिर उठाकर बड़ी २ आंखों से उसे देखा। इसके बाद ही वह धीरे २ उसके बदन भर में लिपट गई और उसे कसने लगी। इससे उसके रुधिर का वेग रुक गया और वह बेहोश होने लगा।

पीछे से आवाज़ आई "उठो"। देखने पर उसे मालूम हुआ कि हांपती हुई युवती खड़ी है। उसे देखते ही गोविन्द ने मुस्कुराकर कहा "मैं बिलकुल अच्छा हूं।"

"यह तो मैं भी देख रही हूं। तुमने मदिरा पी है?"

"हां मैंने प्रतिज्ञा भङ्ग की, इससे मैं चला जाऊंगा।"

"युवती ने कहा "नहीं ठहरो।" इतना कह कर उसने चमड़े के मज़बूत चाबुक से उसकी खूब खबर ली। खून टपकने लगा पर कोड़े न रुके। गोविन्द को बेहोशी सी आगई थी परन्तु मुस्कुराकर उसने कहा,—"आप जानवरों को अच्छी तरह सिखलाती हैं। आप बड़ी दयालु हैं, मैं आपको धन्यवाद देकर नौकरी छोड़ता हूं।"

"तुम नहीं जा सकते। तुम तो सरकस के नौकर हो।"

"मैं बड़ा कृतज्ञ हुआ। आपने मुझ पर दया प्रकट कर सांपिन से मेरी रक्षा की।"

"कोई भी होता तो मैं उसे डाइना से बचाती। इतना कहकर वह अपने कमरे में चली गई।

* * * *

युवती ने यहां कुछ जानवर खरीदकर एक आदमी के सुपुर्द कर दिये। जहाज़ ओआला को रवाना हुआ। इसी जगह डाइना पकड़ी गई थी। छठे दिन सब वहां पहुंच गये। गोविंद ने पूछा कि "यह किनारा कहाँ का है?"

युवती—"यह एक निर्जन स्थान है और मैं तुम्हें और डाइना को लेकर यहां एकआध दिन ठहरूंगी।"

युवक—"बहुत ठीक, कहकर जहाज़ पर से लाल बकस नीचे लेआया। सन्दूक के भीतर डाइना अपना सर पोट रही थी। सवेरे गोविन्द की आंख खुलने पर उसने लाल सन्दूक को खुला पाया। लपककर वह युवती के झोपड़े की ओर गया पर वहां उसका भी पता नहीं था। उसने जोर २ से आवाज दी, पर कुछ जवाब नहीं मिला। उसे सन्दूक के पास से मोटर के पहिये कीसी एक लकीर दिखाई दी। उसीको देखता हुआ वह आगे बढ़ा। तीन मील के बाद वह लकीर समाप्त हो गई थी। गोविन्द वहां पर रुक गया। उसे युवती भी वहीं दिखाई पड़ी। युवती ने कहा "मेरे साथ आओ। तुमने ठीक ही कहा था। आओ मेरे साथ आओ।" यह कहकर दोनों आगे बढ़े। आगे जाकर फिर वह लकीर शुरू हुई। वहां से एक के बदले एक ही प्रकार की दो लकीरें थीं।

युवती ने कहा—देखो! आज पूर्णमासी है। यह वही दिन है जब वह जंगल से निकलकर समुद्र के किनारे आता है।

गोविन्द—"वह कौन?"

"हां, दो रात्रि से वह बराबर यहां आता था। मैंने उसका निशान भी देखा था। तुमने ठीक ही कहा था कि डाइना का नर है। यह दूसरा निशान उसके नर ही का है। शायद ये दोनों इतने वर्षों तक बराबर धैर्य से अपने मिलन का आसरा देख रहे थे।"

"क्या आपने उसको देखा है?"

"हां, हां, मैंने दोनों को देखा है।"

इतना सुनते ही वह लकीरों के पीछे जाने लगा पर युवती को साथ आती न देखकर थोड़ी दूर से फिर लौट आया। वहां आने पर उसने देखा कि युवती हाथों से मुंह छिपाकर धीरे

धीरे रो रही है। उसकी समझ में न आया कि क्या कहा और किया जाय। इतने में वह धीरे धीरे युवती के बालों पर हाथ फेरने लगा। युवती खड़ी हुई और अपने दोनो हाथों को उसके कंधों पर रखकर उसकी ओर उसने सिर झुका दिया। गोविन्द ने कुछ नहीं कहा। वह इसका मतलब समझ गया। इस प्रकार वह उन बड़े नियमों को दर्शा रही थी जिनपर पुरुषों तथा स्त्रियों द्वारा रचित स्वार्थमय स्वतन्त्रता के नियमों का बस नहीं चलता।

दिल ही दिल में दोनों, एक दूसरे के प्रति सच्ची-सेवा का प्रण कर रहे थे।

युवती ने कहा—मैं चाहती हूं कि मेरी स्वतन्त्रता मुझसे न जाने पावे।

युवक—भला वह कैसे जा सकती है?

युवती—मुझे मालूम नहीं।

युवक—तो क्या इसीलिए आपने यह सब ढोंग रचा था?*

"विकाश"।

विरह।

[लेखक—श्रीयुत गोपालशरण सिंह।]

सब ओर घिरा जगतीतल में दिखता दुख-बादल का दल है।
निशिवासर नेक नहीं कल है जलता अविराम उरस्थल है॥
न रहा तन में कुछ भी बल है अब कल्प-समान अहो पल है।
घृत-आहुतिसा विरहानल में बनता बस लोचन का जल है॥ १॥

---

* इस आख्यायिका को पाठकों ने पढ़ा होगा। "सबला" दल तथा कुछ वाहवाह करनेवाले जो वास्तव में उनको रसातल में पहुंचाना चाहते हैं यह कहने लगे हैं कि सबला स्त्रीत्वहीन स्त्री भी हो सकती है। कहा जाता है कि स्त्री विना पुरुष के सहयोग, सहायता या उस पर किसी प्रकार से निर्भर हुए स्वयम् पूर्ण विकाश प्राप्त कर सकती है और अपने जीवन के उद्देश्य को सिद्ध कर सकती है। कुछ लोग ऐसे भी हैं जो स्त्रियों की पूर्ण स्वतंत्रता के हिमायती होते हुए भी यह मानने को तैयार नहीं। उनका कहना है कि स्त्री पूर्ण विकाश प्राप्त कर सकती है किन्तु साथ ही साथ उसके जीवन के उद्देश्य की सिद्धि के लिए पुरुष-सहयोग अनिवार्य है। इस आख्यायिका में यही सिद्ध किया है। स्त्रीत्वहीन स्त्री नियम की अपवादस्वरूप एक दो हो सकती हैं किन्तु स्त्री जाति स्त्रीत्वहीन हो जाय या यह कि पुरुष सहयोग की उसको आवश्यकता ही न रह जाय यह असम्भव है। जिस तरह से पुरुष के लिए यह अटल नियम है:—

"Fly wherever you can, she is thy fate and follows and confronts you everywhere ; of her thou art to her thou goest."

स्त्री से दूर भागने की चेष्टा मत कर, वह तेरी भाग्यलक्ष्मी है और तू जहां चाहे भाग वह तेरा पीछा करेगी और तेरे सामने उपस्थित होगी।

उसी तरह से स्त्रियों के लिए भी यह अनित्य है कि "तुमने पुरुष को पैदा किया क्योंकि सृष्टि के विकाश को तुम अकेले नहीं सम्पादन कर सकती थीं और जिसे तुमने पैदा किया वह तुम्हारा प्राणवायु है उससे अलग होकर तुम नहीं रह सकतीं। सं० म०।

जापान की सैर।

ज़मीन्दारी।

आज मैं 'होत्ता' महाशय की ज़मीन्दारी में उनकी "कृषी-प्रयोगशाला" देखने गया था। उसी स्थान में उपर्युक्त विषय का पूर्ण ज्ञान हमें प्राप्त हुआ। आपने अपने खर्च से यह "प्रयोग-शाला" बनवाई है। इससे जनता के हित के सिवा उनका कोई स्वार्थ नहीं है। आप एक पुराने 'डाइमियो' खानदान के हैं। आपने भी अपनी ज़मीन्दारी छोड़ दी थी। इसके बदले आपको जो धन मिला था उससे आपने कुछ ज़मीन खरीद ली है।

आधुनिक व्यवस्था को ज़मीन्दारी कहने के बदले मामूली तरह से मिलकियत कहना चाहिये। आजकल भूमि का जो मालिक होता है, उसे कर देना पड़ता है किन्तु यहां मालिक व किसान में वह नाता नहीं, जो भारतीय ज़मीन्दारों व रैयतों में है—यहां नाता है, मकानदार व किरायेदार का। यहां किसान बेदखल नहीं किया जा सकता व न उतनी लगान ही उसे देनी पड़ती है। ज़मीन देने के समय जितना तय हुआ हो उतनाही किसान से ज़मीन्दार को मिलता है। इस भाड़े को, कारण इसे मैं मालगुज़ारी नहीं कह सकता, वसूल करने के लिए भी कोई अदालत नहीं है। नादेहन्दी की अवस्था में मामूली धन सम्बन्धी अदालत में ही साधारण नालिश करनी पड़ती है।

पैदावार कम होने से ज़मीन्दार को पड़ते के अनुसार ही धान पाने का हक़ है परन्तु अधिक पैदावार होने से उन्हें अधिक पाने का अधिकार नहीं। उस समय पहिले करार के अनुसार ही उन्हें धान मिलता है। प्रायः यह करार पैदावार का आधा धान देने का ही होता है। ज़मीन्दार का हिसाब नगदी से नहीं, धान से होता है परन्तु किसान चाहे तो उन्हें धान या बाज़ार भाव से धान का मूल्य दे सकता है।

उपर्युक्त वृत्तान्त बहुत खोज करने पर मिला है। तथापि भाषा न जानने के कारण मैं इसे बिलकुल बावन तोले पाव रत्ती ठीक नहीं कह सकता।

८—७—१५।

व्यवसायिक बैंक।

इसके विषय में ऊपर सविस्तार से लिखा ही जा चुका है। किन्तु आज उक्त बैंक के प्रधान से बात चीत करने का अवसर मिलने से बहुतसी नई बातें ज्ञात हुईं। उनका ब्योरा यों है:—

(१) इस समय इस बैंक ने पांच करोड़ २२ लाख के 'डिबेञ्चर' जारी किये हैं। ये तीन प्रकार के यानी ४) ४॥) ५) सैकड़े सूद के हैं। इनमें के बहुत बड़े भाग की बिक्री विदेशों में भी हुई है। यह बैंक ऋण दिये हुए रुपयों पर प्रायः आठ रुपये सैकड़ा सूद लेता है।

चिट्ठा देखने से मालूम हुआ कि यह बैंक हिस्सेदारों को प्रथम व द्वितीय नामक दो मुनाफ़े देता है। प्रथम मुनाफ़ा सैकड़े ५ और द्वितीय ३) का होता है। दोनों मिलाकर सैकड़े ८) हो जाते हैं। हिस्सेदारों को इसमें कुछ बोलने का स्थान नहीं रहता परन्तु बैंक को कभी कम मुनाफ़ा हुआ तो वह दूसरे मुनाफ़े को काट कर कम दे सकता है। इससे मुनाफ़ा घटाने के कारण जो साख घटती है, वह नहीं घटती। यह प्रथा बड़ी अच्छी है, अपने यहां के देशी बैंकों को भी ऐसा ही करना चाहिये।

इनके धन का बहुत बड़ा हिस्सा शिल्प की उन्नति करने में लगा हुआ है। ज़मानत में प्रायः कारखाने गिरो रक्खे जाते हैं।

११—७—१५।

छापाखाना।

आज 'यन्दो' महाशय मुझे एक छापाखाना दिखलाने को ले गये। यह यहां के सब छापाखानों से बड़ा है। इसका नाम है, 'हाकुबुकोन' और इसके मालिक हैं महाशय 'ओहोशी शिटारो'। मैंने आक्सफोर्ड में इङ्गलैंड के सबसे बड़े और सर्वोत्तम प्रेस "क्लैरेएडन" को देखा था। यह भी यहां द्वितीय श्रेणी का प्रेस है।

इस छापाखाने में अधिकतर कार्य मासिक-पत्र और पुस्तक प्रकाशन का होता है। कोई २२, २४ मासिक यहां छपते हैं। स्त्री-पुरुषों को मिलाकर कोई १५०० मनुष्य इसमें काम करते हैं। यन्त्रों के चलाने के लिए ३५० घोड़ों की शक्ति का एक एञ्जिन है। इस प्रेस में रोज १५०० रीम कागज़ छप सकता और १५०००० पुस्तकों की जिल्द बन सकती है।

इतना वृहत् कार्य इसीलिए सम्भव है कि यहां पढ़नेवालों की संख्या बहुत अधिक है और एक २ पत्रों की लाखों प्रतियां छपती हैं। इसके सिवा एक ही छापाखाने में अनेक पत्रों के छपने से व सबके मालिक एक होने से पत्र सस्ते में छप जाते हैं व कागज़ छपाई आदि भी उत्तम होती है। क्या अपने यहां के प्रधान २ मासिकपत्रों का एक संघ बनाकर उन्हें एक स्थान में छपवाना सम्भव नहीं?

कलर प्रिंटिंग, डबल प्रिंटिंग, ज़िंक व इलेक्ट्रोप्लेट की छपाई इत्यादि सभी कार्य इसमें होते हैं। चित्रों के लिए ब्लाक भी यहीं तैयार होते और लीथो के पत्थर द्वारा भी सुन्दर छापे जाते हैं।

जापानी व चीनी 'सांकेतिक-चिह्न' (जिनको अक्षर कहना भूल है) एक ही हैं। इनके लिए भिन्न २ प्रकार के कोई छः हज़ार टाइप बर्तने पड़ते हैं। छापने के उपरान्त इनको पृथक् करना बड़ा कठिन है।

प्रति दिन संसार की गति कम समय व कम मेहनत में अधिक कार्य करने की ओर होती जा रही है। कागज़ की दो तरफा छपाई का दूना समय व दूना श्रम बचाने के लिए डबल या रोलर की छपाई का आविष्कार हुआ है। इस यन्त्र में बहुत से बेलन होते हैं। इन्हीं पर छापने के टाइप वृत्ताकार जमाये जाते हैं।ताव के बदले बेलन पर लपेटे हुए १।२ मील लम्बे कागज़ के थान काम में लाये जाते हैं। इस पर का कागज़ बेलनों के बीच से जाता व कागज़ के दोनों ओर एक साथ ही छपाई हो जाती है। इसके बाद यन्त्र के दूसरे भाग में ये कागज़ भँजकर चपोते हुए पुस्तक की शकल में गिरते जाते हैं।

इस यन्त्र में रोशनाई लगाने, टाइपों को साफ करने, कागज़ को गीला करने तथा उन्हें भांजकर काटने आदि के सभी काम यन्त्र ही से होते हैं। इसीसे आधुनिक समय में रोज एक २ पत्र की लाख २ प्रतियों के पन्द्रह २ संस्करण निकालना सम्भव हुआ है। यूरोपीय युद्ध प्रारम्भ होने के बाद लन्दन में मैंने एक २ पत्र के पन्द्रह २ संस्करण दिन में देखे हैं। ज्ञान प्राप्ति की लालसा तथा व्यर्थ समय नष्ट न करने की चरम सीमा का यहीं अन्त दिखाई देता है। इन देशों में दिन भर अखबार पढ़ते २ नाकोंदम आजाता है पर सभ्य बने रहने के लिए पढ़ना ही पड़ता है।

ऊनी मस्लिन का कारखाना।

यह एक बड़ा कारख़ाना है। अपने यहां के शाल कासा पतला केवल एक ही प्रकार का वस्त्र यहां बनता है। इसे यहां ऊनी मस्लिन कहते हैं। यह कारखाना 'किनीशीमा' महाशय की देखरेख में संघशक्ति द्वारा संचालित है। इसका मूलधन २० लाख येन है पर अबतक हिस्सेदारों से १६ लाख येन ही वसूल किये गये हैं। हिस्सेदारों की संख्या ३०० से अधिक है। इसको खुलकर अभी ८ वर्ष हुए हैं।

यह कारखाना मुनाफे में से सैकड़े ५) रुपये यन्त्र के टूटने फूटने व घिसने के लिए अलग संचित कर रखता है। इसमें ४०० करघे और सूत कातने के २२ चर्खे हैं। एक २ चर्खे में ६३० तकुए हैं।

इसमें काम करनेवालों की संख्या, जिनमें पुरुषों की संख्या सैकड़े २५ है, ११०० सौ है। दिन और रात में काम करनेवालों के दो दल हैं। यह कारखाना दिन रात चलता है। एक सप्ताह के बाद मज़दूरों का समय बदल दिया जाता है। दोनों दलों को मज़दूरी बराबर और रोज एक घन्टे छुट्टी मिलती है।

इस कारखाने में खर्च होनेवाला प्रायः सब ऊन आस्ट्रेलिया से आता है। इसमें ८० नंबर तक का सूत भी काता जाता है; कपड़े की चौड़ाई एकहरी होती है। यह कपड़ा फुटकर ॥) गज़ बिकता है।

यहां बुना हुआ कपड़ा धोया जाता है और तब उसमें आलू को माड़ी लगाई जाती है। जर्मनी व इङ्गलैंड में इसकी मांग बहुत है। स्त्रियों के किमोनों बनाने के लिए जापान में भी इसकी बड़ी खपत होती है।

१५—७—१५।

बैरन शिबुशावा।

बैरन शिबुशावा को आधुनिक उद्योग-धन्धे का कर्ताधर्ता कहना अनुचित न होगा। आप वृद्ध होते हुए भी दिन रात काम में लगे रहते हैं। आजकल आप "डाई इचो गिंकों" (First National Bank) के प्रधान हैं।

आपका जन्म संवत १८९७ में हुआ है। इस समय आपकी उम्र ७५ वर्ष की है। आपने टोकुगावा की अन्तिम नवाबी में भी काम किया है। टोकुगावा प्रिंस के साथ आपने १९२४-२५ में यूरोप की यात्रा भी की थी। राज्यक्रांति के बाद आपको राजकोष-विभाग में एक बड़ा पद मिला था पर आपने १९३० में उसे त्याग दिया। उस समय से अबतक आपने कोई सरकारी काम नहीं किया है। १९५९ में आपने योरप-एमेरिका की फिर यात्रा की। १९३० में प्रतिष्ठित आपका बैंक यहां के सब बैंकों में पुराना है।

आपने कहा कि जापान में शिक्षाप्रचार की चर्चा 'मेजी' के पूर्व से ही प्रारम्भ हो गई थी। राज्यक्रान्ति के बाद 'मेजी युग' के प्रारंभ से कलाकौशल और उद्योग-धन्धे की चर्चा आरम्भ हुई। इसके लिए पहिले बैंक खुले और फिर रेलवे और जहाज़ी कम्पनियां खुलीं। यह प्रगति स्वाभाविक रीति से ही हुई है।

प्रथमारम्भ में धन की आवश्यकता होने के कारण आर्थिक दशा के सुधार के लिए सब से पहिले बैंक स्थापित किये गये और आवागमन की सुविधा के लिए फिर रेलें और जहाज़ी कम्पनियों की प्रतिष्ठा हुई।

हमारा पुस्तकालय।

"सोने की राख या पद्मिनी"—मूल्य ॥)। पृष्ठ संख्या ९८, रायल अठपेजी। लेखक पंडित रूपनारायण जी। प्रकाशक "उपन्यास बहार कार्यालय", राजघाट, काशी।

यह उपन्यास, "उपन्यास ग्रंथमाला" की १२वीं संख्या है। इसमें सुन्दर ५ चित्र भी हैं। युद्ध के कारण कागज़ की महंगी देखते हुए मूल्य कुछ अधिक नहीं है। उपन्यास अच्छा और रोचक है। एकबार पढ़ना आरम्भ करने से समाप्त किये बिना पुस्तक नीचे रखने की इच्छा नहीं होती। उपन्यासप्रेमियों को इसे अवश्य पढ़ना चाहिये।

सम्पादकीय टिप्पणियाँ।

शिक्षित भारतवासी और सेना।

शिक्षित भारतवासियों की यह बहुत दिनों से इच्छा थी कि वे सेना में भर्ती किये जायँ किन्तु सरकारी अविश्वास से ऐसा नहीं हो सकता था। जिस समय साम्राज्य रक्षा के लिए यह आवश्यक था कि बड़ी से बड़ी सेना रणक्षेत्र में भेजी जाय, जिस समय साम्राज्य के सामने यह प्रश्न उपस्थित था कि नरमेध यज्ञ हो, साम्राज्य निवासी देश और साम्राज्य की रक्षा के लिए अपने प्राण होम दें, जिस समय प्रधान सचिव हर घड़ी सैनिकों के लिए चीत्कार कर रहे थे, भारत के सपूतों ने यह इच्छा प्रगट की थी कि वे अविश्वास की दृष्टि से न देखे जायँ, उनको अस्त्र शस्त्र दिये जायँ, वे सैनिक बनाये जायँ, उनकी संख्या बहुत है और कुछ ही समय की शिक्षा के बाद वे रणक्षेत्र में शत्रु का मानमर्दन कर देंगे, किन्तु

कौन सुनता है?

सुनवाई नहीं हुई, होती भी क्यों? वहां तो अविश्वास था डर यह था, कि कहीं अस्त्र शस्त्र पाने के बाद वे बिगड़ न जायँ। यद्यपि इस भाव में विशेष परिवर्तन नहीं हुआ है तदपि यह प्रसन्नता की बात है कि पंजाब सरकार ने एक डबल कम्पनी मेट्रीकुलेशन पास या ग्रेजुएट पंजाबी युवकों की बनाना निश्चय कर लिया है। घोषणा की गई है और आशा प्रगट की गई है कि पंजाबी नवयुवक शीघ्रही भरती किये जाने के लिए आवेदन-पत्र भेजेंगे। हम भी आशा करते हैं कि बात ऐसी ही होगी किन्तु उसके साथ ही साथ पंजाब सरकार से हम यह भी कह देना चाहते हैं कि सफलता के लिए उत्तम यह होगा कि यह भी घोषित किया जाय कि ये नवयुवक योग्यता प्रदर्शित करने पर सेना में उच्च पद भी प्राप्त कर सकेंगे। ग्रेटब्रिटेन में भी ऐसा ही किया गया है। आखिर शिक्षित युवकों के लिए कुछ प्रलोभन भी होना चाहिये। हम जानते हैं न्याय और स्वतंत्रता की रक्षा के लिए किसी प्रलोभन की आवश्यकता नहीं किन्तु उसके साथ ही साथ हम यह भी जानते हैं कि योग्य का योग्य आदर भी होना चाहिये। साम्राज्य की रक्षा का भार सब पर एक सा है ऐसी अवस्था में साम्राज्य के उच्चपदों पर भी सब का समान अधिकार होना चाहिये (duty) कर्तव्यपालन के साथ ही साथ स्वत्व और अधिकार (Rights) की स्वीकृति भी आवश्यक है। न्याय यही कहता है।

❋

स्वराज्य दान।

स्वराज्य का दान सुनने में नहीं आया, स्वराज्य के योग्य बनने में सहायता दी जाती है, जैसे एमेरिका ने फिलिपिनों को दी किन्तु पोर्तुगीज सरकार कुछ नूतन कृत्य करने को उद्यत है। खबर आई है कि पोर्तुगीज सरकार की रियाया शीघ्र ही स्वराज्य उपभोग करेगी। गोआ आदि स्वतंत्र हो जायँगे। हम अपने भाइयों को उनके भाग्योदय पर बधाई देते हैं और साथ ही आशा करते हैं कि वह दिन भी शीघ्र ही आवेगा जब कि उनको भी हम लोगों को बधाई देने का अवसर प्राप्त होगा। हमारा दृढ़ विश्वास है कि ब्रिटिश सरकार, जो छोटी तथा हीन जातियों के स्वत्वों की रक्षा के लिए लड़ रही है, जो यह कहती है कि इस युद्ध का उद्देश्य तभी सिद्ध होगा जब बेलजियम, सर्विया, मान्टीनिग्रो आदि सदा के लिए स्वतन्त्र हो जायँगे, स्वयम अपने आश्रितों को कभी भी अस्वतंत्र न रक्खेगी।

❋

विरोधियों का षड़यन्त्र।

साम्राज्य में एक नई संस्था का जन्म हुआ है। जन्मस्थान इसका लंदन के प्रख्यात मासिक

"राउन्ड टेबिल" का कार्यालय है। इसके सदस्य न लिबरल हैं, न कन्सरवेटिव, न यूनियनिस्ट और न मज़दूरदलवाले। इसका उद्देश्य है साम्राज्य सञ्चालन के कार्य में उपनिवेश निवासियों को बराबर का अधिकार देना, साथ ही इसका विश्वास कदाचित यह है कि काली पीली भूरी जातियाँ केवल इसलिए पैदा हुई हैं कि वे गोरी जातियों की सेवा करें, उनका पानी भरें और उनके लिए लकड़ी काटें। इसी दल के एक प्रधान कार्यकर्ता

मि० लायोनल कर्टिस

भारत की सैर कर रहे हैं। आप इस उद्देश्य से आये हैं कि अपनी आंखों भारत की दशा देख कर भारत के भविष्य संगठन और शासन के सम्बन्ध में अपनी राय कायम करें। आप यह भी कहते हैं कि आप भारत के प्रतिनिधियों से बातें करने आये हैं यद्यपि आप ठहरते, घूमते फिरते लाट, बड़े लाट और कमिश्नरों के साथ हैं और अपनी राय भी उन्हीं लोगों की आंख और बुद्धि से कायम करते हैं।

आपने अपनी राय एक पत्र द्वारा अपने साथियों पर प्रगट की थी। भाग्यवशात् वह पत्र भारतहितैषियों के हाथ पड़ गया और पूरा पूरा

भंडाफोड़

हो गया। पत्र में तीन चार बातें बड़े मार्के की थीं। आप सर जेम्स मेस्टन (हमारे छोटे लाट) सर वेलंटाइन शिरोल (भारत के प्रधान शत्रु), माननीय मि० मैरिस (इन्स्पेक्टर जनरल पुलीस) की सलाह से काम कर रहे हैं और आप लोगों की राय एक है। दूसरी बात यह है कि भारत स्वराज्य के योग्य नहीं, भारतवासी मध्य एफ्रिका के हबशियों से भिन्न अवश्य हैं किन्तु अभी इनको स्वराज्य नहीं मिलना चाहिये। आपका कहना यह भी है कि सम्भव है ऐसा करने से भारतवासी विरुद्ध हो जायँ और खून की नदियां बहें किन्तु उसकी अधिक चिन्ता नहीं होनी चाहिये। तीसरी बात यह है कि युद्ध के अन्त होते ही साम्राज्य के पुनः संगठन में उपनिवेशों को समान अधिकार दे देना चाहिये अर्थात् उस दशा में इङ्गलैंड के साथ ही साथ उपनिवेशवाले भी हमारे प्रभू होंगे। आपका यह भी कथन है कि शिक्षित भारतवासी भारत के प्रतिनिधि नहीं, अशिक्षितों का इनमें विश्वास नहीं, ये उनके साथ न्याय न करेंगे आदि…… भारतवासियों को

सचेत

हो जाना चाहिये। हम लोगों के विरुद्ध, सदा हमको नीचे रखने के लिए भीषण षड़यंत्र रचा जा रहा है और खेद से कहना पड़ता है कि हमारे बड़े बड़े अफसर उसमें सम्मिलित हैं। जिनका काम यह होना चाहिये कि वे भारतवासियों की त्रुटियों को दूर करने का प्रयत्न करें, सदा उनकी उन्नति के अभिलाषी रहें और जो न्याय करने के लिए वेतन पाते हैं वे मि० कर्टिस की सहायता कर रहे हैं इस काम में कि भारतवासी उपनिवेशों के दास बनाये जायँ।

मि० कर्टिस से सलाहकारी भी कौन, जो भारतवासियों के पुराने शत्रु हैं, स्वनामधन्यवीर मि० पोलक के शब्दों में The man who in the main was responsible for driving Indians into revolt and agony for a period of 8 years in South Africa. He was the *principal official* connected with *anti Asiatic legislation* and drove the Indians to despair.

अर्थात् यह वही मनुष्य है जिसके कारण दक्षिण एफ्रिका में भारतवासियों को ८ वर्ष तक कष्ट सहना पड़ा और जो भारतवासियों के के विरुद्ध कानून बनाने में अग्रसर था।

दुःख की बात है कि ऐसे मनुष्य के षड़यंत्र में अफसर लोग सम्मिलित हों। हमारा कोई वश नहीं, हमें कोई अधिकार नहीं किन्तु अपने

अफसरों से नम्रतापूर्वक इतना हम निवेदन अवश्य कर देना चाहते हैं कि भारतवासियों पर कृपा कर, ईश्वर के नाम पर अपना कर्तव्य पालन करिये, भारत की भलाई की कितनी ही बातें हैं जिनमें समय व्यतीत किया जा सकता है किन्तु यदि समय फालतू है और जितनी भलाई आप लोग कर सकते हैं या करना चाहते हैं आप लोग कर चुके हैं तो innocent pleasures ऐसे खेलों में जिनसे दूसरों को हानि न पहुंचे समय व्यतीत करिये, हमारे विरोधियों के षड्यन्त्र में सम्मिलित होने से क्या लाभ ?

"जो आप ही मर रहा हो
उसको गर मारा तो क्या मारा ?"

अपने महान अफसरों से इस नम्र प्रार्थना के बाद हम इतना और भी कहना चाहते हैं कि आप लोग स्वयम् ही सोचिये कि मि० कर्टिस ऐसे मनुष्य के साथ, जिन्हें एक मिनट भी भारत में न रहने देना चाहिये आप लोगों की तनिक भी सहानुभूति होना कहां तक उचित है ? इन सब बातों का फैसला उदार भारतवासी आप ही लोगों पर छोड़ते हैं।

संकीर्ण-हृदय

मि० कर्टिस से इतना ही कहना है कि भारतीय जनसमाज अपना शासन भले प्रकार कर सकता है उसके सम्बन्ध में आप चिन्तित न होइये। यह सत्य है कि शिक्षितों की संख्या कम है किन्तु क्या यह कुसूर उनका है ? इसके सिवा शिक्षितों की संख्या पर भी सभी कुछ निर्भर नहीं होता। इङ्गलैंड में ही "रिफार्म बिल" "सुधार प्रस्ताव" जब पास हुआ था, कितने मनुष्य शिक्षित थे ? क्या यह सत्य नहीं है कि वोट देनेवाली संस्थाएँ और ग्राम, उस समय रुपयों से खरीद लिये जाते थे ? उस समय कितने मनुष्य राजनीति और प्रजातंत्र आदि के सिद्धान्त, जैसा कि वे आज-दिन समझे जाते हैं, समझते थे ? कहा जाता है कि शिक्षित लोग अशिक्षितों के साथ न्याय न करेंगे, वे उनके हितों की, स्वार्थों की रक्षा न करेंगे ?

क्यों ?

क्योंकि उनके स्वार्थ भिन्न हैं ? क्योंकि वे शिक्षित हैं ? किन्तु विरोधी एफ्रिकावाले, कैनाडावाले, आस्ट्रेलियावाले और इङ्गलैंडवाले शिक्षित होते हुए भी अशिक्षित भारतवासियों की रक्षा करेंगे, उनकी उन्नति चाहेंगे, क्योंकि सबके स्वार्थ एक समान हैं ? शिक्षित भारतवासी अशिक्षित भारतवासियों के हितों को नहीं समझ सकेंगे, वे उनकी रक्षा न करेंगे क्योंकि वे भाई भाई हैं, एक ही माता की सन्तान हैं, एक ही स्थान में पैदा हुए हैं, एक ही जल वायु से पले हैं और क्योंकि एक ही स्थान की मिट्टी में उनको मिल जाना है किन्तु एफ्रिकावाले, कैनाडावाले, आस्ट्रेलिया और इङ्गलैंडवाले करेंगे क्योंकि वे गैर हैं, क्योंकि उनका विश्वास है कि गोरी जातियां ही शासन काज के लिए पैदा की गई हैं। मि० कर्टिस का न्याय, ज्ञान यही कहता होगा, उनका विवेक यही सिद्ध करता होगा किन्तु भारतवासियों का कहना है कि उनका शासन उनके भाई ही कर सकते हैं, भारतवासियों का शासन भारतवासियों से अच्छा कोई ग़ैर नहीं कर सकता। कहा जाता है कि भारत में

मतभेद

अधिक है, एक सम्मतिवाले शिक्षित लोग कम हैं, वे मिलकर अपनी आवाज़ को ज़ोरदार नहीं बना सकते और न वे अपने लोगों को विवश कर सकते हैं कि वे उनकी राय से चलें। यदि वास्तव में स्वराज्य की अयोग्यता के चिह्न ये ही हैं, यदि वास्तव में यह साबित करता है कि मि० कर्टिस सरीखे नीतिज्ञों की सलाह आवश्यक है तो मिसेज़ बीसेंट की सलाह के अनुसार मि० कर्टिस को शीघ्र ही इङ्गलैंड जाना चाहिये और जाकर वर्तमान सचिव मि० लायड जार्ज की सहायता करनी चाहिये जिसमें वे

कोई ऐसा ढंग निकालें जिससे युद्ध के अन्त होते ही होनेवाली मज़दूरों की हड़ताल रोकी जाय या उनको प्रबन्ध करना चाहिये कि युद्ध के अन्त होने पर ग्रेटब्रिटेन का शासनकाज

जर्मनों के आधीन

किया जाय क्योंकि इङ्गलैंडवाले इतने दिनों में भी आयर्लैंड के झगड़े को नहीं तय कर सके, या इसलिए क्योंकि वे लोग स्वत्वाभिलाषिणी रमणियों के हितों की, जिनकी संख्या प्रायः इङ्गलैंड की जनसंख्या की आधी है, रक्षा नहीं कर सके या उनके सम्बन्ध में कुछ निश्चय नहीं कर सके हैं। इतना ही नहीं मंत्रिमंडल के नितप्रति के झगड़े क्या सूचित करते हैं, मि० एस्किथ, बानरला, लायड जार्ज, बालफ़ोर अपनी मर्ज़ी के माफिक दूसरों को क्यों नहीं चला सके? यह सब होते हुए भी यदि इङ्गलैंड-वाले अपना शासन कर सकते हैं तो भारत-वासी भी अपना शासन करने के सर्वथा योग्य हैं। हमारे विरोधीगण शक्तिशाली हैं, उनके हाथ में सत्ता है, पुस्तकों, पैम्फलेटों द्वारा वे साम्राज्य के निवासियों के मत पर अपना प्रभाव डालेंगे,

जज और जूरियों

के सामने एकतर्फा मुकदमा उपस्थित किया जायगा, एकतर्फा डिग्री हो जायगी। प्रश्न

अब या कभी नहीं

का है, यदि इस समय भारतवासी एक स्वर से अपना निश्चय नहीं प्रगट करते कि वे साम्राज्य में किसी से नीचे या दबकर न रहेंगे, वे बराबर के अङ्ग होंगे, जब वे बराबर से कष्ट सहते हैं, रणक्षेत्र में कँधे से कँधा भिड़ाकर

जीवन की आहुति

देते हैं तो सुख में भी वे समान भाग लेंगे, अधिकार भी वे बराबर के चाहते हैं, उनका अभीष्ट सिद्ध न होगा। भारतवासियों को यह सदा ध्यान में रखना चाहिये कि उनका भविष्य उनके हाथों में है, गैरों के नहीं। वे जो चाहेंगे वही उनको प्राप्त होगा न कि वह जो

मि० कर्टिस

या उनके अन्य भाई देना चाहें। अफ़सरगण और मि० कर्टिस आते जाते रहते हैं, भारतवासी यहाँ सदा रहेंगे और उनकी मर्ज़ी के मुताबिक ही कोई भविष्य निर्धारित हो सकता है।

❋

क्या हमें उपनिवेशों की दासता स्वीकार होगी?

एक शब्द में नहीं, कभी नहीं और कदापि नहीं। क्योंकि हम दास होना नहीं चाहते, क्योंकि मनुष्य होते हुए ईश्वरप्रदत्त मनुष्य के अधिकार

स्वतन्त्रता

का हम उपभोग करना चाहते हैं। क्योंकि हम उनसे किसी बात में कम नहीं। यह सत्य है कि उनका रंग गोरा है, हमारा काला किन्तु यह किसी तरह की श्रेष्ठता या हीनता का द्योतक नहीं। क्योंकि हम भी मनुष्य हैं, पशु पक्षी नहीं और किसी मनुष्य को यह उचित नहीं कि वह अपनी स्वतंत्रता खो दे, अपने को दास या गुलाम बनाले, क्योंकि किसी मनुष्य को अधिकार नहीं कि वह किसी मनुष्य पर—जिसके आँख है, हृदय है और हाथ पैर हैं, जिसके बुद्धि है, विवेक है और जो अपना भला बुरा स्वयम् सोच सकता है—अधिकार जमाये और प्रभू बने। क्योंकि भारतवासी भेड़ बकरी नहीं, कोई जायदाद नहीं जिसके मालिक को यह अधिकार हो कि वह स्वयम् उसका मालिक रहे, उसे रेहन बय कर दे या किसी को अधिकारी साझी बना ले। क्योंकि जब देश से निकाले हुए, दंडित अपराधी या हत्याकारियों की सन्तान आप अपना प्रबन्धकर सकती हैं तो भारतवासी जो सर्वोत्तम मनुष्य हैं, जो सदा से राज करते आये हैं, जिनके पूर्वजोंने संसार को सभ्यता दी, जंगलियों को कपड़ा पहि-

नना सिखलाया और संसार को धर्म दिया वे अवश्य ही अपना प्रबन्ध आप करने के सर्वथा योग्य हैं। क्योंकि उपनिवेशवाले संकीर्ण दृष्टि हैं, अभी तक वे अपने ही यहाँ के पुराने अधिवासियों के साथ, जिनकी सम्पत्ति, जिनका देश वे हड़प बैठे हैं, न्याय नहीं कर सके हैं। क्योंकि आज दिन भी वे भारतवासियों को कुली समझते हैं, क्योंकि आज इस समय भी भारतवासियों को उनके देश में स्वतंत्रता से विचरने का अधिकार नहीं। क्योंकि जब वे हमारे मालिक नहीं तब तो यह हाल है, जिस दिन वे हमारे प्रभू हो जायँगे उस दिन क्या होगा ? अन्तिम किन्तु वास्तव में सबसे महत्वशाली कारण यह है कि भारतवासी साम्राज्य के भक्त हैं, प्रेमी हैं, वे उसको अचल बनाना चाहते हैं और उनका विश्वास है कि जो साम्राज्य, न्याय और उदारता की नींव पर नहीं खड़ा होता वह क्षणभंगुर होगा, सम्भव है काले बादलों में वह बिजली सी चमक हो जाय किन्तु उसका काल भी विद्युत-काल ही होगा।

❀

प्रलय-मेघ की छाया।

गगनमंडल में सर्वनाशी घनघोर घटा की टुकड़ियाँ दिखाई देने लगी हैं। मि० एन्ड्रू ज़ को खबर मिली है कि फ़िज़ी द्वीप में भारतवासियों को कुली की हैसियत से अभी ५ वर्ष तक और जाना होगा। भारतवासी इसके विरुद्ध हैं वे अपने भाइयों के साथ, बहनों के साथ अन्याय और अत्याचार नहीं होने देना चाहते, वे कहते हैं कि उनके भाई मनुष्य हैं और गाय बकरियों के समान बेचे नहीं जा सकते, वे कहते हैं कि संसार-चक्र से वे हीन हो गये हैं किन्तु

आत्म-सम्मान

का माद्दा उनमें है।

बड़े लाट की कौंसिल में माननीय मालवीय जी के प्रस्ताव के उपस्थित करने पर प्रजापालक लार्ड हार्डिंज ने कहा था कि इस

हेय कुली प्रथा

का शीघ्र ही अन्त होगा। आज प्रायः इस बात को एक वर्ष से अधिक हो चुका है किन्तु तब भी दीन भारतवासी भेजे हो गये हैं। यह अन्याय अब बढ़ता दिखाई देता है। भारतवासियों को आँखें खोलनी चाहियें, प्रतिवाद और आन्दोलन की नितान्त आवश्यकता है, इस अत्याचार को बन्द करना सर्वथा उनके हाथों में है। इन्हीं सब कारणों से हम कहते हैं, कल्पवृक्ष स्वराज्य की प्राप्ति हम लोगों के लिए अनिवार्य रूप से आवश्यक है।

❀

खबरदार ! भारत में खतरा है !!!

पाठक घबराँय नहीं, भारत में जर्मन नहीं आ रहे हैं और न भारत में बलवाही होनेवाला है। स्वार्थान्धों के एक प्रबल नेता ने इस शीर्षक से एक लेख लिख मारा है क्योंकि उसे अपनी रोटियों का खतरा है, डर है कि उसके भाइयों की रोज़ी खतरे में है। पाठकों को विदित है कि बड़े लाट की व्यवस्थापक सभा के हमारे

वीर १९ प्रतिनिधियों ने

युद्ध के बाद सुधार का एक आवेदन-पत्र उपस्थित किया था। "मर्यादा" की किसी पिछली संख्या में पाठक उस आवेदन-पत्र को पढ़ चुके हैं। वही पत्र खतरा पैदा करनेवाला है। बम्बई के भूतपूर्व गवर्नर लार्ड सिडेनहेम ने "नाइनटीन्थ सेंचुरी" में एक लेख लिखने का कष्ट उठाया है। आपका कहना है कि ब्रिटिश सरकार को साफ साफ कह देना चाहिये कि वह इस प्रस्ताव को स्वीकार न करेगी, इसमें ढिलाई या आनाकानी करना भयावह है। लार्ड सिडेनहेम हमारे

पुराने मित्र

हैं। संयुक्तप्रान्त की कार्यकारिणी समिति के प्रस्ताव का भी आपही ने विरोध किया था,

आप सदा ही सुधार के विरुद्ध रहे हैं, इसका कारण भी प्रत्यक्ष ही है। यदि जैसा सुधार हम लोग चाहते हैं, जो सर्वथा उचित है और जिसके सम्बन्ध में हमारे प्रतिनिधियों ने एक स्वर से अपनी सम्मति दी है, हो जाय (जिसका होना सर्वथा भारतीय जनता पर निर्भर है) तो लार्ड सिडेनहेम और उनके भाइयों की रोटी या

रोज़ी खतरे

में हो जायगी। यदि सिविल सर्विस की परीक्षा भारत में होने लगी तो फिर विलायतवालों को इतनी संख्या में कब स्थान मिलना सम्भव है? यदि उच्चपदों पर भारतवासी नियुक्त होने लगें तो लार्ड महोदय के भाइयों को ऐसी नौकरियां कहां मिलेंगी? यदि भारत में नौकरियां न मिलीं तो इतना वेतन संसार के किस देश में दिया जाता है? एमेरिका के से कुबेरालय में भी तो सिविल सर्विस के खाते में इतना व्यय नहीं होता। यदि विदेश से आनेवाले मालों पर हम लोगों ने कर बैठाना शुरू किया जिसमें कि हमारे उद्योग-धन्धे पनप सकें तो पहिले मैंचेस्टर और लैंकाशीयर पर चोट पड़ेगी। यह भी खतरे की बात है। यदि भारतवासी स्वयम्-सेवक बनने लगें यदि अस्त्र शस्त्र चलाना उनको आ गया, यदि सेना में उच्च-पद उनको मिलने लगें तो अपने देश की रक्षा वे स्वयम् कर लेंगे, विलायती गोरों की रोजी, जो यहां आकर चैन करते हैं, खतरे में हो जायगी। ग्रेट ब्रिटेन के निवासियों की ही नहीं वरन् सभी बलदर्पी और उन्नत जातियों की रोज़ी भारत को स्वराज्य मिलने से खतरे में हो जायगी क्योंकि भारतवासी अपना प्रबन्ध कम से कम खर्च में कर लेंगे और साथ ही आवश्यक वस्तुओं को भी बना लेंगे। जितना धन उनको सेना में

व्यर्थ-व्यय

करना पड़ता है वे अपने भाइयों की शिक्षा में व्यय करेंगे। जहां तक मालूम होता है यही सोच समझ कर लार्ड सिडेनहेम ने

खतरे का चीत्कार

किया है। यदि स्वार्थ से वे प्रेरित न होते, यदि अपनी और अपने देश-भाइयों तथा उनके सम्बन्धियों की

रोटी का सवाल

उनके सामने मुंह बाये न खड़ा होता तो उनको

विष नहीं अमृत

दिखाई देता। वे कहते कि सवाल यह नहीं है कि इङ्गलैंड का हित हो या भारत का, सवाल यह है कि न्याय क्या है, उचित क्या है और क्या करने से संसार में दोनें मुंह दिखलाने लायक रह सकते हैं और दोनों का अस्तित्व अचल और अटल हो सकता है। वे कहते कि "सन्तुष्ट भारत" से बढ़कर ग्रेट ब्रिटेन के

शस्त्रागार

में कोई अमूल्य अस्त्र नहीं हो सकता। वे कहते कि भारतवासी सर्वथा योग्य हैं, उनको मौका देना चाहिये कि वे अपनी योग्यता प्रदर्शित करें, उनका शासन उनके हाथ सौंपना चाहिये और देखना चाहिये कि वे कितनी सफलता से उसे चलाते हैं। वे कहते कि जब यूरोप के निवासी, जिनकी सभ्यता, स्वार्थपरायणता और विषयलोलुपता पर स्तम्भित है, स्वराज्य के उपयुक्त हैं तब भारतवासी सब से पहिले स्वशासन के योग्य हैं क्योंकि वे तो धर्म, परोपकार, न्याय और उदारता को ही

जीवन समझते हैं।

वे कहते कि इङ्गलैंड तो कह रहा है कि वह हीन जातियों के स्वत्वों के लिए युद्ध में सम्मिलित हुआ है, वह चाहता है और सन्धि के समय वह इस बात का स्थायी बन्दोबस्त करना चाहता है कि भविष्य में कोई बलदर्पी किसी हीन या कमज़ोर जाति को कुचल न सके, उसके शासन को अपने हाथों में न ले सके, उसके स्वत्वों को अपहरण न कर सके, क्या

यह सब शिक्षा, यह सब बन्दोबस्त जर्मनी के लिए ही है ? बेलजियम, सर्विया, मांटिनिग्रो आदि को स्वतन्त्र करना और भारत को अस्वतन्त्र रखने का अर्थ क्या होगा ? वे कहते कि कहनेवाले लोग कहेंगे कि इङ्गलैंड परमार्थ से नहीं वरन् स्वार्थ से प्रेरित था; बेलजियम की दोहाई देकर लड़ने में भी उसका कोई स्वार्थ रहा होगा। अस्तु जो कुछ हो, हम समझते हैं और हमारा यही विश्वास है कि लार्ड सिडेनहेम ने अदूरदर्शिता और स्वार्थ से प्रेरित होकर ही प्रस्तावित सुधारों के

विरोध का झंडा

उठाया है। यदि ऐसा न होता तो इसी शीर्षक के साथ वे यह लिखना उचित समझते कि भारतवासियों की न्यायानुमोदित, मनुष्योचित आकांक्षाओं का आदर करना उचित है, उनके एक एक सुधार के प्रस्ताव परम आवश्यक हैं, जितना वास्तव में भारतवासियों को चाहिये, उससे वे बहुत कम मांग रहे हैं और इस प्रार्थना को सुनी अनसुनी करने से खबरदार! भारत में खतरा है, पठित और अपठित, अमीर और गरीब, किसान और वकील, बँगलों के रहनेवाले और पेड़ के नीचे सोने वालों, नरमदलवाले और राष्ट्रीयदल वालों में, इनमें ही नहीं वरन् आन्दोलनकारियों और उनमें भी जिन्होंने कभी आन्दोलन का नाम नहीं सुना, भीषण असन्तोष फैलेगा।

पेट के पुजारियों

को यह पहिले ही पहिल खतरा नहीं दिखाई दिया है। जब जब सुधार की सम्भावना दिखाई दी है, हमारे मित्रों ने ऐसा ही रौला मचाया है। लार्ड रिपन के समय में, जिस समय कि

स्थानिक स्वराज्य

की चर्चा चल रही थी, एंग्लो-इन्डियनों ने यह भविष्यद्वाणी की थी कि "भारत के राज्य के अन्त का सूत्रपात हो रहा है।" "इलबर्ट बिल" के समय में हमारे मित्रों ने ऐसी बातें कहीं थीं:—

"Shall we be judged by the Nigger?" Shall he send us to Jail? Shall he be put in authority over us? Never! It is impossible. Better that British Rule in India should end than that we be obliged to submit to such humiliating laws."

क्या आज लार्ड सिडेनहेम भी इन्हीं विचारों से प्रेरित नहीं हैं, नहीं तो भारत ऐसे राजभक्त और जाँनिसार करनेवाले देश में "खतरा" कैसा और कहाँ है ?

❋

भेदभाव क्या इतना होगा ?

सुनते हैं भारत में रहनेवाले यूरोपियन तथा एंग्लो-इन्डियन लोगों के लिए सैनिक-सेवा अनिवार्य होगी, वे सेना में भर्ती होने के लिए विवश किये जायँगे। हमको इस सम्बन्ध में इतना ही कहना है कि भेदभाव की सूरत क्या यहां अब इस रूप में होगी ? भारत में रहनेवाले भारतवासियों के लिए यही नियम क्यों नहीं बनाया जाता ? अपने राज्य की भलाई अँगरेज़ अच्छे प्रकार समझ सकते हैं किन्तु हम यह कह देना अपना धर्म समझते हैं क्योंकि हम साम्राज्य के भक्त हैं, कि भारतवासियों को अलग रखने का अर्थ पढ़े लिखे ही क्या, झोपड़ों में रहनेवाले भारतवासी भी समझेंगे। अविश्वास, अविश्वास को पैदा करता है और साम्राज्य के लिए यह अच्छा न होगा, आगे प्रभूगण की मर्जी।

❋

एक और कमीशन।

जहां भारत प्लेग, मलेरिया, दरिद्रता आदि का मुख्य स्थान है, वहीं यह "कमीशनों" के लिए भी एक खासा नरम चारा है। भारत के इतिहास में कमीशनों का पोथा भरा पड़ा है,

उनमें जितना व्यय हुआ, उनके लिए जितना कागज़ रंगा गया उसका

सहस्रांश फल

भी यदि होता तो शायद हमारी आज यह दशा न होती किन्तु हमसे मतलब क्या, न हमारी इच्छा से उनका जन्म ही और न हमारी नाराज़ी से उनका अन्त ही हो सकता है। अब एक

नया कमीशन

बैठनेवाला है। अभी नहीं, फिर से जाड़ा आवेगा तब। लार्ड चेम्सफोर्ड का यह लाड़ला है और कलकत्ता विश्वविद्यालय के सम्बन्ध में यह जाँच पड़ताल करेगा। शिक्षा सम्बन्धी धड़ाधड़ कमीशन बैठ रहे हैं। लार्ड कर्ज़न के कमीशन को अभी बहुत दिन नहीं बीते हैं। दस बारह वर्ष में उसके फलों की जांच नहीं हो सकती यद्यपि शिक्षा को सरकारी बना देने में उसने कोई कोरकसर नहीं की है।

अब क्या होगा ?

सो ईश्वर जाने। हम यह जानते हैं कि कलकत्ता विश्वविद्यालय बहुत दिनों से एंग्लो-इंडियनों की निगाह में चढ़ा हुआ है, यह भी हमसे छिपा नहीं कि अफसरों की दृष्टि से भी वह परे नहीं है।

"बाबूरिडिन युनीवर्सिटी"

"बाबू अधीनस्थ विश्वविद्यालय" इसका प्यारा नाम है, इसी अधिकार की इतिश्री करना तो इस कमीशन का उद्देश्य नहीं है ?

हमें क्या ?

नहीं नहीं हमको तो बहुत कुछ है किन्तु हमारा अधिकार क्या ?-हमारी खुशी या नाराज़ी का सवाल कैसा किन्तु सब कुछ होते हुए भी

धर्मतः

हम यह कहने को बाध्य हैं कि कमीशन की कोई आवश्यकता नहीं। अच्छा है तो, बुरा है तो, विश्वविद्यालय से हम लोग सन्तुष्ट हैं और कमीशन में जो कुछ व्यय होना है वह कहीं अच्छे कामों में व्यय किया जा सकता है।

जापान और युद्ध का अन्त।

भारतवासी ही नहीं वरन् जापानी भी यह सोचने में व्यस्त हैं कि युद्ध के बाद उनका भविष्य क्या होगा ? यह किसी से छिपा नहीं कि युद्ध के कारण जापान बहुत अमीर हो गया है, नूतन उद्योग-धन्धे भी कितने ही जारी हो गये हैं, नई नई फैक्टरी और मिलें खुल गई हैं।

सवाल यह है

कि युद्ध के बाद जब इङ्गलैंड, बेलजियम, आस्ट्रिया-हंगेरी सब रोज़गार में चमकेंगे, जब बाजारों के लिए प्रतिद्वन्द्विता जारी होगी तब जापान कहां जायगा। इतना ही नहीं इस समय अधिक संख्या में जो मनुष्य और स्त्रियां उद्योग-धन्धे में लगी हुई हैं, मिलों की कमी होने पर या व्यवसाय के ढीले पड़ने पर उनका क्या होगा? साथ ही साथ यह भी प्रश्न उठ रहा है कि एकदम व्यापार की वृद्धि से जो देश में धन आगया है, निवासियों की जो आय बढ़ गई है, साथ ही साथ रहन सहन का जो खर्च बढ़ गया है, बाज़ारों के बन्द होने पर यह समृद्धि कहां रहेगी और जो लोग अधिक खर्च के आदी हो गये हैं, वे क्या करेंगे ? अन्य देशों की अच्छी वस्तुओं के सामने

जापानी माल

चलेगा भी नहीं। इधर घर में तंगी होने पर भाई बन्द विदेशों को जाने को तैयार होंगे। उसमें भी एमेरिका आस्ट्रेलियावाले भिड़ने को तैयार होंगे। यह सब सोच कर जापान

चीन को शिकार

बनाना चाहता है। वह कहता है कि चीन गरीब देश है। गरीब देश को अच्छी और बुरी

वस्तु को देखने की फुरसत या अधिकार नहीं। साथ ही कच्चे माल के लिए उसे एमेरिका, भारत, इङ्गलैंड और बेलजियम पर निर्भर रहना पड़ता था। वह कहता है, विदेशियों पर अपनी आवश्यक वस्तुओं के लिए निर्भर रहना न शांति और न युद्ध के समय में उचित है। किन्तु चीन में इंगलैंड,

एमेरिका की विभीषिका

है। यह ख्याल भी कि एमेरिका ने भी इस युद्ध में खूब पैदा किया है और वह भविष्य में चीन को अपना मुख्य बाज़ार बनायेगा, जापानियों की निद्रा भंग कर रहा है। एमेरिकावाले चीन को कर्ज़ भी दे रहे हैं और एमेरिका से वहां रुपया भी आरहा है। जापानी इसीलिए यह आन्दोलन कर रहे हैं कि एमेरिका से जो कुछ रुपया लिया जाय वह जापानियों की राय से, साथ ही यह भी कि जापानी महाजनों का भी रुपया उसमें सम्मिलित हो। एमेरिकावाले युद्ध का सामान एकत्र कर रहे हैं, नौ-सेना की भी वृद्धि हो रही है और हवाई तथा फिलिपाइन द्वीप में जो किले तैयार हो रहे हैं इनका मतलब भी जापानी समझने का प्रयत्न कर रहे हैं। रूस का बाज़ार जापानी हाथ में नहीं ले सकते क्योंकि वे अधिकतर सौदा उधार चाहते हैं और प्रायः सभी बाज़ारों में इङ्गलैंड और एमेरिका का प्राधान्य है। सब कुछ देखकर जापान की एक ही गति चीन है और उसीकी ओर उसकी निगाह है। स्वतन्त्र देश के वासियों का भविष्य सोचना उचित और युक्ति-संगत भी है क्योंकि उनका भविष्य उनके हाथों में है। जिनको खाना खिलावें दूसरे, कपड़ा पहिनावें दूसरे, जिनके गृहस्थी और घरबार का प्रबन्ध का भार दूसरों पर है, वे कर ही क्या सकते हैं और यदि सोचें भी तो उनका भविष्य उनके हाथों में होते हुए भी उनके हाथों में है कहाँ?

सरकारी भारत के प्रतिनिधि।

पाठकों को विदित है कि साम्राज्य के निवासियों ने साम्राज्य के अधिष्ठाताओं से यह कहा था कि युद्ध में जब हमारा योग देना कर्तव्य और धर्म है तो युद्ध के आरंभ, संचालन तथा सन्धि करने में हमारा हाथ होना चाहिये। यह सर्वथा न्याययुक्त था और लोगों ने माना भी। यह तय हुआ कि साम्राज्य की सभा Imperial conference में सब के प्रतिनिधि होंगे। भारतवासियों ने भी यह कहा था और कांग्रेस ने प्रस्ताव किया था कि

साम्राज्य सभा

में भारत के भी प्रतिनिधि होने चाहियें। यह कहा गया था कि प्रतिनिधि सच्चे होने चाहियें, वे भारतवासियों द्वारा चुने गये हों इत्यादि। यह भी कहा गया था कि भारत-सचिव या सरकारी मनुष्य हमारे प्रतिनिधि नहीं हो सकते।

भारत-सचिव

ने तार द्वारा सूचना दी थी कि साम्राज्य-सभा में योग देने के लिए उनको दो भारतीय प्रतिनिधि सहायकों की आवश्यकता है। समझा गया था कि भारतवासियों की सुनवाई होगी। अब "नूतन दृष्टिकोण" का राग अलापा जाता है और भारतवासियों की अभिलाषा पूरी की जायगी। किन्तु नहीं, हमारे प्रतिनिधि बनाये गये हैं

सर जेम्स मेस्टन

और मि० एस० पी० सिनहा। सर जेम्स मेस्टन हमारे प्रतिनिधि नहीं हो सकते, इसके सबूत की विशेष आवश्यकता नहीं। वह अङ्गरेज़ों और सरकारी भारत के प्रतिनिधि भले ही हों किन्तु वे हमारे नहीं हैं, न उनको हमने चुना ही है और न वे जो हम चाहते हैं, कहेंगे ही। हमको इसके कहने में संकोच नहीं कि भारतीय सरकार ने इनको चुनकर

भूल की है

विशेषकर मि० कर्टिस के षड़यंत्र के भंडा-फोड़ के बाद। बजाय इसके कि कोई अधिकारी यह प्रश्न पूछता कि सरकारी अफसर होते हुए आप आन्दोलनकर्ता कैसे हुए और ऐसे घृणित आन्दोलन में आपने योग क्यों दिया, छोटेलाट को प्रतिनिधि बनाकर भेजने का अर्थ यह हुआ कि यहाँ तो आप अपनी राय ही प्रगट करते थे और चेष्टा करते थे कि वह मानी जाय किन्तु अब आप स्वयं जाकर उस सभा में बैठिये और अपनी इस राय को कार्य में परिणत करिये। सभा में, भारत साम्राज्य तथा अङ्गों में कैसा नाता हो इस संबन्ध में विचार होगा। सर जेम्स की राय विदित है, यह सबको मालूम है कि भारतवासियों की वह राय नहीं, ऐसी अवस्था में वह जो राय वहाँ देंगे, वह उनकी होगी या भारतवासियों के प्रतिनिधि की? इन सब के ऊपर जिसमें हमको विश्वास नहीं वह हमारा प्रतिनिधि कैसे हो सकता है? हमारी समझ में सर जेम्स को चुन कर भारतीय सरकार ने

भूल नहीं अन्याय

किया है। सर एस० पी० सिनहा, काँग्रेस के सभापति हो चुके हैं किन्तु उनमें भी नवभारत को विश्वास नहीं। उनको भी अभी स्वराज्य में विश्वास नहीं है। यह सन्तोष की बात है कि सेना में भारतवासी, अस्त्र-आईन आदि विषयों के सम्बन्ध में उनके विचार उदार हैं किन्तु सरकार से यह छिपा नहीं कि भारतवासियों ने उनके भाषण को अच्छा नहीं कहा था। प्रधान पत्रों ने सदा उनके विरुद्ध लिखा है। ऐसी अवस्था में उनका चुनाव भी अनुचित ही है। सबसे महत्व की बात इस चुनाव के सम्बन्ध में यह होनी चाहिये थी कि चुनाव का अधिकार भारतवासियों को दिया जाता। वास्तव में तभी भारत का मान होता। एंग्लो-इंडियन लोगों तथा सरकार की ओर से कहा जाता है कि उपनिवेशों में भी चुनाव नहीं हुआ वहाँ से भी प्रधान लोग, भारतसचिव की भांति निमंत्रित किये गये हैं। यह सच है किन्तु जो यह दलील पेश करते हैं उनको सदा ध्यान में रखना चाहिये कि उपनिवेशों की सरकार विदेशी सरकार नहीं है, वह प्रजा की प्रतिनिधि है और प्रधान प्रजा द्वारा चुने जाने पर ही प्रधान होता है। भारत सरकार दूसरी वस्तु है। भारत-सचिव न हमको जानते हैं और न हम उनको। उन्होंने कभी भारतवासियों की सूरत, उनका रहन सहन, उनके वन उपवन कभी स्वप्न में भी देखा है या नहीं इसमें भी सन्देह है। वे कभी हमारे साथ घूमे फिरे नहीं, हमसे बोले नहीं वे क्या जान सकते हैं कि हमें दर्द कहाँ पर है, कैसा है, और कौनसी औषधि से हमको लाभ पहुंच सकता है। बम्बई की

होमरूल लीग

ने इन चुनावों का विरोध किया है। हम आशा करते हैं कि सभी स्थानों में ऐसी विरोध सभाएँ होंगी, यदि भारतवासियों द्वारा चुना हुआ प्रतिनिधि साम्राज्य में सम्मिलित नहीं होता तो भविष्य में बराबरी के दावे का स्वप्न निर्मूल है।

❀

देशी राजों महाराजों

की ओर से भी एक प्रतिनिधि भेजा गया है, किन्तु चुनने का अधिकार स्वयम् राजों महाराजों को नहीं दिया गया, कदाचित वे अपनी भलाई बुराई उतनी ही अच्छी तरह से नहीं समझ सकते जितनी कि भारत सरकार।

महाराज बीकानेर

प्रतिनिधि चुने गये हैं। चुनाव अच्छा है। महाराजा बीकानेर योग्य शासक हैं और हमारा विश्वास है कि वे राजे महाराजों के हित पर

सदा दृष्टि रक्खेंगे। ब्रिटिश भारत के सम्बन्ध में तो यही कहना कि मि० चेम्बरलेन हैं ही, सर जेम्स भी पहुंचते ही हैं, लार्ड सिडेनहेम और मेकडानल भी बुला लिये जायँ बस सब बन जाय ?

प्रतिनिधि द्वारा विवाह।

पश्चिमीय संसार उन्नतिपथ पर तेज़ी से दौड़ता हुआ अब सर के बल भागने लगा है। आस्ट्रेलिया में मि० ह्यूग्स एक बिल उपस्थित करनेवाले हैं। बिल का उद्देश्य यह है कि विवाह के समय वर का उपस्थित रहना अनिवार्य न हो। उसका प्रतिनिधि उसके स्थान पर वधू को वर लिया करे और बाद में वधू असली वर के पास चली जाय या उस दिन से वह उसकी स्त्री मानी जाय। युद्ध के आरम्भ होते ही ऐसा नियम फ्रांस में प्रचलित हुआ था कारण "वर" रणक्षेत्र के मैदान में है इधर विवाह स्थगित नहीं रक्खा जा सकता। वह दिन शीघ्र ही आता दिखाई देता है जब विवाह-संस्कार भी जड़ से उड़ जायगा और एक दूसरे से यह कह देना ही कि हम पति पत्नी हैं काफी समझा जायगा। बढ़े चलो और क्या कहें ?

स्वराज्य संख्या

के लिए लेख प्रायः सब एकत्र होगये हैं। ला० लाजपत राय; मि० तिलक; मि० तैलङ्ग तथा और भी दो एक सज्जनों के लेख अभी नहीं आये हैं किन्तु आशा है ये शीघ्र ही प्राप्त होंगे। इधर उदार ग्राहकों और स्वराज्य के प्रेमियों के पत्रों की भी कमी नहीं है। एक बहिन ने लिखा है कि संख्या।) पर बेची जाय, सम्भवतः बहुत से ग्राहक अपने मित्रों को बाँटने के लिए चार चार छः छः प्रतियां अलग से लेंगे। उन्होंने स्वयम छः प्रतियों के लिए आर्डर भेजा है। दाम के सम्बन्ध में अभी हम कुछ नहीं कह सकते कारण यह कि यही नहीं कहा जा सकता कि स्वराज्य संख्या की

पृष्ठ संख्या

कितनी होगी किन्तु इतना हम अवश्य बतला देना चाहते हैं कि कम से कम मूल्य पर यह संख्या बेची जायगी। ग्राहकगणों से यह भी निवेदन है कि वे कृपाकर इसकी सूचना दे दें कि वे कितनी संख्याएँ लेंगे। कागज़ छपाई आदि का मूल्य बहुत बढ़ा हुआ है, विचार यह है कि आवश्यकता के अनुसार ही "स्वराज्य संख्या" छपाई जाय। हम चाहते हैं कि वह अङ्क प्रत्येक हिन्दी पढ़नेवाले के हाथ में हो। इसी विचार से कम से कम मूल्य पर वह बेची जायगी। यदि सफ़ेद कागज़ से परता न पड़ा तो वह बादामी कर दिया जायगा। जिन महानुभावों को जितनी प्रतियों की आवश्यकता हो पहिले से सूचना भेज दें। स्वराज्य-संख्या का जितना ही प्रचार हो उतना ही अच्छा होगा क्योंकि विषय-सूची बढ़ा दी गई है और प्रयत्न यह किया जा रहा है कि सभी आवश्यक विषयों का उसमें समावेश हो।

मैनेजर, मर्यादा, प्रयाग।

पुनश्च—अपने इष्ट मित्रों को भी इस विज्ञप्ति की सूचना दे दीजियेगा।

अभ्युदय प्रेस, प्रयाग में बद्रीप्रसाद पाण्डेय के प्रबन्ध से छपकर प्रकाशित हुई।
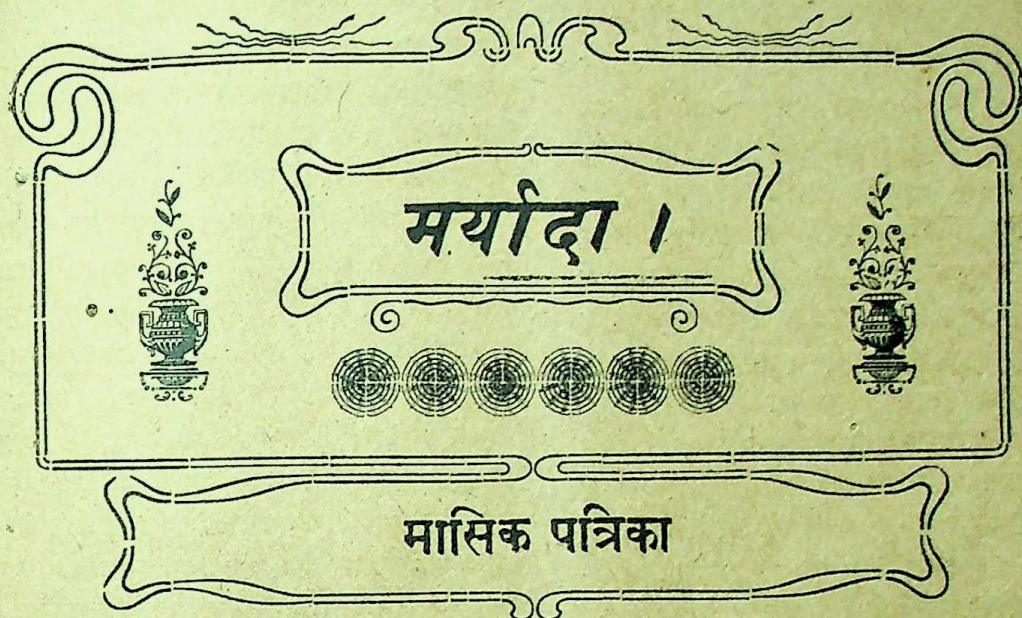
भाग १३] मार्च, सन् १९१७—फाल्गुन [संख्या ३

प्रेम।*

[लेखक—श्रीयुत जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी।]

अद्भुत प्रेम को व्योहार।
प्रेम किये नर परवश होवै पर पै निज अधिकार॥
प्रेम लिये नहिं बिगरत कछु है दिये नाहिं संहार।
प्रेमहिं सों रवि शशी उगत हैं फूलत फूल हजार॥
पौन चलत, प्रेमहिं को गावत पंछी जयजयकार।
नभसों सागर मिलत और नभ सागर मिलत अपार॥
प्रेमहिं सों पत्थर हू पिघलत बहति नदी की धार।
सरग लोक पृथवी पै आवत पृथी जात सुर द्वार॥
प्रेम गीत गूंजत नभ, छायी प्रेम किरन संसार।
प्रेमी बनहुं वेग अब प्यारे प्रेम जगत को सार॥

* मि० डी० एल० राय के एक गीत की छाया पर।

स्वराज्य साधना।

न चौरि हिंसा विजयश्च हस्ते।
(कालिदास)

भारत के आधुनिक राजनैतिक गुरू महात्मा दादाभाई नौरोजी की कृपा से सन् १९०६ की कलकत्ते की कांग्रेस में प्रथम वार हमारे राजनैतिक उद्योगों का अन्तिम लक्ष्य "सम्राट् की छत्रछाया में स्वराज्य प्राप्ति" घोषित हुआ था। वह बड़ा ही शुभ दिवस था। ऋषिकल्प सभापति के दक्षिण पार्श्वस्थ नरमदलवालों की पंक्ति में वाग्मीप्रवर सुरेन्द्रनाथ बनर्जी, प्रचण्ड प्रतापी सिंहसदृश मेहता महोदय, परमपद प्राप्त अल्पवयस्क एकनिष्ठ राजनैतिक महारथी गोखले आदि महाजनों के दर्शन हो रहे थे और वामहस्त पर पञ्जाबकेशरी दानवीर लाजपत, स्वाधीनता महामंत्र के प्रचारक स्वनामधन्य देवदूत अरविन्द प्रभृति नवीनपथ के पथिक, दृढ़ता, स्वार्थत्याग तथा विद्वत्ता की साक्षात् मूर्ति अपने पूज्य नेता धीर वीरलोकमान्य तिलक के सहित मञ्च की शोभा बढ़ा रहे थे। शत २ विभिन्न प्रादेशिक प्रतिनिधियों और अन्याय तथा अत्याचार की मर्मभेदी यातना से व्यथित प्रायः बीस सहस्र बङ्गवासी बन्धुओं से सभाभवन खचाखच भरा हुआ था। ऐसे समय में, बङ्गभङ्ग के साथ भारतीय सपूतों की मस्तिष्क-कोष में प्रवेश करनेवाले बहिष्कार-घोषणा की शुभ तिथि को मृत्युशैयाशायी आनन्दमोहन वसु सूतिका ने जिस स्वाधीनता-भाव रूपी बालक-रत्न का जनन कराया था, वयःश्रेष्ठ दादाभाई ने उसका नामकरण-संस्कार किया। उन्मत्तकारी मनमोहक नाम को सुनकर देशवासियों के आनन्द का ठिकाना न रहा। चार ही पांच दिन के उपरान्त प्रकाश्य सभा में सर्वसाधारण की ओर से नामकरण-संस्कार के उपलक्ष्य में कुलपति श्रीयुत नौरोजी को कलकत्ते के वीडन स्क्वायर में लोकमान्यजी ने उपहारस्वरूप हार्दिक धन्यवाद प्रदान किये।

तदनन्तर दो तीन वर्ष तक स्वार्थान्धता निशाचरी ने उक्त मनोहर नवजात शिशु के व्याज से बड़े २ कौतुक दिखलाये। आदर प्रदर्शनार्थ आत्मोत्सर्गरूपी खिलौना लेकर चारो ओर से भारतवासी दौड़ पड़े। इस दौड़ में कोई भी किसी से पीछे नहीं रहना चाहता था। स्वार्थत्याग की अतुलित शक्तिशालिनी तरङ्ग ने देश की राजनीति-नदी को भीषणरूप से संक्षुब्ध करने में कोई कसर नहीं उठा रक्खी। आकाशमंडल स्वराज्य के सुरभि-समीरण से व्याप्त हो गया। दुःख की बात इतनी ही है कि यह नयनानन्दकारी दृश्य अधिक दिनों तक न रहा। सन् १९०८ ई० से इस श्री का ह्रास होने लगा और १९१० में सब शान्ति हो गई। यह शान्ति सदा के लिए नहीं, कुछ दिनों के लिए ही हुई कारण स्वतन्त्रता के भाव का जहां एकवार जन्म हुआ फिर उसकी अकाल-मृत्यु होती ही नहीं। बिना फूले फले और पूर्णावस्था प्राप्त किये, उसका नाश होना नैसर्गिक नियम के विरुद्ध है। कवि ने ठीक ही कहा है:—

"Freedom's battle once begun.........
Though baffled oft yet ever won".

अर्थात् स्वतन्त्रता के भाव का एकबार जहां उन्मेष हुआ, फिर वारम्वार पददलित होने पर भी उसकी अन्तिम विजय अनिवार्य है।

चिरनिद्रा का आलिङ्गन न कर पोषकविहीन क्षुधापीड़ित प्रतिभाशाली नवजात शिशु अपेक्षाकृत अल्पावस्था ही में विद्याप्राप्ति तथा ब्रह्मचर्यपालन द्वारा पुष्टाङ्ग होने के निमित्त गुरू गृह को सिधार गया। उसकी लावण्यमयी मूर्ति नयनपथ से बहिर्भूत होकर अवश्य ही प्रच्छन्न होगई थी परन्तु प्रेमियों के मान-मंदिरों

में प्रतिष्ठा प्राप्त कर वह एक क्षणमात्र के लिए भी उनके हृदय-नेत्रों से अगोचर नहीं हुई थी।

भारत की आत्मा पूर्णावतार भगवान कृष्ण-चन्द्र की अनुकम्पा से किशोरत्व प्राप्त कर 'स्वराज्य' ने फिर दर्शन दिये हैं। परमाह्लाद का विषय है कि भारत के प्रधान शासक के सम्मुख भी दबे स्वर से आत्म-समर्पण-कथा की सत्यता स्वीकार कर ली गई है। स्वराज्योपासक युवक बन्धुओ! आओ, आज एक बार आनन्द-गान से आकाश गुञ्जारित कर दें। आज का दिन बड़ा ही शुभ है। नौ वर्षों के पश्चात् हमारे बिछुड़े हुए नेता जननी जन्मभूमि की भक्त्यग्नि में भेदभाव को भस्मीभूत कर भवदीय सम्मिलित शक्ति से स्वराज्य-साधना में तत्पर हो गये हैं। चिन्ता का कारण अब दूर हो गया है। सिद्धि के मार्ग में अब चाहे जितने नित्य नवीन काँटे क्यों न बिछाये जायँ किन्तु हमारी सफलता अनिवार्य है। एकबार इस गगन-भेदी नाद को उच्चारित करो, अष्टसिद्धि नवनिधि के आधार स्वराज्य की जय, भारतजननी की जय त्रयतापनिवारक स्वराज्य की बारम्बार जय।

परन्तु सावधान, अभी आनन्द से अधीर होने का समय नहीं है। दिल्ली अब भी दूर है। स्वराज्य-साधना साधारण और शान्तिपूर्ण नहीं। यह कठिन मन्त्र की, जिससे श्रेष्ठ दूसरा मन्त्र नहीं, साधना है। परन्तु स्मरण रहे कि जैसा यह मंत्र सर्वश्रेष्ठ है उसकी साधना भी वैसी ही यत्परोनास्ति विकट और विषम है। सबको मालूम है कि हीरा कौड़ियों के मोल नहीं मिलता। स्वराज्य-साधना, कवि के शब्दों में "तरवार की धार पर धावनो है"? इसलिए फिर सचेत करते हैं कि इस साधना को साधारण न समझो? तमसाच्छन्न काल-रात्रि में युगयाम बिताकर भयावनी भूमि में चहुं ओर प्रज्वलित अग्निकुण्डों के मध्य में यह मंत्र जपना पड़ेगा। भूत प्रेतगण विकराल वेष धारण कर भक्षण करने को आते हुए दृष्टिगोचर होंगे, डाकिनी शाकिनी बीभत्स नृत्य करके ध्यान भङ्ग करने का उद्योग करेंगी, श्मशानवासी दुष्टात्माओं के विकट चीत्कार तथा अट्टहास्य से हृदय दहल उठेगा, बटुक भैरव के शव-मांसाहारी वाहनों का कर्कश-क्रन्दन कर्णकुहरों में प्रवेशकर कोलाहल मचा देगा, समीपवर्ती शस्यक्षेत्र में परस्वापहरणार्थ प्रस्थान-प्रस्तुत दस्युओं की घोराकृतियां यमदूतों का स्मरण करावेंगी, पार्श्ववाहिनी प्रवाहिनी की प्रबल तरङ्गों का शब्द, कगारों के ढहने की घरघराहट मिश्रित होकर सिंहनाद का कार्य करेगा और सर्वोपरि खड्गहस्ता मुंडमालधारिणी लोलरसना श्मशानी की क्रोधकम्पित उल्लङ्घिनी मूर्ति का तांडव अवसन्न कर देगा। यह नैश-साधना एक ही रात्रि में सम्पादित नहीं होती। ऐसी भयावनी अनेक रात्रियां एकाग्र साधना में व्यतीत करने पर तब कहीं मंत्र सिद्ध होगा। इसीसे कहते हैं, आनन्द में अधीर न होवो, अभी दिल्ली दूर है। इस कठोर साधना में विश्वास ही तुम्हारा एक मात्र साथी होगा। यदि तुमने विश्वासकवच का त्याग न किया तो सिद्धि अवश्यमेव प्राप्त होगी, तुम स्वराज्य के अधिकारी समझे जाओगे अन्यथा साधना-भ्रष्ट विक्षिप्त होकर दुर्दशा में प्राणत्याग करना पड़ेगा।

बन्धुओ! तुम्हारे मुखमंडलों पर मन्दहास्य क्यों दृष्टिगोचर हो रहा है? क्या ब्राह्मण की इस यथार्थ सूचना को अतिशयोक्तिपूर्ण शब्द-जालमात्र समझ रहे हो? प्रियवरो! यह वागाडम्बर नहीं, प्रकृत वार्ता है। यदि विश्वास न होता हो तो स्पष्ट उदाहरण उपस्थित हैं। वह देखो, बम्बई और मध्यप्रदेश के अधिकारी साधना-रत श्रीमती बिसेंट के साथ कैसा अन्यायमूलक व्यवहार कर रहे हैं। प्रधान पुरोहित लो० तिलक का कंठावरोध करने का कैसा निंद्य उद्योग किया गया था। "न्यू इंडिया" और "प्रताप" प्रभृति पर द्वारुण "प्रेस ऐक्ट" के कैसे वार हुए हैं। पं० बाबूराव विष्णु पराड़कर,

बाबू श्यामसुन्दर चक्रवर्ती आदि सज्जन नजरबन्द किये जा चुके हैं। इन करतूतों का कारण क्या है ? एकमात्र स्वराज्य-साधना। सन् १६१०-११ ई० की जिस सुधार व्यवस्था से हमारे कतिपय दूरदर्शी नेता भी आत्म-विस्मृत हुए थे और उसमें साधना-बाधक कलह का जो अंकुर वर्तमान था उसने अब संयुक्तप्रदेश में सफल फूल दर्शन दिये हैं। मैं समझता हूं कि उदाहरणों का पुल बाँधने की कोई आवश्यकता नहीं; मधुर मुसक्यान को आवश्यक गम्भीर विचार की विषाद रेखा में परिणत कर देने को इतने ही उदाहरण पर्याप्त होंगे।

किसी भी दृष्टि से विचार करने से यह दिखाई देगा कि स्वराज्य प्राप्ति का पथ पुष्पाच्छादित नहीं, घोर कंटकाकीर्ण ही है। बड़ी कठिनता और परिश्रम से प्राप्त किये हुए अधिकारों और विशेष स्वत्वों को त्यागते भला किसे मोह नहीं होता। इसमें किसी का दोष नहीं। मानवप्रकृति ही ऐसी है कि उसे प्रभुत्व और सम्पत्ति अत्यन्त प्रिय प्रतीत होती है। अधिकार तथा स्वार्थ-लोलुप "स्वर्गज सेवा-विभाग" हमारे मार्ग में यथासाध्य बाधाएँ उपस्थित करने में कुछ भी इतस्ततः न करेगा। संख्या में अत्यल्प होने के कारण वेचारे उदारचेता अधिकारियों की दाल नहीं गल सकती। अनियंत्रित अधिकारीवर्ग (Bureaucracy) यथासाध्य सम्राट् के मंत्रियों को हमारी वास्तविक अवस्था का ज्ञान ही न होने देगा। अतएव स्वराज्योपासक बन्धुओ ! यदि सत्य ही सत्य स्वराज्य प्राप्त किये बिना तुम्हें सन्तोष न होगा तो भारतवैरियों का, साम्राज्य शत्रुओं का यथोचित प्रतिरोध करने के लिए कटिबद्ध होकर प्रस्तुत हो जाना उचित है। बिना-विरोध और प्रतिरोध के स्वराज्य के मधुर फल चखने की आशा वातुलता मात्र है। साम, दाम, दंड और भेद आदि सब प्रकार से तुमको इस साधना से विरत करने की चेष्टा की जायगी। कभी निस्सार सुधारों से भटकाने का प्रयत्न होगा तो कभी प्रेस ऐक्ट की तीक्ष्णधार तलवार से तुम्हारी लेखनी खण्डविखण्ड कर दी जायगी, कभी उदारचेता लार्ड हार्डिञ्ज सरीखा राजनीतिनिष्णात शासक मिष्ट वचनों से तुष्ट करने का यत्न करेगा तो कभी कर्जन तुल्य शास्ता माँ एशिया खण्ड को झूंठा कहकर वज्रप्रहार करने से नहीं चूकेंगे। संकीर्ण-हृदय अधिकारी हमारी शक्ति क्षीण करने को एक बार "वङ्ग-भङ्ग" करेंगे तो दूसरी बार स्वयम् सम्राट् महोदय दया करके हमारा दुःख दूर करेंगे। इस खींचातानी में यदि तुम अपने व्रत से विचलित हो गये, यदि फिर निस्सार सुधारों को—विष रस भरे कनक घट को, विचित्र कञ्चनमृग को—देख कर तुम्हारी लार टपक पड़ी, यदि कठिन परिश्रम से प्राप्य सुधा-समुद्र को त्यागकर तुम आलस्य के कारण मृग-जल के फेर में पड़कर इधर उधर दौड़कर प्राण देने लगे तो भारतीय राष्ट्रपिण्ड इधर से उधर ठोकरें खाता हुआ घिसते २ धूलि में मिल जायगा।

सावधान, इस बार एक नई विपत्ति के आविर्भाव की सूचना हुई है। यदि पूर्ण सिद्धि के बिना तुम अपने व्रत से ज़रा भी डिग गये तो ऐसे घोर अंधकार में फँस जाओगे कि फिर प्रकाश के दर्शन दुर्लभ हो जायँगे।

कवि की उक्ति है :—

दुसह दुराज प्रजान को क्यों न बढ़ै दुख द्वंद।
अधिक अँधेरो जग करत मिलि मावस रवि चंद॥

परन्तु दुसह दुराज जनित दुख द्वन्द की क्या कथा, तीन तेरह के कुराज के कारण भारत के तो तीन तेरह हो जाने की आशङ्का उत्पन्न हो गई है। मंगलमय मंगल करें। किन्तु करुणानिधान की करुणा उसी पर हुआ करती है जो स्वयम् अपने ऊपर करुणा करता है। भारत के सर्वनाश का उपक्रम देखकर, इसमें सन्देह नहीं कि, "राष्ट्रीय महासभा" (Congress) अब

देश का मत स्पष्ट रूप से व्यक्त करने में कदापि पश्चात्पद न होगी। किन्तु इतने ही से सिद्धि का मार्ग निरापद न हो जायगा। बिना प्रबल प्रतिरोध के, बिना कठिन तपस्या के, कदापि साधना सफल न होगी। हां, जिस समय तक महासंग्राम शान्त नहीं होता, तब तक प्रतिरोध और विरोध का झंडा न उठाकर यावत् विपत्तियों को धीरतापूर्वक सहन करना ही अभीष्ट है, चिरभ्यस्त नम्र निवेदन का स्थान घोर प्रतिरोध को प्रदान करना युक्तिसंगत नहीं; परन्तु साम्राज्य के पुनर्सङ्गठन-समय के लिए प्रस्तुत हो जाना परमावश्यक है। यदि उस समय भी हमारी उपेक्षा की जाय, मुकुटमणि के चरणतल में ही आश्रय देना निश्चित हो. यदि न्याय्य अधिकार देकर भारत, साम्राज्य के अन्यान्य अङ्गों का समकक्ष न बना दिया जाय, जिसकी सम्भावना अत्यल्प है, तो घोर विरोध, अदमनीय प्रतिरोध करना ही कल्याणकर होगा। देश के भाग्यनिर्णय करनेवाले दिवस के निमित्त प्रस्तुत रहो। वह दिन अब दूर नहीं है।

अब प्रश्न यह उठता है कि यदि इङ्गलैंड की राजनीतिज्ञता ने संकीर्णता से काम लेकर दीन भारत को सारे साम्राज्य का दास बनाना ही श्रेयस्कर समझा, तो फिर प्रतिरोध किस प्रकार से किया जायगा? प्रतिरोध के लिए प्रस्तुत रहने को उत्तेजित करने से यह प्रयोजन नहीं कि, अभीष्ट फल प्राप्त न होने पर देश में अराजकता फैलाई जाए। कदापि नहीं, स्वप्न में भी नहीं? बिना पशुबल का उपयोग किये ही घोर प्रतिरोध—ब्रह्मा विष्णु के आसन डिगा देनेवाला विरोध—किया जा सकता है। गौतम बुद्ध को जिस देश ने जन्म दिया था, उसमें हिंसा की शिक्षा देने का साहस कौन कर सकता है। देश को रक्तरञ्जित विप्लव में मग्न कर देने से भला कल्याण होना कब सम्भव है; हां, पाप की नाव परिपूर्ण करने का उद्देश्य चाहे सिद्ध कर लिया जाय। ऐसे अनिष्टकारी प्रतिरोध से प्रयोजन नहीं है।

हम उस वैध प्रतिरोध के पक्षपाती हैं, जिसे राजनीति-निपुण राजा प्रजा के समान सम्मानभाजन मनीषि गोखले ने भी त्रिवेणी-तट पर न्याय्य तथा वैध बतलाया था। यदि प्रश्रय और "देहिमे पद पल्लव मुदारम" से काम न चले तो हम वैध प्रतिरोध के लिए प्रस्तुत रहने की सूचना दे रहे हैं, जिसके द्वारा कर्मवीर गांधीजी ने सुदूर विदेश में स्वदेश की लाज रक्खी। हम उस अव्यर्थ प्रतिरोध की सम्मति दे रहे हैं जिसे, गांधीजी को उपाधि प्रदानकर शासक समुदाय ने भी वैध, प्रकारान्तर से स्तुत्य भी, स्वीकार कर लिया है। हम उस प्रामाणिक प्रतिरोध की दुंदुभी बजाने को कह रहे हैं जिसकी भित्ति भारत का महामंत्र "त्याग" है और जो प्रकृत स्वदेशी है। हम उस सर्वथा न्यायसङ्गत प्रबल प्रतिरोध का पाठ पढ़ा रहे हैं जिसके विरुद्ध क्षुद्रातिक्षुद्र शत्रु भी एक शब्द नहीं कह सकता। उस निर्बलों के बल का नाम है, निष्क्रिय प्रतिरोध।

इस स्थल पर प्रतिरोध की इस नवीन प्रणाली पर सामान्य-दृष्टि निक्षेप आवश्यक प्रतीत होता है। प्रत्येक उद्योग में प्रवृत्त होने के पूर्व, प्रत्येक कार्य को अङ्गीकार करते समय विचारशील मनुष्य के लिए आत्मिक उन्नति और अवनति का विचार कर लेना आवश्यक है, यद्यपि आजकल के सभ्यसमाज के विचार-शास्त्रानुसार यह अधिक प्रयोजनीय नहीं है। मेरा विश्वास है कि प्रतिवादभय के बिना ही यह कहा जा सकता है कि निष्क्रिय प्रतिरोध का आश्रय लेने से आत्मिक अवनति की किञ्चित्मात्र भी आशङ्का नहीं, प्रत्युत वह सर्वथा उन्नति विधायक ही है। प्राचीन भारतीय धर्म युद्धों की तो कथा ही भिन्न है किन्तु मध्य तथा वर्तमान युगों के संसार के युद्धेतिहास के अध्ययन से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि [illegible]

के छल कपटों का अवलम्बन युद्ध-कौशल में परिगणित होता है। विजय के मद में विजित राष्ट्र की जनता पर विजेता कैसे २ नृशंस अत्याचार करता है, अबलाओं और शिशुओं पर भी वीरता प्रगट करते संकोच नहीं किया जाता, अनेक स्थलों में लड़ाकों का एकमात्र सिद्धान्त येनकेन प्रकारेण स्वार्थसाधन हो जाता है। धर्माधर्म, सत्यासत्य तथा वास्तविक वीरत्व का विचार भी उनके हृदय से लुप्त हो जाता है। निष्क्रिय प्रतिरोधी योद्धाओं को ऐसे दुराचारों में प्रवृत्त होने का, छल कपटमूलक युद्ध करने का अवसर ही नहीं प्राप्त हो सकता। उन्हें तो सत्यता की वेदी पर प्रसन्नतापूर्वक बिना कनिष्ठिका उठाये गर्दन देनी पड़ती है। महान् आत्मिक उन्नति के बिना निष्क्रिय प्रतिरोध का अवलम्बन असम्भव है। जिस प्रकार अग्नि के संयोग से सुवर्ण की शुद्धि हो जाती है, उसी प्रकार निष्क्रिय प्रतिरोध द्वारा भी इष्ट साधनपूर्वक आत्मा का पूर्वोत्कर्ष अनिवार्य है। इस युद्ध में विचित्रता यह है कि अन्त में शत्रु की आत्मा का भी, यदि पूर्ण पतन न हो चुका हो, तो मङ्गल होना सम्भव है। निष्क्रिय प्रतिरोधी की महत्ता और आत्मिक प्रकृष्टता से विपक्षी का प्रभावित न होना भी सम्भव है, परन्तु यह तभी हो सकता है जब उसकी उच्चवृत्तियों का अंकुर समूल नष्ट न हो चुका हो।

यह भी प्रतीत होता है कि निष्क्रिय युद्ध चलते समय अन्य कर्तव्यों का सम्पूर्णरूप से त्याग अनिवार्य नहीं है। वर्तमान महासमर में प्रत्यक्ष है कि, शनैः शनैः युद्ध में लिप्त जातियां अन्यान्य आवश्यक कर्तव्यों से विवशतः उदासीन होती जा रही हैं। इङ्गलैंड का परमप्रिय वाणिज्य भी धीरे २ रसातल की ओर अग्रसर हो रहा है। देश का प्रत्येक मनुष्य उसी एक युद्धव्यवसाय में व्यस्त होता जा रहा है। निष्क्रिय युद्ध में उससे प्रत्यक्षतः संलग्न न होनेवाले देशवासी, समाज के अन्य आवश्यक अङ्गों की पूर्ति का विधान कर सकते हैं। युद्धलिप्त सैनिक भी उसी अवस्था में अन्यान्य आवश्यक कर्तव्यों के पालन से विरत रहते हैं जब वैरी अपनी हृदयहीनता का परिचय देते हुए उन्हें कारागार में अवरुद्ध करता है, अन्यथा स्थूल कलाकौशलों की तो बात ही क्या है, सूक्ष्म कलाओं का भी अभ्यास छोड़ने की आवश्यकता नहीं पड़ सकती। स्मरण रहे कि मैं सूक्ष्म विवेचन नहीं कर रहा हूं।

इसके सिवा संसार की उदासीन जातियों पर निष्क्रिय युद्ध का—वह चाहे जितनी भीषणता धारण करे—किसी प्रकार का हानिकारक प्रभाव पड़ने की कोई सम्भावना ही नहीं। न उदासीन व्यक्तियों को जलसमाधि मिलने ही की कोई आशङ्का है। हम प्रत्यक्ष देख रहे हैं कि वर्तमान युद्ध के कारण उदासीन राष्ट्रों को भी चिन्ताग्नि भस्म कर रही है और वे हर घड़ी गोला दागने को तैयार रहने पर बाध्य हुए हैं। क्या निष्क्रिय युद्ध में भी अड़ोसियों पड़ोसियों के इसी प्रकार चिन्ताकुल रहने की सम्भावना है? कदापि नहीं। इष्ट मित्रों तथा पार्श्ववर्तियों को मानसिक स्वस्थता भङ्ग न करने की निष्क्रिय प्रतिरोध की यह प्रतिज्ञा बड़ी ही अपूर्व है। लड़ाई हो राम रहीम की और बेचारे ईसा निष्प्रयोजन ही विपत्ति भोग करें। इस घोर कलङ्ककालिमा से महात्मा गांधी की प्रदर्शित प्रणाली सर्वथा मुक्त है।

पशुबल पर अवस्थित युद्ध का निर्णय एक बार हो जाने पर भी चिरशान्ति की आशा बहुत दृढ़ नहीं हो जाती। पराजित राष्ट्र अपना बल बढ़ाने के हेतु आकाश पाताल एक करता रहता है और अवसर पाते ही अपमान का प्रतिशोध लेने को उद्यत हो जाता है। निष्क्रिय प्रतिरोध में आत्मा की जय पराजय से निपटारा हुआ करता है; अतएव निष्क्रिय प्रतिरोधियों के अरियों के हृदय से यदि दुर्भाग्यवश द्वेषभाव समूल न नष्ट हुआ तो भी, अवसर उपस्थित

होते ही पुनः युद्धाग्नि भड़क उठने का भय नहीं रहता। इसके विपरीत जित और जेता राष्ट्रों में चिर-मित्रता के स्थापन का मार्ग परिष्कृत हो जाता है।

निष्क्रिय योद्धाओं की प्रशंसा करने को बालक, युवा, जरठ, नर, नारी, शत्रु, मित्र सब बाध्य होते हैं, किसी की भी निन्दा का भय उन्हें नहीं रह जाता। शत्रु तक को भी निन्दा करने का कारण ढूंढ़ने पर भी नहीं मिलता। एक बात और भी है। इस युद्ध में अस्त्र शस्त्रादि किसी भी वस्तु अथवा दुर्ग वा खांही आदि स्थान विशेष की अपेक्षा नहीं होती। प्रत्येक अवस्था में, प्रत्येक स्थान में तथा प्रत्येक समय में किसी भी वयस का व्यक्ति इस युद्ध का सैनिक बन सकता है। एकमात्र आवश्यकता साहस और दृढ़ता की होती है, जो मानसिक गुण हैं। ईश्वर हमारे हृदय को बल दे कि आवश्यकता पड़ने पर हम निष्क्रिय-प्रतिरोध का झंडा उड़ा सकें।

अन्त में सर्वोपरि निष्क्रिय प्रतिरोध की श्रेष्ठता यही है कि धन-जन की हानि के बिना ही इसमें निश्चित विजय प्राप्त होती है। शरीर-बल के युद्ध में निबल से भी निर्बल के भिड़ जाने में विजय प्राप्ति में सन्देह बना ही रहता है और कभी २ संयोग से न्यून बलिष्ट पर ही विजयश्री प्रसन्न हो जाती है। किन्तु हमारे प्रस्तावित प्रतिरोध के बल से विजय निश्चित है, पराजय की स्वप्न में भी आशंका नहीं रहता; केवल दृढ़ता और धीरता अपेक्षित हैं। निस्सन्देह निष्क्रिय प्रतिरोध अभीष्ट सिद्धि का बड़ा ही अनूठा उपाय है। कविता कौमुदी कलानिधि कविवर कालिदास के शब्दों में, जो आदि में दिये गये हैं, यह ऐसा अनुपम साधन है कि, "शत्रु की हिंसा भी नहीं होती और विजय निश्चित है।"

स्वराज्यवादी युवक बन्धुओं से निवेदन है कि वे निष्क्रिय प्रतिरोध के लिए बद्ध-परिकर रहें। प्रतिरोध-भय के बिना केवल नम्रतापूर्वक मांगने से अथवा तर्क में पराजित कर देने से स्वराज्य मिलना असम्भव है। यह निश्चल प्रतिज्ञा कर लेना उनका कर्तव्य है कि बिना स्वराज्य प्राप्त किये विश्राम न लेंगे। इसीमें भारत और संसार का कल्याण है।

अनुरोध।

[लेखक—श्रीयुत शिवदास गुप्त।]

हरे! राधा-रमण-यशुदा दुलारे।
कन्हैया, कृष्ण, गिरधारी मुरारे॥
अजी माधव! दया क्योंकर बिसारे।
क्षमा करना हमारे दोष सारे॥ १॥

उभय कर आपको जोड़े खड़े हैं।
तुम्हारे द्वार पर कब से अड़े हैं॥
हमें भौतिक दुखों से मत सताओ।
कभी परतन्त्र मत मुझको बनाओ॥ २॥

भला है यदि मुझे पक्षी बनाते।
सदा आनन्दमय अवसर बिताते॥
यहां तो हाथ पर ताले पड़े हैं।
हृदय के भाव पर पाले पड़े हैं॥ ३॥

धरा-प्राचीनता को भी गँवाया।
नफा फिर भी नहीं कुछ हाथ आया॥
हुए हम जा रहे सहसा भिखारी।
निरन्तर दैन्य-दुख से जातिवारी॥ ४॥

धरा में धार्मिक सत्ता नहीं है।
पराक्रम, ओज, अभिमत्ता नहीं है॥
नहीं विद्या, कलाकौशल नहीं है।
वस्तुतः आज हममें बल नहीं है॥ ५॥

सभी अधिकार से रीते बने हैं ?
नहीं क्या हम गये बीते बने हैं ?
हरे ! अब है कहां मेरा ठिकाना।
जो अपना था हुआ वह भी विराना ॥ ६ ॥

गिरे से यदि तुम्हें अब है उठाना।
शकुन-दिन देश भारत के दिखाना ॥
विकट विकराल बेड़ी से छुड़ाना।
हमें स्वाधीन हे केशव ! बनाना ॥ ७ ॥

हमें बस भक्त फिर अपना बनालो।
समझ अपना, हृदय से ले लगालो ॥
हमारी सब निराशाएँ मिटाओ।
निरन्तर यन्त्रणाओं से हटाओ ॥ ८ ॥

सुखी हों आत्म-बल पर हम खड़े हों।
न बनकर दास पैरों पर पड़े हों ॥
हमें उपदेश गीता के सुनाओ।
समुन्नति के सभी साधन सिखाओ ॥ ९ ॥

दया होती अगर नर-नाथ ! आते।
जगत को मानुषिक लीला दिखाते ॥
मचाते रास फिर गाते, बजाते।
सुरीली तान बंशी की सुनाते ॥ १० ॥

इन्द्रियाँ हो रहीं प्रमदा हमारी।
प्रगल्भा गोपिकाएँ भी तुम्हारी ॥
तुम्हारी बाट ही देखा करेंगी ?
न तुम होगे तुम्हें पेखा करेंगी ? ॥ ११ ॥

मगर है, देश भारत को जगाना।
न केवल रास-लीला ही मचाना ॥
कठिन दुर्भिक्ष, दुखों को हटाना।
यहां से नाम तक उनका मिटाना ॥ १२ ॥

दही नवनीत फिर खाना, चुराना।
विजय की राग मुरली में सुनाना ॥
पतित इस दीन भारत को उठाना।
किनारे धर्म की नौका लगाना ॥ १३ ॥

सभी भूले हुए सन्मार्ग पावें।
उठें, चेतें स्वदेशी राग गावें ॥
पुनः इस भूमि भारत को जगावें।
तभी सत्पुत्र भारत के कहावें ॥ १४ ॥

सुधावत् ज्ञान देकर के जिलाओ।
घटा घनघोर विपदा की हटाओ ॥
अजी ! नटवर न अब सोचो विचारो।
बजाते बांसुरी मोहन ! पधारो ॥ १५ ॥

स्वराज्य और भारत।

[लेखक—श्रीयुत जगन्नाथप्रसाद मिश्र, विद्यार्थी।]

आजकल भारतवर्ष में चारो ओर स्वराज्य की चर्चा हो रही है। जिधर देखिये उधर ही लोग स्वराज्य के विषय में बात चीत करते दिखाई देते हैं। क्या हिन्दू, क्या मुसलमान, क्या पारसी, क्या ईसाई, सभी स्वराज्य पर निर्भय होकर अपना २ मत प्रकट कर रहे हैं। सारांश यह कि इस समय देशवासियों के हृदय में यह प्रश्न उठ रहा है, कि क्या हम लोगों को अपने देश के शासन में केवल सलाह देने भर का ही काम रहेगा या कुछ अधिकार भी मिलेगा ? इसी बात को लेकर आज शिक्षित समाज में घोर आन्दोलन मचा हुआ है। कांग्रेस तथा मुस्लिम लीग ने भी इस बार अपना ध्येय स्पष्ट शब्दों में स्वराज्य ही बतलाया है। देश के प्रतिनिधियों को व्यवस्थापक सभा में केवल प्रस्ताव भर पेश करने का ही अधिकार है। उसकी मंजूरी पूर्णतः कौंसिल के सदस्यों पर ही निर्भर रहती है। कौंसिल का सभापति यदि चाहे तो अपने विशेष स्वत्व से उनको प्रस्ताव पेश करने से भी रोक सकता है क्योंकि कानून के अनुसार उक्त अधिकारी किसी ऐसे प्रस्ताव को, जिससे सर्वसाधारण को हानि पहुंचने की सम्भावना हो, कौंसिल में पेश करने से भी रोक

सकता है। परन्तु इंगलैंड में यह बात नहीं है। वहां के मेम्बरों को इस विषय में पूर्ण अधिकार है। इसीसे प्रमाणित होता है कि इस देश के प्रतिनिधियों को अपने देश के शासन में सलाह तक देने का भी पूरा अधिकार नहीं है। भारत के भूतपूर्व बड़े लाट लार्ड हार्डिञ्ज ने भारत की 'औपनिवेशिक-स्वराज्य' की आकांक्षा को न्याय्य बतलाते हुए कहा था कि भारत के लिए अभी वह समय दूर है। श्रीमान् ने कहा था कि उपनिवेशों को एकाएक स्वराज्य नहीं मिल गया, बल्कि शनैः २ जनता का सुधार होने ही पर मिला है। परन्तु ऐतिहासिक दृष्टि से इस कथन की सत्यता प्रमाणित नहीं होती।

स्वराज्य की प्राप्ति के पहिले कैनेडा, दक्षिण एफ्रिका, फिलीपाइन्स, जापान आदि की दशा हम लोगों से कहीं गई बीती थी। वहां के अधिवासी उस समय बिलकुल ही असभ्य थे। शिक्षा का प्रचार भी उनमें बहुत कम था। कैनेडा में अँगरेज़ तथा फ्रान्सीसियों में बराबर झगड़े हुआ ही करते थे। इनका उल्लेख करते हुए Lord Durham ने कहा है,—

"I found two nations wairing in the bosom of one state. I found a struggle not of principles but of races"

यह सन् १८३८ ई० की बात है। इसके बाद शासन में बहुत कुछ सुधार होने पर भी लोगों में अशान्ति बनी ही रही कारण उन सुधारों से लोग सन्तुष्ट नहीं हुए थे। सन् १८७२ ई० में लार्ड डफ़रिन के गवर्नर नियुक्त होने के समय तक भी वहांवालों की दशा में कुछ परिवर्तन नहीं हुआ था। इसके विषय में Sir Alfred Lyall ने लिखा है:—

"The red Indians were still but partially tamed and settled in the west, the French population had rarely intermingled with the English speaking inhabitants; and these two sections formed political bodies that seldom came into contact without friction."

पाठक देखा आपने! जबतक कैनेडावालों को पूर्णरूप से स्वराज्य प्राप्त नहीं हुआ तब तक अशान्ति की आग कम नहीं हुई। परन्तु उन्हें अपने देश के शासन में अधिकार मिलते ही सब प्रकार के लड़ाई-झगड़े मिट गये। दक्षिण एफ्रिका के इतिहास से भी इसी कथन की पुष्टि होती है। बोअरों को स्वराज्य मिलने के पहिले वहां भी अँगरेज़ों तथा बोअरों में सदा अनबन बनी रहती थी। जापान की आश्चर्यजनक उन्नति का मुख्य कारण भी स्वराज्य ही है। पचास वर्ष के पहिले निरंकुश शासन में उसकी कैसी दशा थी। उस समय वहाँ राजा की इच्छा के अनुसार ही राज्य के सब कार्य हुआ करते थे। परन्तु वहां के परम देशभक्त बुद्धिमान राजा ने निरंकुश-शासन को देश के लिए अहितकर समझ अपने अधिकार संकुचित कर देशवासियों को शासनकार्य में पूर्ण अधिकार दे दिये। उसी समय से जापान में प्रजातन्त्र-शासन (Representative Government) की स्थापना हुई। क्या यह कहा जा सकता है कि जब जापान को स्वराज्य मिला, उस समय वहां के अधिवासियों की अवस्था भारतवासियों से अच्छी थी?

आज दिन भी वहां बहुतेरी सामाजिक कुरीतियां वर्तमान हैं। कोई एँग्लो इन्डियन बतला सकता है कि उस देश को प्रजातन्त्र-शासन में किसी देश की अपेक्षा कम सफलता प्राप्त हुई है? सच पूछिये तो जापानी स्वराज्य की सफलता ने हमारे शत्रुओं का मुंह तक बन्द कर दिया है। इसके विषय में "Statesman" जैसा एँग्लो-इन्डियन पत्र भी कहता है कि जापानियों ने जैसी विलक्षण योग्यता प्रदर्शित की है, दूसरों से वैसी आशा नहीं की जा सकती। भारतहितैषी Sir William Wedderburn साहब "New Statesman" की एक चिट्ठी में कहते

हैं कि फिलीपाइन्स के अधिवासी किसी दृष्टि से भी भारतवासियों की अपेक्षा श्रेष्ठ नहीं कहे जा सकते । इसपर भी अमेरिका ने दो चार वर्ष में ही उनको पूर्ण स्वराज्य देने का वचन दिया है। कुछ लोगों का कहना है कि जातीय विभिन्नता के कारण भारत, स्वराज्य के योग्य नहीं है । इसका उत्तर है कि क्या कैनेडा में स्वराज्य के पहिले अँगरेज़ और फ्रांसीसियों में जैसी शत्रुता थी वैसी इस देश के हिन्दू-मुसलमानों में है? यह समझना निरी मूर्खता है कि स्वतन्त्र होने पर इस देश के लोग एक दूसरे का गला घोटने पर उतारू हो जायँगे। स्वराज्य के विरुद्ध दूसरी दलील यह पेश की जाती है कि यहां की जनता मुट्ठीभर शिक्षितों से सताई जायगी। क्या ऐसे लोगों को यह मालुम नहीं कि मुट्ठी भर शिक्षितों ने 'अनिवार्य शिक्षा' जारी करने के लिए कौंसिल में आकाश पाताल एक कर दिया था परन्तु अधिकारीवर्ग की कृपा से वह बिल रद्दी की टोकरी में फेंक दिया गया। वही अधिकारीवर्ग निःसंकोच होकर जनता का पक्ष लेने का ढोंग रचता है। विचार करने से मालूम हो जायगा कि यहां की जनता तथा शिक्षितों का भाग्य एक ही सूत्र में बँधा हुआ है । जनता की उन्नति-अवनति और शिक्षितों की उन्नति-अवनति एक ही है। परन्तु इंगलैंड की ऐसी दशा नहीं । वहां के व्यापारियों को धन के लिए मज़दूर-दल पर भरोसा नहीं करना पड़ता। वे बाहर से धन प्राप्त करते हैं। क्या वहां का मज़दूर-दल House of commons से सदा सशंकित नहीं रहता ?

प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ जान ब्राइट ने पार्लामेंट के विषय में कहा था, "A club of land-owners legislating for land-owners" अर्थात् यह ज़मींदारों की एक सभा है जो ज़मींदारों के लिए कानून बनाती है । इंगलैंड का इतिहास पढ़ने से भी यही विदित होता है कि स्वराज्य-प्राप्ति के पहिले वहांवालों की अवस्था सन्तोषजनक नहीं थी। शिक्षा का बिलकुल ही अभाव होने पर भी इंगलैंड ने अपने को स्वराज्य के अयोग्य समझने के बदले इसका सादर स्वागत ही किया । क्या यही बात भारत के लिए लागू नहीं हो सकती। जान स्टुअर्ट मिल ने स्वराज्य के लिए जिन तीन शर्तों की आवश्यकता बतलाई है, क्या भारत उन्हें पूर्ण नहीं कर सकता? भारतवासी यदि स्वराज्य के योग्य नहीं हैं तो यह किसका दोष है, भारतवासियों का या १५० वर्ष से शासन करनेवाली अँगरेज़ जाति का । इस पर भी पक्षपातशून्य किसी दूरदर्शी राजनीतिज्ञ ने भारतवासियों को स्वराज्य के अयोग्य नहीं कहा है। अब ज़रूरत है केवल शासन में सुधार होने की। कुछ एँग्लो इंडियनों की दृष्टि में इस देश की दशा "विलक्षण" है। परन्तु यदि रोग "विलक्षण" मालूम होता है, तो हम उसके लिए एक "विलक्षण" दवा भी बतला देते हैं। क्या "विलक्षण" बीमारी के लिए "विलक्षण दवा" उपयुक्त नहीं हो सकती ? बस, इस लेख को हम अब यहीं समाप्त करते हैं। हमने इस लेख में भारत को स्वराज्य के योग्य सिद्ध करने की यथाशक्य चेष्टा की है । आशा है, भारतवासी निर्भय होकर स्वराज्य के लिए घोर आन्दोलन जारी रक्खेंगे। यह निश्चय है कि इसमें अवश्य ही सफलता प्राप्त होगी। क्योंकि महात्मा तिलक के कथनानुसार निष्काम कर्म, कभी व्यर्थ नहीं होता। अन्तर्यामी सर्वशक्तिमान परमेश्वर तीस करोड़ भारतवासियों की पुकार अवश्य सुनेगा, यह हमारा ध्रुव सिद्धान्त है।

दोषी कौन ?

माता, पिता या समाज ?

बम्बई के सेशन जज ने अभी एक फैसला किया है। एना फ़र्नेन्डेज़ नाम्नी ३० वर्ष की एक ईसाइन स्त्री पर यह अभियोग लगाया गया था कि उसने अपने नवजात शिशु की प्राणहत्या करनी चाही जिसमें उसे सफलता नहीं प्राप्त हुई और यह कि सदा के लिए उसे त्याग देने का उसने प्रयत्न किया।

मामला

इस प्रकार था। पिछली १६ नवम्बर को अभियुक्त स्त्री, अपने बच्चे को गोद में लिये हुए एक गली में जाती हुई दिखाई दी। कुछ ही मिन्टों बाद वह खाली हाथ लौटी। प्रायः दो घंटे बाद एक स्त्री अपने घर में नीचे उतरी। पाखाने से उसे बच्चे के रोने की आवाज़ सुनाई दी। देखने पर बच्चा मिला। पुलीस को सूचना दी गई। अभियुक्त स्त्री पकड़ गई। अस्पताल में बच्चे को उसने कई दिन दूध पिलाया किन्तु वह बचा नहीं। अपने बयान में स्त्री ने कहा कि उसका एक साथी नौकर उस बच्चे का पिता था और जहां उस बच्चे को उसने पाया था वहीं उसने उसे रख दिया। जज ने एक मास की सज़ा स्त्री को दी। इस सम्बन्ध में हमको कुछ नहीं कहना है, ऐसी कुमाता को, जो अपने नवजात पुत्र की इस बेदर्दी से हत्या करती या करना चाहती है, जितनी सज़ा दी जाय कम है किन्तु इसके साथ ही साथ हमको इसके कहने में भी सङ्कोच नहीं कि एक दृष्टि से, और जो वास्तव में न्यायदृष्टि है यह

अन्याय ही नहीं अत्याचार

भी है। माता है कुसूरवार किन्तु इसके साथ ही साथ पिता का दोष एक तिलभर भी कम नहीं है। जो पिता, एक जीव को संसार में लाता है, उसे अपना नाम भी नहीं देता, पालन-पोषण तो दूर रहा, उसकी हत्या का कारण बनता है. वह संसार में बड़ी से बड़ी सज़ा पाने का अधिकारी है। यदि स्त्री ने पाप किया था तो मनुष्य का भाग उसमें किसी प्रकार कम न था, यदि स्त्री हत्या करना चाहती थी तो मनुष्य, जिस समय कि उसने पितृत्व का भार वहन करने का विचार दूर किया, हत्या कर चुका, यदि स्त्री Culpable Homicide amounting to murder प्राण लेने की चेष्टा करने की सज़ावार है, तो मनुष्य murder प्राणहत्या करने का दोषी है। ऐसी अवस्था में आवश्यक यह है कि स्त्री के साथ ही साथ पुरुष भी अभियुक्त बनाया जाया करे, जबतक यह न किया जायगा पाप कम न होगा।

किन्तु नहीं

यह कुसूर उस विशेष स्त्री पुरुष का भी न होकर उस समाज का है, जो कहता है कि बच्चे, राष्ट्र के बच्चे हैं और राष्ट्र का धर्म है कि जो उनको क्षति पहुंचाना चाहे, उनकी हत्या करना चाहे, उन्हें दंड दे किन्तु वास्तव में जो स्वयं ऐसे बच्चों के पैदा होते ही उनसे कुछ मतलब नहीं रखता, उनको हीन दृष्टि से देखता है, उनसे कहता है "दूर दूर", और जो उनकी माताओं को सदा के लिए दूध की मक्खी की भांति समाज से निकाल बाहर करता है। ऐसे बच्चों की हत्या रोकी जा सकती है

फांसी और जेल

से नहीं वरन् ऐसा प्रयत्न करने से कि पुरुष और स्त्रियों को माता पिता होने का अभिमान हो, माता या पिता होने से वे कलंकित न किये जायँ, या उन बच्चों का आदर करने से, उन बच्चों को अपनाने ...

समाज में उनको स्थान देने से। वह कानून कैसे न्यायानुमोदित कहा जा सकता है जो माता से कहता है कि तुम बच्चे का आदर करो, उसकी रक्षा करो, उसे श्रेष्ठ बनाने का यत्न करो किन्तु हम सदा उसको हीन समझेंगे, प्लेग की भांति उसे दूर रक्खेंगे और सदा उसको ही नहीं वरन् उसके साथ ही साथ उसकी माता को भी हीन समझेंगे, वह मुंह ऊँचा कर हमारे सामने न आसकेगी। थोड़े से शब्दों में कानून कहता है. "देखो हत्या मत करो, बच्चा तुम्हारा नहीं, हमारा है, हम भी वही करेंगे जो तुम करती हो किन्तु तुम बच्चे की अज्ञान अवस्था में हत्या करती हो और सदा के लिए उसे कष्टहीन कर देती हो, तुम उसको मर्यादापूर्वक मर जाने देती हो, हम उसे जिन्दा रक्खेंगे, सज्ञान होने पर प्रतिक्षण उसकी हत्या करेंगे, उसे मार्मिक कष्ट पहुंचायेंगे और मरतेदम तक उसे

मर्यादा

से न रहने देंगे। सहृदय पाठक तथा पाठिकागण ! तनिक विचारपूर्वक देखिये वास्तव में बात यही है या नहीं ? हम व्यभिचार के समर्थक नहीं, हम यह नहीं कहते कि स्त्रियों को ऐसे बच्चों के पैदा करने के लिए प्रोत्साहन दिया जाय, हमारा कहना यही है कि अन्याय से न्याय का पक्ष समर्थन नहीं हो सकता। समाज को पहिले अपने कानूनों की ओर भी देखना चाहिये। यदि स्त्री के साथ ही साथ पुरुष भी दोषी समझा जाय, यदि सन्तान के पालन और रक्षा का भार पुरुष पर भी उतना ही समझा जाय जितना की स्त्री पर, तो इस तरह के

हृदय-वेधी

पापों में बहुत कुछ कमी हो सकती है। ऐसे पाप नित्य ही हुआ करते हैं; यह सच है कि ~~सम्भवतः~~ आपकी दृष्टि में वे नहीं आते, किन्तु ईसाइयों को जाने दीजिये, हिन्दू समाज में ये कितने होते हैं। विधवाओं की दशा की ओर देखिये, नितप्रति जिनसे आज दिन समाज

खुलेबन्दों

कह रहा है, जो चाहे करो किन्तु देखो बच्चा न पैदा करना। समाज कहता है, बच्चे राष्ट्र के लिए हैं, जितने अधिक बलिष्ठ, योग्य और सुसम्पन्न बच्चे होंगे, उतना ही अधिक बलिष्ठ राष्ट्र होगा, समाज उतना ही श्रेष्ठ होगा किन्तु, साथ ही साथ स्त्रियों के विशेष भाग से वह कहता है सावधान

बच्चे नहीं।

हम भी पवित्रता चाहते हैं, हम भी व्यभिचार को बुरा समझते हैं, हम भी नहीं चाहते कि हमारी ललनाएँ, माताएँ और बहिनें वेश्याजीवन व्यतीत करें, हम भी चाहते हैं कि वे "सावित्री" से किसी अंश में कम न हों और इसीलिए हम चाहते हैं कि न्याय से न्याय का पक्ष समर्थन करिये, छी छी और दूर दूर से दोष नहीं दूर होंगे। पापों को रोकने और उनको आमूल नष्ट करने के सच्चे उपाय ढूंढ़िये।

कानून ठीक नहीं

है, यह आप भी देखते हैं। कानून से हम एक दो बच्चों की जानें बचा सकते हैं, वह भी मालूम होने पर किन्तु सहस्रों की संख्या में जो हत्याएँ नितप्रति होती रहती हैं, जिनका पता भी हमको आपको नहीं लगता, उनको रोकने का कुछ उपाय करिये। कानून का उद्देश्य सज़ा देना न होकर, रक्षा करना होना चाहिये।

गर्भपात

को ही लीजिये। इससे बढ़ कर संसार में पाप नहीं हो सकता यद्यपि कानूनन यह तय नहीं हुआ है कि बच्चे के (जब तक उसमें जीवन नहीं आया है) कोई अधिकार हैं किन्तु इसको रोकने के लिए उपाय क्या निर्धारित हैं। यही कि हम माता से कहते हैं कि हत्या मत कर,

संसार में बच्चे को आने दे, बाद में हम उसकी पशु की भांति नहीं, ज़ोर जुल्म से नहीं वरन् सभ्यता की तेज़ धार से हत्या करेंगे, उसे कहीं सर न उठाने देंगे। वह कलंकितजीवन धारण करेगा और दूर ही से लोग उस पर अँगुली उठावेंगे।

न्याय और धर्म

के नाम की दोहाई देनेवालो! न्याय और धर्म की चकाचौंध से आखें मत फेरो, साहस कर उसकी ओर देखो तो, कितने दिन "चुपचुप" से काम चलेगा। मानवसमाज की भलाई, व्यभिचार, चोरी और बेईमानी का दमन और सत्य की खोज ही सच्चा धर्म है।

हम लोगों का कर्तव्य या धर्म है कि हम लोग सोचें कि पापों के

रोकने के उपाय

क्या हैं। किस प्रकार से व्यक्ति के साथ न्याय पूर्णरूप से किया जा सकता है, किस प्रकार से मानवसमाज सुखी और समृद्धिशाली हो सकता है, किस तरह से हम पापों को समूल नष्ट कर सकते हैं और किस प्रकार से संसार विकाश की सर्वोत्तम सीढ़ियों को प्राप्त कर सकता है। हम लोगों को इस सम्बन्ध में सबसे पहिले यह स्वीकार करना होगा कि स्वतन्त्रता सब सुखों की देनेवाली है, जिस तरह से राजनैतिक-संसार में एकमात्र स्वतन्त्रता की प्राप्ति और उसके सदुपयोग से हमारी हीनता, दरिद्रता दूर हो सकती है, हम सुखी, योग्य, बली और नीरोग हो सकते हैं, उसी प्रकार से

सामाजिक-संसार

में भी स्वतन्त्रता हमारे दुःखों को दूर कर सकती है, पापों, हीनताओं को जड़ से खोद सकती है। इसके बाद हमको यह भी स्वीकार करना होगा कि स्त्रियों के भी आत्मा है। इन दोनों बातों को सामने रखकर हम लोगों को अपने Hypocricy दंभ और कपटता का बायकाट करना होगा। हम लोग Chastity पवित्रता, सतीत्व, व्यभिचार-हीनता आदि चाहते हैं। सत्य की ओर से आखें न फेरकर हमको यह देखना होगा कि

विवाह संस्कार

वास्तव में पवित्र है या नहीं। यह Lawful ravishing और Prostitution under vows विधिविहित व्यभिचार तो नहीं है। विवाह का पर्यायवाचक शब्द legalised prostitution न्यायानुमोदित व्यभिचार तो नहीं है। इसके साथ ही साथ हम लोगों को यह भी देखना होगा कि कहने सुनने और नियम के लिए तो हम Monogamist एक पत्नी करना ही सर्व-श्रेष्ठ समझते हैं किन्तु वास्तव में लुक छिप कर

बहुविवाह

की प्रथा प्रचलित है, भारत में ही नहीं, इंगलैंड, एमेरिका और सारे संसार में। यह क्या है? हम लोग चाहते हैं कि हमारी स्त्रियां

सीता, सावित्री

हों किन्तु हम लोग यह नहीं देखते कि सीता सीता और सावित्री सावित्री कैसे हुईं। हम यह भूल जाते हैं कि वह

प्रेम विवाह

Love marriages थे और आज दिन संसार में marriage of convenience सुविधायुक्त विवाह नियम हो रहा है। विवाह आज दिन Duty to Society समाज के प्रति कर्तव्य समझा जाता है। यह अंधेर नहीं तो क्या है? हम यह समझते हैं कि दूसरों के लिए व्यक्ति बहुत कुछ कर सकता है किन्तु दूसरों के लिए वह अपनी हत्या नहीं कर सकता, अपने व्यक्तित्व को हीन और नष्ट नहीं कर सकता। आत्मपिपासा की शान्ति सर्वप्रथम आवश्यक और अनिवार्य है। यदि हमारी व्यक्तिगत वृद्धि और विकाश से संसार की वृद्धि हो सकती है तभी हम जीवन प्राण से उसके लिए चेष्टा कर सकते हैं किन्तु यदि इसके लिए अपनी

आत्मा का हनन

करना पड़े तो हम दिखलाने को चाहे सब कुछ करते रहें वास्तव में हम उससे दूर रहेंगे। इसके साथ ही साथ हम लोगों को

वेश्याओं

की ओर भी दृष्टि रखनी होगी। समाज में वेश्याओं का होना Necessary Evil अनिवार्य संकट नहीं है। पूर्वजों ने यह मान कर कि मनुष्य प्रकृति और संसार का रंग देखते हुए इनका रहना आवश्यक है, भूल की है। एक मनुष्य में एक स्त्री, और एक स्त्री में एक मनुष्य ऐसा तन्मय हो सकता है कि संसार में और किसी के पास जाने की उसकी इच्छा ही न हो। ऐसा सम्भव है और नितप्रति होता है। एक वेश्या के लिए भी एक व्यक्ति सर्वस्व नाश करने और सब कुछ सहने को तैयार रहता है। यह भी होता है कि उसकी अकृपा से उसे

संसार सूना

दिखाई देता है, अपनी पत्नी और बाल-बच्चों का उसे कुछ भी ख्याल नहीं रहता। यदि उस वेश्या, नहीं वरन् उस स्त्री-विशेष से उसका विवाह हुआ होता तो कदाचित किसी दूसरी स्त्री की ओर वह निहारता भी नहीं। एक ओर हम पवित्रता, एक पत्नी व्रत और सतीत्व के राग अलापते हैं दूसरी ओर समाज के हित के लिए वेश्याओं का होना हम ज़रूरी समझते हैं। यह

कैसा स्वांग है?

इसके साथ ही साथ हम लोगों को उनकी ओर भी दृष्टि फेरनी होगी जो समाज के अन्तर्गत जीती जागती पुतली नाशकारी स्त्रियां हैं जो एक दृष्टि से वेश्याओं से अच्छी नहीं।

So long as "pure" women take pleasure in the cruel sport of the cat, so long as with facile changes of the mood of the serpentine dancer they evade the responsibilities of their flirtations, so long as they delight in provoking jealousy as a homage to themselves, so long will they be helping to brew the hell-broth around which the men will celebrate the witches sabbath in the company of the bat-winged bevies of the night. There are more men led astray by "pure" or "so called pure" than by impure women".

इस उन्नतिकाल में अधिक संख्या में पुरुषों को बिगाड़नेवाली स्त्रियां वे हैं, जो वास्तव में पवित्र हैं, या पवित्र कही जाती हैं, वे नहीं जो खुलेबन्दों वेश्याएँ हैं। इनसे मनुष्य सावधान रह सकता है।

"बज़्म दुनियाँ में फकत सूरतपरस्ती रह गई।
वोह ज़माने शाहदेमानी के दीवाने गये।"

इन सब बातों के साथ ही साथ हम लोगों को इस सत्य की सत्यता—दो व्यक्तियों के लिए जो एक दूसरे से प्रेम करते हैं और एक दूसरे के साथ रहना चाहते हैं किसी बन्धन किसी विशेष संस्कार की आवश्यकता नहीं और साथ ही यह कि जिनमें प्रेम नहीं, जो एक साथ नहीं रहना चाहते उनको जबरन साथ रहने पर विवश करना उनके व्यक्तिगत मानवी अधिकार और Human Dignity पर कुठाराघात करना है—को स्वीकार करना होगा। इन सब बातों के साथ ही साथ हम लोगों को यह भी स्वीकार करना होगा कि Matriarchy माता के आधिपत्य, तथा Patriarchy पिता के आधिपत्य के दिन गये, संसार में दोनों प्रथाओं की पूरी पूरी जाँच हो चुकी,

सामाजिक गोरखधन्धे

की ग्रन्थि इनसे नहीं खुली और अब हम लोगों को Century of the child सन्तान-काल के सामने सर झुकाना होगा, यह स्वीकार करना पड़ेगा कि पिता और माता के हित की दृष्टि से नहीं वरन् सन्तान और बच्चों के हितों को सर्वोपरि रखने से ही संसार वास्तविक उन्नति के पथ पर अग्रसर हो सकता है। 'वासुदेव'।

भारतीय आर्थिक और व्यापारिक स्थिति।

[लेखक—श्रीयुत रामकृष्ण शर्मा।]

इतिहास हमें बतलाता है कि हमारे पूर्वज पहिले पहिल उन बातों को न जानते थे जिनको अब हम जानते हैं। प्रकृति पर उनका इतना अधिकार न था जितना अब है, अर्थात् वे उन वस्तुओं को अपनी इच्छा से उत्पन्न नहीं कर सकते थे जिनको अब हम कर सकते हैं। ज्यों ज्यों समय बीतता गया त्यों त्यों वे उन्नति कर नई नई बातें सीखते गये। जैसे जैसे नवीन आविष्कारों के लिए उनकी शक्ति बढ़ती गई, वैसे वैसे उनकी आकांक्षाएँ और आवश्यकताएँ भी बदलती गईं। इसी प्रकार का चक्र चलते चलते एक समय यह आपहुंचा जब कि यह परिणाम निकाला जाने लगा कि सभ्यता, हमारी आवश्यकताओं के बढ़ने, हमारे भांति २ की वस्तुएँ बनाने की शक्ति प्राप्त करने और उन वस्तुओं को काम में लाने में ही है। इस विचार तक पहुंचने से पहिले जिन जिन दशाओं में से हमारे पूर्वजों को निकलना पड़ा, उनका जानना कई कारणों से अत्यावश्यक प्रतीत होता है। उनको जानने के पश्चात् हम अपने देश की वर्तमान दशा और उसके सुधार के उपायों पर अच्छी तरह विचार कर सकेंगे।

पूर्वकाल के लोग जीवन-निर्वाह के लिए बहुत सी वस्तुएँ स्वयं नहीं बनाते थे। प्रकृति से वस्तुएँ प्राप्त करके ही बहुधा वे अपना कार्य चलाते थे। मृगया आदि के अतिरिक्त कहीं कहीं वे खेतीबारी भी किया करते थे। परन्तु वह खेती, बैल या दूसरे जीवों की सहायता से नहीं होती थी। वस्त्रों की जगह केवल वृक्षों की छालों से ही वे अपना शरीर ढँकते थे।

इसके पश्चात् लोगों ने भेड़ बकरियों को मारने के बदले उनसे और कई प्रकार के लाभों को उठाना आरम्भ किया। वे उनको बड़ी संख्या में पालने और उनके दूध, ऊन आदि से तरह तरह के काम लेने लगे। अनन्तर सुसंस्कृत खेतीबारी करने का समय आया। इसके लिए गाय बैल आदि जीवों की सहायता ली जाने लगी और अन्न अधिक पैदा होने लगा। इससे जनसंख्या में वृद्धि हुई और एक स्थान पर बहुत से मनुष्य अपने परिवार और पशुपक्षियों के साथ बसने लगे। धीरे धीरे घर और ग्राम बने और बहुतेरे लोग खेती आदि का काम छोड़कर अन्य आवश्यक चीज़ें बनाने लगे। ये लोग स्वप्रस्तुत वस्तुओं को अपने कृषक भाइयों के हाथ बेचकर उनसे अन्न आदि ले लेते थे। जब अनेक प्रकार की चीज़ें बनने और लोगों की आवश्यकताएँ बढ़ने लगीं तब अन्न के साथ उनका बदला करने में बड़ी कठिनाई होने लगी। इन कठिनाइयों को दूर करने के लिए मुद्रा-प्रणाली का आश्रय लिया गया। मुद्रा-प्रणाली के निकलते ही व्यापार बहुत होने लगा और नवीन नवीन प्रकार की वस्तुएँ बनानेवाले अच्छे अच्छे कारीगर भी तैयार हो गये।

इस कारीगरी के काल में हमारा देश अपनी आर्थिक उन्नति के शिखर पर चढ़ा हुआ था। यह वही काल है जिसमें इसने "सोने की चिड़िया" नाम पाया। उस समय यहां ऐसे कारीगर उत्पन्न हुए जिनकी बनाई हुई वस्तुओं ने सारे संसार को विस्मित कर दिया। इस देश की अद्भुत उन्नति देखकर दूसरे देशों से न रहा गया। वे अपनी निद्रा से उठे और उठते ही हिन्दुस्तान का धन अपने देशों में लाने की घोर चिन्ता में पड़ गये। लोभ ने उनको उत्साह दिलाया। वे यहां आये और उनको सफलता प्राप्त हुई। उनमें किसी ने लूटमार से काम लिया और किसी ने नीति से। इसका परिणाम

यह हुआ कि हमारे देश की कारीगरी और धन नष्ट होकर देश अकालपीड़ित और दरिद्र हो गया।

हम तो ऐसी दशा को प्राप्त हो गये परन्तु अन्य देश हमसे लाभ उठा और कई प्रकार की शिक्षा पाकर उन्नति की ओर अग्रसर हुए। उन्नति करते करते वे हमारी उन्नति की सीमा से भी आगे बढ़ गये। उन्होंने भाप की सहायता से मशीनें और कलें चलाकर हाथ से काम करनेवालों को एक ओर बैठा दिया। उन्होंने अपने देश की आर्थिक दशा सुधारना ही अपना मुख्य उद्देश्य बनाकर ऐसे सिद्धान्तों से काम लिया कि दूसरे मूर्ख देशों की समझ में शीघ्र वे न आवें। कलों की सहायता से जब वस्तुएँ बनने लगीं तो वे अपने देश की आवश्यकता से कहीं अधिक हो गईं। इससे वे बाहर के देशों में भेजी जाने लगीं।

बाहर के देश उन वस्तुओं के बदले उन्हें कच्चा माल देने लगे। वे और चाहते ही क्या थे? उनको तो कच्चे माल ही की आवश्यकता थी कारण उन्होंने पहिले ही से निश्चय कर लिया था कि बाहर की बनी हुई वस्तुओं को हम अपने देश में प्रवेश न करने देंगे। पश्चिम के सभ्य कहलानेवाले प्रायः सभी देशों ने इसी धारणा से सफलता पाई है। प्रसिद्ध विद्वान फ्रेडरिक लिस्ट ने अपनी पुस्तक में लिखा है कि ब्रिटिश सरकार का ऐसा ही निश्चय था। इसी निश्चय को आगे रखकर उसने काम किया और दूसरे देशों का बना हुआ सस्ता और अच्छा माल अपने देश में आने से रोका। वहां के अधिवासियों ने निज देश में बना हुआ भद्दा और मोटा माल महँगे दामों पर खरीदकर बरता परन्तु दूसरे देशों का कच्चा माल अपने देश में लाने में कोई संकोच नहीं किया। जब भारतवर्ष रुई और रेशम के कपड़े बनाने में मशहूर था तब इंगलैंडवाले उन्हें खरीदकर पश्चिम में लेजाने लगे परन्तु यह उपर्युक्त निश्चय के विरुद्ध होने के कारण उन्होंने उन कपड़ों के एक धागे को भी अपने देश में नहीं जाने दिया। उसके रोकने के लिए उन्होंने कड़े से कड़े कानून बनाये। यहां खरीदा हुआ कपड़ा उन्होंने अन्यान्य पश्चिमी देशों में ही बेंचा।

इङ्गलैंड से एमेरिका और जर्मनी आदि देशों ने शिक्षा ग्रहणकर उसके अनुसार स्वयं चलना आरम्भ किया। राह में कितनी ही कठिनाइयों के आने पर भी उन्होंने हार्दिक वीरता और बल से उनका सामना किया। अंत में इङ्गलैंड की तरह उनको भी सफलता प्राप्त हुई। बड़े २ कर लगाकर उन्होंने भी बाहर की बनी हुई सुन्दर और सस्ती चीज़ों को अपने देश में बिकने से रोक दिया। इस कर के लगाने से दूसरे देशों के फ्री ट्रेड (स्वतन्त्र-वाणिज्य) के सिद्धान्त के माननेवालों ने हाहाकार मचाया, परन्तु वे दृढ़ और स्थिर रहे। उन्होंने किसी कल्पित सिद्धान्त को न मानकर इङ्गलैंड के उदाहरण को आगे रख लिया। वे इङ्गलैंड के समान की उन्नत दशा को प्राप्त कर बहुतेरी बातों में इङ्गलैंड के अनुसार चलने लगे परन्तु उससे पहिले उन्होंने इङ्गलैंड के वर्तमान नियमों और रीतियों के विरुद्ध चलकर काम लिया। उन्होंने अपने देश के व्यापार के नियमों को समय २ पर अपने देश की दशा के अनुसार बदला। जब उनके देश की दशा अच्छी नहीं थी, वे स्वतन्त्रजीवन व्यतीत नहीं कर सकते थे और दूसरे देशों पर बहुत कुछ निर्भर थे उस समय वे खुले दरवाजे के व्यापार के नियमों पर चले। इससे दूसरे लोगों और उनकी वस्तुओं से उनका अधिक मेल जोल हुआ और अपने से उन्नत लोगों की कारीगरी को उन्होंने समझना सीख लिया। दूसरों की अच्छी संगत से उनके मन में दूसरे देश की तरह अपने देश में चीज़ें बनाने का उत्साह उत्पन्न होकर उन्होंने सिद्धि के लिए कार्य आरंभ कर दिया। इससे जब उनकी दशा सुधर कर

उनको यह निश्चय हो गया कि अब हम अपने ही देश में आवश्यक वस्तुओं को बनाकर अपना अभाव मिटा सकते हैं तब उन्होंने बाहर के माल पर कर लगा कर स्वदेशी वस्तुओं के बनने की बाधा दूर की। इससे थोड़े ही समय में उनकी बड़ी उन्नति हुई। जब उनका देश उन्नति में दूसरे उन्नत देशों के बराबर हो गया और उनको आशा हो गई कि अब हमारा माल दूसरे देशों के बने हुए माल से टक्कर लेकर बाहरी देशों में बिक सकेगा तब उन्होंने बाहर के माल पर का कर हटाकर रक्षामूलक व्यापार आरम्भ किया, जिसमें दूसरे देशवाले उनके माल को अपने देश में प्रवेश करने दें और उनको व्यापार का लाभ उठाने से न रोक सकें।

बाहर के माल पर कर लगाते समय उन्होंने सब माल पर ही नहीं परन्तु केवल उन वस्तुओं पर ही कर लगाया था, जिनको वे अपने देश में बनाना अत्यावश्यक समझते थे। यह कर कम नहीं, गहरा था।

पश्चिमीय देशों ने जब दूर २ के देशों से व्यापार कर वहां के कच्चे माल को लाने और अपने माल को वहाँ ले जाने की आवश्यकता देखी तब उन्होंने अपने जहाज़ बनाये। जहाज़ों के बनने से उनको अत्यन्त लाभ पहुंचा और समुद्र पर उनकी शक्ति बढ़ गई। इससे वे दूर देशों में जाने और नवीन २ देशों की खोज करने के योग्य हो गये। नये देशों पर, वहां के लोगों को गिरी हुई अवस्था में देख, उन्होंने अपना अधिकार जमा लिया और अपनी बुद्धि के बल से वे उनके प्रभु बन गये और उनको अपना दास बना लिया।

समुद्र पर आजकल पश्चिमी जातियों की इतनी शक्ति हो गई है कि हमलोग उसका अनुमान भी नहीं लगा सकते। आज समुद्रपार जाना एक साधारण सी बात हो गई है। समुद्रों में तार लग गये हैं। वहां बिजली का प्रकाश भी होता है। समुद्र में पानी के नीचे ही नीचे एक जहाज़ चला जाता है। समुद्र में सुरंग लगा कर वैरी के जहाज़ नष्ट कर दिये जा सकते हैं। हमारे देशवासियों के लिए ये बातें अद्भुत हैं। बहुतों को तो समुद्र के दर्शन तक का सौभाग्य भी प्राप्त नहीं हुआ है फिर दूसरे देशों की तरह उस पर अपनी शक्ति जमाने की तो बात ही वे क्या कर सकते हैं?

पश्चिम के सभ्य देशों की रेलें आदि भी अपने २ देश के व्यापार में बड़ी सहायता देती हैं। जर्मनी आदि देशों में, जहां उनका सब प्रबन्ध सरकार के हाथ में है, उनसे विशेष लाभ पहुंचा है। सरकार के हाथ में प्रबन्ध होने से उनका लाभ भी लोगों को ही मिल जाता है। लेकिन हमारे देश की बात कुछ और ही है।

इतिहास का जो थोड़ा सा अंश लेख के आदि में पाठकों के सम्मुख रक्खा गया है उससे वे भलीभाँति अनुमान कर सकते हैं कि अब अखिल संसार की दशा पहिले कीसी नहीं है। परिवर्तन तो प्रकृति की हर एक वस्तु में नियम से होता ही है परन्तु परिवर्तन के भी कई प्रकार हैं। कभी परिवर्तन पहिली दशा की अपेक्षा अच्छी दशा में होता है और कभी बुरी में। अच्छी दशा में परिवर्तन होना संसार के सब जीव चाहते और बुरी दशा में परिवर्तन होने से सब घबराते हैं। दुर्भाग्य से हमारे देश में गत कई शताब्दियों में जो परिवर्तन हुआ है वह बुरे ही की ओर हुआ है। हमने उलटी उन्नति अर्थात् अवनति की है। हमारा देश जब से गिरा है तब से अभी तक फिर नहीं उठा। यह दिनोदिन दूसरों पर निर्भर होता चला गया है। इसने अपनी अधोगति को जानने के लिए विगत कुछ वर्षों से पहिले कोई भी प्रयत्न नहीं किया था। प्रकृति के नियमानुसार और परिणामों के जैसे कारण होते हैं, वैसे ही हमारे देश की अवनति के भी कारण हैं। इनका सविस्तर वर्णन [illegible]

से लेख में असम्भव होने पर भी उनमें से कुछ कारणों के विषय में नीचे विचार किया जाता है।

हमारा देश

एक प्रकार का महाद्वीप है। इसमें भिन्न भिन्न प्रकार की कई भाषाएँ बोली जाती हैं परन्तु उनमें ऐसी भाषा कोई भी नहीं जिसको हर प्रान्त के नर, नारी, बच्चे, बूढ़े बोलते या समझते हों। एक भाषा के अभाव से हमारे देश पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ा है। देश सैकड़ों भिन्न २ टुकड़ों में बँट गया है। एक टुकड़े के रहने और वहां की भाषा बोलनेवाले दूसरे टुकड़े के निवासियों के लिए एक प्रकार के विदेशी से बन गये हैं। एक देशी भाई से दूसरे देशी भाई को सहायता मिलना अथवा कोई लाभ पहुंचना बन्द हो गया था। ऐसी दशा में अँगरेज़ी भाषा हमारे लिए बड़ी लाभदायक हुई। अँगरेज़ी भाषा का प्रचार देश के प्रायः सब प्रान्तों में थोड़ा बहुत हो जाने से एक प्रान्त के शिक्षित दूसरे प्रान्त के शिक्षित लोगों की बातों को समझने और एक दूसरे की आवश्यकताओं को एक दूसरे पर प्रकट करने लगे। इस मेल जोल के लाभ को अनुभव करके देश के महानुभावों और नेताओं के हृदयों में सारे देश के लिए एक देशी भाषा नियत करने का शुभ-संकल्प उत्पन्न हुआ। शुभ संकल्प का परिणाम भी शुभ ही होता है। सौभाग्य से हिन्दी भाषा का प्रचार दिनोंदिन बढ़ रहा है और अब आशा होती जाती है कि वह समय निकट ही आरहा है जब कि हिन्दी भाषा, देश की "राष्ट्र भाषा" हो जायगी।

दुर्भाग्य से देश में भिन्न २ भाषाएँ ही नहीं परन्तु भिन्न २ मतमतान्तर भी विद्यमान हैं। एक मत का अनुयायी दूसरे मत के अनुयायी को बहुत ही घृणा से देखता है। कभी २ इनमें परस्पर इतना वाद-विवाद बढ़ जाता है कि यह उनकी जानों के नाश का कारण हो जाता है। धार्मिक विषयों पर आजकल के पश्चिमी सभ्य देशों में भी गत कई शताब्दियों में बहुत से झगड़े हुए हैं और लाखों करोड़ों मनुष्यों की जानें इनमें गई हैं परन्तु वहां के लोगों ने देश के हित के लिए धार्मिक वाद-विवाद को तजने में कभी ढीलाई नहीं की परन्तु ऐसी बात हमारे देश में नहीं है। यहां तो धार्मिक वादविवादों के आगे देश तुच्छ हो जाता है। उसका कोई अस्तित्व ही नहीं रह जाता। देश को हानि पहुंचे या लाभ, यदि एक मत के अनुयायी को दूसरे मत के अनुयायियों पर दबाव डालने का अवसर मिल जाय तो उसको स्वर्ग का आनन्द मिल जाता है।*

हमारे प्राचीन धार्मिक ग्रंथों के अर्थ भी कुछ समय से कई कारणों से ऐसे लगाये गये हैं कि हमारे बहुतेरे भाई कर्मयोगी की जगह वैरागी बन गये हैं। वे धन और सम्पत्ति का संचय करना पाप समझ जीवन को एक प्रकार का भार समझने लगे और उसके सुधार की कोई चेष्टा न कर जंगलों में जा बैठे। उन्होंने आर्थिक दशा की ओर भी कोई ध्यान नहीं दिया। अभी तक इस देश में बहुत से ऐसे लोग हैं जो धनसञ्चय को महापाप समझते हैं। झूठे सन्तोषरूपी देवता की आराधना के सिवा वे और किसी देव की सेवा नहीं करते। जो कुछ थोड़ा बहुत कहीं से प्राप्त हो जाता है उसीपर वे अपने दिन काटते हैं और यदि उनसे कोई पूंछने का साहस करता है कि "महाशयो आप अधिक कार्य करने के योग्य होते हुए भी अधिक कार्य क्यों नहीं करते" तो वे बड़े

* भिन्न भाषाओं या मतभेदों से देश गुलामी की जंज़ीर में नहीं जकड़ जाता। स्विज़रलैंड की शासन-प्रणाली सर्वोत्तम समझी जाती है किन्तु वहां भाषाएं अनेक हैं और धार्मिक मतभेद भी कम नहीं हैं। सं० म०।

ज्ञानी धर्मात्मा की तरह उत्तर देते हैं कि "अजी! अधिक हाथ पैर मारने से क्या होता है, जितना विधाता ने एक बार लिख दिया है, हर हालत में उतना ही मिलेगा, किसी तरह दिन काटने हैं, सो काटे जाते हैं।" ऐसी बातों के होते हुए यदि अवनति का दौरदौरा हो, तो आश्चर्य ही क्या है?

हमारे देश की अवनति का सबसे बड़ा कारण इसका कृषि-प्रधान होना ही है। बहुत वर्षों से, जब से यहाँ की कारीगरी का नाश हुआ, देश के लोगों का सबसे बड़ा काम खेतीबारी ही रह गया है। वह देश, जिसमें केवल कच्चा माल ही उपजाया जाता है, कभी आर्थिक या सामाजिक उन्नति नहीं कर सकता। कृषिप्रधान देश को प्रकृति पर बहुत कुछ निर्भर रह कर ऋतुओं के अनुसार कार्य करना पड़ता है। वर्षा की कमी या अधिकता से उसकी बड़ी हानि होती है परन्तु शिल्प-प्रधान देश को ये कठिनाइयाँ नहीं होतीं। वह हर ऋतुओं में अपना कार्य करता है। यदि वर्षा के अभाव से एक देश से उसको कच्चा माल प्राप्त नहीं होता तो वह दूसरे देश से पा जाता है। कलों की सहायता से जितनी अधिक संख्या में चीज़ें बनाई जायँ, उतनी ही वे सस्ती पड़ती हैं परन्तु किसी भूमि में यदि अधिक बीज डाला जाय या उसे बार २ बोया जाय तो उसकी शक्ति घटती ही जाती है। कारखानों में कार्य करनेवाले श्रमजीवी एक कारखाने का काम छोड़ कर अपने लाभ के लिए दूसरे कारखाने में जा कर कार्य कर सकते हैं परन्तु एक कृषक अपनी भूमि छोड़ दूसरे की भूमि पर जाकर अपना अधिकार नहीं बैठा सकता। उसे अपनी ही भूमि पर कार्य करना पड़ता है, चाहे उससे उसके जीवन-निर्वाह के लिए थोड़ा प्राप्त हो या अधिक। कला-कौशल से वस्तुएँ बनानेवाले देश की आय कृषक-देश की आय से बहुत अधिक होती है, इसलिए वहाँ के लोग धनवान हो जाते हैं। धन को प्राप्त करके वे अपने जीवन के सुख और सुधार के लिए बहुत कुछ कर सकते हैं परन्तु कृषिप्रधान देश के लोग बिना किसी प्रकार की उन्नति किये जड़बुद्धि और भद्दे शरीरवाले ही बने रहते हैं। वे प्राचीन मार्गों और रीतिओं से मकड़ी की तरह चिमटे रहते हैं, उनके मन में अपनी उन्नति या बुद्धि को तीक्ष्ण करने का भाव तक कभी उत्पन्न नहीं होता।

अब अवनति को अपने देश से हटाने के लिए हमें बहुत अधिक शक्ति और बल की आवश्यकता है। यदि आजकल के संसार में जीना है तो अपनी उन्नति के उपाय सोच कर हमको उनके अनुसार काम करना पड़ेगा। हमारी उन्नति अब उन बातों से नहीं हो सकती, जिन से पहिले हुई थी। भारतवर्ष में फिर हाथ से काम करनेवाले कारीगर उत्पन्न हो जाने से भारत का कल्याण नहीं हो सकता क्योंकि अब पहिले की तरह दूसरी जातियाँ हम से पीछे नहीं हैं। उनकी कलों और मशीनों से बनाई हुई वस्तुओं के सामने हमारे कारीगरों की हाथ से बनाई हुई वस्तुएँ न ठहर सकेंगी।

जिन रीतिओं से एमेरिका और जापान ने इंगलैण्ड से शिक्षा पाकर कार्य किया है उन्हीं रीतिओं से हमें कार्य करना होगा। कल्पित सिद्धान्तों की ओर ध्यान न देकर प्रत्यक्ष प्रमाणों को अपने नेत्रों के आगे रख, उनके अनुसार कार्य करना होगा। समस्त संसार के सुख की अभी हमें चिन्ता करने की कोई आवश्यकता नहीं। हमें सबसे पहिले अपने देश की आर्थिक-दशा को सुधार कर सुख की प्राप्ति के लिए तन मन धन अर्पण करने की आवश्यकता है। प्रयाग विश्वविद्यालय के अर्थशास्त्र के विशेष व्याख्याता प्रोफ़ेसर जिवन्स के लिखे अनुसार हमें दूसरे देशों के सुख के लिए अपने देश का नाश नहीं करना चाहिये क्योंकि आजतक किसी देश ने दूसरे देश की भलाई के लिए अपना बलिदान नहीं किया है।

एक हमारी आर्थिक दशा के बिगड़ने से इस समय हमारी और सब बातें भी, जो एक प्रकार से किसी देश में जीवन का आधार होती हैं, बिगड़ रही हैं। हमें अपने देश के कच्चे माल से इसी देश में कल-कारखाने खोलकर पक्का माल बनाना चाहिये। दूसरे देशों के मालों पर, जो यहां आकर सस्ते दामों बिकते हैं, सरकार से कर लगा देना चाहिये। युद्ध के कारण हमें कलाकौशल के कारखाने खोलने और उनसे लाभ उठाने का अच्छा अवसर मिला था परन्तु हमने ऐसे अवसर को भी बिना कोई लाभ उठाये ही खो दिया। हम कोई पुरुषार्थ दिखाये बिना ही जर्मनी और आस्ट्रिया की बनी हुई वस्तुओं को न पाकर जापान और एमेरिका की वस्तुओं पर टूट पड़े। युद्ध-लिप्त जर्मनी आदि देश भी युद्ध के बाद हमसे अच्छे रहेंगे क्योंकि उनके नवीन आविष्कार, जो आज सर्वनाश का काम कर रहे हैं, युद्ध के पश्चात् वे देश के सब व्यापार बढ़ाने में लगा दिये जायँगे। परन्तु उस समय हमारे देश का क्या हाल होगा? उस समय भी क्या हम अपने पूर्वजों की संसार-विख्यात उन्नति के गीत गाकर ही रह जायँगे? आज तक जितने देशों ने उन्नति की है वह सिर्फ अपनी सरकार की सहायता से ही नहीं, बल्कि लोगों के जागृत होकर काम करके दिखलाने से ही की है। हमारे देश के जो लोग हर बात के लिए सरकार को दोषी ठहराकर सरकारी सहायता की बाट जोहते हैं, निकम्मे हैं; उनसे देश को कभी कोई आशा नहीं करनी चाहिये। कई कठिनाइयों के होने पर भी सरकार ने औद्योगिक कमीशन का काम आरम्भ कर दिया है लेकिन हम लोगों ने क्या करके दिखलाया? धन, सरकार के अतिरिक्त देश के और भी लोगों के पास है। यदि वे अपने धन से कला-कौशल के कारखाने खोलें, विज्ञान-विद्या का प्रचार करें, तो क्या नहीं हो सकता? लेकिन यहां तो एक साधारण सी कहावत "साझे की खेती गदहों न खाय" ने ही अँधेरा डाल रक्खा है। ऐसी कहावतों पर बिना विचार किये विश्वास करनेवाले कब अपना धन दूसरों के धन में मिलाकर कोई बड़ा काम कर सकते हैं? उनसे, देश को अपना या पराया उपकार कर देने की कैसे आशा हो सकती है?*

विज्ञान-विद्या की ओर कम ध्यान देने से इंगलैंड जैसे बलशाली देश ने भी धोखा खाया है; पर "सबेरे का भूला शाम को भी घर आजाय तो भूला न जानिये" के अनुसार इंगलैंड तो शीघ्र ही अपनी भूल को सुधारकर ठीक मार्ग पर आगया, पर क्या हमारे लिए भी ऐसा कहा जा सकता है? क्या हम भी अपनी भूल को शीघ्र ही सुधार लेते हैं? इंगलैंड में विज्ञान-विद्या के प्रचार के लिए अब कई कमेटियाँ काम करने लग गई हैं और कमीशन भी बैठ गये हैं। यही नहीं, मैंचेस्टर आदि नगरों में रंग आदि कितनी ही वस्तुएँ, जो पहिले जर्मनी से आती थीं, तैयार होने लग गई हैं। किन्तु भारत अभी तक घोर

---

* यह लेखक महोदय का भ्रम है। लोग इसलिए रुपया नहीं लगाते क्योंकि वे धन को जोखिम में नहीं डालना चाहते। नूतन देश में, नूतन मनुष्यों द्वारा खोले गये कल कारखाने सफलतापूर्वक चल निकलेंगे इसमें सहसा लोगों को विश्वास नहीं होता। ऐसी दशा में यह सरकार का कर्तव्य होता है कि वह कह दे कि कम से कम इतना सूद सरकार गरेन्टी करती है, जर्मनी, जापान, इङ्गलैंड सभी स्थानों में यही हुआ है। भारत में रेलों के लिए विदेशी व्यापारियों के रुपये का सूद सरकार ने गरेन्टी कर रक्खा है। लेखक महोदय स्वयम विदेशी मालों पर कर बैठाना चाहते हैं किन्तु यह सरकार के आधीन है, हम हज़ार उद्योग करें तो क्या होगा? इसीलिए सरकार का नाम लिया जाता है। उन्नति की कुञ्जी शासित और शासक के हितों का एक होना है और स्वराज्य ही सब उन्नतियों का एकमात्र साधन है। सं० म०।

निद्रा में ही पड़ा हुआ है। अभी तक इसने कुछ भी नहीं किया।

यहाँ यदि साबुन और कांच आदि के साधारण कारखाने ही खुल जायँ तो भी प्रतिवर्ष दो करोड़ रुपये बाहर जाने से बच सकेंगे। देश में काँच की चूड़ियों का बहुत ही अधिक प्रचार हुआ है, इनके बनाने की रीति भी बहुत सहल है, फिर भी अभी तक यहाँ इसका कोई संतोषजनक कारखाना नहीं खुला।

समाचार-पत्र आदि भी, जिनका मुख्य उद्देश्य देश और समाज का सुधार करना है, इस विषय में बहुत कुछ कर सकते हैं। प्रायः सब अँगरेज़ी पत्रों में ही कला-कौशल के महत्व और विज्ञान-विद्या के प्रचार विषयक लेख नित्य ही निकल रहे हैं परन्तु अभी तक देशी पत्रों में इसका बहुत ही कम आन्दोलन हुआ है। देशी भाषा के पत्र ही ऐसे हैं, जिनसे विशेष प्रचार की आशा की जा सकती है क्योंकि वे सर्वसाधारण में, जहाँ प्रचार की अधिक आवश्यकता है, इसका महत्व बतला सकते हैं। समाचार-पत्र ही पता लगाकर समय २ पर यह लिख सकते हैं कि अमुक स्वदेशी वस्तु अमुक स्थान में बनती और मिल सकती है। देश में कुछ ऐसे भक्त उत्पन्न होने लगे हैं, जो स्वदेशी वस्तु बर्तना ही अपना धर्म समझते हैं परन्तु जब उन्हें देश में बननेवाली कितनी ही वस्तुओं का पता ही नहीं मिलता, तो वे अपना नियम कैसे पाल सकते हैं। अन्त में उन्हें विदेशी वस्तु मोल लेने पर बाध्य होना पड़ता है। स्वदेशी वस्तुओं की प्रदर्शिनियां जितनी अधिक से अधिक हो सकें, हमें खोलनी चाहियें। इनके विज्ञापन भी खूब प्रकाशित होने चाहियें क्योंकि कई बार ऐसा हुआ है कि कई वस्तुओं के कारखाने खुले परन्तु अधिक विज्ञापन न देने से उनकी बिक्री अधिक न हो सकी और उनको हानि उठा कर कारखाने बन्द कर देने पड़े।

अन्त में प्यारे पाठकों से यही प्रार्थना है कि वे देश की गिरी हुई आर्थिक दशा की ओर अपना ध्यान दें और अपने मित्रों और संबंधियों का ध्यान इस ओर दिलावें और हर प्रकार से सुधार के लिए अपनी शक्ति के अनुसार पूर्ण यत्न करें। यत्न करने के लिए सिर्फ धन की ही आवश्यकता नहीं है। जिनके पास धन है, वे धन से सब कुछ कर सकते हैं और जिनके पास धन नहीं वे बिना धन के भी बहुत कुछ कर सकते हैं। स्वदेशी वस्तुओं का सेवन तो हिन्दुस्तान का एक बच्चा भी कर सकता है। देशी वस्तुओं का व्यवहार होने से, कला-कौशल के कारखाने खुल जाने से, व्यापार की उन्नति हो जाने से हमारे सब संकट कट जायँगे और हम संसार के सभ्य देशों की पंक्ती में आदर का स्थान पाने के योग्य होंगे। इसलिए प्रत्येक भारतवासी को इस हेतु की सिद्धि के लिए कटिबद्ध होकर, देश के प्राण और प्रधान अंग स्वदेशी व्यापार की वृद्धि करने के निमित्त तन मन धन अर्पण करना चाहिये।

प्रार्थना।

[लेखक—श्रीयुत श्यामलाल प्रसाद गुप्त।]

कन्हैया बन्शी फेर बजादे।
प्रेम ऐक्य भारत मह भरकर, जातीयता जगादे।
मिलें एक से एक परस्पर ईर्षा कपट भगादे॥
विद्या कला धर्म कौशल में पुनरपि नाथ बढ़ादे।
प्रमुदित रहें सभी नर नारी मीठी तान सुनादे॥
देशभक्त जोशीले हों सब सुमति स्वभाव जगादे।
दुख से भारत विलख रहा है, आँसू पोंछ हँसादे॥

विलियम जेम्स।

[लेखक—श्रीयुत गुलाब राय, एम० ए०।]

दो प्रतिकूल सिद्धान्तों का भी कभी कभी एक ही परिणाम होता है। हेगिल (Hegel) और हैकल (Hackel) के सिद्धान्तों में बड़ा ही अन्तर है। एक महाशय यूरोप में आत्मैकवादियों के शिरोमणि गिने जाते हैं, तो दूसरे महाशय आधुनिक प्रकृतिवादियों में अग्रगण्य हैं, किन्तु दोनों हीकी फिलासफ़ी अन्त में हमको नियतवाद (Determinism) में ले जाती हैं। दोनों ही के मत से संसार, कार्यकारण की शृङ्खला में बँधा हुआ है। मनुष्य को संसार में किसी नई बात की गुंजाइश नहीं है। यदि हेगिल के मत से व्यक्ति का समष्टि में लोप हो जाता है तो हैकल के अनुयायियों के लिए मनुष्य, बन्दरों का सकुटुम्बी है। प्रकृतिवाद (Materialism) और आत्मवाद (Spritualism) दोनों ही मनुष्य का गौरव घटाते हैं। दोनों ही बुद्धि की प्रधानता मानते हुए हमारे भावों को सत्य के निर्णय करने में कोई स्थान नहीं देते। संसार की उन्नति में भावों की प्रधानता एवं मनुष्यों की स्वतंत्रता और गौरव स्थापन करने के लिए कृत्यसाधनवाद (Pragmalism) का उदय हुआ। जेम्स, शिलर और ड्यूई ये तीन महाशय कृत्यसाधनवाद के प्रवर्तक माने जाते हैं। जेम्स साहब इस मत के प्रधान आचार्य माने गये हैं। आप एमेरिका के सब से बड़े फिलासफ़र समझे जाते हैं। आपने बारह ग्रन्थों* की रचना की है। आप बहुत काल तक हावर्ड विश्वविद्यालय में फिलासफ़ी के प्रधान अध्यापक रहे थे। आपका जन्म १८४२ ई० में तथा स्वर्गारोहण सन् १९१० में हुआ था। आपका उदय ऐसे काल में हुआ, जब कि विज्ञान, विकाश-

---

* Principles of psychology, 1891. Psychology (text book 1892. The will to believe 1897. Human Immortality 1898. Talks to teachers on Psychology; and to student on some of life's ideas 1899. The varieties of religeous experience 1902. A Pragmalism 1907. The meaning of Truth 1909. Pluralistic Universe 1909. Some Prob'ems of Philosophy (Post humous) 1911. Memoirs and studies 1911. Essays in Radical Empericism (Post humous) 1912.

वाद की ओर झुकता जा रहा था। विलियम जेम्स पर धार्मिक और वैज्ञानिक सभी तरह के प्रभाव पड़े थे। इसी कारण विकाशवाद के पूरे महत्व को वे समझ सके। उनके लिए विकाशवाद की उत्पत्ति धर्म को उन्मूलन करने के लिए नहीं किन्तु चेतनसंसार को यंत्रवत् माननेवाली कल्पनाओं की अपूर्णता दिखलाने के अर्थ हुई थी। विकाशवाद द्वारा प्रतिपादित व्यक्ति-वैभिन्य (Individual variatism) में उन्होंने व्यक्ति का गौरव और शक्तिमत्ता का प्रमाण पाया। आपका विश्वास था कि प्रत्येक व्यक्ति, संसार को एक अनूठी दृष्टि से देखता है और साधारण से साधारण मनुष्य भी इस संसार के विषय में नई बात बतला सकता है। बहुतसे लोग केवल समूह की उत्पादक शक्ति को मानते हैं किन्तु आप व्यक्ति में भी उत्पादक शक्ति को मानते थे। ऐसे सिद्धान्तों का प्रचार कर आपने मनुष्यजाति का बड़ा उपकार किया है। इन महाशय के विषय में संक्षेपतः इतना कहकर हम इनके दार्शनिक विचारों का विषयानुकूल निरूपण करते हैं।

दार्शनिक रीत।

प्रत्येक तत्ववेत्ता के मत से सत्यासत्य की जाँच के लिए पृथक पृथक लक्षणों की कल्पना की गई है। जेम्स साहब के मत से वस्तु की उपयोगिता ही सत्य की कसौटी है।† किसी विचार की जाँच से पहिले हमको यह प्रश्न करना चाहिये कि इससे हमारे किसी हित का साधन होगा या नहीं? कोई बात तर्क से ठीक हो या न हो जब तक वह क्रियात्मक जाँच में ठीक न उतरे तब तक ठीक नहीं कही जा सकती। जिस विचार से हमारा किसी प्रकार हित सधे वही सत्य है। उदाहरणतः यदि हमको आस्तिक-नास्तिक-वाद का झगड़ा तय करना हो तो क्या करना चाहिये? युक्तियों में दोनों ही का पक्ष मज़बूत है। पर जेम्स साहब के मत से इस झगड़े का सहज ही में निपटारा हो जाता है। वे पूछते हैं कि मनुष्यजाति का सन्तोष किस कल्पना से हो सकता है? उत्तर में अवश्य कहना पड़ता है कि आस्तिकवाद, आशा और सन्तोष की फ़िलासफ़ी है और नास्तिकता का सूर्य नैराश्य के समुद्र में अस्त हो जाता है। नास्तिकवाद के हिसाब से यह समस्त संसार निष्प्रयोजन और निराधार है। हम लोग पानी के बुलबुलों की तरह नाश को प्राप्त हो जायँगे और हमारे मरने के बाद दान, पुण्य, क्रिया, तप, योग आदि किसी अर्थ में न आवेगा। सच्चे नास्तिकवादी को तो हाथ पर हाथ रक्खे बैठे रहने के सिवा और कुछ भी कर्तव्य नहीं है। यही आस्तिकवाद और नास्तिकवाद में अन्तर है और इसी अंतर के कारण आस्तिकवाद की श्रेष्ठता है।

जेम्स साहब अपने को अनुभववादी कहते हैं किन्तु इनके मत में अनुभव की परिभाषा कोम्ट और मिल सरीखे अन्य अनुभववादियों की भांति संकुचित नहीं है। इनके मत से अनुभव में धार्मिक पुरुषों का समाधिजन्य सुख भी शामिल है। ये लाक साहब की तरह मन को कोरे कागज़ की तरह निष्क्रिय भी नहीं मानते। इनका कहना है कि केवल बुद्धि की अनुकूलता ही सत्य का प्रमाण नहीं है। क्या हमारे भाव हमारे अन्तःकरण से बाहर हैं? फिर बुद्धि ही क्यों प्रधान मानी जाय? ज्ञान और क्रिया में, ये क्रिया को प्रधान मानते हैं। इनका कथन है कि कार्य में कुशलता के लिए ही ज्ञानोपार्जन किया जाता है। ज्ञान, क्रिया के लिए है। ज्ञान, हमारा परम पुरुषार्थ नहीं है। ज्ञान, जीवन का एक अंश है। पूरे जीवन में ज्ञान, भाव और क्रिया सभी शामिल

† Pragmalism, on the other hand, asks its usual question .... it says "what concrete difference will its being true make in any one's actual life ?............what, in short is the truth's cash-value in experimental term."

हैं। अतः हमको तीनों ही के सन्तोष का यत्न करना चाहिये। अन्तःकरण की सब वृत्तियों की ओर पूरा पूरा ध्यान न देने ही के कारण धर्म और विज्ञान में झगड़ा चला आया है। धर्मवालों ने इन्द्रियजन्य ज्ञान का तिरस्कार किया है तो विज्ञान ने हमारे भावों को मूर्खता का लक्षण समझा है। इसी कारण दोनों में युद्ध चला आता है। यदि विज्ञानवाले हमारे संकल्प और भावनावृत्तियों की ओर ध्यान देते, तो संसार में नास्तिकता प्रवेश ही न करने पाती, क्योंकि ईश्वरवाद हीमें हमारी सब वृत्तियों का सन्तोष होता है। हमको सत्यासत्य निर्णय में केवल विचार ही का सहारा न लेना चाहिये। यह एकाङ्गी सन्तोष है। हमको विचारों में अविरोध के अतिरिक्त अपने भावों की अनुकूलता, संकल्पों की सफलता और कार्यसाधन की सुविधा की ओर अवश्य ध्यान रखना चाहिये। संक्षेपतः जेम्स साहब की यही दार्शनिक रीति है। इसीके अनुसार जेम्स साहब ने सब प्रश्नों का उत्तर दिया है।

मनोविज्ञान।

इसमें जेम्स साहब ने बहुतसी नई बातें बतलाई हैं। इन सब का यहां उल्लेख करना असम्भव होने पर भी उनकी सामान्य स्थिति का ज्ञान आवश्यक है। वे हमारे संवेदनों (States of conciousness) के अतिरिक्त और कोई निर्गुण अन्तरात्मा नहीं मानते। वे हमारे संवेदनों को माला की गुरियों की तरह अलग नहीं मानते, जिससे कि उन्हें इकट्ठे करने के लिए एक सूत्ररूपी आत्मा की आवश्यकता पड़े। वे, हमारी संज्ञा को प्रवाहरूप और उस प्रवाह को अटूट मानते हैं। ये शरीर ही को आत्मा माननेवालों मेंसे नहीं हैं। भौतिक शरीर के नाश होने पर आत्मा का नाश नहीं होता। इन्होंने अपने मनोविज्ञान में शारीरिक विज्ञान (physiology) से बड़ा काम लिया है, किन्तु ये हक्सले, स्पेंसर आदि वैज्ञानिकों की भांति जीव को शरीर अथवा मस्तिष्क का विकार नहीं मानते। बहुतेरे वैज्ञानिकों का मत है कि हमारे विकाश में चेतनाशक्ति का कुछ भी हाथ नहीं है। जेम्स साहब ने इस मत का बड़े ज़ोर से खण्डन किया है। वे कहते हैं कि विकाश में चुनाव की बहुत ज़रूरत है। संसार में असंख्य पदार्थ हैं और हमारे प्रारम्भिक शरीरों को उन सब से सम्बन्ध में आना पड़ा होगा, किन्तु उन्होंने उनमें से उन्हीं पदार्थों को चुना है, जो उन शरीरों की तत्कालीन अवस्था के उपयुक्त थे। यदि चुनाव की शक्ति उपयोग में न लाई गई होती, तो चाहे कोई पदार्थ, हमारे ऊपर प्रभाव डालने लगते और विकाश में कोई नियम न रहता। चुनाव, किसी उद्देश्य के साथ होता है और उद्देश्य, चेतना से पृथक नहीं रह सकता, इसलिए मस्तिष्कादि अङ्गों की नियमरहित ग्राहकता की कमी सप्रयोजन चुनाव से पूर्ण कर विकाश को यथाक्रम बनाने के लिए चेतनाशक्ति की आवश्यकता माननी पड़ती है। दूसरा प्रमाण यह है कि यदि चरसृष्टि में चेतन-प्रसार पर दृष्टि डाली जाय तो ज्ञात होगा कि जो नीचकोटि के जीव हैं, उनके शरीर सरल हैं और उनमें चेतना का प्रकाश कम है। जैसे २ हम ऊपर चढ़ते जायँ वैसे २ जीवों के शरीरों में रचना-वैचित्र्य गूढ़तर होकर चेतनाशक्ति का अधिकाधिक प्रकाश होता है। इससे ज्ञात होता है कि ऐसे शरीर केवल भौतिक नियमों से स्वयम काम नहीं चला सकते। इसलिए उनको चलाने के निमित्त चेतनाशक्ति की आवश्यकता होती है। दूसरी बात यह है कि जो शक्ति व्यवहार में अधिक लाई जाय, वह बढ़ती है। उच्चकोटि के शरीरों मे चेतनाशक्ति का अधिक होना ही इसका सबूत है कि इन जानवरों को उच्चकोटि में आने के लिए चेतना को काम में लाना पड़ा, इसीसे उनके शरीरों की क्रमोन्नति होने के साथही चेतनाशक्ति भी यथाक्रम बढ़ती गई।

इसके साथ ही यह कह देना असंगत न होगा कि जेम्स साहब भूत, प्रेत और आवेशादि आध्यात्मिक अनुसन्धान सम्बन्धी बातों के बड़े पक्षपाती थे। आपने, अपने मनोविज्ञान में संकल्प और विश्वास को बहुत ऊँचा स्थान दिया है। आपका कथन है कि विश्वासपूर्वक काम करने से ही उसकी सत्यता प्रकट हो सकती है। पानी में घुसे बिना तैरना नहीं आसकता।

प्राकृतिक द्रव्य ।

इस विषय में जेम्स साहब, बर्कले से सहमत हैं। उन्होंने मानसिक द्रव्य की तरह प्राकृतिक द्रव्य को भी नहीं माना है। वे कहते हैं कि खरिया या और किसी भौतिक पदार्थ के गुणों के अतिरिक्त हमको और किसी वस्तु से प्रयोजन नहीं। द्रव्य का द्रव्यत्व, गुणों से ही प्रकाशित होता है। यदि गुण है तो हमारे लिए वस्तु प्रस्तुत है। यदि गुण नहीं, तो वस्तु कहाँ। रूप, रस, गन्ध स्पर्श और शब्द का ज्ञान ही हमारे लिए कुछ अर्थ रखता है। इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं। साथ ही वे वस्तु की प्राकृतिक सत्ता को भ्रमात्मक नहीं समझते।

एकानेक-वाद ।

इस विषय में जेम्स साहब का कथन है कि संसार में कई प्रकार की एकता देखी जाती है। उदाहरणतः विश्व का विश्व ही एक साथ विचार का विषय बन जाता है। संसार भर में हमारे सम्बन्ध के तंतु फैले हुए हैं। बहुत से लोग मानेंगे कि संसार का एक ही कर्त्ता होने के कारण संसार की एकता है। बहुत से लोग कहेंगे कि संसार में एक प्रयोजन व्याप्त है, अतः संसार एक है। इन सब बातों के होते हुए भी अनेकता का अभाव नहीं। यदि हम संसार को उस विशेष रीति से न देखें, तो संसार में हमको अनेकता ही दिखाई देगी। यदि संसार को नियम और व्यवस्था रहित देखें, तो भी हम उसको अस्तव्यस्त अर्थात् बेसिलसिला कहकर एक साथ विचार का विषय बना सकते हैं। इसी प्रकार यदि हम अपने जान पहिचानवालों की ओर ध्यान न दें, तो सम्बन्ध का भी तारतम्य भ्रमात्मक दिखाई देने लगेगा। संसार को एक मानने से धार्मिक आनंद तो अवश्य ही बढ़ जाता है पर भेद का लेशमात्र ज्ञान न होने से, पूर्ण एकता जाती रहती है। हमारे आचारों की स्थिति के हेतु अनेकता को मानना ही श्रेयस्कर है, क्योंकि नानात्व के माने न तो भक्ति ही सम्भव है और न सांसारिक व्यवहार ही। अनेकता अवश्य है किन्तु संसार में ज्यों ज्यों हमारे सम्बन्ध संगठित होते जाते हैं, त्यों त्यों यह अनेकता घटती जा रही है।

कर्तव्याकर्तव्य ।

मि० जेम्स अनियतवाद को पूरी तौर से मानते हैं। यहाँ तक कि वे स्वयं आकस्मिकता (chance) को भी मानने के लिए तैयार हैं। आप कहते हैं कि जिस संसार में सब बातें पहिले ही से निर्धारित हों, उसमें मनुष्य का उद्योग निष्फल है, क्योंकि वह पूर्वनिर्धारित बात अन्यथा नहीं। यदि संसार में अच्छा और बुरा करने की संभावना हो तो किसी बात के लिए हमारा पश्चात्ताप करना ठीक है, कि हाय! ऐसा करते तो अच्छा होता। किन्तु ऐसे संसार में, जहाँ सब बातें पहिले ही से निर्धारित हैं, अफ़सोस करना और अफ़सोस करने को मना करना भी वृथा है। जबतक हम मनुष्य की स्वतंत्रता न मानेंगे तब तक हम उसको किसी काम के लिए उत्तरदायी भी नहीं ठहरा सकते। संसार, न तो जैसा कि सर्वशुभवादी (optimist) कहते हैं, बिलकुल अच्छा ही है, न विपरीत पक्षवालों के कथनानुसार बिलकुल बुरा ही है। प्रत्येक मनुष्य का धर्म है कि संसार को अच्छा बनाने के लिए वह यथाशक्ति यत्न करे, क्योंकि संसार का अच्छा और बुरा होना हमारे काम पर ही निर्भर है। जेम्स साहब के

अनुसार सत्ता (reality) हमेशा बनती रहती है। सत्ता गठीगढ़ाई कोई तैयार वस्तु नहीं है। यदि हम बुरे काम करेंगे तो संसार बुरा और अच्छे काम करेंगे तो अच्छा होता चला जायगा। इस संसार में हर एक आदमी की बड़ी ज़िम्मेदारी है। हमारे बनाने से संसार बनता है और हमारे ही बिगाड़ने से वह बिगड़ता है। यदि हम संसार को अच्छा न बनाना चाहेंगे, तो ईश्वर भी हमारी सहायता न करेगा। इसलिए हम सबको संसार की उन्नति में योग देना चाहिये। संसार का भला करना ही परम पुरुषार्थ है। 'संसार का श्रेय किसमें है', इसके विषय में जेम्स साहब का कहना है कि इसके लिए कोई बँधे नियम नहीं बतलाये जा सकते। ज्ञानवृद्धि के साथ ही श्रेय के विचार में परिवर्तन होता जाता है। किन्तु प्रत्येक मनुष्य का यह धर्म है कि वह यथाशक्ति संसार के श्रेय के लिए यत्न करे।

हर एक आदमी का काम है कि संसार को अच्छा बनावे। इसके साथ यह प्रश्न उठता है कि मनुष्य में संसार को अच्छा बनाने की इच्छा कहाँ से आई? इस विषय में आपका मत है कि किसी अंश में तो सहजज्ञानवादियों का मत ठीक है, क्योंकि हमारे बहुत से सद्विचारों की उत्पत्ति, उपयोगिता के आधार पर नहीं हुई है और किसी अंश में हाब्स (Hobbs) और बैंथम (Benthem) की बातें ठीक हैं, क्योंकि विचारों की उत्पत्ति नैसर्गिक भी नहीं है।

धर्म का तत्व।

धर्म का मूल भाव में है। धार्मिक भाव अनेक प्रकार के हैं किन्तु वे एक मौलिक सिद्धान्त के आधार पर स्थित हैं। वह आधार यह है कि एकता, साम्य और शान्ति थोड़ी कठिनाई के बाद अवश्य प्राप्त हो सकती है और इस अवस्था के प्राप्त होने पर कुछ शक्ति बाहर से आती हुई मालूम होती है। वह शक्ति हमको अप्रबुद्ध दशा में प्राप्त होती है। जेम्स साहब धर्म का तत्व जातीय व्यवहारों में नहीं किन्तु व्यक्तिगत-अनुभव में मानते हैं। यह अनुभव व्यक्तिभेद से कई प्रकार का होता है, किन्तु सब भेद, मूल दो भेदों के अन्तर्गत हैं। एक तो वे लोग हैं, जो पहिले से ईश्वर से एकता या उसके सान्निध्य के सुख में मग्न रहते हैं। कभी २ वे चमत्कार भी दिखला जाते हैं। दूसरे वे हैं जो अपने को सदा नीच, अधम और पापी ही समझकर सदा पश्चात्ताप करते रहते हैं। पश्चात्ताप के बाद वे कभी २ पहिली कोटि में भी आजाते हैं। कुछ लोगों को पहिले ही से योग का आनन्द मिल जाता है, तो कुछ लोगों को वियोग का दुःख भुगतने पर। धार्मिक अनुभववालों के ये ही मुख्य दो भेद हैं। जेम्स साहब सान्निध्य के आनन्द माननेवालों में और सगुण ईश्वर के उपासक हैं।

गुण-दोष

विलियम जेम्स की फ़िलासफ़ी कहीं २ श्रीरामानुजाचार्य के सिद्धान्तों से मिलती है। आपकी फ़िलासफ़ी वैज्ञानिक रीति की होने पर भी विज्ञान की तरह शुष्क नहीं है। आपके विचार बहुत नवीन मालूम होते हैं, परन्तु आपने जो कुछ कहा है, वह पूरे ज़ोर के साथ कहा है। ये ऐसे लेखक नहीं, जिनकी ख्याति दश बीस वर्षों में उठ जानेवाली हो। आपका नाम दार्शनिक-इतिहास में ऊंचा स्थान पाकर चिरकाल तक विचारशील पुरुषों के स्मृति-पटल पर अङ्कित रहेगा। जेम्स साहब और उनके साथियों के लेखों के कारण यूरोप में ऐक्यवाद का सम्मान कुछ उठता जा रहा है, किन्तु इसके बदले में आपने संसार को जो दिया है वह हमें पूर्णतः संतोषजनक नहीं। संक्षेपतः जेम्स साहब ने चार बातों पर ज़ोर दिया है। वे बातें ये हैं,—(१) सत्यासत्य-विवेचन—इसमें मूल सिद्धान्त यह है कि अमुक विचार से हमारे भावों का सन्तोष होता है या नहीं और इससे हमारा हित-साधन कहाँ तक होगा? (२) नाना-

वाद। (३) अनियत-वाद और (४) संसार की अपूर्णता।

पहिली बात पर हमको इतना ही कहना है कि आपकी कल्पना के अनुसार बुद्धि का कार्य बहुत गौण हो जाता है परन्तु स्वयं आप को भी बहुत से विचारों की पुष्टि के लिए बुद्धि का ही सहारा लेना पड़ा है। हम यह नहीं कहते कि संकल्पों और भावों का तिरस्कार किया जाय। जो बात बुद्धि के अनुकूल है और जिससे हमारा हर प्रकार का सन्तोष हो, वही सत्य है। हमारे यहां कहा गया है कि "सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयात् न ब्रूयात् सत्यमप्रियम्। प्रियं च नानृतं ब्रूयात् इत्थं धर्मस्य लक्षणम्।" परंतु कोई बात प्रिय, हितकर एवं सन्तोषदायक तो होती है, किन्तु सत्य नहीं होती। उदाहरण लीजिये,—लड़ाई पर किसी फौज के थोड़े से आदमी जा रहे हों; उनको यह ख्याल हो जाय कि हमारा सेनापति और फौज़ लिये आरहा है। इसी विश्वास से वे शत्रु से लड़ पड़ें और उनकी जीत भी हो जाय, किन्तु सम्भव है कि पीछे से फौज़ का आना केवल भ्रम ही निकले। उक्त विचार ने, काम तो सन्तोषदायक एवम् हितसाधक भी किया, किन्तु वह निर्मूल था। क्या जेम्स साहब इसे सत्य कहेंगे? फिर कभी ऐसा भी होता है कि कोई विचार हमारे हित का होने पर भी 'हितं मनोहारि च दुर्लभं वचः' के अनुसार हमारे भावों के प्रतिकूल पड़ता हो, तो ऐसी दशा में बुद्धि ही को निर्णायक मानना पड़ेगा। फिर हम बुद्धि को अपने ऊँचे स्थान से क्यों गिरावें?

नाना-वाद

के विषय में हमको यह कहना है कि पहिले तो यह हमारे भावों के प्रतिकूल पड़ने के कारण—विशेषकर जेम्स साहब के मत के अनुसार—अमाननीय ठहरेगा, दूसरे तार्किक युक्तियों के सामने भी यह न ठहर सकेगा। यदि जेम्स साहब जीवों । पूर्ण अनेकत्व अर्थात् उनमें कोई परस्पर सम्बन्ध न मानेंगे तो उनको एक तरह के आध्यात्मिक परिमाणु-वाद में आना पड़ेगा। फिर वे स्वयं भी एक स्वतन्त्र परिमाणु की अवस्था में आ जायँगे और उनको अन्य परिमाणुओं की सत्ता के विषय में कहने का कुछ अधिकार न होगा, क्योंकि उनका तो किसी से कुछ सम्बन्ध ही नहीं। औरों के विषय में वे जान ही क्या सकते हैं? यदि आप पूरा अनेकत्व न मानें तो उनको जीवों में कुछ सम्बन्ध मानना ही पड़ेगा। यदि वह सम्बन्ध झूंठा है, तो जेम्स साहब को पहिली कठिनाई का सामना करना पड़ेगा और यदि सम्बन्ध को सच्चा मानें तो आप ऐक्यवादियों के फन्दे में आजाते हैं क्योंकि वही सम्बन्ध अनेकत्व में एकत्व स्थापित कर देगा। दोनों स्थितियों से बचने के लिए शायद आप यह कहें, (जैसा कि उन्होंने कहा भी है) कि कहीं सम्बन्ध है और कहीं नहीं, तो संसार अनावस्थित दशा को प्राप्त हो जायगा। फिर सम्बन्धवाले अपने को ऐक्यवादी कहेंगे और उनके विरोधियों को अज्ञेय-वाद का आश्रय लेना पड़ेगा। इतने पर भी अनेकवाद सिद्ध न होगा।

अनियत-वाद के लिए हमको यह अवश्य कहना पड़ेगा कि बिना इसके मनुष्य की स्वतंत्रता स्थापित नहीं हो सकती और बिना स्वतंत्रता के हमारा सब आचरण निर्मूल सिद्ध होकर कर्तव्याकर्तव्य के बिना, मनुष्य, मनुष्य ही नहीं रहता। यह बात तो अनियत-वाद के पक्ष की रही, किन्तु, 'यत्ने कृते यदि न सिद्ध्यति कोऽत्र दोषः' तब हमको फिर भी नियत वाद की शरण में आना पड़ेगा।

संसार की अपूर्णता के विषय में हमको इतना ही कहना है कि संसार में उन्नति को मानने पर भी ईश्वर के ज्ञान में हम उसे अवश्यमेव पूर्ण मानेंगे, कारण यदि ईश्वर को संसार की भावी अवस्था का ज्ञान नहीं तो वह संसार का नियंता कैसे हो सकता है? फिर ऐसे

ईश्वर से हमारे धार्मिक भावों का संतोष कैसे होगा ? संसार का आदर्श पहिले से अवश्य निश्चित होना चाहिये, क्योंकि बिना आदर्श के हमारी स्वतंत्रता भो नहीं रह सकती। स्वतंत्रता भी है, जब हमारे सामने कोई आदर्श मौजूद हो, क्योंकि तभी हम उस आदर्श के अनुकूल काम करने या न करने में स्वतंत्र कहे जा सकते हैं।

पाठकगण यह न समझें कि इस समालोचना से विलियम जेम्स का गौरव किसी प्रकार कम होगा। उन्होंने निरपेक्ष ऐक्य-वाद में जो कठिनाई दिखलाई है, उसका उत्तर सहज में नहीं दिया जा सकता। ऐक्यवादी यदि उन कठिनाइयों की ओर ध्यान देकर अपने सिद्धान्तों को दुहरावें, तो उसके सर्वजनमान्य होने में कोई सन्देह न रहेगा. क्योंकि हमारा सन्तोष बिना ऐक्यवाद के नहीं हो सकता।

आशा है कि आजकल के विचारशील भारतवासी इन विचारों पर ध्यान देंगे और अपनी मननशक्ति द्वारा कुछ नये आविष्कार कर प्राचीन भारत की निर्मल कीर्ति के बढ़ाने में योग देंगे।

हमें नहीं चाहिये।

[लेखक—श्रीयुत पंडित अयोध्या सिंह, उपाध्याय।]

रोला

आप रहे कोरा शरीर के बसन रँगावे।
घर तज करके घरबारी से भी बढ़ जावे॥
इस प्रकार का नहीं चाहिये हमको साधू।
मन तो मूंड़ न सके मूंड़ को दौड़ मुंड़ावे॥ १॥

मनका मोह न हरे, राल धन पर टपकावे।
मुक्ति बहाने भूलभुलैयां बीच फँसावे॥
हमें चाहिये गुरू नहीं ऐसा अविवेकी।
जो न लोक का रखे न तो परलोक बनावे॥ २।

बूझ न पावे धर्म मर्म बकवाद मचावे।
सार वस्तु को बचनचातुरी में उलझावे॥
इस प्रकार का नहीं चाहिये हमको पण्डित।
जो गौरव के लिए शास्त्र का गला दबावे॥ ३॥

न तो पढ़ा हो न तो कभो कुछ कर्म करावे।
कर सेवाएँ किसी भाँति जीविका चलावे॥
कभी चाहिये नहीं पुरोहित हमको ऐसा।
जो पदगौरव भूल सूद ले मूल गँवावे॥ ४॥

सीधे साधे वेद वचन को खींचे ताने।
अपने मन अनुसार शास्त्र सिद्धान्त बखाने॥
हमें चाहिये नहीं कभी ऐसा उपदेशक।
जो न धर्म की अति उदार गति को पहिचाने॥५॥

बके बहुत, थोथी बातें कह मूंछें टेवे।
निज समाज का रहा सहा गौरव हर लेवे॥
इस प्रकार का हमें चाहिये नहीं प्रचारक।
कलह फूट का बीज जाति में जो बो देवे॥ ६॥

चाहे सुनियम तोड़ ढोंग रचना मन माने।
मतलब गाँठा करे समाज सुधार बहाने॥
नहीं चाहिये कभी सुधारक हमको ऐसा।
ठीक ठीक जो नहीं जाति नाड़ी गति जाने॥ ७॥

घी मिलने की चाह रखे औ बारि बिलोवे।
जिसकी नीची आँख जाति का गौरव खोवे॥
इस प्रकार का नहीं चाहिये हमको नेता।
जो हो रुचिका दास नाम का भूखा होवे॥ ८॥

तह तक जिसकी आँख समय पर पहुंच न पावे।
थोड़ा सा कुछ करे बहुत सा ढोल बजावे॥
देशहितैषी नहीं चाहिये हमको ऐसा।
मरे नाम के लिए देश के काम न आवे॥ ९॥

निज पद गौरव साथ सभा को जो न सँभाले।
सभी सुलझती हुई बात को जो उलझावे॥
इस प्रकार का नहीं चाहिये हमें सभापति।
जिसे जो चाहे वही मोम की नाक बनाले॥१०॥

आयुर्वेद तथा रसायनशास्त्र की उत्पत्ति।

तान्त्रिक-युग।

[लेखक—डा० बी० के० मित्र।]

(षष्ठ शताब्दी से षोड़श शताब्दी तक)

इसी समय को भारत का रासायनिक युग कह सकते हैं। कारण इससे पूर्व, चिकित्साशास्त्र में धातुओं का व्यवहार अति विरल होता था। यदि कोई पुरुष भारतीय रासायनिक प्रक्रिया का प्रवर्तक समझा जाय, तो नागार्जुन ही के नाम को इस गौरव से मण्डित करने में प्राचीन और अर्वाचीन, सब एक मत होंगे। तथापि चिकित्साशास्त्र की आलोचना से प्रतीत होता है कि नागार्जुन से कई शताब्दियों के बाद धातुघटित औषधियों का व्यवहार चिकित्सा-शास्त्र में प्रचलित हुआ।

हम पहिले ही कह चुके हैं कि ये मनस्वी द्वितीय खिष्टाब्द में आविर्भूत हुए थे। परन्तु पहिले पहिल नवम शताब्दी में जाकरवृन्द और एकादश शताब्दी में चक्रपाणि ने धातु-घटित औषधियों का कुछ २ व्यवहार करना आरम्भ किया। यूरोप में भी एक समय "केमिस्ट्री" चिकित्साशास्त्र की अङ्गीभूत थी। यह गौरव का विषय है कि भारत में औषधियों में धातुओं का व्यवहार न केवल यूरोप से पूर्व आरम्भ हुआ, प्रत्युत उसकी अवस्था कई शताब्दियों तक यूरोप से अधिक उन्नत रही। यद्यपि दोनों देशों में इस आधिभौतिक विद्या में आधिदैविक शक्तियों का प्रभाव आरोप किया गया है तथापि भारत में रासायनिक पदार्थों का कभी ऐसा दुर्व्यवहार नहीं हुआ, जैसा कि 'पैरेसेल्सेस' (जिसने यूरोप में धातुओं को सर्वप्रथम भैषज्यरूप से व्यवहार किया) के शिष्यों ने किया था।

एक और बात जानने के योग्य यह है कि यूरोपीय रसायन-विद्या एक प्रकार से भारत ही की ऋणी है। कारण यूरोप में रसायन की चर्चा विशेषतः मध्ययुग में अरबनिवासियों द्वारा प्रवर्तित हुई। इन्होंने स्पेन में बड़े बड़े विश्व-विद्यालय स्थापित किये। उस समय अरब देशीय ये पंडित एक ओर भारत और दूसरी ओर यूनान के विद्या-भंडारों का मथन कर उनमें से अमूल्य रत्न सञ्चय कर रहे थे। उन्हींके द्वारा उन्नत भारतीय चिकित्साशास्त्र तथा गणित का बीज यूरोप में बोया गया। हम पहिले ही कह चुके हैं कि प्राचीन यूनान भी भारत का ही ऋणी था। अपरञ्च यूनान ने भारत से विद्या-शिक्षा के अतिरिक्त मिस्र देश से भी सहायता ली। कोई २ ऐतिहासिक मिस्र को भारत का प्राचीन उपनिवेश बतलाते हैं। यदि यूरोप में रसायन-विद्या मिस्र से भी गई हो, जैसा कि यूरोपनिवासी स्वीकार करते हैं, तब भी वह भारत ही का ऋणी समझा जायगा।

यद्यपि भारत में रसायनशास्त्र द्वितीय शताब्दी में नागार्जुन द्वारा प्रवर्तित हुआ तथापि उसकी सम्यक् उन्नति पांचवी शताब्दी में ही आरम्भ हुई। इसके बाद भिन्न २ सम्प्रदाय के मनुष्यों ने बहुत से रस-ग्रंथ लिखे। ये लोग अपने को तान्त्रिक कहते और बहुधा "शक्ति" के उपासक थे। अतएव सम्भवतः पाशविक शक्ति के उत्कर्ष साधन में इनको बलकारक औषधियों की अधिक आवश्यकता हुई और उन्हीं के अन्वेषण में उन्होंने भिन्न २ प्रकार के रसों (पारद घटित औषधियों) का आविष्कार किया। इसीसे इस विद्या का नाम "रस-तन्त्र" रक्खा गया है।

यूरोपीय रासायनिकों की तरह हमारे पूर्व पुरुषों ने भी कथित् तांबा, सीसा आदि हीन धातुओं को स्वर्ण में परिणत करने की यथेष्ट

प्रयत्न किया परन्तु भारत में रसायन का कभी मुख्य उद्देश्य यह नहीं था। यहां रसायन, कभी चिकित्साशास्त्र से स्वतन्त्र न हो सका। 'रसायन का आविष्कार ही इसका प्रधान विषय रहा। पाठक यह न समझें कि वैदिक वा आयुर्वैदिक युग में ऐसी बलकारक औषधियों का अन्वेषण, जिनको 'रसायन' कहते थे, कुछ कम किया गया। तान्त्रिक-युग में केवल धातुघटित रसों का अधिक व्यवहार हुआ।

भारतीय रासायनिकों के अनुकरण से अरब के रासायनिकों ने पारद में अलौकिक गुण आरोप किये। धातु शोधन, जारण, मारण आदि में उनकी प्रक्रियाएँ भारत के अनुरूप ही थीं। वे भी धातुओं को यौगिक समझते थे। उनमें वे तीन प्रकार के सम्मिलित उपादान, पारद, गंधक और लवण (आधिदैविक अर्थ में) मानते थे। अरबों की यही शिक्षा 'स्टाल' आदि मनस्वियों के 'फ्लोजिस्टन-वाद' को भित्ति बनी। 'लावाजिय' का प्रतिवाद ही आधुनिक रसायन-शास्त्र की उत्पत्ति है। इसका वर्णन अन्यत्र दिया जायगा।

इस छोटे से निबन्ध में तान्त्रिक-युग के समस्त ग्रन्थों और उनके प्रणेताओं के नाम अधिकता के कारण नहीं दिये जा सकते। इनमें जानने का केवल एक विषय यह है कि यद्यपि ये ग्रन्थ, नागार्जुन के सैकड़ों वर्ष बाद लिखे गये हैं तथापि इनमें कितनों हो के प्रणेता नागार्जुन ही बतलाये गये हैं। इसका एक कारण यह है कि भारत में नूतन विषय प्रवर्तित करने में किसी प्रामाणिक ऋषी का आश्रय लेना आवश्यक समझा जाता था। जिस तरह चारों वेद, छओं दर्शन और १८ पुराणों के संकलन का गौरव एकमात्र व्यास ही को दिया जाता है, उसी तरह कदाचित नागार्जुन का नाम परवर्ती काल के ग्रन्थों में संयुक्त हो तो असम्भव नहीं।

तान्त्रिक युग के ग्रन्थों की संक्षिप्त तालिका।

ग्रन्थ	ग्रन्थकार	काल शताब्दी
रसरत्नाकर।	नागार्जुन (?)	७म०
रसहृदय।	गोविंद भागवत	११श०
रसेन्द्रचूड़ामणी।	सोमदेव।	१२श०
रसार्णव	(?)	"
रसरत्नसमुच्चय।	वाग्भट्ट (?)	१३श०
रसप्रकाशसुधाकर।	यशोधर।	"
रसकल्प।	(?)	"
रससार।	गोविन्दाचार्य।	"
रसराजलक्ष्मी।	विष्णुदेव।	१४श०
रसरत्नाकर।	नित्यनाथ।	"
रसेन्द्रचिन्तामणि।	ढूंढुकनाथ।	"
शार्ङ्गधरसंग्रह।	शार्ङ्गधर।	"
रसेन्द्रसारसंग्रह।	गोपालकृष्ण।	"
धातुरत्नमाला।	देवदत्त।	"
भावप्रकाश।	भावमिश्र।	१६श०
अर्कप्रकाश।	रावण (?)	"

उपर्युक्त तालिका डा० प्रफुल्लचन्द्र राय महाशय के मतानुसार है। अध्यापक नियोगी जी ने अपनी पुस्तिका में इसके अतिरिक्त ५५ रसग्रन्थ और ग्रन्थकारों के नाम सहित एक और तालिका प्रकाशित की है। इतने पर भी सम्मिलित ये दोनों तालिकाएँ भी सम्पूर्ण नहीं हैं।

उपसंहार।

आयुर्वेद के इस इतिहास से प्रतीत होता है कि भारत में भी इस विद्या की उन्नति क्रमशः ही हुई। अथर्ववेद के मन्त्र-तन्त्र से कौशिक सूत्रों में अधिक उन्नति दिखाई देती है। प्राचीन आयुर्वेदीय ग्रन्थों का बारंबार प्रतिसंस्कार होना ही इसका प्रमाण है कि उनमें संशोधन की आवश्यकता हुई थी। अपरंच हम देखते हैं

कि रसायन-शास्त्र में, जो चिकित्सा-शास्त्र का एक अंग था, समय के साथ २ क्रमशः उन्नति होती रही। आयुर्वेद की अति प्राचीन संहिता चरक में धातु और खनिज पदार्थों का व्यवहार विरल होने पर भी वैदिकयुग की अपेक्षा इसकी चिकित्सा बहुत उन्नत है। इसमें यवक्षार, सर्जीका क्षार, पंचलवण, मनशील, हरिताल, कशीश, गन्धक, रसांजन आदि, खनिज तथा मुक्ता, प्रवाल आदि रत्न, भैषज्यरूप में व्यवहृत हुए हैं। यद्यपि धातुओं की जारण-मारण विधि, उस समय आविष्कृत नहीं हुई थी तथापि उनके सूक्ष्म चूर्ण, भिन्न २ पदार्थों में मिलाकर पेट में सेवन किये जाते थे। इसके परवर्ती काल के नागार्जुन द्वारा प्रतिसंस्कृत, सुश्रुत में चूर्णित धातुओं के स्थान में हम एक और "अयस्कृति" नामक प्रक्रिया पाते हैं।

यह प्रक्रिया सम्भवतः नागार्जुन द्वारा प्रवर्तित हुई है। सुश्रुत और वाग्भट्ट में हमें पारद का भी व्यवहार मिलता है। सुश्रुतोक्त मृदुमध्य और तीक्ष्ण क्षार की चूने के योग से निर्माण-प्रक्रिया, आधुनिक वैज्ञानिक रीति के अनुसार ही है।

इसके अनन्तर तांत्रिक युग में धातुओं का शोधन, जारण, मारण, पुटपाक, तिर्यक-पातन, उर्द्धपातन, अधःपातन आदि प्रक्रियाओं और भिन्न भिन्न भस्मों (यौगिकों) तथा नूतन द्रावकों का जो आविष्कार हुआ, वह भी भारत के लिए कुछ कम गौरव का विषय नहीं है। यह बात प्रमाणित हुई है, कि षोड़श शताब्दी में इस देश में रसायनशास्त्र का ज्ञान यूरोप से अधिक उन्नतावस्था में था। यद्यपि दोनों देशों के कुछ रासायनिकों की दृष्टि, हीन धातुओं को स्वर्ण में परिणत करने की ओर लगी रही तथापि भारतीय रसायन का यह मुख्य उद्देश्य नहीं था। शरीर को बलवान और नीरोग करना ही इसका उद्देश्य रहा। परन्तु कालवश षोड़श शताब्दी में भावमिश्र के बाद हमारे देश में जैसे २ विद्या का अधःपतन होता गया, वैसे ही यूरोप में विज्ञान-चर्चा प्रति दिन बढ़ती गई। शोक का विषय है कि जिस देश में महात्मा बुद्ध और चार्वाक आदि मुनियों ने स्वाधीन-चिन्तन को चरम सीमा तक पहुंचाया, जिस देश में आर्यभट्ट, वराहमिहिर, ब्रह्मगुप्त, भास्कराचार्य आदि मनीषी, ज्योतिष तथा उच्चगणितशास्त्र के नेता हुए, जिस देश में कपिल, कणाद आदि मुनियों ने भौतिक दर्शन की भित्ति स्थापित की, वही देश मध्ययुग तक विज्ञान की सेवा में तत्पर रह कर ऐसा पतित हुआ कि आज विज्ञानजगत् में उसकी सन्तान अस्पृश्य समझी जाती है।

पाठक स्वभावतः यह प्रश्न करेंगे कि इसका कारण क्या है? हमारे कई नेताओं ने वैदेशिक आक्रमण को ही इसका कारण बतलाया है। परन्तु हिन्दू-जाति की मानसिक अवनति के लक्षण वैदेशिक आक्रमणों से पूर्व ही कुछ २ प्रकट होने लगे थे। कारण, आक्रमण से बचे हुए दक्षिण देश में भी प्राचीन विद्याओं की कोई विशेष उन्नति नहीं देख पड़ती। लेखक के मत में इसका प्रधान कारण बौद्ध और ब्राह्मण सम्प्रदायों का निरन्तर अन्तर्जातीय विरोध ही है कारण बौद्ध संस्थाओं के नष्ट हो जाने पर विद्या की चर्चा भी भारत से बहुत कुछ उठ गई थी। सिवा इसके ब्राह्मण सम्प्रदाय के प्रभाव से सारी विद्याएँ प्राकृत से निकालकर संस्कृत भाषा में सीमाबद्ध कर लेने से जनसाधारण के लिए वे अलभ्य हो गईं।

शान्तिमय ब्रिटिशराज्य में प्रथम उपद्रव तो जाता ही रहा; दूसरा हमारे आयत्त से बाहर नहीं। यदि वैज्ञानिक शिक्षा, प्रादेशिक भाषाओं द्वारा दी जाय तो ब्राह्मणों के कथनानुसार संस्कृत का गौरव कम होने के बदले, भारत की वैज्ञानिक तथा भौतिक उन्नति से संस्कृत का आदर जगत् में बढ़ेगा।

स्वागत।

[लेखक—श्रीयुत हीरावल्लभ जोशी।]

स्वागत तुम बसन्त ऋतुराज।
आज प्रकृति ने वेष धरो है रुचिर तुम्हारे काज।
लता, वृक्ष, बर पुष्पन नाना भाँति रचायो साज॥
कोयल, मोर, चकोर मलिन्दन राग सुनायो आज।
हम सब मिल "स्वागत" ध्वनि सों पहिरावेंगे साज॥
बालक, वृद्ध, युवक जन सारे साजे सकल समाज।
हुए मुदित सब अपने मन ज्यों भारत मिल्यो 'स्वराज'॥
हे वसन्त! तुम कन्त हमारे अबहूं रखियो लाज।
बनि केवट अब तुम भारत को कीजो पार जहाज॥

एक सप्ताह में उत्तरीय जापान की सैर।

१४—७—१५।

निक्को-यात्रा।

उत्तरीय जापान की सैर के लिए आज प्रातःकाल हम ९ बजे टोकियो के 'युनो' स्टेशन से रेल द्वारा निक्को की ओर रवाना हुए। प्रचंड वेग से रेल उत्तर की ओर नदी, नाले, मैदान पहाड़, समस्थली आदि पार कर समान स्थिरता से जा रही थी। राह में जापान की विशाल "टोनोगावा" नदी भी मिली।

दो घंटे में हम 'उत्सुनोमिया" स्टेशन पर पहुंच गये। यहां से हम निक्को जाने के लिए दूसरी गाड़ी पर सवार हुए। यहीं से निक्को का दृश्य प्रारम्भ होता है। निक्को में प्राकृतिक व कृत्रिम सौंदर्य का अनोखा मिलन हुआ है। इसीसे यहां यह कहावत प्रचलित है कि "जिसने निक्को नहीं देखा उसको 'किक्को' शब्द का उच्चारण नहीं करना चाहिये।" किक्को का अर्थ विशाल, महान व प्रभावशाली है। वास्तव में निक्को है भी ऐसा ही। निक्को—किसी एक खास जगह का नाम नहीं है। टोकियो के उत्तर १०० मील तक फैले हुए, कूर्माचल की भांति, यह एक पहाड़ी इलाके का नाम है। किन्तु आजकल निक्को का अभिप्राय प्रथम शोगून "इयासू" व उनके पौत्र "ईमित्सू" के समाधि-मन्दिर बने हुए "हाची इशी" व "इरीमाची" ग्रामों से है। 'उत्सुनोमिया' स्टेशन से गाड़ी के आगे बढ़ते ही निक्को के पहाड़ी शिखर दिखाई देने लगते हैं। इन पहाड़ियों में कोई पहाड़ी पिरामिड की नाई दूसरी पहाड़ियों से अधिक ऊँची नहीं दिखाई देती, वरन् दूर से नीची ऊँची शिखरमाला दीख पड़ती है। विख्यात कवि गोल्डस्मिथ् के शब्दों में यह "Mountain wooded to the peak" अर्थात् "चोटी तक वृक्षों से आच्छादित पर्वतराशि" है। इसी सुन्दरता को बढ़ाने के लिए शोगूनों ने टोकियो से निक्को जानेवाली सड़क पर ४० मील तक चीड़ व देवदार के वृक्षों की कतार लगाई है। अब ये वृक्ष बहुत मोटे होगये हैं और इनसे गर्मी के दिनों में लोगों की रक्षा होती है। राह प्राचीन समय की होने के कारण इसमें इतना दोष है कि यह बड़ी तंग है। एक साथ यहां पर दो गाड़ियां भी नहीं

आ जा सकतीं । वृक्षों के कारण अब यह चौड़ी भी नहीं हो सकती ।

हमारी रेल, वृक्षयुक्त इस मार्ग को कभी दाहिने व कभी बाएँ छोड़ती हुई थोड़ी देर में निक्को आ पहुंची ।

अपना सामान निक्को के होटल में भेजकर हम ट्रामगाड़ी द्वारा होटल की ओर चले । बाज़ार से कुछ दूर जाने के बाद हम ४० फुट चौड़े एक पहाड़ी नाले के पास जा पहुंचे । इस पर लकड़ी का एक सुन्दर पुल बना है परन्तु इसपर कोई चलने नहीं पाता । केवल प्रति वर्ष होनेवाले एक मेले के समय समुराई के प्रतिनिधि इसके ऊपर से पार जाते हैं । कहते हैं कि यह पुल उसी स्थान पर बना है, जहां ८वीं शताब्दी में 'शोदोशोनिन' नामक साधु ने देवदूत की सहायता से इसे पार किया था। यह सेतु समाधि-मन्दिर के साथ १६८५ में बना था व उस समय केवल शोगून ही इसपर चल सकते थे। १८५८ की बाढ़ में बह जाने के कारण यह १८६४ में फिर से बनाया गया है।

इसके निकटवर्ती दूसरे सेतु पर से हमारी गाड़ी पार होकर होटल पहुंची । चारों ओर से वृक्षों से आच्छादित यह होटल बड़ा ही सुन्दर है । थोड़ी देर विश्राम करके मैंने स्नान किया और भोजन के बाद अपनी कोठरी के बरामदे में आ बैठा । इसी समय घोर बादल घिर आये और खूब ज़ोर से वृष्टि होने लगी; बिजुली भी चमकने लगी। सामने ऊँचा पहाड़, नीचे नदी व बड़े २ वृक्ष थे । चारों ओर हरियाली ही दीख पड़ती थी । बिजली की चमक, मेघ की गड़गड़ाहट व मूसलधार वर्षा ने दिल को हिला कर अपने देश की याद दिलाई । कजली की सुहावनी तानें अकस्मात् कान में पड़ने लगीं । वीणा की झंकार भी सुनाई देने लगी । मानो, कोई गा रहा हो "आई कारी बदरिया घेर के । कारे २ बादर बिजुली चमकै मेघ डरपावै भेर के ।" क्षणभर इसका आनन्द लेता रहा किन्तु एक क्षण में ही किसी के पद-शब्द ने सारा मज़ा स्वप्नवत् कर दिया । फिर वही विदेश दिखाई देने लगा । इतने में हमारे पथ-प्रदर्शक ने आकर चलने के लिए कहा ।

होटल से चलकर प्रथम शोगून "इयासू" के समाधि-मन्दिर में पहुंचे । इस मन्दिर को देखकर शाहेजहां की याद आगई । चिरकाल तक कीर्ति को जीवित रखने के लिए शाहेजहां ने अपनी प्रियतमा मुमताज़महल की यादगार में जैसे "ताज महल" बनवाया, जैसे फरनो ने मिस्र में 'पिरामिड' बनवाया, उसी तरह आत्म-गौरव को चिरस्थायी करने के लिए प्रथम शोगून की इच्छा के अनुसार उनके पुत्र ने १७वीं शताब्दी के अन्तिम चरण में इस मन्दिर को बनवाया था ।

इस मन्दिर के बनने के समय जापान को काष्ठ-कला व सुकुमार-शिल्प बड़ी उन्नत दशा में थे । उस समय शोगून का कोष भी धन से परिपूर्ण था । इसलिए इस मन्दिर के निर्माण में शिल्पकारों की चतुराई, धन की विपुलता से जहां तक सम्भव था, दिखलाई गई है । यह मन्दिर सचमुच ही जापानी कारीगरी का जीवित नमूना है । लैकर का काम वहां देखते ही बनता है । लकड़ी की नक्काशी में भी हद दर्जे की कुशलता दिखलाई गई है। इसमें नाना प्रकार के पत्ते इस सफाई से बनाये व रँगे गये हैं कि देखकर चकित होना पड़ता है । मन्दिर में बड़े २ दालान, बारहदरियां, साधुओं के रहने के स्थान, पुस्तकालय आदि सभी बड़ी सुन्दरता से बनाये गये हैं ।

मन्दिर के बाहरवाले बड़े दरवाजे पर अति सुन्दर सुनहला काम है । इसका नाम 'योमी-मोन' है । दरवाज़े के दोनों ओर दो दिक्पाल खड़े हैं । इससे कुछ आगे कोरिया; हालैंड तथा लूचू द्वीप के दिये हुए घंटे व लालटेनें रक्खी हुई हैं । इनमें कोरिया से आया हुआ

घंटा बहुत बड़ा है और इसमें बहुतेरे छेद हैं। देखने से मालूम होता है कि इसको दीमक ने चाटा है परन्तु यह धातु का है, इससे दीमक नहीं चाट सकते, पर इसका नाम दीमक से चाटा हुआ घंटा है।

हालैंड की लालटेन भी बड़ी सुन्दर है। ये वस्तुएँ साबित करती हैं कि उस समय केवल एशिया भूखण्ड के राज्य ही नहीं वरन् यूरोप के राज्य भी जापान को खुश रखना अपना स्वार्थ समझते थे।

यहां अन्यान्य कई मन्दिर तथा तृतीय शोगून का समाधि-मन्दिर भी दर्शनीय है परन्तु वृष्टि की अधिकता व विलम्ब हो जाने के कारण उन्हें देखने का अवसर नहीं मिला।

यहीं से लौटकर ट्राम पर सवार होकर हम उसके छोर की ओर चले। ट्राम, बड़ी सुन्दर घाटी में से जा रही थी। कोई पांच मील के लगभग जाने के बाद इसका अन्त हुआ।

यहाँ से पहाड़ की चढ़ाई आरम्भ होती है। थोड़ी दूर जाने के बाद एक बड़ी झील मिली जिसमें से एक नदी निकलती है। इस झील पर सैलानियों ने विश्राम-गृह बनवाये हैं। यह जगह वास्तव में बड़े आनन्द की है। ट्राम की राह से थोड़ी दूर पर ही ताँबे का एक बड़ा भारी कारखाना है। यहाँ से कोई १२ मील पर एक पहाड़ में ताँबे की खान है और वहीं से ताँबा खोद कर यहाँ लाया जाता है। इस कारखाने में ताँबा गला कर शुद्ध किया जाता है। समय न रहने के कारण मैं इसे देख नहीं सका।

१५—७—१५।

लिनन का कारखाना।

आज प्रातःकाल को हम 'मत्सुशी' के लिए रवाना हुए। रास्ते में निक्को से दो स्टेशन आगे कनुमा में एक लिनन का कारखाना है, उसे देखने के लिए हम उतर पड़े।

आयर्लैंड का लिनन बड़ा विख्यात् वस्त्र है। आजकल के शौकीन इसी वस्त्र का कालर पहिनते हैं। मैंने इसके देखने का प्रबंध बेलफास्ट में किया था, पर समर प्रारम्भ हो जाने से मुझे उसका विचार छोड़ देना पड़ा था। परन्तु मैंने इसे कहीं न कहीं देखने का जो पक्का विचार कर लिया था वह आज पूरा हुआ। यों तो बहुत से पदार्थों से वस्त्र बनते हैं पर छाल से बना हुआ लिनन बहुत विख्यात है। यदि रुई के वस्त्र की पीतल से तुलना की जाय, तो लीनन के वस्त्र की तुलना स्वर्ण से करनी पड़ेगी।

अब मुझे आपको बतलाना है कि यह लीलन कौन वस्तु है? यह तीसी के पौधे की छाल से तैयार होता है। जिस प्रकार, सनई से सन, पाट से जूट का छिलका उतारा जाता है, उसी प्रकार, उतारे हुए तीसी के छिलके को लिनन कहते हैं। सन व जूट से यह बहुत अधिक मूल्य का होता है।

अपने देश में लाखों मन तीसी उत्पन्न होती है पर मुझे मालूम नहीं कि अपने यहां तीसी पर से लिनन उतारा जाता है या नहीं। यदि न उतारा जाता हो तो इसे उतारना चाहिये। यदि अभी हम इसे कात न सकें तो कोई हर्ज नहीं सिर्फ़ कच्चे माल की तरह इसकी रफ़तनी से ही बड़ा लाभ होगा। इस ओर तीसी उत्पन्न होने वाले स्थानों के जमीन्दारों तथा व्यापारियों को ध्यान देना चाहिये।

हमारे देश में अन्य प्रकार के ऐसे अनेक पौधे व अन्न के पेड़ हैं, जिनसे छाल उतारी जा सकती है। उदाहरण के लिए अरहर, झाऊ, आदि का उल्लेख किया जा सकता है। इस ओर औद्योगिक संस्थाओं को ध्यान देना और उनकी परीक्षा कर उन्हें बाजार में लाना चाहिये। जबतक ये बिकने लायक न बनाये जायँ, तब तक इससे प्राप्त होनेवाली सम्पत्ति व्यर्थ में बरबाद हो रही है। राष्ट्रीय दृष्टि से यह हानि बहुत बड़ी है।

लीनन, सन की भांति कारखाने में लाया जाता है। वहां उसको लोहे की बड़ी २ कंघियों द्वारा झांड़ कर बराबर करने के बाद कातना प्रारम्भ होता है। इसका सूत बहुत महीन कत सकता है क्योंकि इसकी रेषाएँ बहुत लम्बी और बारीक होती हैं। इसका सूत कपास के सूत की अपेक्षा बहुत मज़बूत होता है। धोने से यह बहुत अधिक सफेद होता है और इसमें चिकनाहट भी रहती है। इसका वस्त्र अपनी इच्छा के अनुसार मोटा व पतला बन सकता है। यह कपड़ा, कपास के कपड़े से बहुत मज़बूत व सुन्दर भी होता है। देशवासियों को इसके बनाने की ओर अवश्य ध्यान देना चाहिये कारण अब तक यह उपयोगी सामान कूड़े की तरह व्यर्थ ही फेंक दिया जाता है। व्यवसाय की उन्नति के बिना देश की भलाई कैसे हो सकती है?

संगीत

[लेखक—आचार्य लक्ष्मणदासजी ।]

पाठक! आज उसी कमरे में दोनों लड़के बाबू विश्वनाथदास जी को पाठ सुना रहे हैं।

बाबूजी—यह भजन तो तुम लोगों को याद हो गया है।

लड़के—जी हाँ, किन्तु स्वर में अभी हम लोगों को कुछ माधुर्य नहीं प्रतीत होता।

बाबूजी—स्वर में माधुर्य का होना कोई सहज बात नहीं। धीरे २ और परिश्रम करने से माधुर्य आ जाता है।

लड़के—चाचाजी, आज तो हमें भूपाली रागिनी का पाठ बतलाइयेगा?

बाबूजी—हाँ, विचार तो ऐसा ही था किन्तु ऋतु देखकर कोई दूसरा राग बतलाने का विचार है।

लड़के—क्या राग-रागिनियों में भी ऋतु की आवश्यकता होती है?

बाबूजी—हाँ हाँ, सब रागों के लिए अलग २ ऋतु निर्धारित हैं। उस राग को उसी ऋतु में गाने से विशेष आनन्द मिलता है।

लड़के—चाचाजी, आजकल तो बसंत का आगमन है।

बाबूजी—हाँ, इसीलिए मैं आज तुम लोगों को इसी का राग बतलाऊँगा।

लड़के—चाचाजी, वह कौनसा राग है?

बाबूजी—उसका नाम है—'वसंत राग।' इसके विषय में यह दोहा घटित होता है।

दोहा।

दो मध्यम कोमल ऋषभ, चढ़त न पंचम कीन्ह।
स ग-बादी समवादितें, यह वसंत कहि दीन्ह॥

लड़के—चाचाजी, इस दोहे से कुछ मतलब तो समझ में आगया किन्तु इसे विस्तार से समझा दीजिये।

बाबूजी—हाँ, मैं विस्तार से समझाता हूं। इस राग के गाने का समय वसंत ऋतु है। इस ऋतु में इसे हर समय गा-बजा सकते हैं किन्तु अन्य ऋतुओं में इसके गाने का समय दिन का तीसरा पहर है। इसका बादी स्वर तार-स्थल का खरज और संवादी, गंधार है। इसमें अवरोह के समय पंचम स्वर को छोड़ देते और आरोह में कोमल मध्यम को कभी २ लगाते हैं।

लड़के—चाचाजी, यह राग तो बहुत सुहावना प्रतीत होता है। हमें अवश्य बतलाइये।

बाबूजी—अच्छा, पहिले मैं भजन सुनाकर उसका मतलब समझा देता हूं क्योंकि यह 'लक्षण गीत' का भजन है।

लड़के—लक्षणगीत से क्या मतलब, चाचाजी?

बाबूजी—जिस राग में बँधा हुआ गीत हो, उसी गीत में उस राग के विषय की कविता भी हो तो उसको 'लक्षणगीत' कहते हैं।

लड़के—ओहो, (आश्चर्य से) तो इन गीतों से हमें और भी यह लाभ होगा कि हम उनको गावें और राग का विषय भी गायन से समझ लें।

बाबूजी—अच्छा देखो यह भजन है।

भजन, बसंत, तिताला।

कैसी सरस बसंत रचाई सखी।
मैं जानूं पिय परज सुनावत,
श्रुतियन भेद बताय सखी॥
आरोहन पञ्चम बिन ऋषभ
श्रीमूरत दिखलाई, मंद विलोम सखी।
मग संगत-तन मन सुध बिसराई सखी॥

इस गायन की स्वरलिपि (नोटेशन) इस प्रकार है,—

लक्षण गीत, राग बसन्त, तिताला।

अस्थाई।

	०				१				×				३			
म ध	स	नी	ध	प	म	ग	म	ध	रें	—	सं	सं	सं	नी	म	ध
कैसी	स	र	स	ब	सं	ऽ	त	र	चा	ऽ	ई	स	खी	ऽ	कै	सी
	नी	—	सं	रें	नी	—	ध	प	म	ग	नी	म	ग	—	रे	स
	मैं	ऽ	जा	ऽ	नूं	ऽ	पि	या	प	र	ज	सु	ना	ऽ	व	त
	स	स	ग	म	ग	ग	म	ध	रें	—	सं	सं	नी	—	म	ध
	श्रु	ति	य	न	भे	ऽ	द	ब	ता	ऽ	य	स	खी	ऽ	कै	सी

देखो पहिले इस अस्थाई को खूब शुद्धतापूर्वक याद करने पर अन्तरे को याद करना क्योंकि यह राग जैसा सुनने में मधुर है, वैसा अभ्यास करने में सहज नहीं है।

अन्तरा।

०				१				×				३			
ग	—	ग	—	म	ग	म	धम	सं	सं	सं	सं	सं	रें	सं	सं
आ	ऽ	रो	ऽ	ह	न	पं	ऽ	च	म	वि	न	री	ऽ	ष	भ
ना	रें	गं	रें	सं	सं	सं	सं	सं	—	रें	सं	नी	ध	प	प
श्री	ऽ	मू	ऽ	र	त	दि	ख	ला	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ई	ऽ
प	—	प	प	म	—	ग	ग	ग	नी	म	ग	ग	रे	स	स
मं	ऽ	द	वि	लो	ऽ	म	स	खी	ऽ	म	ग	सं	ऽ	ग	त

०				१				×				३			
स	स	ग	ग	म	ग	म	ध	रं	—	स	सं	नी	—	म	ध
त	न	म	न	सु	ध	वि	स	रा	ऽ	ई	स	खी	ऽ	कै	सी

इसी प्रकार तुम इस अन्तरे को भी शुद्धतापूर्वक याद कर लेना। जब तक यह राग याद न होगा, तब तक दूसरा मैं न बतलाऊँगा।

लड़के—चाचाजी, इस राग को हम बहुत जल्द याद कर लेंगे। सुनने में यह बहुत मधुर मालूम होता है।

अच्छी बात है, जैसे ही तुम इसे सुना दोगे वैसे ही तुम्हें दूसरा पाठ दिया जायगा। इतना कहकर बाबूजी चले गये और लड़के उसी वसंत की रात के बारह बजे तक याद करते रहे।

क्रमशः।

वसंत-कामना।

[लेखक—श्रीयुत गोविन्दवल्लभ पंत।]

कलि कुसुमन युत कल वसंत तुम्हरे ढिग आवै। विद्या-सुख-यश-मुकुल नित्य पद तले बिछावै॥
नित वसंत-राका सम तुम जग के प्रिय होओ। निष्कलङ्क ज्योत्स्ना छिटका दुखिनी दुख खोओ॥
सुखमय जीवन की उच्चअति, जो दीख रही है बेलि।
संतत वसंत-अवतंस सम, खिल उस पर करिये केलि॥

प्राप्ति-स्वीकार।

दाल का मसाला—मूल्य छोटी डिब्बी ≡), बड़ी ।=)।

"भोजन शृङ्गार" मसाला बहुत ही अच्छा है। दाल, तरकारी आदि में मिला देने से भोजन रुचिकर हो जाता है। इसमें पाचनशक्ति भी है। मूल्य भी अधिक नहीं प्रतीत होता। जो मसाले का व्यवहार करते हैं उनको एक बार इसे भी आज़माना चाहिये।

"माधवी कुसुम तैल"—मूल्य ॥।) शीशी, डाक व्यय अलग।

सुगन्धी में यह तेल मनको प्रफुल्लित करने-वाला है। इसके इस्तेमाल से केशहीनता, चक्कर, दृष्टि की कमज़ोरी, केशों का जल्द पकना आदि सब प्रकार के मस्तक-रोग भी आराम होते हैं।

"सुधा-निधि"—मूल्य ॥=) शीशी। डाक व्यय अलग।

आपका कहना है कि महात्मा से प्राप्त यह दवा हैजा, प्लेग की गांठ, वायुशूल, कफवात-पित्त ज्वर, निनावा, सुजाक, दाद, खुजली, फोड़ा, सांप, बिच्छु, कुत्ते आदि के विष और बच्चों की बीमारियां आदि आराम करती है।

उपरोक्त तीनों चीज़ें-मेसर्स एस० मालवीय, ११२ मछुआ बाज़ार-स्ट्रीट, कलकत्ते के पते से मिलती हैं।

"ददुघृत"—मूल्य ।), डाक खर्च अलग। मिलने का पता—"आर्यविजय औषधालय", मोहल्ला नारायण दीक्षित, काशी।

दाद की यह दवा काशी के विख्यात वैद्य पं० त्र्यंबकशास्त्री जी के शिष्य पं० श्रीनिवास शास्त्रीजी ने बनाई है। इसके लगाने से पुराने से पुराना दाद भी शीघ्र ही आराम हो जाता है।

" १९१७ का कैलेन्डर "—सुखसञ्चारक कम्पनी, मथुरा। बिना मूल्य।

यह १९१७ का हिन्दी कैलेन्डर है। इसके साथ शकुन्तला पर दुर्वासा ऋषि के क्रोध का भी एक सुन्दर चित्र है।

सं० १९७४ का पञ्चाग—मूल्य एक का -)। और १०० का ६।)। मिलने का पता-पंडित श्रीखेमराज रामकुमार, मोहल्ला आदितवारी, नागपुर।

इसमें ज्योतिष विषयक, काम की प्रायः सब बातें ही दी गई हैं। छपाई आदि भी साफ है।

हमारा पुस्तकालय।

'अनुभूत चिकित्सा सागर'—रचयिता और प्रकाशक पं० गङ्गाप्रसाद दाधीच त्रिपाठी, आयुर्वेद पञ्चानन, जङ्गी चबूतरा, अजमेर।

इस ग्रन्थ में विद्वान लेखक ने आयुर्वेदिक चिकित्सा में काम आनेवाली नाना औषधियों के पृथक् २ नाम, गुण, पैदा होने के समय, स्थान आदि का विशदवर्णन किया है। इसमें सब मिलाकर ६०५ औषधियों और वनस्पतियों का वृत्तान्त है। प्रत्येक औषधियों का नाम १०, १२ भाषाओं में लिखा है और उसके जितने प्रकार के प्रयोग किये जा सकते हैं उनका वर्णन हिन्दी में दिया है। पुस्तक वास्तव में बड़े परिश्रम और कितने ही ग्रन्थों तथा मर्मज्ञों की सहायता से लिखी गई है हिन्दी में ऐसे ग्रन्थ की बड़ी आवश्यकता थी। पुस्तक, २ भागों में समाप्त हुई है; कुल पृष्ठसंख्या ७६२; मूल्य प्रत्येक भाग का ३)।

"नीति-नवनीति"—सम्पादक तथा प्रकाशक बाबू बलदेवदास गुप्त, बहराइच।

इस छोटी सी पुस्तिका में नीति-पूर्ण भाषा-पद्य बड़ी सुन्दरता से दिये गये हैं। बालकों को थोड़े में नीति-सम्बन्धी ज्ञान कराने के लिए यह पुस्तिका बड़े काम की है। मूल्य =) होने पर भी सम्पादक से विना मूल्य मिल सकती है।

"भारती-शतक"—रचयिता मुंसिफ़ सिंह यादव। मूल्य =)॥। पृष्ठ संख्या २८।

इस शतक में देश की वर्तमान दुरवस्था का अच्छा वर्णन किया गया है। यद्यपि पादपूर्ति के लिए कहीं २ अनावश्यक शब्दों का पिष्टपेषण है तथापि विषय अच्छा होने के कारण पुस्तक मनोरञ्जक है।

"नरेन्द्र कार्यालय", इटौली, पो० शिकोहाबाद, मैनपुरी के पते से मिलती है।

"घृत के व्यापारी और उसके सुधार का उपाय"—प्रकाशक, आर० जेठाभाई, २१, पोलक स्ट्रीट, कलकत्ता। आजकल भारत में शुद्ध घी मिलने में दिन पर दिन कैसी कठिनाई हो रही है, उसका हाल भारतवासी, विशेषतः शहरवाले जानते ही हैं। इसके विचार और आन्दोलन के लिए "भारतमित्र", "मारवाड़ी" आदि पत्रों से कुछ उपयोगी लेख एकत्र कर इसमें सन्निवेशित किये गये हैं। प्रकाशक से बिना मूल्य मिलती है।

सम्पादकीय टिप्पणियां।

दोषी कौन ?

शीर्षक लेख को पाठकों ने पढ़ा होगा। आशा है वे उसपर विचार भी करेंगे। प्रत्येक देशों की दशा दूसरी हो सकती है, उनके दुःखों को दूर करने के उपाय भी दूसरे हो सकते हैं (यद्यपि सब देशों को एकमात्र सुख के देने-वाले कल्पवृक्ष स्वराज्य की एक सी आवश्यकता होती है) किन्तु

संसार

को सुखी करने की कीमियाँ केवल इतनी ही है कि गरीबी, दरिद्रता दूर की जाय और विवाह-संबन्धी नियम आदि में आवश्यक परिवर्तन हो, हम वाकई में व्यभिचार का अर्थ समझने लगें और वास्तविक पाप से घृणा करने लगें।

सुधारकों

का कर्तव्य यह होना चाहिये कि मतमतान्तर के झगड़े, खंडन मंडन और पापों की व्याख्या का पिंड छोड़कर वे इस सुधार में लगें कि विवाह के नियम ठीक हों, ठीक अवस्था में वह किया जाय, बड़े बड़े व्यापारी करोड़ों का मुनाफा न खा सकें जब कि उनका एक क्लर्क केवल इसलिए व्यभिचार में रत है क्योंकि उसकी इतनी आय नहीं कि विवाह कर गृहस्थी और बाल बच्चों का भार मर्यादा सहित वह वहन कर सके या इसलिए कि उसमें इतनी मूर्खता नहीं कि गृहस्थी के बोझ से जवानी में अपने को बूढ़ा बनाले।

युवकों और युवतियों

को सच्चरित्रता, सदाचार आदि की वह शिक्षा देना—जो कि समाज के उन नियमों पर हरताल नहीं फेर देती जो व्यभिचार को जन्म देते और उसकी वृद्धि के कारण होते हैं—जो हार्दिक प्रेम की पिपासा की अशान्ति से युवकों और युवतियों को जलने भुनने देती है—

मूर्खता नहीं पाप

है। इस लोक के सुख के लिए यह बहुत आवश्यक है कि जैसे हम लोगों को माता और पिता के आदर करने की शिक्षा दी जाती है वैसेही हम लोगों को बिना जन्म पाये हुए बच्चों के आदर करने की शिक्षा भी दी जाय।

आधुनिक विवाह

के हिमायती यह कह सकते हैं कि व्यभिचार की कमी के लिए ही "विवाह प्रथा" का जन्म हुआ किन्तु उसीके साथ ही साथ विरोधी यह भी कह सकते हैं कि वास्तव में

विवाह में बुराई

भी इतनी ही है कि कम से कम खर्च में व्यभिचार की पराकाष्ठा को वह पहुंचा देता है। लोग यह भी कह सकते हैं कि विवाह इसी लिए सर्वसम्मति से श्रेष्ठ समझा गया क्योंकि कम खर्च और संकटहीन होते हुए भी व्यभिचार के निमित्त व्यभिचार से वह हज़ारों कोस आगे है। पाठकों को इन सब बातों के साथ ही साथ निकृष्ट पापों, भ्रूणहत्याओं को भी रोकने के उपाय सोचने चाहिये। यह कहने से

"गुज़रती है मज़े में ज़िन्दगी ग़फ़लत शआरी से।
मेरे नज़दीक बेहोशी है बेहतर होशियारी से॥"

काम नहीं चल सकता। जो पापों को होते देखता है उनको रोकने का उपाय नहीं करता कुछ अंश में उतनाही पापी है जितना कि पाप करनेवाला।

✿

ग़ैर का ज़िक्रे वफ़ा और हमारे आगे।
दाग़ इस बात से जलता है कलेजा कैसा !

कैनाडा ने यह किया, आस्ट्रेलिया ने वह किया, यह नितप्रति हम सुनते हैं। ऐसा मालूम होता है मानो भारत ने कुछ किया ही नहीं। अफ़सरगण वह आंकड़े नहीं बनाते किन्तु कुछ

एँग्लो इन्डियन

ऐसा कहते नहीं सकुचाते। कुछ लोग हमको निष्काम सेवा का पाठ पढ़ाते हैं, कहते हैं सेवा के बदले में कुछ माँगना नहीं चाहिये, यद्यपि सेवा के नाम पर हम लोगों ने कुछ माँगा भी नहीं किन्तु यही लोग उपनिवेश-वालों से

चूँ नहीं करते

जो बात बात में अपने स्वत्वों की दोहाई देते हैं। प्रधान-सचिव भी कहते हैं कि उपनिवेश-वालों ने साथ में प्राणों की आहुति की है, उनको बराबर का स्थान देना होगा। भारत का भी दबी ज़बान नाम लिया जाता है किन्तु भारत के प्रतिनिधि चुनती है भारतीय सरकार

क्यों

कि कदाचित अभी भारतवासी अपना भला बुरा नहीं समझ सकते। भारतवासियों के नेताओं को पाठ पढ़ाया जाता है

युद्ध का समय

है। इस समय विवादात्मक विषयों को मत उठाओ, किन्तु इसी समय में संयुक्तप्रान्त को कौंसिल नहीं दी जाती, पंजाब, हाईकोर्ट की आशा में रखा जाता है, स्वर्गज सिविल सर्विस वालों का वेतन और बढ़ता है, जहांगीराबादी उपप्रस्ताव पास होता है, पब्लिक सर्विस कमीशन की रिपोर्ट प्रकाशित होती है—जो बहुत ही निराशाजनक है—प्रेस ऐक्ट की छूरी और तेज़ होती है, मिसेज बीसेन्ट, मि० तिलक और मि० वाडिया भारत रक्षा कानून के शिकार बनाये जाते हैं। भारतवासी चुप हैं, यह नहीं कि वे नहीं समझते कि इस चुप रहने का मूल्य उनको कुछ नहीं मिलेगा किन्तु इसलिए कि वास्तव में वे स्वराज्य के भक्त हैं। यदि यह सब काफी नहीं है तो एँग्लो इन्डियनों को बतलाना चाहिये कि भारत क्या करे?

❋

कर्टिस एन्ड कम्पनी

का भंडाफोड़ निरर्थक नहीं हुआ। प्रांतीय कौंसिल में माननीय पं० मोतीलाल नेहरू ने इस संबन्ध में कई प्रश्न किये थे। छोटे लाट और माननीय मि० मैरिस ने अपना वक्तव्य सुनाया। पाठकों को यह सुनकर प्रसन्नता होगी कि भारत सरकार ने यह नियम कर दिया है कि कोई अफसर कर्टिस आन्दोलन में सम्मिलित न हो। मि० मैरिस ने अपने वक्तव्य में कहा कि कर्टिस का आन्दोलन राजनैतिक नहीं है। पुलीस के एक अफसर के मुंह से यह सुनकर बड़ा आश्चर्य हुआ, अच्छा यह होता कि साथ ही में मि० मैरिस यह भी कह देते कि होमरूल लीग आदि भी राजनैतिक संस्था नहीं हैं।

❋

बड़े लाट का वक्तव्य।

व्यवस्थापक सभा में लार्ड चेम्सफोर्ड ने कुछ बातें कहीं हैं और दुःख से कहना पड़ता है कि वे बड़ी ही निराशाजनक हैं। पहिले ही लार्ड महोदय ने

बिन अवसर की बात

यह कही कि माननीय सदस्यों को यह ध्यान में रखना चाहिये कि साम्राज्य भीषण युद्ध में लगा हुआ है, ऐसे समय में विवादात्मक विषयों का उठाया जाना उचित नहीं, आपने यह भी कहा कि इस समय अङ्गरेज़ राजनीतिज्ञ साम्राज्य के बड़े बड़े मसले हल करने में लीन हैं, इस समय यह आशा करना कि वे हम लोगों की बातों को ध्यान से सुनेंगे निराशामात्र है।

हेय कुली प्रथा

की चर्चा करते हुए आपने कहा कि निस्सन्देह प्रथा बुरी है और यह दूर की जायगी किन्तु इसके लिए समय की आवश्यकता है।

कलम चला देने

से यदि यह हो सकता तो मैं कर देता किन्तु

उपनिवेशनिवासियों, भारत सरकार, उपनिवेश-सचिव आदि से सलाह करना आवश्यक है, यह विचार करना है कि इसके बदले में कैसा नियम जारी किया जाय, मई मास में लन्दन में प्रतिनिधियों की सभा बैठेगी इस समय जैसा तय होगा किया जायगा। भारत सरकार सो नहीं रही है और वह स्वयम् इस प्रथा का मूलोच्छेद करना चाहती है किन्तु इसमें समय लगेगा। हमको यह

स्वीकार नहीं

शब्दजाल से असली तत्व कितना ही आच्छादित हो हम यह साफ देख रहे हैं कि इस लिखापढ़ी, सलाह मस्फिरा का अर्थ यह है कि प्रथा अभी कुछ दिनों तक जारी रहेगी। जैसा कि मि० एन्ड्रूज को भय था यह संभव है इस लिखापढ़ी में चार पांच वर्ष लग जायँ। हम नहीं चाहते कि यह प्रथा

एक मिनट

भी और जारी रहे। कोई ज़रूरत नहीं कि भारत सरकार उपनिवेशवालों से लिखापढ़ी करे। भारत सरकार ने मज़दूर भरती करने और भेजने का ठेका नहीं ले रक्खा था। हम मानते हैं कि उपनिवेशवालों को कुछ असुविधा होगी किन्तु इससे हमको कोई मतलब नहीं। हम नहीं चाहते कि वे हमारे भाइयों से कुलियों का काम लें या उनपर अत्याचार करें। लार्ड महोदय ने यह भी कहा है कि स्त्रियों की संख्या बढ़ाने का कुछ प्रबन्ध किया जायगा, इसका अधिक से अधिक अर्थ यही हो सकता है कि एक स्त्री के लिए तीन या पाँच मर्द न रहेंगे। सहयोगी 'लीडर' के शब्दों में हम इतना ही पूछना चाहते हैं कि कहीं दुनिया के कोने में भूल से भी यदि किसी मेम को यही सहना पड़ता, जो कानूनन भारतीय स्त्रियों को उपनिवेशों में सहन करना पड़ता है तो

मेम की मर्यादा

की रक्षा करने में कितने मिन्टों की देर लगाई जाती? प्रश्न राजनैतिक हो नहीं है, सवाल यह नहीं है कि हमारे भाइयों का अपमान होता है, उनको कष्ट सहना पड़ता है, उनके साथ साथ भारत का अपमान होता है और सभ्य देशों की निगाह में वह गिरता जाता है। सवाल यह है कि यह

कानूनी व्यभिचार

कितने दिन जारी रहेगा? एक ललना को, वह भी भारतीय, जिसका सतीत्व ही सब कुछ है, कितने दिनों तक जबरन दूसरों की आज्ञा से एक दो तीन पाँच मनुष्यों की

वेश्या

बनकर रहना होगा? बड़े दुःख की बात है कि ऐसी हेय प्रथा के नाश के लिए सलाह, लिखापढ़ी और समय की आवश्यकता हो। क्या सुधार स्त्रियों की संख्या बढ़ा देने से हो जायगा? भारतवासियों की राय में इससे कुछ न होगा। मई मास में ही सही किन्तु उसी दिन इस कुत्सित प्रथा का अन्त होना चाहिये। भारतवासियों को भी इसके लिए घोर आन्दोलन करना चाहिये। सोते रहने से काम न चलेगा। यदि भारतवासी सचेत न रहेंगे तो भविष्याकाश प्रलयकाल के मेघों की टुकड़ियों से आच्छादित दिखाई देता है।

❋

पब्लिक सर्विस कमीशन

की रिपोर्ट प्रकाशित हो गई। जैसा कि इसके जन्म पर ही हमने कहा था इससे कोई लाभ नहीं हुआ। पहाड़ से चूहा पैदा हुआ। सच तो यह है कि बजाय इसके कि रिपोर्ट प्रकाशित होती यदि उसका कागज़ जिसपर वह छपी है और वह रुपया जो उसके तैयार करने में खर्च हुआ है, भारतवासियों को दे दिया जाता तो उनका अधिक लाभ होता।

सन् १९११

में माननीय मि० सुब्बाराव ने व्यवस्थापक सभा

में इस कमीशन की नियुक्ति के लिए प्रस्ताव किया था। प्रस्ताव इस हेतु किया गया था कि भारतवासियों के देश में, भारतीय नौकरियों में भारतवासियों की संख्या अधिक रहे, अधिक वेतनवाले पदों पर अधिकतर नियुक्ति भारतवासियों की हो। अङ्गरेज़ तथा अन्य विदेशी लोग नियम के अपवादस्वरूप यत्र तत्र जहाँ उनकी बहुत ही आवश्यकता हो नियुक्त किये जायँ। कामन्स सभा में भी कमीशन की बात कहते हुए सहकारी मंत्री ने कहा था—

"The Problem before us when we have educated Indians is to give them the fullest opportunity in the Government of their own country to excercise the advantages which they have acquired by training and by education." कि उद्देश्य भारतीय शासन में भाग लेने के लिए भारतीयों को पूरा २ मौका देना है। सन् ८७ में जो कमीशन बैठा था उसका उद्देश्य भी "to do full justice to the claims of natives of India to higher and more extensive employment in the public service

भारतीय नौकरियों के सम्बन्ध में भारतवासियों के साथ पूरा न्याय करना था। स्वयम् कमिश्नरों के शब्दों में उनकी मनसा थी कि "That all His Majesty's subjects should receive equal treatment and all invidious distinctions of class or race should be removed

सम्राट् की समस्त प्रजा के साथ एकसा व्यवहार हो और रंग, जाति पांति आदि का भेदभाव दूर किया जाय। उस कमीशन ने बड़े ज़ोरों से यह भी लिखा था कि इङ्गलैंड में भारतीय नौकरियों के लिए भर्ती बहुत कम कर दी जाय और इस प्रकार ऊँचे पदों के प्राप्त करने के लिए भारतवासियों को सुविधा दी जाय। किन्तु नतीजा कुछ नहीं हुआ। कमीशन की बातें रिपोर्ट में ही रह गईं। अँगरेज़ों की संख्या दिन पर दिन बढ़ती गई। इस अन्याय को कम करने के लिए

सन् १९१२

में इस कमीशन का जन्म हुआ। अब रिपोर्ट प्रकाशित हुई है। रिपोर्ट तैयार होते ही जब प्रकाशित नहीं की गई तभी लोगों को सन्देह हो गया था कि

रिपोर्ट असन्तोषजनक

है। स्वभावतः अन्याय और पाप अन्धकार की शरण चाहता है, प्रकाश में आना उसके लिए ज़हर होता है। मालूम नहीं अब इस समय एकदम से वह क्यों प्रकाशित की गई? लोग कहते थे कि रिपोर्ट तैयार होने पर इसलिए नहीं प्रकाशित की गई कि आन्दोलन न हो। सम्भव है ऐसा ही हो किन्तु क्या उसी तरह यह भी सम्भव नहीं कि अब वह इसलिए प्रकाशित हुई कि इस समय

विवादात्मक विषय

का रौला मचाकर आन्दोलन रोका जा सकता है, युद्ध की दोहाई देकर सैकड़ों अस्त्र काम में लाये जा सकते हैं। माननीय मालवीयजी के शब्दों में रिपोर्ट ने भारतवासियों के साथ घोर अन्याय किया है। इसने

न्याय का गला घोंटा

है। महारानी विक्टोरिया ने शासन का भार हाथ में लेते ही यह घोषणा की थी कि नौकरियों के लिए

योग्यता की कसौटी

से ही काम लिया जायगा। विद्या और योग्यता से भारतवासी ऊँचा से ऊँचा पद भी प्राप्त कर सकेगा, किन्तु खेद से कहना पड़ता है कि

स्वर्गवासी गोखले

किसी प्रकार से भी उन तीन वाइसरायों से जिनके साथ उन्होंने काम किया, हीन न होते

हुए भी कभी वाइसराय क्या, गवर्नर या छोटे लाट भी नहीं हुए। सर टी० माधवराव, रानडे, दादाभाई नौरोजी, मालवीय, तिलक, लाजपत, अरविन्द घोष, यदि इङ्गलैंड में पैदा हुए होते तो सम्भव था कि वे मन्त्रि-मंडल के सभ्य या प्रधान होते किन्तु अपने देश में वे कमिश्नर या इन्सपेक्टर जनरल आव् पुलीस भी नहीं हो सकते। सन् ५८ के कुछ समय बाद ही यह तय हुआ था—इस निश्चय को भी एक कमेटी ने किया था जिसमें एक भी भारतवासी सम्मिलित नहीं था—कि सिविल सर्विस आदि की परीक्षा इङ्गलैंड के साथ ही साथ भारत में भी हुआ करे, भारतवासियों को भी अँगरेज़ों की भांति बराबर के अवसर देना ही

न्याय्य और उचित

होगा। आज तीस वर्षों से कांग्रेस का भी यही रोना रहा है। हम लोग सदा से कहते आये हैं कि हम लोग पक्षपात नहीं चाहते (यद्यपि अपने देश में ग़ैरों की अपेक्षा अपने लिए ऐसा चाहना भी अन्याय नहीं) हम लोग इतना ही चाहते हैं कि परीक्षा हो, योग्यता की कसौटी पर भारतवासी और अँगरेज़ एक समान कसे जायँ, जो योग्य साबित हो उसे पद प्राप्त हो। जिस समय इङ्गलैंड में परीक्षा होती है उसी समय भारत में भी वही परीक्षा ली जाय, प्रश्न-पत्र वेही हों। हम लोगों का कहना यही था कि इतना ही क्या कम है कि अंगरेज़ अपनी भाषा में परीक्षा पास करेंगे किन्तु हम लोग उनकी भाषा में। हम कहते थे योग्यता का ही प्रश्न रक्खा जाय रुपये का नहीं। सहस्रों, लक्षों भारतीय युवक सर्वथा योग्य होते हुए भी इतने धनी नहीं कि वे विलायत जाकर रह सकें, इसके सिवा माता पिता यह भी चाहते हैं कि बालक उनकी दृष्टि के सामने रहें, उनकी शिक्षा वे स्वयम् देख सकें, दूर देश में आकर वे बिगड़ें नहीं। समझा गया था कि

६० वर्ष का वादा

पूरा किया जायगा। किन्तु नहीं कमीशन को यह बात पसन्द नहीं आई।

इसका कारण

इसके सिवा हम क्या समझें कि कमीशन ने यह समझा होगा कि अँगरेज़ युवक मुकाबिले में भारतवासियों के सामने न ठहर सकेंगे या यह कि भारत में परीक्षा होने से भारतीय युवक अधिकतर संख्या में सम्मिलित होंगे और पास कर ऊँचे ऊँचे पदों पर पहुंच जायँगे। कमीशन ने "समकालीन परीक्षा" को राय न देकर अनुचित कार्य किया है।

शासन के खर्च

का रोना भी हमारा व्यर्थ नहीं है। भारत की दरिद्रता के प्रधान कारणों में से एक महत्व-पूर्ण कारण शासन का बहुमूल्य होना भी है। वेतन के रूप में जो धन देश से बाहर जाता है वह कम नहीं। धन तो जाता ही है उसीके साथ हमारे भाइयों का स्वत्व भी अपहरण होता है। दिन दिन भारतवासी हीन होते जा रहे हैं। भारतवासियों को उच्च पद अधिक संख्या में प्राप्त होने से तथा "समकालीन परीक्षा" के जारी होने से देश का धन देश में रहता और अपव्यय किसी अंश में कम होता किन्तु कमीशन ने खर्च कम करने के बजाय

वेतन बढ़ाने

की राय दी है। और भी कितनी ही बातें हैं। जिस दृष्टि से देखते हैं यही कहना पड़ता है कि कमीशन व्यर्थ बैठा और व्यर्थ में इतना रुपया एक गरीब देश का और खर्च हो गया। कमिश्नरों के लिए यह शेर पूरी तौर से मौज़ूं है

"लिखता है शेख मसलये* वहदते वजूद†।
लेकिन दुई‡ अयाँ है कलम के शिगाफ से॥

भारतवासियों को इस संबन्ध में आन्दोलन

* सिद्धान्त। † एकात्मवाद। ‡ ज़ाहिर।

करना चाहिये। श्रीमान् वाइसराय ने कौंसिल में कहा है कि कमीशन की सलाह के अनुसार शीघ्रही काम किया जायगा। हमें लोगों को यह पसन्द नहीं; हम इस न्याय को अन्तिम न्याय नहीं समझते और हम लोग चाहते हैं कि

भारतीय हित

की दृष्टि से फिर से विचार किया जाय। सभाएँ हो रही हैं और हम आशा करते हैं कि यदि आन्दोलन हुआ और हमारे भाइयों ने इस अन्याय से

"त्राहि माम

त्राहि माम" की आवाज़ें लगाईं तो सरकार सुनी अनसुनी नहीं कर सकेगी।

❋

आंधी के आम।

श्रीमान वाइसराय ने कौंसिल में एक और मार्के की बात कही है। पाठकों को विदित है कि बहुत दिनों से भारत में अङ्गरेज़ों के लिए सैनिक-सेवा अनिवार्य करने की चर्चा चल रही थी। भारतवासी कहते थे कि भारतवासियों को सैनिक-शिक्षा से अलग रखकर अङ्गरेज़ों के लिए सैनिक-सेवा अनिवार्य करना

अन्याय और ज़हर

होगा। अङ्गरेज़ों के लिए जो असली यूरोपीय हैं नियम जारी हो गया। पाठकों को यह सुन कर प्रसन्नता होगी कि कुछ भारतवासियों के लिए भी किसी रूप में सैनिक-शिक्षा का प्रबन्ध होगा। प्रबन्ध किस रूप में और कैसा होगा यह अभी पूर्ण रीति से विदित नहीं हुआ है। हम इन आँधी के आमों की प्राप्ति पर भारतवासियों को बधाई देते हैं। यद्यपि अभी भारतवासियों का न्याय्य स्वत्व पूर्णरूप से उनको नहीं प्राप्त हुआ है किन्तु हमको विश्वास है कि यदि हम लोग सचेत रहे और अपने स्वत्वों पर हम लोगों की दृष्टि लगी रही तो बहुत दिनों तक हम लोग उससे वंचित नहीं रक्खे जा सकते।

❋

प्रजातन्त्र और ईसाई मत।

आज कितने ही दिनों से हमारे विरोधी इस बात को कहते चले आये हैं कि भारत, स्वराज्य या प्रजातंत्र के उपयुक्त नहीं। लोग कहते थे कि पूर्वीय देशों के निवासी

निरंकुश शासन

के आदी हैं और प्रजातंत्र उनके बीच सफलता नहीं प्राप्त कर सकता। जापान के उदय के साथ ही इस दलील के पेश करनेवाले ढीले पड़े और दूसरी दलीलों को वे उपस्थित करने लगे। कहा जाने लगा कि भारतवासी अभी योग्य नहीं हैं, उनमें विद्या नहीं; अधिक संख्या उनकी अशिक्षित है। इसका भी मुहतोड़ उत्तर दिया गया। कहा गया कि शिक्षितों की संख्या पर ही सब कुछ निर्भर नहीं होता। इङ्गलैंड, रूस आदि देशों से तुलना कर यह सिद्ध किया गया कि स्वराज्य प्राप्ति के समय इन देशों में भी शिक्षित लोग अँगुलियों पर गिने जा सकते थे। यह भी कहा गया कि शिक्षितों की संख्या कम है यह कसूर भी भारतवासियों का नहीं है। इसके सिवा असल तत्व यह भी खुले शब्दों में कह दिया गया कि भारतवासी वास्तव में अयोग्य नहीं हैं वरन्

असल बात

यह है कि उनको अपनी योग्यता प्रदर्शित करने के अवसर नहीं दिये जाते। शिक्षाविभाग में देखा जाय तो, ऊँचे पदों पर देखा जाय तो सर्वथा योग्य भारतवासियों के ऊपर प्रायः सर्वथा अयोग्य विदेशी रख दिये जाते हैं। इसके सिवा यह कहना कि—जो जाति मेहता, गोखले, रानडे, माधवराव, राजा राममोहन राय, विद्यासागर, अयोध्यानाथ, दादाभाई, बाबा, मालवीय, तिलक, लाजपत, अरविन्द, सुरेन्द्रनाथ,

ब्रजेन्द्रनाथ, प्रफुल्लचन्द्र आदि को अपनी हीन से हीन दशा में पैदा कर सकती है, वह अयोग्यों की जाति है—सर्वथा अन्यायोचित है। भारतवासी कहने लगे:—

"नफ्स बेमकदूर को कुदरत हो गर थोड़ी सी भी।
देखे फिर सामान इस फरहून बे सामान का॥

हम शक्तिहीन हैं, यदि थोड़ी सी भी शक्ति हमारे हाथों में आजाय तो हम दिखला दें कि हम क्या हैं" अब एक पादरी साहब ने एक नई ही दलील उपस्थित की है। आपका नाम है रिवरेन्ड मि० फ़िन्ले। भारत और स्वराज्य की चर्चा करते हुए आप फ़रमाते हैं "No sort of representative government would flourish in a country which is not christian" अर्थात् उस देश में, जो ईसाई नहीं, प्रजातंत्र सफलता नहीं प्राप्त कर सकता। जब ईसामसीह पैदा नहीं हुए थे, यही नहीं उनके जन्म के कम से कम

३००० वर्ष पहिले

भारत में प्रजातन्त्र राज्य था, ग्राम्यपंचायतें थीं, राजा अपने पुत्र को भी बिना जनता और उसके प्रतिनिधियों की सम्मति के युवराज नहीं बना सकता था, राजा, सर्वथा प्रचलित कानून के आधीन था, अपने प्रधान सचिव, मंत्रियों और प्रधान सभा के सदस्यों की अनुमति के बिना वह एक तिनका नहीं खसका सकता था, उसे आधुनिक राजाओं, सम्राटों, वाइसरायों की भांति

वीटो का अधिकार

भी नहीं था, इतना ही नहीं यह नियम था कि वह अपनी सभा के—जिसमें ४ ब्राह्मण, ८ क्षत्रिय, २१ वैश्य और एक शूद्र रहता था—सर्वथा आधीन रहे। क्या इस प्रकार का शासन, निरंकुश शासन कहा जा सकता है। पादरी महाशय को एक

चार्ल्स और जेम्स

का अभिमान होगा। भारतीय इतिहास में कितने ही वेणु, नहुष, हिरण्यकश्यप आदि हो चुके हैं। रोम, यूनान, बेबिलन, कार्थेज का कैसा उदय हुआ, क्या इन राष्ट्रों में प्रजातन्त्र नहीं था? क्या उस समय रोम, यूनानवाले ईसाई थे। मुस्लिम काल में मुसलमानों ने यूरोप को त्रस्त किया, ऐसा राज्य स्थापित किया कि संसार में तहलका मच गया, क्या मिस्र, टर्की, फारस आदि ईसाई थे और कौन कह सकता है कि ईसाई मत मुस्लिम मत से अधिक (Democratic) समता का पक्षपाती है? पादरी साहब को सोच समझ कर कलम चलानी चाहिये।

बेकार बकवक

से उलटे उन्हीं को हानि पहुंचेगी, उनके उद्देश्य को हानि पहुंचेगी, भारतवासियों की आंखें खुल गई हैं, अपना भला बुरा वे खूब समझ सकते हैं, व्यर्थ भुलावा देने से अब लाभ नहीं। उनका इतना ही कहना अलम् है:—

"किस्मत से हो लाचार हूं ऐ ज़ौक वगर्ना।
सब फन में हूं मैं ताक* मुझे क्या नहीं आता॥"

❀

निष्काम सेवा।

बात बात में हम लोगों को निष्काम सेवा का पाठ पढ़ाया जाता है, कहा जाता है सेवा ही परम उद्देश्य होना चाहिये, उसके बदले में किसी प्रकार से कुछ चाहने की इच्छा रखना पाप है किन्तु अँगरेज़ों और उपनिवेशवालों को मालूम होता है ऐसा विश्वास नहीं।

अधिकारों और रोटियों

के प्रश्न को पीछे रख छोड़ना वे उचित नहीं समझते। पाठकों को विदित है कि भारत में भी अँगरेज़ों के लिए सैनिक-सेवा अनिवार्य कर दी गई है। भारतवासी भी यही चाहते थे किन्तु उनके लिए ऐसा ही प्रबन्ध नहीं हुआ। भारतवासी इस प्रबन्ध से असन्तुष्ट हैं क्योंकि वे

* चतुर।

सेवा करना चाहते थे। अँगरेज़ इससे असन्तुष्ट हैं क्योंकि

अपने रोजगार

को वे नहीं छोड़ना चाहते। कलकत्ते और बम्बई के अँगरेज़ों ने "अनिवार्य सैनिक-सेवा" के विरुद्ध आवाज़ निकाला है। कलकत्ते-वालों का कहना है कि सेना में होने से अपने व्यापार से उनको अलग होना पड़ेगा, भारत-वासियों तथा अन्य मित्र या तटस्थ राष्ट्रों के निवासियों के हाथ में वह चला जायगा। बंबई में योंही अधिकतर व्यापार भारतवासियों और जापानी लोगों के हाथ में है, कलकत्ते में भी वैसी ही दशा हो जायगी। बम्बईवालों का कहना है कि योंही व्यापार दूसरों के हाथ में है अब यदि हम लोग सेना के साथ गये तो रहा सहा भी हमारा व्यापार जाता रहेगा। इन

"पेट पहिले

तथा साम्राज्य पीछे" का सिद्धान्त रखनेवालों की राय यह है कि श्रीमान वाइसराय को "अनिवार्य सैनिक-सेवा" की घोषणा के साथ ही साथ इसका भी प्रबन्ध करना चाहिये था कि गैर लोग भारत का व्यापार अपने हाथ में न ले लें। साम्राज्य-भक्ति और निष्काम सेवा का यह नमूना है। अँगरेज़ व्यापारी आज वही कह रहे हैं जो भारतवासी सदा से कहते आये हैं। दूसरे देश के व्यापार की इनको इतनी ममता है, ये नहीं चाहते कि गैर लोग इससे मालामाल हों। भारतवासी भी तो यही चाहते हैं। वे तो अपने ही देश के व्यापार को अपने हाथ में रखना चाहते हैं। जैसे आज अँगरेज़ व्यापारियों को अखर रहा है वैसे भारतवासियों को यह सदा से अखरता आया है। क्या हम आशा करें कि भविष्य में अँगरेज़ व्यापारी अपने ही समान भारत-वासियों को भी मनुष्य समझेंगे और उनके इस आन्दोलन में सहयोग देंगे कि उनके रहते गैर लोग भारत के व्यापार से पेश न करने पावें।

हित की बात।

माननीय मालवीय जी ने बड़े लाट की कौंसिल में यह प्रस्ताव उपस्थित किया था कि कौंसिल की बैठक दिसंबर से मार्च तक में कम से कम सप्ताह में एक बार और साधारणतया प्रत्येक तीन मास में एक बार अवश्य हुआ करे। प्रस्ताव का क्या हुआ सो कहने की ज़रुरत नहीं। अब तक कौंसिल की बैठक वाइसराय की मर्ज़ी पर निर्भर रहती है, अपनी इच्छा के अनुसार वे मीटिङ्ग किया करते हैं। कहना नहीं होगा कि बैठक बहुत कम होती है। इसके साथही साथ

शिमला सेशन

में अर्थात अप्रैल से सितंबर मास तक तो वास्तव में कुछ होता ही नहीं। प्रायः २५ वर्ष हुए जब कौंसिल का संगठन हुआ था और नियम बनाये गये थे। यह किसी से छिपा नहीं कि अब कौंसिलों का काम बहुत बढ़ गया है और यदि कौंसिल का उद्देश्य यह है कि वह कुछ काम करे, तो कार्य की वृद्धि के साथ ही साथ अधिवेशनों की भी वृद्धि होनी चाहिये। ऐसी अवस्था में जो नियम आज २५ वर्ष पहिले उपयुक्त रहे होंगे वे आज उपयोगी नहीं हो सकते।

किन्तु नहीं,

ऐसे उपयोगी और न्याय्य प्रस्ताव का भी विरोध हुआ। माननीय मि० दादाभाई ने कहा कि अधिवेशनों की संख्या बढ़ने से अपने रोज़गार, रोटी कमाने के काम को हानि पहुंचेगी। हम नहीं समझ सकते कि जो देश-सेवा के लिए

निज के स्वार्थ

का हनन नहीं करना चाहते वे आखिर कौंसिल

में जाते क्यों हैं ? एक साहब बहादुर ने कहा कि प्रस्ताव की स्वीकृति से कौंसिल, वकील जाति के

व्यापारी राजनीतिज्ञों

के हाथ में चली जायगी। उनके ध्यान में यह बात नहीं आई कि विदेशी व्यापारियों से, जिनका काम यहाँ आकर धन कमाना और विलायत को चले जाना है, जो

शौकीन या तमासबीन

राजनीतिज्ञ मात्र हैं, उनसे ये देशी वकील कहीं अच्छे हैं क्योंकि उनको इसी देश में रहना है और इसी देश की उन्नति और अवनति से उनका घना सम्बन्ध है। सरकार की ओर से सर रिजीनाल्ड क्रेडक ने भी विरोध का स्वर अलापा। कामन्स सभा की निरन्तर बैठक हो सकती है, वकील लायड जार्ज प्रधान हो सकते हैं, मि० एस्क्विथ, वकील होते हुए भी प्रधान हो सकते हैं, इङ्गलैंड को ऐसे लोगों से हानि नहीं पहुंचती किन्तु भारतीय कौंसिल के अधिवेशन प्रत्येक सप्ताह नहीं हो सकते। ठीक ही है अधिक संख्या में अधिवेशनों के होने का अर्थ

काम होना है

और यह भारत के लिए कदाचित अच्छा नहीं। यदि कोई सदस्य यह प्रस्ताव उपस्थित करता कि कौंसिल के अधिवेशन अधिक होते हैं या जो होते हैं उनसे कोई लाभ नहीं, या यह कि युद्ध के अन्त तक कौंसिल के अधिवेशन स्थगित रक्खे जायँ, तब हम देखते कि सरकारी अफसराधीन कौंसिल में उस प्रस्ताव का कैसा स्वागत होता ?

❁

होली।

मर्यादा अपने प्रेमी पाठकों को होली की बधाई देती है और आशा करती है कि "होली" के तत्व को फिर से वे अपने हृदय में स्थान देंगे। "होली" भारतीय महोत्सवों में एक प्रधान महोत्सव है।

समता

की दुंदुभी बजाना उसका प्रधान कर्तव्य है, बड़े छोटों, ब्राह्मण शूद्रों के भेदभावों को मिटाना उसका प्रधान लक्ष्य है और इस बात की घोषणा के लिए कि भारत में कोई Priv leged Class विशेष स्वत्व प्राप्त जाति नहीं है, संसार में होली का जन्म हुआ।

निरंकुश शासन और अत्याचार

को क्षणिक और नाशवान "होली" ने प्रसिद्ध किया। "होली" का महोत्सव हमको यह शिक्षा देता है कि अनियंत्रित सत्ता प्राप्त और बलशाली से बलशाली हिरण्यकश्यप के अन्याय का, सत्य के नाम पर जीवन की आहुति करने को तुला हुआ एक बालक प्रह्लाद, दमन कर सकता है। इसके साथ ही साथ हमको यह भी शिक्षा प्राप्त होती है कि "होलिका" की भांति अत्याचारी का साथ देनेवाला सब प्रकार से रक्षित और वरप्राप्त होने पर भी सत्य के दमन की चेष्टा में स्वयम् नष्ट होता है।

इन सब बातों के साथ ही साथ यह महोत्सव इस बात का ज्वलन्त प्रमाण है कि जाति, जीती है। जिस जाति में ऐसे महोत्सव नहीं, वह मरी के समान है। जिस जाति के ३६५ दिनों में एक भी ऐसा दिन नहीं, जब वह अपने को भूल जाय, आनन्द में मदोन्मत्त हो जाय, ऊँच नीच, बड़े छोटे का विचार छोड़ सब को एक समता की रस्सी में बँध जाने दे, उस जाति का संसार में बहुत दिनों तक निवास नहीं हो सकता।

❁

नव-शिक्षा दीक्षित पुरुष इसे हेय दृष्टि से देखने लगे हैं। "शूद्रों का महोत्सव" का वास्तविक अर्थ न समझकर वे इसे नीच लोगों का महोत्सव समझते हैं, और हर प्रकार से वे

इसे बुरा समझने लगे हैं। हम यह नहीं कहते कि जाति के अधःपतन के साथ ही साथ हमारे महोत्सवों में भी हीनता की काई नहीं लग गई है, उनमें बुराइयां नहीं आगई हैं या यह कि उनमें सुधार नहीं किया जा सकता किन्तु इन सब बातों के साथ हो साथ हमारा यह कहना है कि बुराई को काट अलग करने के साथ ही साथ सुधार का चाकू हमारे

प्राणवायु की रगों

को न काट दे। अछूत जातियों का सुधार चाहनेवालों को विशेषतया इस महोत्सव को अपनाना चाहिये। पवित्र और अपवित्र होली माननेवालों को बहुत बुद्धि से काम लेना चाहिये। होली, विजयादशमी, दिवाली जिस दिन नहीं रहेगी उस दिन हिन्दू जाति भी संसार में न रह सकेगी।

❋

पंजाब सरकार का भय।

पंजाब सरकार ने हुक्म निकाला है कि मि० तिलक और मि० पाल पंजाब की ओर न जायँ। कहा गया है कि पंजाब सरकार विवेकहीनता से ऐसा नहीं कर रही है, उसे मालूम हुआ है कि ये सज्जन पंजाब जानेवाले हैं, इतना ही नहीं वहां जाकर कुछ ऐसा काम भी करनेवाले हैं जिससे सार्वजनिक शान्ति के भंग होने की सम्भावना है। वास्तव में बात यह है कि न मि० तिलक और न मि० पाल ही पंजाब जानेवाले थे। ऐसी अवस्था में सिवा इसके और हम क्या समझ सकते हैं कि किसी मन-चले अफसर ने मनगढ़न्त बातें कहकर पंजाब सरकार को विचलित कर दिया है। एक प्रश्न और उठता है, अभी ये दोनों ही सज्जन संयुक्त-प्रान्त में पधारे थे, मि० तिलक मध्यप्रदेश को भी गये थे, इन दोनों ही स्थानों में न कहीं आग लगी, न आँधी आई और न शान्ति ही भंग हुई। क्या पंजाब की भूमि में कुछ ऐसा मसाला है कि वहां इन लोगों के पैर रखते ही वह भभक उठता।

❋

शिक्षित भारतवासी और सेना।

भारत की रक्षा के लिए जो नव-सेना तैयार होगी उसमें भारतवासी भी सम्मिलित होंगे। यह प्रसन्नता की बात है, अपने देश की रक्षा के कार्य में सम्मिलित होना प्रत्येक भारतवासी का प्रथम कर्तव्य है और हम आशा करते हैं कि भारतवासी अपने कर्तव्य से विमुख न होंगे।

किन्तु

इसके साथ ही साथ हम सरकार से यह भी कह देना चाहते हैं कि हमको सेना की सफलता में सन्देह है। नियमानुसार इस सेना के भारतीय सैनिकों को वही वेतन मिलेगा जो साधारणतया सैनिकों को मिलता है। पठित और सेना में भरती होने के लिए सब प्रकार से उत्सुक युवक किसी प्रकार से उस वेतन पर निर्वाह नहीं कर सकता, घरवालों की सहायता करना तो बात ही दूसरी है। हम आशा करते हैं कि सरकार इस ओर ध्यान देगी; साथ ही हम यह भी आशा करते हैं कि कष्ट सहकर तथा कुछ त्याग करके भी भारतवासी देश-रक्षा के कार्य में सम्मिलित होने से विमुख न होंगे।

अभ्युदय प्रेस, प्रयाग में बद्रीप्रसाद पाण्डेय के प्रबन्ध से छपकर प्रकाशित हुई।

भाग १३] अप्रैल, सन् १९१७—चैत्र [संख्या ४

नव वर्ष का स्वागत।

[लेखक—श्रीयुत हरिभाऊ उपाध्याय।]

(१)

आओ! हे नव वर्ष हर्ष-युत हो उत्कर्ष लाते हुए।
प्यारे भारतवर्ष की मन-कली पूरी खिलाते हुए॥
दुःखों को कर दूर सौख्य-समता-सद्भाव-धारे हुए।
विद्या-बुद्धि-विवेक त्यों चतुरता, जो हैं सिधारे हुए

(२)

आना हो शुभ आपका, सुखद हो, ऐसे दुखी देश में
कोई भी न दिखे यहां पर कभी दुर्दीनता-वेष में॥
वर्षा हो अविराम सौख्यपय की आत्मैक्य पीयूष की
फैले भारतवर्ष में पुनि प्रभा प्राचीन प्रत्यूष की॥

(३)

शिक्षा-सूर्य-विकास पूर्णतम भी हो भारताकाश में।
जिससे भारत-चित्त-पद्म खिल के खेले समुल्लास में
पावे पूर्ण प्रकाश आश-शशि सत्सूर्य-प्रभा से सदा।
साधें साधक सर्व सिद्धि, समझें सत्वादि को संपदा

(४)

हिन्दी की हरिता-लता लहलहे साहित्य-उद्यान में।
नाना-नूतन भाव पुष्प-फल से; हो बुद्धि सन्मान में
व्यापारोन्नति-जाह्नवी कु-कलि* के धोवें सभी दुर्मल†
विज्ञान-प्रगति-प्रदीप कर दे चारो दिशा उज्वल॥

* कलियुग और लड़ाई झगड़ा। † पाप और मनो-मालिन्य।

हवन से हानि।

'हवन करने की' प्रथा भारतवर्ष में बहुत दिनों से चली आती है। जब कभी कोई विशेष कठिनाई आपड़ती थी तब महाकाली देवी की उपासना, हवन से ही की जाती थी। दुर्ग के भीतर घिरे हुए राजपूत, दुर्ग-रक्षा में हताश होकर केसरिया बाना पहिन शक्ति की पूजा, हवन से करके द्वार खोल जान से हाथ धो शत्रुओं पर टूट पड़ते थे। परिणाम यह होता था कि या तो जय ही लाभ करते या देश-रक्षा के लिए युद्ध में प्राणत्याग कर सीधे स्वर्ग प्राप्त करते थे। जब कभी किसी नगर में छूतवाला कोई रोग सर्व-साधारण को विशेष रूप से दुखदाई होता था तब शहर के विद्वान् तथा प्रतिष्ठित मनुष्य बस्ती के बीचो बीच एक विशाल हवन-कुण्ड की रचनाकर वेद मन्त्रों की सहायता से उस रोग का अंजर-पंजर स्वाहा कर देते थे। इससे प्रायः उनकी मनोकामना पूर्ण होती थी। लोगों को विश्वास था कि हवन से भवानी प्रसन्न होकर मारकाट करनेवाली अपनी सेना को लौटा लेती हैं। अब तक देशी रियासतों में प्लेग, हैजा आदि के दिनों में विशाल हवन-कुण्ड की रचना होती है। मध्यभारत के एक राज्य में लेखक स्वयं एक ऐसा प्रभावशाली दृश्य देख चुका है। हवन के बाद दर्शकों के हृदय में यह विश्वास अवश्य हो जाता है कि अब देवी की कृपा से "महामारी" हमारा कुछ बिगाड़ नहीं सकती। इस समय भी हवन शब्द से, हर एक सम्प्रदाय के हिन्दू मात्र के हृदय में अलौकिक भाव उत्पन्न होते हैं, कुटुंब का कोई भी काम आरंभ में बिना साधारण 'हवन' किये नहीं होता। सनातनधर्मी तथा आर्यसमाजी दोनों ही हवन की महिमा बखान करने में एक दूसरे से आगे बढ़ जाते हैं। समाज के नियमों में 'हवन करना' एक दैनिक कृत्य है। प्रतिदिन सायंकाल तथा प्रातःकाल हवन करना एक आर्य कुटुम्ब के लिए आवश्यक है।

लेखक के ध्यान में अभी तक इस विषय पर, हिन्दी में वैज्ञानिक आलोचना बहुत कम हुई है, इस कारण से विज्ञान के मत से हवन पर दृष्टि डालना ही इस लेख का अभिप्राय है। निस्सन्देह समय समय पर घर के बीच में अथवा जब कि बीमारी फैली हो, नगर के मध्य में हवन करना या आग जलाना बड़ा लाभदायक है। उसका वैज्ञानिक कारण यह है कि गर्मी के बढ़ने से प्रत्येक पदार्थ (matter) में 'फैलाव' होता है "घन फल" (volume) बढ़ जाने के कारण आपेक्षिक घनत्व" (Relative Deusity) कम हो जाता है। जहां आग जलती है आसपास की वायु गरम होने के कारण फैलती है, उसका 'घनत्व' कम हो जाता है और तब वह ऊपर उठती है। जो जगह नीचे खाली होती है चारों ओर से साफ हवा स्वतः उसको लेने के लिए दौड़ आती है। नई आई हुई वायु की भी शनैः शनैः वही दशा होती है और उसका स्थान दूसरी हवा लेती है। जिस समय तक आग जलती रहती है यह हालत जारी रहती है। इसका फल यह होता है कि घर के कोने कोने की भारी तथा सड़ी हुई हवा हलकी होकर ऊपर चली जाती है और उसका स्थान अन्य वायु जो कि उसकी अपेक्षा शुद्ध होती है, आकर लेती है। इसी प्रकार से "मरी" के दिनों में शहर के बीच की खुली हुई जगह में बहुत सी आग जलाना फ़ायदेमन्द है किन्तु जब आग जलती हो उस समय उसके चारों ओर बहुत से मनुष्यों का एकत्रित होना उचित नहीं। क्योंकि गन्दी हवा, जो चारों ओर फैलती है, उन सब को हानि पहुंचाती है। समय कुसमय पर कमरे के अंदर

हवन करने की प्रथा, जो आजकल विशेषतः आर्य युवकों में फैलती जाती है, लेखक की समझ में सर्वथा हानिकारक है। बिना समझे बूझे प्रत्येक स्थान पर हवन करने के विरुद्ध इस देश में पहिले पहिल स्वर्गवासी रामतीर्थजी ने एक अँगरेज़ी लेख द्वारा अपनी आवाज़ उठाई थी। सुना जाता है कि उस समय कुछ समाजी पत्रों ने विवेचना पूर्ण उत्तर देने के बदले, उनको बुरा भला ही कह कर तृप्ति लाभ किया था। अन्त में एक प्रतिष्ठित आर्यसमाजी सज्जन ने "वेद प्रकाश" में आलोचना पूर्ण एक लेख स्वामी राम के उत्तर में लिखा था। उसके लेखक महोदय, भारतीय शिक्षित समुदाय में बड़े आदर की दृष्टि से देखे जाते हैं। विरला ही कोई हिन्दी प्रेमी होगा जो एक रियासत में उनके महान हिन्दी प्रचार के काम की प्रशंसा न करता हो। कहा जाता है कि वह लेख हवन की उत्तमता को वैज्ञानिक विधि से सिद्ध करता है, किन्तु संकोच के साथ कहना पड़ता है कि उसमें ऐसी रासायनिक भूलें हैं कि विश्वास नहीं होता कि वह लेख अमुक महात्मा की कलम से निकला होगा। इस लेखक से कालेज में विद्यार्थियों से इस विषय पर एक समय वाद उठा था। एक सज्जन ने, जो कि उस समय हवन के पक्षपाती थे, हवन के सम्बन्ध में समाज के कुछ प्रतिष्ठित महाशयों को कई पत्र भी लिखे थे, किन्तु कहीं से हवन की पुष्टता में सन्तोषजनक उत्तर नहीं आया। एक कालेज के अध्यापक महोदय ने हवन की सामग्री का "रासायनिक विश्लेषण (Chemical analysis) भी किया था। उससे यह सिद्ध हुआ था कि हवन की हर एक चीज़ से प्रायः हानिकारक वायु (gas) पैदा होती है। इसकी वैज्ञानिक व्याख्या यह है। हवन में सब खाद्य पदार्थ (organic substances) काम में लाये जाते हैं. ऐसे खाद्य पदार्थ में तीन तत्वों (elements) का होना आवश्यक है। (१) कारबन (carbon कोयले का अधिकांश कारबन ही होता है)। (२) आक्सिजन (oxygen)। (३) हाइड्रोजन (Hydrogen)। जब कभी, उस चीज़ को जिसमें ये तीन तत्व होंगे, आंच पहुंचाई जायगी, कारबन और आक्सिजन मिलकर "कार्बोनिक एसिड गैस" (वह गन्दी हवा जो कि हम सांस लेकर बाहर निकालते हैं) अवश्य बनेगी। घर के अन्दर ऐसी हवा साँस लेने के कारण आप ही अधिकता में होती है ऐसी अवस्था में ऐसी हानिकारक वायु को बढ़ाना अनुचित है। यदि यह कहा जाय कि बीमारी के दिनों में या नम और गन्दी जगह को साफ़ करने के लिए तो हवन करना चाहिये, तो उत्तर यही होगा कि आग अवश्य जलानी चाहिये, साधारण लकड़ियां जलाने से भी प्रायः वही प्रभाव पड़ेगा जैसा कि घृत तथा अन्य मौलिक पदार्थों के जलाने से। महँगी तथा अकाल के दिनों में हवन में रुपया खर्च करना कहां तक लाभदायक है यह भी विचारणीय है?

यह प्रश्न हो सकता है कि आग जलाने से अथवा सांस लेने से वायु खराब हो जाती है तो एक समय पर हवा सांस लेने योग्य बिलकुल न रह जायगी? इस पर विचार करने से सर्वशक्तिमान परमात्मा की अपरिमित महिमा का पता लगता है। संसार का प्रत्येक काम ऐसा नियमबद्ध होता है कि कहीं लेशमात्र भी भेद नहीं पड़ता। प्रकृति के नियमानुसार जो वायु मनुष्यों के लिए लाभदायक है वही घास पात के लिए हानिकारक है और जो दरख़्तों को लाभ पहुंचाता है वही जीवधारियों को हानि पहुंचाता है। जो एक सांस लेकर बाहर निकलता है वह जीवित रहने के लिए दूसरा अन्दर लेता है. इस प्रकार से वायु एक दूसरे के लिए बराबर साफ़ होता रहता है। यदि सम्भव हुआ तो इस विषय की पूर्ण आलोचना हम किसी दूसरे लेख में करेंगे। "चन्दु।"

राष्ट्रीय-विचार ।

[लेखक—श्रीयुत हनुमत्प्रसाद जोशी, वैद्य ।]

(१)

प्रिय बान्धवो ! आलस्य को अब दूर करना चाहिये
कर्तव्य के शुभमार्ग पर आरूढ़ होना चाहिये ॥
जी जान से धनवृद्धि का उद्योग करना चाहिये ।
स्वायत्त-शासन के लिए कटिबद्ध होना चाहिये ॥

(२)

राष्ट्र का निर्माण अपने आपही होता नहीं ।
देखा गया है, क्या स्वयं बनता, भवन कोई कहीं ॥
भाग्य के आधार पर बैठे न रहना चाहिये ।
राष्ट्र-निर्माणार्थ अब कटिबद्ध होना चाहिये ॥

(३)

ईश का साहाय्य भी मिलता उन्हें ही सर्वदा ।
जो स्वाभिमानी, स्वावलम्बी यत्न करते हैं सदा ॥
देखता आके सभी इस कार्य को कर जायँगे ।
राष्ट्र-निर्माणार्थ जब कटिबद्ध हम हो जायँगे ॥

(४)

विद्वान् विद्या में बड़ा धनवान् धन में हो बड़ा ।
चाहे न हो बलवान भी बल में किसीसे कुछ बड़ा ॥
पर राष्ट्र में, मनुजत्व में, छोटा बड़ा कोई नहीं ।
सब हैं समान, स्वतन्त्र हैं, इस बात को भूलो नहीं ॥

क़ौमी सरगर्मी की रूह ।

[लेखक—श्रीयुत लाला लाजपत राय ।]

मेरे प्यारो ! मैं आज पाश्चात्य जातीय एक ऐसे गुण की ओर तुम्हारा ध्यान दिलाना चाहता हूं जिसकी न्यूनता हिन्दुओं में दिखलाई देती है। पाश्चात्य जातियों में ऐंग्लो-सैक्शन वंश के लोगों में विशेषतः वह गुण पाया जाता है, जिसको अँगरेज़ी में Earnestness कार्यतत्परता कहते हैं। खेद है कि मुझे हिन्दी या उर्दू का कोई ऐसा शब्द मालूम नहीं जो इस शब्द के सम्पूर्ण अर्थों का बोधक हो। कुछ लोग इसका अनुवाद 'सरगर्मी' करेंगे, पर मैं नहीं कह सकता कि इस शब्द से Earnestness के सब पहलू प्रकट हो सकते हैं। Earnestness, स्वभाव के उस गुण का नाम है, जो मनुष्य को पूर्णतया अपने ऊपर निर्भर करने को बाध्य करता है, जो मनुष्य-हृदय में उस महत् आकांक्षा को उत्पन्न करता है, जिससे मनुष्य अपने विचारों और प्रयोजनों में सिद्धि प्राप्त करने के लिए कठिन से कठिन प्रयत्न करने को तैयार रहता है। यह वह गुण है जो उनको सभी कार्यों पर काबू पाने के लिए विचलित करता है जो, उनके कार्यसिद्धि के मार्ग की रुकावटों, अकृत कार्यकर्ताओं और पराजय के शब्दों को उनकी जिह्वा पर नहीं आने देता और जो जीवन के किसी भी पल में उनके जीवनोद्देश्य को नहीं भूलने देता। यूरोप में यह सरगर्मी जीवन के प्रत्येक विभाग में दिखाई देती है। यही वहां की सफलता का रहस्य है। निजी मामलों और सामाजिक कारबारों में तथा राजनीति, समाज-सुधार, धार्मिक-जीवन, उद्योग आदि में और स्टेज आदि सभी स्थानों में आपको इसके प्रमाण मिलेंगे। इसीसे वे लोग जिस कार्य को करते हैं, पूरे चाव, तत्परता और हृदय से करते हैं। उनका कहना है कि कर्तव्य कर्म भले प्रकार करने योग्य है। चाहे वह निजी हो, चाहे अपनी उन्नति, अपने आराम, स्वास्थ्य अथवा अपने मनोरञ्जन से वह सम्बन्ध रखता हो, चाहे उसका सम्बन्ध

हमारे समाजिक, धार्मिक और राजनैतिक कर्तव्यों से ही हो। उनका स्वभाव उनको इस बात पर बाध्य करता है कि जब वे किसी अन्य व्यक्ति अथवा जाति के विषय में दिलचस्पी लें, तो पूरी तरह से ही लें। इसके लिए वे अपना समय और धन व्यय करने में तनिक भी नहीं हिचकिचाते और इसके लिए कभी २ वे हानि भी सह लेते हैं। मुझे कई ऐसे प्रसिद्ध अँगरेज़ों से परिचित होने का गौरव प्राप्त है, जिन्होंने हिन्दुस्तान, मिस्र, ईरान या रूस के यहूदियों, एफ्रिकनों या एमेरिकन हबशियों के स्वत्वों की रक्षा के लिए केवल अपना धन ही नहीं व्यय किया वरन स्वजातियों के अन्याय भी सहन किये हैं। इनमें से एक का हाल आपको सुनाता हूं, वे मेरे मित्र हैं और इङ्गलैंड में बैरिस्टरी करते हैं। वहां के नियमानुसार बैरिस्टरों की सफलता बहुत कुछ सालिसिटरों की सहायता पर निर्भर है। जिस समय उन्होंने दक्षिण एफ्रिका में अँगरेज़-बोअर युद्ध के विरुद्ध अपना स्वर उठाया, उस समय सालिसिटरों ने उन्हें मुकदमे देना छोड़ दिया। तत्पश्चात उन्होंने भारतीय प्रश्नों पर विचार करना और भाग लेना आरम्भ किया।

बोअर-युद्ध के विरुद्ध बोलने से उनको जो हानि उठानी पड़ी थी वह इससे और भी बढ़ गई। उनकी आय, व्यय से भी कम हो गई परन्तु वे एक इंच भी न डिगे। यूरोपियन सरगर्मी का यह गुण है कि वह विरोध और अड़चनों से और भी बढ़ जाती है। इसके विपरीत हिन्दू-स्वभाव पर इसका असर दूसरा पड़ता है तनिक सी हानि से ही वह कर्तव्य कर्म को छोड़ देता है। हमारे जीवन के किसी विभाग में भी वह तत्परता, दृढ़ता और उमंग नहीं है, जो सच्ची श्रद्धा से उत्पन्न होती है। इस कथन से मेरा यह तात्पर्य नहीं कि हिन्दू, इन गुणों से नितान्त कोरे हैं; किन्तु बात यह है कि हिन्दू, अपने सिद्धान्तों और विश्वासों के लिए बलि चढ़ने को तैयार नहीं होता, उसकी Earnestness तत्परता दूसरे प्रकार की होती है, यह वही सरगर्मी और सच्ची उत्तेजना है जिसके प्रभाव से अगणित हिन्दू, घर छोड़कर, धन, ठाट, बाट और उच्चपद पर पदाघात कर बैरागी हो जाते हैं। महाराजा हरिश्चन्द्र, महाराज रामचन्द्र, महात्मा बुद्ध, महात्मा शंकराचार्य, कुमारिल भट्ट, गुरु नानक, गुरु गोविंद सिंह, स्वामी दयानन्द, राजा राममोहन राय, महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर, स्वामी विवेकानंद, स्वामी रामतीर्थ आदि के उदाहरण भारतीय इतिहास में स्वर्णाक्षरों से लिखे हुए हैं। यही हिन्दू-जीवन के रहस्य हैं। लेकिन जहाँ इन विशेष पुरुषों के जीवन में हम अप्रतिमता का उदाहरण पाते हैं—जो हमारी जाति के उच्च नैतिक और आत्मिक जीव के अमिट उदाहरण हैं—वहां हमें अपनी जाति की एक बहुत बड़ी संख्या में इनका पता भी नहीं मिलता। यदि बड़े से बड़े यूरोपीय महात्मा की तुलना हिन्दू महात्मा से की जाय तो हम हिन्दुओं को लज्जित होने का कोई कारण नहीं है, पर साधारण श्रेणी का यूरोपियन सरगर्मी में साधारण हिन्दू की तुलना में बहुत श्रेष्ठ होता है। यही न्यूनता हमारी वर्तमान अवनति का कारण है। महाभारत युद्ध के बाद महाराज युधिष्ठिर मानसिक दौर्बल्य के कारण राज पाट छोड़कर नाश प्राय भारत को अपने भाग्य पर छोड़कर पर्वतमार्गानुगामी हुए। यही दौर्बल्य सरगर्मी की कमी का उदाहरण है।

मेरे विचार में किसी व्यक्ति या जाति की जीवनी शक्ति का अंदाज़ा इसीसे लगाया जा सकता है कि उस व्यक्ति या जाति में Earnestness की मिक़दार और गहराई कितनी है। ऐसे प्रत्येक मनुष्य में, जिसमें संकल्प शक्ति वर्तमान है, दृढ़जीवन का टिकाव उसकी दृढ़ता पर है। मेरी सम्मति में मनुष्यजीवन के प्रत्येक विभाग में, दृढ़संकल्प शक्ति वा मानसिक-बल will

power ही जीवन-साफल्य में बहुत कुछ सहायक होता है और दृढ़संकल्पशक्ति 'सरगर्मी' की मिक़दार पर अवलम्बित है। हिन्दुओं में ऐसे लोगों की भी कमी नहीं, जिन्होंने सांसारिक प्रतिष्ठा, धन और पदवी प्राप्त करने में पूर्ण दृढ़ता दिखलाई है। अब भी हमारी आँखों के सम्मुख हिन्दू सांसारिकों के प्रतिष्ठा, सम्पत्ति और पदवी प्राप्त करने में समुचित 'सरगर्मी' प्रदर्शित करने के कितने ही उदाहरण हैं। इनमें कुछ तो शील, धर्म, सत्य, और न्याय तक का खून करते नहीं सकुचाते इस दशा में उनकी 'सरगर्मी' की प्रशंसा नहीं हो सकती। क्योंकि प्रशंसनीय' अनुसरणीय, और मानव जाति के चरित्र को उच्च करनेवाली 'सरगर्मी' वह है जो धर्म और शील के विरुद्ध न हो और जिससे किसी पर अन्याय न करना पड़े। धर्म और नीति को पददलित कर अपनी उन्नति के लिए तत्परता दिखानेवाले जाति के चरित्र को भ्रष्ट करते हैं। इसके लिए यह आवश्यक है कि 'सरगर्मी, सत्य की नींव पर प्रतिष्ठित और धर्म पर अवलम्बित हो। यूरोपियन जातियों की विशेषता यह है कि उनकी 'सरगर्मी, जाति या जनसंख्या के प्रतिकूल नहीं होती। इसीसे एक की सरगर्मी जाति की 'सरगर्मी की बुनियाद होती है। हिन्दुओं में, जो निजी भलाई का उत्कट-प्रयत्न करते हैं, उनमें अधिकांश इसका विचार ही नहीं करते कि उनका प्रयत्न जाति के प्रतिकूल तो नहीं है। एक बड़ी संख्या तो निजी उन्नति के लिए इतनी प्रयत्नशील है कि चाहे जाति पर कुछ हो क्यों न बीते, उन्हें इसकी कुछ भी चिन्ता नहीं। मेरे इस कथन का तात्पर्य इतना ही है कि हिन्दू समाज में जाति को नैतिक बल प्रदान करनेवाली सच्ची 'सरगर्मी' की न्यूनता है। अब प्रश्न यह है कि यह कमी किस प्रकार पूर्ण की जाय। स्मरण रहे कि हमारे देश की आबोहवा भी इसकी बहुत कुछ ज़िम्मेवार है। इसपर भी हमारे शास्त्रों में इस कमी को पूर्ण करने के साधन बतलाये गये हैं। मेरा विश्वास है कि यदि हम आँखें खोलकर यूरोपीय सभ्यता के उजाले में पूर्वजों के बतलाये हुए इन साधनों को जीवन का एक भाग बनालें तो हमारी बीमारी का बहुत कुछ इलाज हो जाय। सब से पहिला इलाज ब्रह्मचर्य धारण है। हिन्दू नवयुवकों को इसका बड़ी आवश्यकता है। वीर्य-नाश से जो दौर्बल्य पैदा होता है, वह कुवत और इरादे को बहुत कम कर सत्य के लिए आग्रह पैदा नहीं होने देता। जहां ब्रह्मचर्य का धर्म वीर्य-रक्षा है, वैसेही कड़ी ज़िन्दगी बिताना भी आवश्यकीय है। ब्रह्मचारी को जैसे धार्मिक मक्कारी आदि से बचाना आवश्यक है वैसेही उन्हें जिह्वा के चसके से भी बचाने की ज़रूरत है, कारण यह शरीर को ढीला कर विलासी बना देता है। यहां पर एक विचित्र उलझन पैदा होती है। कुछ भारत हितैषी समझते हैं कि हिन्दू जीवन का उद्देश्य इतना नीचा है कि उनका हृदय सांसारिक उन्नति की अभिलाषा का विरोधी है। इसलिए हिन्दुओं को उन्नति-पथ पर लाने के निमित्त उनमें जीवन को उच्च बनाने की, अभिलाषा उत्पन्न करना आवश्यक है जिसमें वे, अभिलाषा पूर्ण करने के लिए संसार में जीवन संग्राम करने की योग्यता पैदा कर सकें। दूसरा दल कहता है कि ऐसा नहीं कि इससे हम प्रकृति की उपासना की ओर झुक पड़ें और जो थोड़ी बहुत आध्यात्मिकता शेष है, वह भी जाती रहे। मैं यह स्वीकार करता हूं कि यह प्रश्न सहज नहीं है। इसपर सम्मति प्रकट करना आसान नहीं। तथापि मेरा विचार है कि इन दोनों दशाओं में भी यह आवश्यक है कि जीवन की तैयारी का समय साधन-युक्त और तपस्या भाव से पूर्ण हो। तपस्या का यह अर्थ नहीं कि नवयुवकों की आवश्यकताएँ पूर्ण न की जायँ, और जो वस्तुएँ उनके स्वास्थ्य के लिए आवश्यक हैं, एकत्र न की जायँ, अथवा यह कि उनको असंगत धार्मिक

रीतियों में जकड़ दिया जाय किन्तु प्रयोजन यह है कि उनको अपने इरादों को दृढ़ करने की टेव डाली जाय। प्रत्येक नवयुवक की शिक्षा किसी की देखरेख में हो। मानव-सन्तान के साथ मशीन कासा बर्ताव करना उचित नहीं। इसीलिए हमारे पूर्वजों ने साधारण ब्रह्मचर्य के नियमों में यह भी आवश्यक बतलाया है कि प्रत्येक बालक, कुछ समय के लिए गुरुकुल में रहे। मेरा विश्वास है कि प्राचीन काल में शास्त्रोल्लिखित ब्रह्मचर्य के नियमों की इतनी कड़ी पाबंदी नहीं थी, जैसी हम समझ रहे हैं। प्रत्येक गुरु और आचार्य अपने शिष्यों की आवश्यकताओं पर विचार कर उन्हीं के अनुसार बरताव करता था। प्राचीन काल में मनुष्यों को शिक्षा दीजाती थी और वे मशीन द्वारा नहीं गढ़े जाते थे। यूरोपीय जीवन में भी न्यूनाधिक ऐसा ही है पर हमारे लिए कठिनाई यह है कि हमारे पास ऐसे आदमियों की कमी है, जो नवयुवकों को शिक्षा देने का दायित्व अपने ऊपर ले सकें। नवयुवकों की शिक्षा केवल विद्वत्ता के लिए ही नहीं, बल्कि उनके स्वभाव को बनाने के निमित्त वांछनीय है। युवक का योग्य पथप्रदर्शक वही हो सकता है, जिसको इतना अवकाश और इच्छा हो कि वह अपने शिष्य या पुत्र की देख-रेख पर पर्याप्त समय व्यय कर सके। हमने यज्ञोपवीत देने की रीति तो प्रचलित रक्खी है पर उसकी मूलशक्ति ग्रहण नहीं की है और न वर्तमान दशा में वह सम्भव ही है। उस युवक को अत्यन्त भाग्यवान समझना चाहिये जिसको वर्तमान दशा में कोई ऐसा सदाचारी पुरुष मिल जाय जो उसके पथप्रदर्शन का पुनीत कार्य अपने ज़िम्मे ले सके। परन्तु कठिनाई यह है कि गुरु मानने योग्य मनुष्य आजकल बहुत कम मिलते हैं। अतः स्वयम अपनी शिक्षा पर ध्यान देने के सिवा हमको युवकों के हक़ में कोई उपाय ही नहीं दीख पड़ता। मेरे प्यारो! मैं तुम्हारी आन्तरिक और ऊपरी शुद्धि तथा स्वास्थ्यरक्षार्थ जैसे बलदायक और अच्छा भोजन मिलना चाहता हूं वैसे ही इस बात को भी आवश्यक समझता हूं कि तुम अपने स्वभाव और रहन-सहन में सादगी रखने पर ध्यान दो। आय से जो अधिक व्यय करने लगते या भोग-विलास की आदत डाल लेते हैं, उनसे जीवन के व्यवहार में स्थायी 'सरगर्मी' की आशा रखना व्यर्थ है।

जली कटी लिखना और कहना 'सरगर्मी' का प्रमाण नहीं है। हमें अपने लेख और उक्ति में किसी सदाचारी के आदेशानुसार सहनशीलता की शिक्षा लेना उचित है। इसके साथ ही कहने और करने में भी सहनशक्ति से काम लेना 'सरगर्मी' के प्रतिकूल नहीं। इस विषय में हमको जापानियों से शिक्षा लेनी चाहिये। उनकी 'सरगर्मी' में कोई संदेह नहीं, पर इतने पर भी उनमें अत्यन्त सहनशीलता है। दोनों बातें जीवन में साधन करने से आती हैं। नवयुवको! युवावस्था में साधनयुक्त होने से निजी सफलता ही नहीं बल्कि तुम्हारी जातीय सफलता भी तुम्हारे हाथों अवलम्बित होगी। इसलिए उच्चातिउच्च जाति-भक्ति और देश-भक्ति का तक़ाज़ा है कि तुम लोग इन बातों को ग्रहण करो। मैं स्वयम एक पापी गृहस्थ हूं, मुझे तुमको उपदेश देने का कोई अधिकार नहीं है। इस लिखने से मेरा उद्देश्य यही है कि अनुभव की दुकान पर जो कुछ मैंने कमाया है उसको तुम्हारे हित के लिए शुद्ध भाव से तुम्हारी भेंट कर दूं। मुझे तुमसे इसलिए प्रेम है कि मेरी जाति और मेरे देश का भविष्य तुम्हारे सदाचार और शुभभाव पर ही अवलम्बित है। इसलिए मैं चाहता हूं कि तुम इन उच्च लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए अत्युत्तम सदाचार रक्खो जिससे तुम अपनी जाति और देश की उन्नति के कार्य में प्रशंसनीय भाग ले सको।*

* अनुवादित।

देश-भक्ति ।*

[लेखक—श्रीयुत लक्ष्मणसिंह क्षत्रिय, "मयंक" ।]

द्रुत विलम्बित ।

यह सुयोग मनोरम है महा
सुमंगला अभिलाष-समुद्र है ।
जननि में निज स्वत्व महत्त्व की
हम अनेक, हुए अब एक से ॥ १ ॥

पुलक-नीरव होकर प्रेम से—
श्रुत करें सब बन्धु सचेत हो—
जगत को गुरु-ज्ञान-प्रदायिनी—
जननि की कल-कीर्ति-कलामई ॥ २ ॥

हृदय- मन्दिर में नित थापि के—
परम-पावनि मूर्ति-मनोहरा,
हम रहें अनुरक्त सदैव ही—
चरण-सेवन में निज मातु के ॥ ३ ॥

यदि नहीं हमको मिलते यहां—
कुसुम नन्दन-कानन के कभी—
तब न क्यों, यह मानस-पुष्प ही—
पद-सरोज-समर्पित हो ? अहो ॥ ४ ॥

विवश हैं, हम दीन-अधीन हैं
चरण हैं, पर यों गति हीन हैं;
स्मरण ही करके शुभ-नाम का—
बस चलो उन्नति करते चलें ॥ ५ ॥

फंस रहे परतन्त्र्य-समुद्र में
अब उपाय न है कुछ भी, अतः—
शरण में चल के निज-मातु के,
स-सुख आत्मनिवेदन यों करें ॥ ६ ॥

कलुष-नाशिनि ! बुद्ध-निकन्दिनी
हम हुवे हत जीवन मातु ! यों,
कर कृपा, जननी ! जनि रुष्ट हो,
अधम हैं, तब भी तब दास हैं ॥ ७ ॥

यह शरीर बना तब- रेणु से
तब सुधारस पीकर है पला
फिर शुभे ! तुझमें मिल जायगा,
हम अभिन्न सदा तुझसे रहें ॥ ८ ॥

असहनीय हुई अब वेदना
हृदय का स्वर कूजित क्यों न हो ?
जग सुने-यह भूतल-व्यापिनी—
भुवन-भावुक-भारत-भारती ॥ ९ ॥

हृदय-रक्त बहा कर वारि-सा
सुखद-प्राण चढ़ाकर फूल-से,
विजयशङ्ख बजा कर प्रेम से ।
करहिंगे पद-पूजन मातु का ॥ १० ॥

अब त्रिंशत्-करोरि सुकण्ठ से
सुदृढ़ हो कर बन्धु ! यही कहो—
हम सशक्ति हुवे, न अशक्त हैं;
जननि के नित निर्भय-भक्त हैं ॥ ११ ॥

---

* भक्ति नौ प्रकार की मानी गई है । यथाः—१ श्रवण । २ कीर्तन । ३ वन्दन । ४ दासता । ५ स्मरण ६ आत्म-निवेदन । ७ अर्चना । ८ सख्य, तथा ९ पद सेवना निगदिता नवधा प्रभु-भक्ति है ।
(प्रिय-प्रवास)

० उपर्युक्त ३ से १० तक नौ छन्दों में इन्हें लाने की चेष्टा की गई है । "मयङ्क" ।

शिल्प तथा उद्योग-धन्धों की शिक्षा।

उद्योग-धन्धे की शिक्षा (Industrial education) का उद्देश्य शिल्पियों तथा कारीगरों को तैयार करना है। विज्ञान और सिद्धान्तों (Theories) की पढ़ाई से इसका कोई सरोकार नहीं और न वैज्ञानिक अनुसन्धान की इसमें ज़रूरत है। सिर्फ़ विज्ञान द्वारा निर्धारित और वैज्ञानिक अनुसंधान के नतीजों से ही इसका सम्बन्ध है। इस शिक्षा द्वारा उद्योग-धन्धा सम्बन्धी आधुनिक वैज्ञानिक ज्ञान-सम्पन्न ऐसे व्यवसायी तैयार किये जा सकते हैं जो वैदेशिक प्रतियोगिता से अपने उद्योग-धन्धे की रक्षा करने में समर्थ हों।

शिल्प-शिक्षा (Technical education) का उद्देश्य विज्ञान तथा उसके सिद्धान्तों से जानकारी करा देना और इन्जीनियर, मैनेजर, सुपरिन्टेन्डेन्ट, ओवरसियर आदि तैयार करना है। इसमें सिद्धान्त की तथा व्यावहारिक दोनों बातें ही सिखलाई जाती हैं। इसी प्रकार की शिक्षा हमारे इन्जीनियरिङ्ग कालेजों में दी जाती है। कुछ विभिन्नता रहने पर भी शिल्प-शिक्षा और उद्योग-धन्धों की शिक्षा में घना सम्बन्ध है। दोनों ही का उद्देश्य विद्यार्थियों को कलाकौशल में दक्ष बना देना है।

सन् १६११ ई० में सरकार ने डासन और एकिनसन साहब को इस बात की जांच करने के लिए नियुक्त किया था कि शिल्पियों तथा कारीगरों में शिल्प-शिक्षा का प्रचार किस तरह से किया जाय। १६१२ ई० में इनकी रिपोर्ट देख कर बहुतेरे लोगों ने यहांतक कहने की उदारता दिखलाई कि भारत में शिल्प-शिक्षा की बिलकुल ज़रूरत नहीं है, अतएव इसके सम्बन्ध में जो प्रयत्न होते हों, उन्हें बन्द कर देना चाहिये। कहने की आवश्यकता नहीं कि ऐसी अप्रासंगिक बातों के कहनेवाले प्रायः वे ही लोग हैं, जो भारत में उद्योग-धन्धे और शिल्प की उन्नति का होना नहीं चाहते। हम मानते हैं कि उद्योग-धन्धा की उन्नति के लिए शिक्षा के सिवा इन पांच बातों की आवश्यकता भी है—(१) भरपूर धन। (२) प्राकृतिक सहाय्य। (३) व्यवसायिक चतुराई और औद्योगिक गुण। (४) काम की ओर लोगों का झुकाव और अध्यवसाय तथा (५) जलवायु। इनके सिवा केवल शिल्प-शिक्षा प्राप्त करके ही उद्योग-धन्धों की उन्नति नहीं हो सकती और न बड़े बड़े कारख़ाने या कोठियां ही खुल सकती हैं। परन्तु शिक्षा द्वारा उपर्युक्त बातों में से कई बातें हल हो जायँगी, इसलिए शिल्प और उद्योग-धन्धों की शिक्षा आवश्यक है। इससे भारतवर्ष में उद्योग-धन्धों की बड़ी शीघ्रता से उन्नति होगी।

इस लेख में उद्योग-धन्धों तथा शिल्पोन्नति की कठिनाइयों और उनको दूर करने के उपायों का यथासाध्य विवरण दिया जायगा। इसके साथ यह भी कहा जायगा कि हमको किस प्रकार की शिक्षा की आवश्यकता है। हमारे देशवासियों को विघ्नबाधाओं और कठिनाइयों की परवाह न कर उद्योग-धन्धे की उन्नति के लिए विशेष प्रयत्न करना चाहिये। इसके लिए सरकारी सहायता की भी बड़ी ज़रूरत है। जब तक सरकार हमारे उद्योग-धन्धे की उन्नति की ओर ध्यान न देगी, तबतक इसकी उन्नति का प्रश्न योंही उलझा हुआ पड़ा रहेगा।

उद्योग-धन्धों की उन्नति के पथ में ये कठिनाइयां प्रधान हैं:—दस्तकारी तथा व्यावहारिक कामों से लोगों की घृणा। अपने हाथ से काम करने को पाप समझना। यह धारणा कि यदि हम अपने हाथ से काम करेंगे तो हमारी इज़्ज़त घट कर कुल की मान-मर्यादा में बट्टा लग जायगा। इस तरह की मूर्खता के ख्याल ही से हमारे शिल्प और उद्योग-धन्धे

चौपट हो गये और हो रहे हैं। इस कठिनाई को दूर करने के लिए कुछ उपाय सोचने के पहिले हमें यह जानना चाहिये कि लोगों में इस तरह के बुरे ख्याल जमने के कारण क्या हैं? बहुतेरे लोगों का कहना है कि यह प्राच्य के लोगों का स्वाभाविक गुण है। पर इसमें सत्यता का लेश भी नहीं। एक समय था जब पाश्चात्य देशों के लोग भी व्यावहारिक कामों और व्यवसाय वाणिज्य से घृणा करते थे। यूरोप में भी पहिले पढ़े लिखे, सिविलियन, शासक तथा सैनिक ही आदर की दृष्टि से देखे जाते थे, इतर नहीं। परन्तु प्रजासत्ताक विचारों की वृद्धि के साथ साथ वहां से यह बात जाती रही।

भारत के शिल्पी तथा कारीगर वर्णव्यवस्था और बहुत दिनों के निरंकुश शासन के कारण नीच समझे जाने लगे हैं। हिन्दुओं के राजत्वकाल में ये नीच* समझे जाते थे। मुसलमानों के हाथ में शासन की बागडोर के जाने पर शिल्पियों और कारीगरों तथा उनके पेशे उद्योग-धन्धों की ओर भी अवनति हुई। बस, फिर क्या था दूसरी २ जातियां विशेषतः जो अपनी श्रेष्ठता और उच्चता का ठेका लिये रहने की डींग हांकती हैं— उद्योग-धन्धे, दस्तकारी और व्यावहारिक कामों से घृणा करने लगीं। ऐसे सत्यानाशी विचार और आत्म-प्रधानता अब भी कई जातियों में वर्तमान है। इस घृणा को हटाने के कुछ उपाय नीचे दिये जाते हैं।

(क) सम्प्रति कुछ दिनों तक शिल्पी और कारीगर जातियों में से ही उद्योग-धन्धों की शिक्षा के लिए विद्यार्थी लिये जायँ। छात्रवृत्तियां और अन्य सहाय्य देकर वे उत्तेजित किये जायँ। परन्तु दूसरी जातियों के लड़के लेने में भी अत्यन्त कड़ाई न करनी चाहिये। यदि वे इस प्रकार की शिक्षा प्राप्त करने के इच्छुक हों तो वे भी भरती किये जायँ, परन्तु भरती करने के पहिले उन्हें समझा दिया जाय कि तुमको इन कारीगरों और शिल्पियों के लड़कों के साथ काम करना पड़ेगा और तुम्हारे लिए कोई विशेष रियायत न होगी।

(ख) शिल्प और उद्योग-धन्धों के सिखलाने वाले शिक्षकों को शिल्पियों तथा कारीगरों के लड़कों को आदर प्रदर्शित करने में स्वयं उदाहरण बनना चाहिये। हाथरस की मिल के सत्त्वाधिकारियों के ख्याल इस विषय में बड़े विचित्र हैं। जब डासन और दक्खिनसन साहब ने रुड़की कालेज की शिल्प-श्रेणियों (Technical class) में लड़कों को भेजने के लिए कहा (जो इन्हीं लोगों की प्रार्थना पर खोली गई थीं) तो उन लोगों ने जवाब दिया कि हम अपने लड़कों को वहां नहीं भेज सकते, क्योंकि उनको वहां साधारण मज़दूरों के साथ काम करना पड़ेगा। ऐसे बुरे ख्यालातों को हटाने का सहज उपाय यह है कि हमारे नायक (leader) उनका मोह तोड़ने के लिए अपने लड़कों को शिल्प और उद्योग-धन्धों के विद्यालयों में भेजें।

(ग) उच्च-श्रेणियों के उन लड़कों को, जो उद्योग-धन्धों की शिक्षा प्राप्त करें, वैसा ही सम्मान मिले जैसा अन्य पढ़ेलिखे लोगों को मिलता है। सरकार को भी ऐसे लोगों को प्रोत्साहन देना चाहिये, नहीं तो उद्योग धन्धों की उन्नति में बड़ी रुकावट पड़ेगी।

(घ) हाईस्कूलों और कालेजों की साधारण शिक्षा की प्रधानता को धीरे धीरे घटाना और शिल्प तथा उद्योग-धन्धों की शिक्षा को प्रोत्साहन देना भी अच्छा होगा। अन्त में साधारण और उद्योग-धन्धों की शिक्षा के व्यय को बराबर कर देने की आवश्यकता है। भारत जैसे ग़रीब और दुर्भिक्षपीड़ित देश में साधारण शिक्षा

---

* हमारा यह विश्वास नहीं, उस समय को नीच की व्याख्या और आज दिन की व्याख्या में भी ज़मीन आसमान का फ़र्क़ है। सं० म०।

की तरह उद्योग-धन्धों की शिक्षा भी आवश्यक है। समृद्धिशाली इङ्गलैंड में आक्सफ़र्ड और केम्ब्रिज जैसे साहित्यिक विश्वविद्यालयों के अतिरिक्त उद्योग-धन्धे की शिक्षा के लिए कितनी ही संस्थाएँ और कोई ३०० से अधिक स्कूल हैं। परन्तु भारतवर्ष में इनकी संख्या कितनी है? केम्ब्रिज तथा आक्सफ़र्ड में जैसी शिक्षा दी जाती है, वह इङ्गलैंड के लिए पर्याप्त हो सकती है, परन्तु भारत के लिए नहीं। इङ्गलैंड में दुर्भिक्ष नहीं पड़ते। वहाँ के अधिकांश लोग जीवन की मामूली ज़रूरतों से प्रायः परे रहते हैं। उसकी अधिकांश सन्तानों को विशाल साम्राज्य का प्रबन्ध करने के लिए सिर्फ़ राज-नीति और राजकर्म की शिक्षा ही देनी पड़ती है। परन्तु भारत में ऐसे अवसर कम ही प्राप्त होते हैं, यहाँ के लोगों को अच्छे तौरतरीक़े, सामाजिक नियम और गेंद, क्रिकेट, टेनिस, पोलो आदि खेलों के सीखने की अपेक्षा अपनी क्षुत्पिपासापीड़ित आत्मा को तुष्ट करने के लिए मामूली आवश्यकताओं की ही अधिक फ़िक्र है। अतएव हमारे यहाँ उस शिक्षा की ज़रूरत है, जो उदरपूर्ति के प्रश्न को हल कर सके। दुर्भाग्यवश हमारे शिक्षा-विभाग के विधाता ऐसे ही लोग होते हैं, जिन्होंने अपनी शिक्षा आक्सफ़र्ड अथवा केम्ब्रिज में पाई है। इंडियन सिविल सर्विस के लोग भी इन्हीं स्थानों में शिक्षा प्राप्त कर यहाँ आते हैं। शिक्षा-पद्धति का निर्धारण भी इन्हीं के हाथों में रहता है। इससे इसकी नीति तथा आदर्श के निर्माण में इन लोगों का बहुत प्रभाव पड़ता है और यह हमारे लिए हितकर नहीं होता।

उद्योग-धन्धों की उन्नति की राह में मूलधन की कठिनाई भी है। भारतीयों की औसत आय बहुत कम है। फिर भी, जो थोड़ी बचत होती है, वह श्राद्ध, विवाह आदि में फ़ज़ूलखर्ची के कारण व्यय हो जाती है। सम्मिलित कम्पनियों में रुपये ल..ने के लाभ से अपरिचित होने के कारण लोग खानगी कोठियों में अपनी जमा रखते हैं। इससे सिर्फ़ सेठ साहूकारों और महाजनों के यहाँ ही रुपया रहता है। इनमें कुछ महाजन बड़े धनी होते हैं। इन्हीं को देखकर बहुतेरे लोग यह कह बैठते हैं कि यहाँ मूलधन की कमी नहीं है। ये महाजन, बेचारे गरीबों को सैकड़े १२) से २४) सालाना सूद पर ऋण देकर इन बेचारों का रुधिर चूस रुपये से अपना घर भर लेते हैं। उद्योग-धन्धे का कोई भी कार-ख़ाना मुनाफ़े में इतना धन नहीं दे सकता। इससे कोई महाजन सूद का लाभ छोड़कर उद्योग-धन्धों में रुपये लगाने को तैयार नहीं होता। हाल में कुछ नवीन स्थापित बैंकों तथा कोठियों के दिवाले निकल जाने से मूलधन की समस्या और भी जटिल हो गई है।

इस कठिनाई को दूर करने में 'सहयोग समितियाँ' बहुत उपयोगी हो सकती हैं। इसके सिवा सरकार को नमूने के तौर पर कोठियाँ, कम्पनियाँ और कारख़ाने खोलकर उनको चलाने के बाद उन्हें लोगों के हवाले कर देना चाहिये। इससे यह लाभ होगा कि लोग कम्पनियों के चलाने के तरीक़े जान जायँगे। इसके विषय में कलकत्ते की म्यूनिसिपैलिटी के चेयरमैन मि० मुकुर्जी की राय है कि सरकार उपयोगी कलाओं के सीखने की छोटी २ व्यवसायिक कोठियाँ खोले। यदि इसके साथ शिल्प-शिक्षा का प्रबन्ध हो, तो भारतवासी औद्योगिक कामों के खोलने में समर्थ हो जायँगे। शिल्प-शिक्षा के प्रचारार्थ सरकार के लिए यह पहिला कर्तव्य होना चाहिये।

तीसरी कठिनाई शिल्प-संबंधी उन्नति की अनभिज्ञता है। लोग यह नहीं जानते कि संसार के दूसरे देशों ने उद्योग-धन्धों और शिल्प में कितनी उन्नति कर ली है। ऐसे भी कुछ लोग हैं जो यह नहीं जानते कि आधुनिक मेशीन, कलकारख़ाने आदि किस चिड़िया का नाम है। बहुतेरे शिक्षित भी यह नहीं जानते कि बीसवीं

शताब्दी में अन्य देशों ने कैसे २ नये आविष्कार किये हैं। उद्योग-धन्धों की उन्नति के लिए इन सब बातों के ज्ञान की हमको अत्यन्त आवश्यकता है। यह जानकारी तबतक नहीं हो सकती जब तक लोग इन मशीनों और कलों को न देखें। यूरोप के देशों और कलकत्ता, बम्बई, कानपुर आदि नगरों के कारखानों को देखने से इस विषय में बड़ा लाभ हो सकता है। शिल्प-स्कूलों और कालेजों के विद्यार्थियों को किन्डरगार्टन, अजायबघर और प्रदर्शिनियों को दिखलाने के अतिरिक्त बड़े बड़े कारखाने दिखलाने चाहियें। यदि कोई शिल्प-शिक्षक उनके साथ मेशीन और कल-पुर्ज़ों का हाल समझा देने के लिए जाय तो और भी लाभ हो सकता है।

चौथी कठिनाई वैदेशिक प्रतियोगिता की है। जब कि हिन्दुस्तान खुर्राटे ले रहा है, दूसरे देशों ने उद्योग-धन्धों में बिजली कीसी उन्नति करली है। इससे अन्य देशों के शिल्प की जड़ बड़ी मज़बूती से बँध गई है। इससे प्रत्येक औद्योगिक काम में वैदेशिक प्रतियोगिता का सामना करने में बड़ी असुविधा तथा हानि उठानी पड़ती है। बहुतेरे लोग इसीको शिल्पोन्नति का प्रधान बाधक समझकर इसीको प्रधानता दे बैठते हैं। परन्तु इसके सिवा और भी बहुत से कारण हैं, जिनका विचार होना चाहिये।

पाँचवीं कठिनाई जलवायु की है। यहां की आबहवा में यह असर है कि लोगों को वह स्वभावतः शिथिल और चिन्तित बना देती है। सम्भवतः असली शिक्षा से इसका बहुत कुछ सुधार हो सकता है।

छठीं कठिनाई शिल्प-शिक्षा प्राप्त लोगों को कामों के मिलने की कमी है। इनके लिए सिविल इञ्जीनियरों के पद छोड़ कर अन्य पद बहुत ही कम हैं। इनका वेतन भी बहुत कम है। दो तीन वर्ष की शिल्प-शिक्षा के बाद यदि २०) या ४०) रुपये मिलें तो ऐसी शिक्षा से क्या लाभ हो सकता है? २०) या ३०) रु० तो बिना शिल्प-शिक्षा के राज, मिस्त्री, बढ़ई, लोहार आदि भी कमा लेते हैं; फिर कोई शिल्प-शिक्षा प्राप्त करने में समय तथा धन क्यों लगाने जाय? तात्पर्य यह कि जबतक शिल्प-शिक्षा प्राप्त करने से कोई विशेष लाभ की सम्भावना नहीं तबतक क्या शिल्पी, क्या कारीगर कोई भी इसको प्राप्त करने के लिए तैयार न होंगे।

शिल्प-शिक्षा प्राप्त लोगों के लिए कारखानों में अच्छी जगहें हो सकती हैं परन्तु प्रथमतः हमारे यहां ऐसे कारखाने कम हैं और जो हैं भी वे विदेशियों के हाथ में हैं। इससे वहां की उच्च जगहों पर यूरोपियन या यूरेशियनों की चाह अधिक होती है। भारतीयों को कुली या मिस्त्रियों के पद छोड़ कर और कोई पद नहीं मिलते। उपर्युक्त बातों को देखने से पता चलता है कि शिल्प-शिक्षा प्राप्त सभी लोगों को नौकरी मिलना असम्भव है। इस से इनके लिए 'काम की कमी' अवश्य है। इसको दूर करने के उपाय पीछे लिखे जायँगे।

हमारी शिल्पोन्नति की राह में उपर्युक्त कठिनाइयां हैं। अब हमें विचारना है कि हमको किस प्रकार की शिल्प-शिक्षा आवश्यक है और वह कैसे प्राप्त हो सकती है। उसके लिए कैसे और किन स्थानों में शिल्प-विद्यालय खोलने चाहियें।

पाश्चात्य देश शिल्प और उद्योग-धन्धों के आधुनिक ज्ञान में बहुत बढ़ेचढ़े हैं। इन्हीं देशों से हमें शिल्प-शिक्षा लेनी चाहिये। इसके लिए सब लोग यूरोप नहीं जा सकते; इससे इसी देश में इसका प्रबन्ध करना पड़ेगा। शिक्षा देने के लिए शिल्प-विद्यालय और कालेजों में ऐसे शिक्षक रक्खे जायँ, जो वैज्ञानिक शिल्प, उसके ज्ञान और तत्व में पारंगत हों। यूरोपियनों को शिक्षक नियुक्त करने से उतना लाभ नहीं है कारण इन्हें बड़ी बड़ी तनख्वाहें देनी पड़ेंगी। भारत

कैसे दीन देश के लिए आर्थिक दृष्टि से यह लाभदायक नहीं । इसके सिवा हमारे उद्योग-धन्धों की उन्नति से ये अपनी हानि भी समझेंगे। ये लोग देशप्रेम से नहीं वरन् वेतन पाने की आशा से ही हमको शिक्षा देंगे। इसलिए योग्य तथा होनहार भारतीय युवक छात्रवृत्ति देकर शिल्प-शिक्षा के लिए यूरोप भेजे और वहां से आने पर शिल्प-विद्यालयों में अध्यापक नियुक्त किये जायँ। आर्थिक दृष्टि से यही लाभदायी है। ऐसे लोग ही अपने देश की शिल्पोन्नति का प्रयत्न करेंगे। इस सम्बन्ध में हम लोगों को जापान से शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये। हमको इसका विचार करना चाहिये कि जापान ने दूसरे देशों से शिल्प-शिक्षा प्राप्त कर कैसी उन्नति की है। हज़ारों जापानियों ने विदेश में शिल्प-शिक्षा पाई है । इन्हीं लोगों से जापानी कलाकौशल की उन्नति बात की बात में हुई है। ऐसी अवस्था में भारत के कितने लोग दूसरे देशों में कलाकौशल सीख आये या सम्प्रति वहां सीख रहे हैं ? यह सच है कि कुछ वर्षों से कुछ भारतीय शिल्प-शिक्षा के लिए विदेश जाने लगे हैं परन्तु भारत की आवश्यकता को देखते हुए उनकी संख्या बहुत ही कम है । इसपर भी विशेषता यह है कि अपनी उपयोगिता दिखलाने के पहिले ही इन बेचारों पर घृणा और हतोत्साह की वर्षा होने लगी है। कुछ लोगों का कहना है कि इनसे कुछ भी नहीं हो सकता । अपनी रोटी के डर से विदेशी कारख़ानों के कुछ मालिकों ने भी इनके विरुद्ध आवाज़ उठाई है। कुछ भारतीय कारख़ानेवालों ने भी ऐसी ही उदारता दिखलाई है। उनका कहना है कि हम अपने कारख़ानों की ऊँची जगहें सुयोग्य यूरोपियनों को ही देंगे, कारण इनसे हमको लाभ अधिक होता है। इनके कथन की सत्यता का निर्णय पाठक ही करें। ऐसे अदूरदर्शी स्वार्थलोलुपों को स्मरण रखना चाहिये कि जब तक वे अपने पैर पर खड़े होना न सीखें तब तक देश और देशवासियों का कल्याण नहीं हो सकता । इनको आत्मनिर्भरता का अर्थ जानना चाहिये जिससे वे अपनी भूल स्वयं सुधार सकें।

पहिले ही कहा जा चुका है कि शिल्प-शिक्षा प्राप्त लोगों के लिए कामों की कमी है। नौकरी के द्वार इनके लिए प्रायः बन्द हो हैं । इसलिए यहां सम्प्रति ऐसी शिक्षा आवश्यक है कि शिक्षार्थी स्वतन्त्र उद्योग-धन्धे कर लाभ उठा सकें और इस तरह उन्हें नौकरी के पीछे न दौड़ना पड़े । परन्तु ऐसी शिक्षा के लिए Victoria Technical Institute के सिवा और कोई संस्था नहीं है । पूना, शिवपुर, मद्रास और रुड़की के इंजीनियरिङ्ग कालेजों में केवल सिविल इंजीनियरिङ्ग (civil engineering) की शिक्षा दी जाती है। इस प्रकार की शिक्षा द्वारा P. W. D. विभाग के निम्नश्रेणी के अफ़सर तैयार किये जाते हैं । बड़ौदे के कलाभवन के विषय में भी यही बात कही जा सकती है। इसलिए यहां शिल्प-शिक्षा के ऐसे विद्यालयों की आवश्यकता है, जिनमें कारीगरों और शिल्पियों के लड़के आधुनिक शिल्प शिक्षा और नई वैज्ञानिक रीतियों से अभिज्ञ होकर अपने पैतृक पेशों को नये ढंग से चला कर लाभ उठा सकें। इससे 'काम की कमी' और मूलधनवाली कठिनाई के प्रश्न आसानी से हल हो जायँगे । आरम्भ में कुछ दिनों तक शिक्षार्थियों के लिए छात्रवृत्तियों का प्रबन्ध आवश्यक है क्योंकि इसके सिवा कारीगर और शिल्पी अपने ख़र्च से लड़कों को बाहर नहीं भेज सकते । इसके बाद इन नवशिक्षितों को लाभ उठाते देखकर लोग स्वयं अपने ख़र्च से लड़कों को शिल्प-शिक्षा के लिए भेजने लगेंगे।

कुछ लोगों का कहना है कि इस देश में शिल्पी और कारीगरों की संख्या बहुत है, इससे अन्य लोगों को शिल्प-शिक्षा देकर इनकी संख्या

बढ़ाने से कोई लाभ नहीं। ऐसा समझना उनकी भूल है। वर्तमान शिक्षा-पद्धति के प्रभाव से हमारे कारीगर और शिल्पी अपने पेशों को छोड़कर बाबूगीरी के लिए आतुर हो रहे हैं, कारण उनकी समझ में उनके पेशों में इज्ज़त नहीं। इसके सिवा पुरानी रीतियों पर अपने पेशे को चलाने के कारण वर्तमान प्रतियोगिता के सामने वे अधिक धन भी उपार्जन नहीं कर सकते। इसलिए अन्य लोगों को आधुनिक शिल्प-शिक्षा प्राप्त कर नये ढंग के उद्योग-धन्धों से लाभ उठाने की आवश्यकता है। इससे हमारे शिल्पी और कारीगर समझ जायँगे कि हमारे पेशे को भी लोग इज्ज़त की निगाह से देखते हैं और उनमें लाभ भी है। इसलिए उद्योगधन्धों की उन्नति की दृष्टि से अन्य लोगों को शिल्प-शिक्षा प्राप्त करने की बड़ी आवश्यकता है।

अन्त में यह भी विचारणीय है कि उद्योग धन्धे और शिल्प के विद्यालय किन स्थानों में हों? इसकी आवश्यकता नहीं, कि ऐसे विद्यालय बड़े २ कारख़ानेवाले प्रधान २ नगरों ही में खोले जायँ। इसके बदले वे ऐसे स्थानों में खोले जायँ, जहां अधिक विद्यार्थी मिल सकें। शिक्षार्थियों के वासस्थान और स्कूल की दूरी पर भी बहुत ध्यान रखना चाहिये।

यदि ऊपर कही हुई बातों पर ध्यान रख कर भारत में शिल्प और उद्योगधन्धों की शिक्षा का प्रबन्ध किया जाय तो शीघ्र ही उन्नति हो सकती है। "कार्यी।"

होली का हर्ष।

[लेखक—श्रीयुत जगन्नाथ प्रसाद मिश्र।]

कभी पेट भर अन्न न मिलता,
रहता जहां सदा दुष्काल।
हैज़ा, प्लेग विपद के मारे,
लोग जहां के हैं बेहाल॥
दीन हीन कंगाल हुए हैं,
रहा न कुछ उत्साह का ख्याल।
कहो हाय क्योंकर होली का,
हर्ष मनावें हम सब आज॥ १॥

लुप्त हुए उद्योग शिल्प,
व्यापार आदि कुछ रहा न काम।
बस दिया वैभव को खोकर,
उदर हेतु बन रहे गुलाम॥
दुःख शोक चिन्ता से दुर्बल,
नहीं निकलती है आवाज़।
कहो हाय क्योंकर होली का,
हर्ष मनावें हम सब आज॥ २॥

रक्त, पसीना बनकर बहता,
सहते घोर घर्म बरसात।
तो भी पेट नहीं भरता हा,
दुख से कटता है दिनरात॥
ऋण से सदा दबे रहते हैं,
दिन दूना बढ़ता है ब्याज।
कहो हाय क्योंकर होली का,
हर्ष मनावें हम सब आज॥ ३॥

वही आज हो रहा निरादृत,
जो था कभी विश्व-सिरताज।
कहो हाय क्योंकर होली का,
हर्ष मनावें हम सब आज॥ ४॥

सरस छटा पूर्ण चहुंदिशि में,
अतिशय शोभित है ऋतुराज।
भेदभाव को सभी भूलकर,
गले गले मिल जाओ आज॥
पारस्परिक द्वेष को तज कर,
गाओ देश-प्रेम का राग।
रोना तो है लगा जन्म भर,
आओ खुलकर खेलें फाग॥ ५॥

एक आवश्यक बात ।

इस समय कुछ लोगों में यह धारणा फैली हुई है कि 'तृष्णा, क्रोध, काम और मोह' प्रभृति विकारों को दबाना चाहिये । इनका परिणाम ख़राब निकलता है । जो लोग इन 'मनोविकारों' में फँस जाते हैं, उनको आयुष्य प्राप्त हो ही नहीं सकता । इसी प्रकार की चर्चा 'उपदेशक' श्रोताओं से और 'पुरोहित' यजमानों से करता है । मास्टर भी क्लास में यही कहता है कि 'क्रोध कबहुं मत कीजिये, क्रोध पाप को मूल'......।

आश्चर्य तो यह है कि उपदेशक भी औरंगज़ेब और भरत की समानता करते समय क्रोधित हो जाता है और व्याख्यान देते समय लाल पीला होकर मेज़ को तोड़ने और हाथ पटकने लगता है । 'पुरोहितजी' भी दुर्गाजी की महिमा गाते समय बिना दाँत पीसे नहीं रहते । चाहे जो हो मगर जितनी उपेक्षा हम इन (काम, क्रोध, मोह) से करते हैं, सचमुच वह उचित है । इस सम्बन्ध में हम पूर्व रूप से विचार के काम से शुरू हैं ।

आजकल पिता अपने पुत्र से कहता है, 'बेटा ! किसी से लड़ाई झगड़ा मत करो । चार बात दूसरों की सह कर घर चले आओ, 'ज़माना बड़ा बुरा है' । क्यों ज़माना बुरा है—इसलिए कि अदालत में जाना पड़ेगा । दो चार झूठे गवाहों के कारण 'एक थप्पड़' मार देने पर—कम से कम दफ़ा ३२५ में ६ महीने की सज़ा हो जायगी । बेटा जेल में ठूंसा जायगा । बाप उसके छूटने के लिए मारा फिरेगा । यही वजह है कि बाप कहता है बेटा ! ज़माना देखकर चलो ।

अधिक दिन नहीं हुए, अभी कल की बात है हमारे पिता कहा करते थे बेटा ! अगर मार खाकर आओगे तो भोजन नहीं मिलेगा । हाँ, दुश्मन को मारकर आओगे तब जो कहोगे सो मँगा देंगे ....। कुन्ती ने भी भीम से ऐसा ही कहा था । बात क्या थी । हमारे बाबा, दो आदमियों की ताक़त रखते थे । उनके समय में तलवार-बन्दूक आदि शस्त्र सब के पास थे । अखाड़ा खुदा हुआ रहता था । भैंस और गाय का दूध घर पर काफ़ी रहता था । वे कसरत करते और खूब खाते थे । न 'प्रेस ऐक्ट' की चिन्ता थी और न 'भारत-रक्षा' कानून का भय ही था । जो ज़रा भी बेक़ायदा चलते उनको "चैतन्यचूर्ण" दे दे देते थे । एक बार हमारे गाँव में बड़ा मज़बूत था । उसने यह कह रक्खा था कि उसको कोई पकड़ ले तो हम उसी दिन से चोरी छोड़ दें । यह जाट का "भर" था । लगातार कर वह चोरी करता था । एक दिन वह पकड़ा गया और खूब पीट कर छोड़ दिया गया । इसके बाद से वह अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार चोरी छोड़ कर खेती करने लगा । आज दिन उसके बालबच्चे अच्छी तरह खेती कर रहे हैं । यदि इसी तरह से चोरी डाका, बदमाशी और भी अन्य बुरी बातें छुड़ाने के उदाहरण गाँवों में खोजे जायँ तो एक नहीं, सैकड़ों मिलेंगे । अब भी अत्याचारियों को कहीं कहीं इस प्रकार का दंड मिल जाता है, परन्तु लुके छिपे, क्योंकि "ज़माना बुरा" है ।

ने एक क्रोध के लिए ज़ोर दिया है । क्रोध के कारण एक जाति में संगठन होता है । जब यह निश्चय हो जायगा कि इस जाति में या हिन्दू जाति में अमुक बात पर हिन्दू क्रोध करते हैं, तब उसी दिन, सब हिन्दू एक हो जायँगे और प्रतिपक्षी की हिम्मत नहीं पड़ेगी कि वह सीधे मार्ग पर चलने के बजाय ऊंटपटांग मार्ग पर चले । पर इस समय ऐसी बात का कहना बुरा इसलिए समझा जाता कि हम लोग

बिना मतलब के क्रोध करते हैं; अपने दोस्त से लड़ते हैं, माता पिता से क्रोध करते हैं। जहां क्रोध करना चाहिये, वहां हां हुज़ूर, खुशामद करते हैं। यही वजह है कि क्रोध का असली स्वरूप भी अब बाज़ हो बाज़ लोगों में रह गया है। असली क्रोध, शेर को सामने देखकर डरता नहीं, और है तो स्वप्न सी बात, पर शेर भी असली क्रोध को देख कर ठिठक जा सकता है।

जो बात; बारबार दबाने पर भी प्रकट हो जाय, वह 'स्वाभाविक' है। यदि किसी की स्त्री के साथ कोई अत्याचार करना चाहे तो—वज्र अभ्यासी भी क्रोध करेगा, यदि वह क्रोध नहीं करता तो वह नपुंसक, निर्बल या मृतआत्मा है। बहुतेरे लोग अपनी स्त्री से चिढ़कर उससे बोलना छोड़ देते हैं। भोजन के समय थाली और लोटा तोड़ डालते हैं। हम ऐसे नामर्द क्रोधियों को सिवाय नीच के और कुछ नहीं समझते। एक बहादुर क्रोधी का हाल लिखते हैं। एक मोटरवाला बड़ा आदमी मोटर पर चढ़ा चला जाता था। उसके ड्राइवर की असावधानी से एक बुढ़िया मोटर के धक्के से ज़मीन पर गिर पड़ी। बाबू साहब मोटर को खड़ी करके उतर पड़े और बुढ़िया को दो चार थप्पड़ लगा कर बुराभला कहने लगे। चौमुहानी के कान्स्टेबिल को बुलाकर वे उसको सुपुर्द करने लगे। उन्होंने कहा कि देख कर रास्ता नहीं चलती वगैरः, वगैरः। इतने ही में एक तमाशबीन आदमी ने उक्त करोड़पती के पास पहुंचकर उसका हाथ पकड़ लिया और क्रोध में आकर कहा, छोड़ दो बुढ़िया को, तुमको शरम नहीं आती कि एक गरीब को, जो निर्दोष है और जिसके तुम ऋणी हो, सताते हो? दो चार सीधी टेढ़ी बातें बाज़ार में सुनकर उक्त करोड़पति का दिमाग ठिकाने पर आया और वे माफ़ी माँगने लगे। अन्त में बुढ़िया को उस आदमी ने कुछ दिला भी दिया। ऐसे मौक़े पर क्रोध करने को कौन बुरा बतलावेगा। हां, हो सकता है कि वह बड़ा आदमी, उस आदमी को नाजायज़ तरीके से सज़ा दिला सके। इसीलिए तो कहता हूं कि ज़माना बुरा है, क्रोध बुरा नहीं।

समष्टि के लिए क्रोध करना महापुण्य है। स्वार्थ के लिए जिनको क्रोध आता है, वे महा निर्बल हैं। बहुत से लोग ऐसे हैं कि बड़े आदमियों के कारण दुर्बलों को दुःख देते और अपनी भयंकरता का परिचय देते हैं। जिनको हम आजकल क्रोधी कहते हैं वे अधिकांश निर्बल हैं। कौन ऐसा क्रोधी है, जो जाति के लिए क्रोध करे? कौन ऐसा लालची है जो देश को लेने की लालच करे।

आगे के लेख में हम उन वैदिक प्रार्थनाओं को लिखेंगे जिनमें साफ़ साफ़ क्रोध और कामना के लिए प्रार्थना की गई है और ईश्वर को स्वयं क्रोधमय बतलाया गया। एक भक्त तो यहां तक स्तुति करता है कि हे भगवन! मुझे ऐसे स्वर्ग की प्राप्ति कराइये, जहां कामनाएं संकुचित न हों।

विद्वानों को इस ओर ध्यान देना चाहिये।

"ग्रामीण"।

हमारा भारत।

[लेखक—श्रीयुत शोभाराम धेनुसेवक ।]

हम भारत के प्यारे, प्यारा
"भारतवर्ष हमारा है"।
तन धन प्राण हमारा जो कुछ
"भारतवर्ष तुम्हारा है"॥
सत्य सभ्यता ज्ञान गुणाकर,
रत्नाकर रमणीय तुम्हीं।
विद्या बल, वैभव विकाश के
आदि-केन्द्र कमनीय तुम्हीं॥ १॥

पड़ा हुआ अज्ञान तिमिर में,
सकल विश्व जब सोता था।
"तत्वमसी" "ब्रह्मास्मि" भाव का
पाठ तुम्हीं में होता था॥
विस्मयपूर्ण अनेकन आविष्कार
तुम्हीं में नित्य नवीन।
अहा हुए! विज्ञानवाद में,
थे भारत तुम ऐक्य प्रवीन॥ २॥

उचित प्रशंसा योग्य योग्यता
पूर्ण जहां जो कार्य हुए।
और नहीं! उनके उत्पादक
भारत के ही आर्य हुए॥
आविष्कार विलोक आधुनिक,
होता है आश्चर्य प्रकाश
कहता है इतिहास इन्हींका,
"भारत में हो चुका विकाश"॥३॥

ऐसी कौन समस्या? जिसको
हल भारत ने किया न हो।
परिणत करके उसे कार्य में,
यश भारत ने लिया न हो?
सार्थशून्य विज्ञानवेत्ता,
उपदेशक लेखक विद्वान्।
हुए कहां? कविरत्न दार्शनिक,
दाता भारतवर्ष समान? ४॥

धर्म-प्रचारक गौतमबुध से,
व्यासदेव से इतिहासज्ञ।
प्रतिभाशाली शंकर स्वामी से,
कणाद ऋषि से तत्वज्ञ॥
हरिश्चन्द्र अवधेश युधिष्ठिर,
सत्य-प्राण भारत के पूत।
मान्य रहेंगे मनुषमात्र के,
निर्मल यश जबतक उद्भूत॥ ५॥

पर हितकारी शिवि दधीच से,
भीष्मदेव से इन्द्रीजीत।
प्रेम सहित गाता है जिनका,
जगत आज भी गौरव गीत॥
धर्मध्वज निरपेक्ष भरत से,
भ्रातु-भक्त लक्ष्मण से वीर।
कहो हुए हैं कौन देश में,
अर्जुन से धन्वी गम्भीर? ६॥

सावित्री, सीता, दमयन्ती,
कुन्ती भारत देवी थीं।
जग-रमणी क्या, स्वर्ग सुन्दरी,
भी जिनकी पदसेवी थीं?
जिनका लख लावण्य अलौकिक,
रवि का भी रथ रुकता था।
जिनके सत पर मनुज कथा क्या?
"यम का भी शिर झुकता था"॥७॥

शक्ति शिल्प आदर्श सभ्यता,
सब में ऊँचा आसन था।
जग में कौन देश था? जिस पर
ना भारत का शासन था?
भारतवर्ष विश्वविद्यालय,
बना हुआ था जगके हेतु।
जग में ही क्यों? सुरपुर तक में,
फहराती थी कीरत-केतु॥ ८॥

शिक्षापूर्ण सभ्यता जग को,
भारत तुम्हीं सिखाते थे।
फैलाकर आलोक लोक को,
सत्पथ तुम्हीं दिखाते थे॥

इसी कथन की पूर्ण सत्यता,
प्रकृति भी बतलाती है ।
भानुप्रभा हो उदित पूर्व से,
अब भी पश्चिम जाती है ॥ ९ ॥

कल्पित जड़-विज्ञान आज का,
जग में सभ्य कहाता है ।
वह भी होकर मुग्ध देख लो,
"भारत के गुण गाता है" ॥
वसुन्धरा पर उपकारों का,
अब तक होता है सत्कार ।
चिरकृतज्ञ भारत का तब तक,
बना रहेगा सब संसार ॥ १० ॥

प्रकृति का प्रियधाम, प्रभो
परमात्मा जहां अवतरते हैं ।
करते हैं क्रीड़ा लीलामय,
सुख से जहां विचरते हैं ॥
पुरुषों का क्या परमातम का,
भी जो प्रियतम प्यारा है ।
"शोभा" यश सम्पन्न देश सो,
"भारतवर्ष हमारा है" ॥ ११ ॥

राष्ट्र-निर्माण ।

[लेखक—श्रीयुत रामदुलारे अवस्थी ।]

प्राचीन इटली की तरह भारत के विषय में भी प्रायः कहा जाता है कि "भारतवर्ष केवल एक भौगोलिक वाक्य है ।" परन्तु जो इटली इम्पीरियल रोम के दिनों में भी कभी एक राष्ट्र न था वह स्मार्तकाल ही में एक राष्ट्र हो गया है । परमात्मन् ! भारत के बालक अपनी जवानी की स्निग्ध और प्रभायुक्त आंखों के सामने ही संयुक्त भारत को एक राष्ट्र होते हुए देखने के लिए जीवित हैं । जर्मनी के लिए भी इन्हीं शब्दों का प्रयोग किया जाता था । परन्तु वही विभक्त और आपस में लड़नेवाले राज्य-समूहों का जर्मनी आज एक राष्ट्र बन गया है । इसलिए जब हम भारतीय राष्ट्र के विषय में ऐसी ही आशा और विश्वास करते हैं तो यह क्यों ख्याल किया जाय कि हम लोग काल्पनिक दृष्टि से मानसिक सृष्टि रचकर केवल मनमोदक ही उड़ा रहे हैं ।

किसी राष्ट्र के जीवित रहने के लिए किन २ बातों की आवश्यकता है ? पहिले तो सुगम और रमणीय क्षेत्र की, दूसरे अपने भूतकाल पर अभिमान और तीसरे अपने भविष्य पर आशा करने की । क्या यह बातें भारत में संभव हैं ? यदि हैं, तो राष्ट्र निर्माण का कार्य भी संभव है और उसकी साधन-क्रियाएँ भी सोची जा सकती हैं ।

(१) सब स्वीकार करेंगे कि पहिली बात भारत में मौजूद है । भारतवर्ष एक बृहद् प्रायद्वीप है । यह तीन ओर से समुद्र द्वारा और चौथी ओर पर्वतामाला से सुरक्षित है। इसलिए यह सुगमता से दुर्गम्य और दुर्जय बनाया जा सकता है । कोई मानुषी शक्ति सुदृढ़ हिमालय की चोटियों की भांति चहार दीवारी बनाने को समर्थ नहीं है । उसके दर्रे अगणित शत्र-सेना को कुछ अच्छी तोपों द्वारा रोक सकते हैं । पुराने ज़माने में इन्हीं दर्रों से आक्रमण कर शत्रु-सेनाएँ भारत में घुस आई थीं। परन्तु उस समय उनका प्रतिरोध कर अपनी रक्षा करने के लिए कोई संघटित राष्ट्र नहीं था। इसके अतिरिक्त विदेशियों ने भारत को अपनी शक्ति से नहीं, पर देश-द्रोही भारतीयों की सहायता से ही परास्त किया है ।

(२) अपने भूतकाल पर अभिमान—आपस में लड़ने भिड़नेवाली जातियों के होते हुए भी भारत में क्या यह संभव है ? प्राचीनकाल में क्या प्रान्तिक लड़ाइयां नहीं होती थीं ? मरहटों और राजपूतों में, पंजाबियों और सिक्खों में, बंगालियों और हिन्दुस्तानियों में, तथा उत्तरी और दक्षिणी भारत में क्या परस्पर युद्ध नहीं होता रहा ? परन्तु क्या ये लड़ाइयां स्कॉटों और नेपोलियनों तथा हनोवर और प्रशा के अधिवासियों में होनेवाली लड़ाइयों से निकृष्ट हैं ? समस्त जातियां, राष्ट्र-निर्माण के समय संग्रामरूपी भट्टी में झोंकी और लड़ाई की कील पर हथौड़े से ठोकी जाती हैं। इन्हीं से राष्ट्रनिर्माण होता है। जब एक राष्ट्र का राष्ट्रीयत्व भाव जागृत होता है, उस समय राष्ट्र-निर्माण करनेवाली संयुक्त-जनता, हर एक दल के योद्धाओं के वीर चरित्रों से स्वयं गर्वान्वित होती है। इस अभिमान को उत्पन्न करना एक क्रिया है। इसपर हम अभी आ रहे हैं। क्या विशेष अधिकारसम्पन्न बृहत् हिन्दू जनता भारत की स्वत्वभागिनी न समझी जाय और पुराने ज़माने के आक्रामकगण भावी राष्ट्र में सम्मिलित न किये जायँ ? क्यों नहीं ? क्या नार्मनों ने सैक्सनों को नहीं जीता ? क्या बरगैण्डियन और गैस्कन, फ्रांस के उत्तरी और मध्यभाग से सर्वदा लड़ते नहीं रहे ? भारत के इतिहास में मुसलमानों के सम्बन्ध में बहुत से अध्याय लिखे गये हैं। उन्होंने लाखों हिन्दुओं को अपनी जाति में खपा लिया है। अब भारत-भूमि ही उनकी निवास भूमि हो गई है। इसलिए चाहे उनका संबंध मुगलों, अफ़गानों या तुर्कों से रहा हो, अब वे भारतवासी हो हैं। ऐसे ही भिन्न भिन्न तत्वों से राष्ट्रनिर्माण होता और उसे बहुत लाभ पहुंचता है। जिस तरह अँगरेज़ी राष्ट्र के सम्बन्ध में टेनिसन ने लिखा है,—"Saxons Normans and Danes are we" उसी प्रकार एक भारतीय कवि ने कहा है,—"हम हिन्दू हैं, मुसल्मां पारसी हैं, जननी को किन्तु मिलकर पूजते हैं।" भारतभूमि सब की माता है और राष्ट्र में कोई सौतेला लड़का नहीं होता।

मतों की भिन्नता और अत्याचारों के विषय में इतना ही कहना है कि इस कलङ्क से भारत ही नहीं, प्रायः सभी राष्ट्र कलङ्कित हैं। क्या यूरोप के मतमतान्तरसम्बन्धी भेद और राष्ट्रीयता में भिन्नता नहीं है। मेरी ने प्रोटेस्टेंट मतानुयायियों को जलवा दिया तो एलिज़ाबेथ और क्रामवेल ने रोमनकैथेलिकों को मरवा डाला। लुई ने ह्यूगेनाटों का रक्तपात ही नहीं किया, पर उनको देश से निकाल दिया। उसने एलबनि, लूथरनों और केलविनिस्टों को मारा और खूब सताया। केलविनिस्टों ने स्वतंत्र विचारवालों (Free thinkers) की जानें लीं। इसी प्रकार भिन्न मतानुयायियों के अत्याचार की बातें इतिहास में भरी हैं। परन्तु इसपर भी आज वे अच्छे नागरिकों की भांति एक साथ बस गये हैं और राष्ट्रीय विपत्ति के समय भिन्न २ सम्प्रदाय के लोग एक होकर चिल्लाने लगते हैं कि 'हम अँगरेज़ हैं', 'हम जर्मन हैं', 'हम फ्रांसीसी हैं', 'हम इटैलियन हैं'। इसलिए भारतवर्ष को उस दिवस के प्रभात की आशा करना क्या अनुचित है ? हिन्दू, मुसलमान, ईसाई और पारसी आदि को एक समुदाय बनकर एक स्वर से यह कहने के लिए कि "हम हिन्दुस्तानी हैं" चेष्टा करनी चाहिये।

भविष्य की आशा—देशभक्त लेखकों और व्याख्यानदाताओं का यह कर्तव्य है कि वे समस्त साम्प्रदायिक मतभेदों को छोड़कर मातृ-भूमि के उज्ज्वल और दैदीप्यमान चित्र को प्रभुता और सौन्दर्य को झलकाते हुए समस्त भारतीय हृदयों को इस आशा से जागृत और उत्तेजित करें। राष्ट्र का आदर्श पहिले भावना ही के रूप में रह कर फिर सच्चा राष्ट्र बन जाता है और यही सच्चे राष्ट्र के निर्माण का उपाय है। सबसे पहिले संकल्प और आदर्श

की शिक्षा देनी चाहिये। यही शिक्षा हमको इतिहास से मिलती है। इटली के लेखकों ने, जब इटैलियन राष्ट्र का नाम तक न था, इटली के विषय में लिखा था। इटली के कवियों ने उसी को गाया। उस समय 'भाव' ही में इटली का चित्र खींचा और भाव ही में गाया गया था। जब इटलीनिवासियों के हृदय इटली को मातृभूमि कहकर पुकारने को तैयार हुए, तभी मेज़िनी, गेरीबाल्डी और केवर सरीखे महात्मा उत्पन्न हुए। आदर्शचक्षु मेज़िनी ने आग की तरह दहकते हुए शब्दों को लिख मारा, गेरीबाल्डी ने तलवार खींची और नीतिज्ञ केवर ने इटली की राज्य-व्यवस्था स्थापित की। इटैलियन राष्ट्र ने, जो अभी "विचारक्षेत्र ही में था", कार्यक्षेत्र में पदार्पण किया। यही हाल जर्मनी का भी हुआ। वर्षों की घोर लड़ाइयों, मतमतान्तर के झगड़ों, विरोध और अत्याचार, ईर्ष्या और घृणा तथा विभेदकारक अनेक घटनाओं के बाद जर्मनी के लेखकों और कवियों ने अपनी पितृ-भूमि जर्मनी का डंका बजाया। मानसिक संसार ही से जर्मनी ने जर्मनों को पुकारा। उसकी आवाज़ पैदा होने की प्रतीक्षा करनेवाली रूहों में वह गूंज उठी और विलियम, बिस्मार्क और मोलक ने उसी ध्वनि में प्रतिध्वनि की और यही जर्मनी कर्मक्षेत्र में अवतीर्ण हुआ।

ये बातें भारत के सामने भी ज़रूर आवेंगी। मातृभूमि भारत के आदर्श की शिक्षा हर एक जगह अवश्य होनी चाहिये। मनन करनेवाले तत्वज्ञ आदर्श की तसवीर खींचते हैं और धुरंधर व्याख्यानदाता उस भाव को लोगों के हृदय में जमा देते हैं। नीतिज्ञों के इस भाव को असार संसार में सत्यस्वरूप में ला दिखलाने के पहिले इसकी बड़ी आवश्यकता है कि पहिले आदर्श ही मनुष्य के भावों में जागृत हो जाय। इस कार्य के करने में यह समझकर किसी को झिझकना न चाहिये कि इसमें भूल होने की संभावना है। नर्म दलवाले प्रायः कुछ करने से इसलिए डरते हैं कि गर्म दलवाले बड़े ही उग्र और साहसी हैं। इससे यदि ये दोनों दल अभीष्ट के लिए प्रयत्न करें तो कलङ्क और अविश्वास की उत्पत्ति होने लगती है। इसके अतिरिक्त कोई आन्दोलन क्यों न हो, परन्तु उसकी भूलें उस समय भुला दी जाती हैं जब अभीष्ट सिद्ध हो जाता है। प्रथम तो विवाद के प्रचण्ड आवेग में हर एक दल अतिक्रम और उद्वेग के शिखर पर जा विराजता है। इस जोश के फैलने के पहिले ही जो स्थिरबुद्धि से जननी जन्मभूमि की सेवा करते हैं तो मातृभूमि की पूजा करने और उसकी पूजा करने की घोषणा करने में उनका निषेध और प्रतिषेध करना क्यों आवश्यक है? यह आवश्यक है कि मातृभूमि का भाव भारतीय अन्तःकरणों में सदा प्रतिध्वनि करता रहे। यह तभी हो सकता है जब अल्पकालीन और स्वल्पस्थायी जोश शांत न हो। देवतागण अपने उपायों और युक्तियों को कार्य में परिणत करने के लिए कई शक्तियों का प्रयोग करते हैं। वे मनुष्यों के दोषों और गुणों तथा उनके प्रज्वलित भावों और स्वार्थहीन आकांक्षाओं को भी काम में लाते हैं। जो लोग बुद्धिमान हैं उन्हें चाहिये कि वे साधारण पुरुषों के साधु मार्गों और विवेकयुक्त विचारों में उनका साथ दें और उस अगाध और दिव्यज्ञान की सराहना करें जो असत् को भी सत् रूप में परिणत कर सकता है।

अब अपने भूतकाल को प्रकट करने और उसका अनुसरण करने की आवश्यकता है। इसके लिए हमें शिक्षा की सहायता लेनी होगी। मदर्सों में इतिहास नये ढंग से पढ़ाया जाना चाहिये। आजकल जो इतिहास पढ़ाये जाते हैं वे शुष्क और नीरस हैं। उनकी रचना संभवतः इसी आशय से की गई है कि लड़के अपनी जननी जन्मभूमि को उदासीनता और अनुरागरहित दृष्टि ही से नहीं, वरन अवज्ञा और घृणा की दृष्टि से देखें। यद्यपि यह सत्य है कि इतिहास

लेखकों का कोई ऐसा अभिप्राय न था परन्तु इसमें संदेह नहीं कि उनमें सहानुभूति और अनुराग भी नहीं था। भारतवासियों को चाहिये कि वे भारत का इतिहास लिखें। ये इतिहास-लेखक ऐसे देशभक्त होने चाहियें कि भारतवर्ष की प्राचीन उज्ज्वल कथाओं पर उनका अनुराग और अभिमान हो। हमारे मदर्सों के इतिहास जागृत-जीवन होने चाहिये। ये भारत के प्रत्येक समुदाय और सम्प्रदाय की वीर कथाओं से परिपूर्ण हों। लड़कों और लड़कियों को ऐसी शिक्षा देनी चाहिये कि वे भारत के सुपूत, पृथ्वीराज, प्रताप, सांगा, अकबर, गुरु नानक, शिवाजी, चांदबीबी, अहिल्या बाई आदि को समान दृष्टि से अभिमानपूर्वक देखें। प्रत्येक भारतवासी का कर्तव्य है कि वह इनको अपने हृदय में रक्खे। इसका उसको अभिमान हो कि ये भारत के वीर लाड़ले हैं। जब ऐसे इतिहास हमारे मदर्सों में पढ़ाये जायंगे तब देशभक्त पैदा होंगे।

क्या विजातीय कालेज और स्कूलों के पक्ष को समर्थन करना, एकता की अपेक्षा विभिन्नता उत्पन्न करता है? मेरी समझ में तो नहीं। हां उस समय यह डर अवश्य है जब ऐसी संस्थाओं में धर्मोन्मत्तता को सहनशीलता का स्थान मिले। मेरी समझ में इसका उत्तम और आदर्श उपाय यही है कि तमाम मज़हबों के लिए विद्यालय खोले जावें। इनमें रोज़ पहिले परब्रह्म परमात्मा की प्रार्थना हो और सप्ताह में दो बार एक २ घंटा धार्मिक शिक्षा के लिए रख छोड़ा जाय। इसके सिवा शेष पठनपाठन में भिन्न मतानुयायी छात्र आपस में मिलाजुला करें। भिन्न २ धर्मी छात्र भिन्न छात्रालयों में रक्खे जायँ। परन्तु यह एक थिओसोफ़िकल महाविद्यालय होगा।

सब से उत्तम उपाय यह है कि जातीय विद्यालय और महाविद्यालय खोले जायँ। इनमें परमावश्यक धार्मिक, सात्विक सदाचार और सच्चरित्रता की शिक्षा दी जायं। ऐसी शिक्षा का अनादर जातीय हत्या है। स्वदेशानुराग, धर्म का एक सुन्दर सुमन है। यदि धर्म के साथ सहिष्णुता की शिक्षा देकर हर एक धर्म और जाति के लोगों में यह भाव भर दिया जाय कि वे सब भाई २ ही हैं, तो वे उदार और धार्मिक बन जायँगे। यह लेख लिखते समय मेरे एक मुसलमान मित्र ने मेरे पास आकर कहा कि क्वीन्स कालेज की अपेक्षा सेन्ट्रल हिन्दू कालेज के छात्र मुसलमानों से अधिक प्रेम और मित्रता रखते हैं। क्वीन्स कालेज में हिन्दू मुसलमान एक साथ पढ़ते हैं परन्तु उनको कोई धार्मिक शिक्षा नहीं दी जाती। हिन्दू कालेज में छात्रों को धर्म की शिक्षा दी जाती है तथापि उन सिद्धान्तों के साथ उनको सहिष्णुता की शिक्षा दी जाती है और भिन्न २ धर्मों और जातियों की एकता की अपेक्षा भारत के (राष्ट्रीय) ऐक्य पर अधिक ज़ोर दिया जाता है। सर्वदा वे यही सुना करते हैं। उनके लिए मातृभूमि का देदीप्यमान आदर्श ही एक वास्तविक भाव है। उसी प्रभा से वे धर्म, देश में ऐसे भर दिये जाते हैं कि इन्द्रधनुष के विविध रंगों की भांति वे प्रेमरूपी कमान में देखे जाते हैं। हिन्दू कालेज के छात्रों में भारतीय राष्ट्र के लिए जितना प्रेम और उद्वेग है, उतना और कहीं भी नहीं। देशानुराग उनका व्यसन है और वे देशानुरागरूपी वायुमण्डल में श्वांस लेते हैं। स्वदेशप्रेम रूपी रक्त उनकी नाड़ियों में चक्कर लगाता है। देशानुराग प्रत्येक भारतीय को गले लगाता है और वह धर्म सम्बन्धी मतभेदों से भिन्न और अनभिज्ञ है।

इस अभीष्ट की सिद्धि के लिए यह सिखलाने की आवश्यकता है कि धर्म का चिद्रूप और आध्यात्मिक सार एक और अभिन्न है। ये विविध मत एक मूल और यथार्थ तत्व के मानसिक प्रतिरूप और प्रदर्शन हैं। एक सार्वलौकिक आध्यात्मिक धर्म के ये धर्म केवल

शाखाओं के समान हैं। उनका परस्पर सम्बन्ध ऐसा ही है जैसा वैष्णवों और शैवों का हिन्दू धर्म से, शिया और सुन्नियों का इसलामी मत से, ग्रीक और रोमन कैथोलिकों और प्रोटेस्टेन्टों का ईसाई मत से। सबका मूल और यथार्थ सिद्धान्त यही है कि विशिष्ट-जीवन जगदात्मा एक है और उसीसे समस्त जीव उत्पन्न हुए हैं। ये सब सिद्धान्त संसार के समस्त प्राणियों का परब्रह्म से सम्बन्ध दिखलाने के लिए मानसिक प्रयत्न हैं। जैसे एक दूसरे के मतों में भिन्नता होती है, उसी प्रकार इन तत्वों के निर्माण में विभिन्नता अवश्य होनी चाहिये; परन्तु जब धर्म (सार्वलौकिक धर्म) ऊपर कही हुई रीति से देखे जायँ तो उनकी विभिन्नता अपकार के लिए नहीं, वरन् उपकार के लिए होगी।

इन दो उपायों के साथ और भी सहायक उपाय होने चाहिये। मातृभूमि के आदर्श पर बराबर ज़ोर दिया जाना चाहिये और साथ ही बालकों को शिक्षा इस ढंग से दी जानी चाहिये कि वे भूतकाल की अपनी पारस्परिक बपौती और विविध धर्मों को आध्यात्मिक रूप से एक समझें। कालेज के छात्र सामाजिक, आर्थिक, म्यूनिसिपल और राष्ट्रीय प्रश्नों को पढ़ने तथा उनपर बहस करने के लिए उत्साहित किये जायँ। उन्हें यह भी भली भांति समझा देना चाहिये कि सब से उत्तम राजनैतिक शिक्षा का क्षेत्र स्थानिक-स्वराज्य सम्बन्धी नीतिशास्त्र में अभ्यस्त होना ही है। छोटे और संकुचित क्षेत्र की कार्यप्रणाली से अनभिज्ञ मनुष्य बड़े और विस्तृत क्षेत्र में प्रवेश करने को सर्वथा अयोग्य हैं। म्यूनिसिपल बोर्ड ही राष्ट्रीय संस्था (National Assembly) की शिक्षा का क्षेत्र है। मि० चेम्बरलेन ने बर्मिंघम की म्यूनिसिपैलिटी में पार्लामेंट की शिक्षा प्राप्त की थी। वहां स्वायत्त-शासन की शिक्षा दी जाती है। म्यूनिसिपल बोर्डों और अन्य स्थानिक संस्थाओं (Local administration of justice) में इस देश में खेल कूद की समिति तथा वादप्रतिवाद-शिक्षक सभा और अन्य समाज और संस्थाओं के प्रबन्ध करने की शिक्षा छात्रों को अवश्य देनी चाहिये। इनमें शिक्षकों को केवल सहायता देने ही का काम हो। इसमें कोई सन्देह नहीं कि पहिले कुछ भूलें अवश्य होंगी परन्तु भूलों ही से शिक्षा मिलती और योग्यता बढ़ती है।

भिन्न भिन्न प्रदेश के लोगों को स्वतन्त्रतापूर्वक पारस्परिक भाव प्रकाशित करने के लिए एक सार्वजनिक भाषा तथा लिपि को अपनाने की आवश्यकता है। उत्तरीय भारत की भाषाएँ ऐसी हैं कि यदि वे एक लिपि में लिखी जायं तो उनमें से किसी एक भाषा का जाननेवाला उनको बहुत सरलता से समझ सकता है। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि यह योग्यता देवनागरी लिपि ही में है। उर्दू, फ़ारसी की और रोमन, यूरोप की लिपि है। अतएव प्रत्येक पाठशाला में "देवनागरी" लिपि की शिक्षा देनी चाहिये। दक्षिण के अधिकांश स्थानों में यही लिपि प्रचलित है। यदि देश की सब भाषाओं की पुस्तकें देवनागरी में छापी जायँ तो बड़ा लाभ हो सकता है। इसके अतिरिक्त हिन्दी सार्वजनिक भाषा हो जानी चाहिये। यह कोई नहीं चाहता कि बंगाली, मराठे, तामिल और तैलंग अपने समृद्ध साहित्य को तिलाञ्जलि दे दें। मतलब यही है कि वे जातीय तथा राष्ट्रीय एकता के लिए हिन्दी को दूसरी भाषा के रूप में पढ़ें। यदि ऐसा न किया जाय तो अँगरेज़ी भाषा, राष्ट्र भाषा हो जायगी। कारण आजकल यही एक ऐसी भाषा है जिसमें भिन्नदेशीय शिक्षित जन परस्पर वार्तालाप कर सकते हैं। भारत की राष्ट्रीयता के लिए एक सार्वजनिक भाषा का होना परमावश्यक है। भारत के मुसलमान जिस उर्दू में बातचीत करते हैं वह भी फ़ारसी मिली हुई हिन्दी ही है। हिन्दी जाननेवाला मनुष्य उर्दू जाननेवाले से बातचीत

कर सकता है परन्तु तामील और तेलगू जानने वालों से नहीं। शारीरिक शक्ति और आरोग्य के प्रश्न पर भलीभाँति ध्यान देना भी ज़रूरी है। वर्तमान दशा तथा प्रतिद्वन्द्वी सभ्यता से अवश होकर भारतीय जनता जीवनी-शक्ति गँवा रही है। कितने अँगरेज़ी सीखे हुए भारतवासी ... वर्ष की अवस्था में हृष्टपुष्ट होते हैं? अब इसकी आवश्यकता है कि प्राचीन ब्रह्मचर्य की प्रथा का पुनरुत्थान कर छात्र-जीवन में इसका प्रचार किया जाय। बचपन ही में लड़कियों और लड़कों का माँ-बाप बन बैठना देश को हानिकारक और धर्म से परे है। जनता के भाव में परिवर्तन की आवश्यकता है। माताओं को यह बतलाने की आवश्यकता है कि पुत्रों को मसालेदार और उन्मादकारी पदार्थ, विशेषतः मांसादि खिलाना हानिकारक ही नहीं, वरन निर्दयता और अत्याचार है। उन बालकों को, जिनकी पराग ... मधुर-मधुयुक्त कलियां विकसित भी नहीं ... ऐसी मादक-वस्तुएँ खिलाना मानों ... प्रियता से असामयिक युद्ध करवाना है ... जवानी ही में (जब कि उनमें मनुष्यत्व की ... तक नहीं आती) ऐसा बोझ उनके सिर पर लाद देना ठीक नहीं। शारीरिक सुधार की शिक्षा अवश्य ही देनी चाहिये, बहुत क़ीमती और तुमाशयी अँगरेज़ी खेलों के बदले उनको बुद्धिमत्ता-पूर्वक निर्धारित देशी कसरत और व्यायाम की भी शिक्षा देनी चाहिये जिनसे उनका समूचा शरीर हृष्टपुष्ट हो। इस काम के लिए बहुत से पेन्शन पाये हुए फ़ौजी सरदार मिल सकते हैं जो कि व्यायाम-शिक्षा के लिए सर्वथा उपयुक्त हैं। उन्हें भी इससे सहारा मिल जायगा क्योंकि उनकी पेंशन तो थोड़ी होती है। किसी भी छात्र को उस समय तक अपनी शिक्षा समाप्त न समझनी चाहिये जब तक वह यह न जान ले कि वह शरीर की रक्षा के लिए अपने अवयवों को किस प्रकार उपयोग में ला सकता है। राष्ट्र का निर्माण निःसत्व प्राणियों से कदापि नहीं हो सकता।

मेरी राय में येही कुछ उपाय हैं जिनके द्वारा किसी राष्ट्र का निर्माण हो सकता अथवा होता है। बुद्धिबल, शारीरिक बल और सदाचार यही बातें एक अच्छे नागरिक होने के लिए आवश्यक हैं और अच्छे नागरिकों के बिना राष्ट्र का निर्माण असंभव है। इस प्रकार के भारतीय नागरिक, उस विश्वविस्तृत साम्राज्य के नागरिक होंगे जिसकी स्थिति केवल स्वराज्य-प्राप्त जातियों और उपनिवेशों के संगठन पर है। इस जगत्व्यापी साम्राज्य की अवयव स्वतन्त्र और स्वराज्यप्राप्त जातियां होनी चाहिये जो कि परस्पर प्रेम की रस्सी से बँधी हों, पारस्परिक मान और न्याय-रुपी खंभों पर सधी हों। भारत को अहर्निशि यत्नवान रहना चाहिये कि वह उन राष्ट्रों में एक प्रबल राष्ट्र हो, यही उसका प्रथम और परमावश्यक कार्य है।

...वेद

... हो लो...

महाराज की

उपालम्भ ।

[लेखक—श्रीयुत भगवानदीन पाठक ।]

(१)

प्रभो ! पर-पद दलित पीड़ित पड़े हैं,
करें कुछ किन्तु कर-कीलित कड़े हैं !
दिया नर-जन्म तो नर सत्व भी दो,
नरोचित विश्व में अधिकार भी दो ।

(२)

कहो कब तक रहें अब की तरह हम ?
पुरुष होकर भला पशु की तरह हम !
न यदि हमको धनी, मानी बनाओ,
विपद् के ठोकरों से ही बचाओ ।

(३)

पड़े अतिकाल से हैं मान खोते,
प्रभो ! जाने कहां हैं आप सोते ?
करो हम भारतीयों पर दया भी,
हरो दुःखार्त, दीनों की व्यथा भी ।

(४)

बंधे परतंत्रता के पाश में हम,
मरें स्वातंत्र्य की प्रभु आश में हम ।
न ऐसा अब हरे ! दुर्दिन दिखाओ !
भले, अस्तित्व हो जग से मिटाओ !

(५)

गई निज-वस्तु ही तो माँगते हैं,
अधिक क्या नाथ तुम से चाहते हैं ।
सुनोगे यदि नहीं विनय हमारी,
कहेंगे हम न फिर अब और हारो ।

स्वराज्य की मांग और हमारी सभ्यता ।

[लेखक—श्रीयुत बालाप्रसाद शर्मा ।]

जब पक्षपात का हृदय में प्रवेश होता है, तो दूसरों के गुण भी अवगुण ही प्रतीत होते हैं, यही कारण है कि अनेक पाश्चात्य विद्वान भारतवर्ष में स्वराज्य की पुकार सुनकर नाक भौं सिकोड़ते हैं और बहुत से तो इतने संकुचित हृदय के हैं कि वे भारतवासियों को असभ्य और अर्द्धसभ्य तक कहने में भी नहीं हिचकते । यदि हमारे पूर्वजों के चरित्र निर्मल न होते और उनकी विमलकीर्ति इतिहासों में न लिखी गई होती तो हम लज्जा के मारे मुख भी न उठा सकते । आज हम इस लेख में संक्षेप रूप से यह सिद्ध करेंगे कि "स्वराज्य की माँग" कोई नवीन वस्तु नहीं वरन् वह सृष्टि के नियमानुकूल ही है ।

पाठक वृन्द ! अविद्या की घोर अन्धकारमयी रात्रि में हमको एक टिमटिमाता हुआ प्रकाश दिखलाई पड़ रहा है । आइये, उसी प्रकाश की ओर हम चलें । यद्यपि इस प्रकाश पर नाना प्रकार के आवरण पड़ गये हैं, फिर भी कुछ न कुछ प्रकाश दिखलाई ही पड़ता है । यह प्रकाश हमारा प्राचीन साहित्य, इतिहासादि का ही है । भारतवर्ष की वर्तमान दशा देखकर सभ्यता के शिखर पर चढ़े हुए अभिमान में चूर और स्वार्थपरायण व्यक्ति भले ही यह अनुमान करें कि भारतवर्ष की यही दशा सदा [illegible] चली आती है, परन्तु वास्तव में बात यह नहीं है । "रेल, तार, डाक" आदि के उदाहरण देकर [illegible] पर करोड़ों एहसान किये जाते हैं [illegible] मनुष्य [illegible] उपकारों के लिए अकृतज्ञ भी नहीं

है ? किन्तु इस बीसवीं शताब्दी में कोई अभागा ही राष्ट्र ऐसा होगा, जिसमें रेल, डाक, तार आदि न हों। भारतवर्ष को अपनी सभ्यता का अभिमान है और प्रत्येक भारतवासी को इसका अभिमान होना चाहिये। जो यूरोप आजकल सभ्यता में संसार भर में प्रसिद्ध हो रहा है, उसके इतिहास से भी पता लगता है कि ईसामसीह से १००० वर्ष पहिले वह केवल वन और पर्वतों ही से भरा हुआ था, इधर उधर कहीं १ कोई २ जाति मछली मार कर निर्वाह करती थी। उनकी सभ्यता का इसीसे अनुमान कर लीजिये कि "न्याय के लिए जिसकी लाठी उसकी भैंस" ही क़ानून था। दूर जाने की ज़रूरत नहीं सिर्फ़ ब्रिटेन, सैक्शन आदि के प्राचीन इतिहास पढ़िये या उस समय के धार्मिक विवादों को देखिये तो इसकी सत्यता प्रतीत हो जायगी।

उस काल की अधिक समालोचना न कर केवल हम यही सिद्ध करना चाहते हैं कि भारतवर्ष की सभ्यता यूरोप की सभ्यता से अत्यन्त प्राचीन है। जिस समय संसार के अन्य देशों (जो आजकल सभ्य और उन्नत कहे जाते हैं) का निर्माण भी नहीं हुआ था, जिस समय अनेक जातियां (जो आजकल सभ्यता के अभिमान में चूर हैं) जंगलों में इधर उधर घूमकर वृक्षों पर ही रात्रि व्यतीत करती और गृहनिर्माण-विद्या से नितान्त अनभिज्ञ थीं, उस समय भारतवर्ष में वेदों की पवित्र शिक्षा फैल रही थी। "मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे" का पाठ उच्चस्वर से होता था। इससे हमारा यह अभिप्राय नहीं कि हम वेदों का अनादित्व या यह सिद्ध करते हैं कि वेद ईश्वर हैं, यह तो धार्मिक विश्वास है परन्तु इसमें किसी को तनिक भी सन्देह न करना चाहिये कि संसार भर में सब से प्राचीन पुस्तक ऋग्वेद है। इस बात को अनीश्वरवादी, देशी, परदेशी सभी मानते हैं। रामायण काल को ही लीजिये, चाहे उससे भी प्राचीन मनुजी महाराज की स्मृति (जो हिन्दू जाति के लिए क़ानून है और श्री रामचन्द्रजी महाराज भी जिसके सामने सर झुकाते थे) पर दृष्टि डालिये, तो भारतीय सभ्यता का पूरा २ वर्णन मिलेगा। माननीय भारतमाता के सच्चे पुत्र, स्वर्गवासी श्रीयुत पं० गोपालकृष्ण गोखले ने भारतवर्ष में निःशुल्क और अनिवार्य-शिक्षा के लिए जो प्रस्ताव पेश किया था वह कोई आधुनिक प्रस्ताव न था। मनुस्मृति में अनेक स्थलों में अनिवार्य और निःशुल्क शिक्षा के उदाहरण स्पष्ट शब्दों में मिलते हैं। यही बात सैनिक-शिक्षा के लिए भी है। लेख बढ़ जाने के भय से हम श्लोकों को उद्धृत नहीं करते किन्तु जिनको सन्देह हो वे मनु० अध्याय ६ तथा ७ का निरीक्षण करलें।

कुछ आधुनिक विद्वानों का मत है कि यदि किसी जाति की सभ्यता देखनी हो, तो नीचे लिखी हुई कसौटियों पर उस जाति की सभ्यता को कसना चाहिये—

वर्णलिपि, नागरिकता, दार्शनिकविचार, शुद्ध स्वाभिमान, बलिदान, देश-प्रेम, समता इत्यादि।

यदि हम भारतवर्षीय सभ्यता को इन कसौटियों पर चढ़ावें, तो इसका नम्बर सब से प्रथम निकलेगा।

वर्णलिपि में यद्यपि अनेक मत हैं परन्तु यह भलीभांति सिद्ध हो चुका है कि भारतवासियों को कम से कम ईसामसीह के सन से ५००० वर्ष पूर्व लिखनापढ़ना आता था (यह पाश्चात्य मत है, हम तो अपने शास्त्रों के मतानुसार इसको बहुत ही पूर्व का मानते हैं। हिन्दुओं की काल-गणना ही इतनी प्राचीन है, जिसको देखकर आधुनिक विद्वान दंग रह जाते हैं।

नागरिकता—वेद, स्मृति आदि ग्रन्थों में अनेक स्थलों पर इसका वर्णन मिलता है। आजकल के विद्यार्थी म्यूनिसिपैलिटी के नियमों को देखकर यह अनुमान करते होंगे कि यह प्रथा ब्रिटिश राज्य की कृपा से ही चली है।

हम इस विषय में केवल यही कहेंगे कि बहुत दूर न जाकर वे केवल महाराज अशोक के समय का इतिहास देखें। उस समय के राज-नियमों का एकबार अवलोकन करने से ही सब सन्देह दूर हो जाते हैं। मेगस्थनीज़ ने अपने भारत-वर्षीय वर्णन में इन सब बातों का उल्लेख किया है। भारतवासियों की नागरिकता या नगर-निर्माणता में कौन ऐसा मूर्ख होगा जो सन्देह करेगा। अजंटा की गुफ़ा या उस काल के भग्नावशेष मन्दिरों के खण्डर ही इसके प्रमाण के लिए पर्याप्त हैं। सत्रहवीं शताब्दी में बने हुए आगरे के भवन अथवा हिन्दुओं के मन्दिर उनकी चतुराई के प्रत्यक्ष उदाहरण हैं।

यदि किसी को दार्शनिक विचार देखने हों तो हिन्दुओं के न्याय, सांख्य, मीमांसा, वैशेषिक आदि दर्शनों को देख ले। यद्यपि पाश्चात्य देशवासियों की वर्तमान फ़िलासफ़ी पर आजकल सभ्य जगत् मोहित है परन्तु उनका यह मोह तभी तक रहता है जब तक उन्होंने पूर्वीय दार्शनिक विद्वानों के विचार न पढ़े हों। सच बात तो यह है कि जब तक पुण्यसलिला भगवती भागीरथी का जल पान न किया हो, तभी तक कोई प्यासा किसी तालाब या अन्य नदियों की प्रशंसा कर सकता है। अभी तक पश्चिमीय विद्वानों को पूर्वीय दर्शनों के समझने का सुअवसर हो नहीं प्राप्त हुआ है क्योंकि हमारी वर्तमान अधोगति देखकर उन्हें यह विश्वास ही नहीं होता कि "इतनी परिष्कृत-मस्तिष्क-शक्ति भारतीयों के पूर्वजों में वर्तमान थी।" इसके उत्तर में हम यही कहेंगे कि यद्यपि उसके दुरुपयोग के कारण हमारी सामाजिक और आर्थिक दशा शिथिल हो रही है तथापि हिन्दुओं में, विशेषतः भारतवासियों में, साधारण तथा दार्शनिक विचारों पर अहर्निश वार्तालाप होता रहता है। ग्रामनिवासी एक मूर्ख घसियारा भी किसी को प्राणत्याग करते या किसी मृतक को देखकर एकाएक कहने लगता है कि किसके लिए रोते हो, बोलता राम उड़ गया वह अमर है, अजर है, फिर शरीर धारण कर लेगा।"

युद्ध—मनुष्य में जहाँ दया, क्षमा, आदि देखे जाते हैं वहीं उच्च से उच्च सभ्य जाति में युद्ध भी अनादिकाल से दिखाई देते हैं। यदि किसी जाति ने "युद्ध" में विजयलाभ कर अपनी दुंदुभी न बजाई हो, तो वह जाति संसार में असभ्य समझी जाती है। भारतवासियों की सभ्यता इस कसौटी पर पूरी उतरती है। देवासुर-संग्राम प्रसिद्ध ही है। पुराण ग्रंथों में अनेक इतिहास भरे पड़े हैं, परन्तु शायद आधुनिक सभ्यताभिमानी उन्हीं को पौराणिक गप्प कह-कर हँसी में ही टाल दें इससे पौराणिक युद्धों पर अधिक विवेचना करना व्यर्थ है। रामायण के प्रसिद्ध युद्धों को लीजिये। मर्यादापुरुषोत्तम भगवान श्रीरामचन्द्रजी का पवित्र जीवन हिन्दुओं के लिए उच्च आदर्श है। पम्पापुर के राजा बालि का राज्य श्री रामचन्द्रजी ने उसके भ्राता सुग्रीव को देकर 'होमरूल दान' का उचित आदर्श स्थापित किया। क्षत्रियों का धर्म है कि वे युद्ध से न डरें और कायरता से संतोष न करें, वरन् अपने भुजबल से बलहीनों की, अन्यायियों से रक्षा करें। महाराज श्रीरामचन्द्र अपने पैत्रिक राज्य को, पिता के आज्ञापालनार्थ ही छोड़कर नंगे पांव वन को सिधारे थे। क्या ऐसा उच्च आदर्श किसी अन्य जाति में है? कदापि नहीं। राम-रावण युद्ध को आज बहुत दिन व्यतीत हो जाने से कोई २ तो उसे कल्पित ही कहते हैं परन्तु वर्तमान ब्रिटिश जर्मन-युद्ध की विचित्र बातें अब विश्वास करा रही हैं कि जिन अस्त्र-शस्त्रों का राम-रावण युद्ध में वर्णन आया है, वे काल्पनिक ही नहीं हो सकते। आधुनिक वायुयान और सामुद्रिक युद्ध को देखकर आश्चर्य होता है, परन्तु इससे भी विचित्र २ आविष्कार पूर्वकाल में हो चुके हैं। यह कम गौरव नहीं कि श्रीरामचन्द्रजी ने लंका को जीता परन्तु यहां भी उन्होंने वही "स्वराज्य

द्वार" का पवित्र आदर्श स्थापित किया। महाभारत का बड़ा युद्ध भी हमारे जातीय इतिहास को बतलाता है कि कर्तव्यपालन के लिए भारतवासी किस प्रकार युद्ध में धर्मपूर्वक प्राणाहुति दिया करते थे।

जगद्विजयी सिकन्दर की सेना भी भारतीय राजा पुरु से लड़कर दंग रह गई थी। यद्यपि मुसलमानों ने भारत के कुछ भाग पर विजय प्राप्त की तथापि वहां के लोगों ने उनके दाँत भी कम खट्टे नहीं किये थे। महाराज पृथ्वीराज ने शहाबुद्दीन मुहम्मद गोरी को कई बार पकड़ २ कर छोड़ दिया था। हमारी दया और क्षमा का अनुचित उपयोग कर गोरी ने क्षमा और दया का महत्व ही कम कर दिया। फिर भी मुसलमानी राज्य उस समय तक दृढ़ न हो सका, जबतक भारतवासियों द्वारा उसका प्रबन्ध न किया गया। मुसलमानी राज्य में मुग़लों का राज्य प्रसिद्ध है। उसमें भी सम्राट् अकबर का राज्य सब से बढ़ा चढ़ा था। इसका कारण यही था कि राज्य-प्रबन्ध में स्वराज्य की स्कीम काम कर रही थी। यदि अकबर के प्रबन्ध में तुर्किस्तानियों का अधिक भाग होता, तो अकबर का साम्राज्य इतना बड़ा नहीं हो सकता था। इसका प्रमाण औरंगज़ेब की अदूरदर्शिता और राज्य-प्रबन्ध में परिवर्तन ही पर्याप्त है।

स्वदेशाभिमान के लिए चित्तौड़ की वीरांगनाओं के चरित्र पढ़ जाइये, महाराणा प्रताप ने जननी-जन्मभूमि की रक्षा के लिए क्या २ कष्ट सहन किये? मारवाड़ और चित्तौड़ के वीरों के प्राणत्याग के पवित्र चरित्र अब तक इतिहासों में देदीप्यमान हैं। वर्तमान युद्ध में भी भारत माता के पुत्रों ने अपनी राजभक्ति का पूर्ण परिचय दिया है। भारतवासी स्वभाव से ही राजभक्त हैं। यदि सौभाग्य से उन्हें प्रति वर्ष कहीं राजा के दर्शन करने का अवसर मिले या हमारे सच्चे-भाव हमारे सम्राट् तक सुगमता से पहुंच सकें, तो भारतवासी संसार भर से प्रत्येक सभ्यता की बात में बढ़ जायँ। इसका हमको अभिमान है कि आज भूखों मरते हुए भी अनेक भारतीय वीर अपना गौरव बनाये हुए हैं। इन सब परीक्षाओं में उत्तीर्ण होकर हम कहते हैं कि "स्वराज्य, हमारा (birthright) जन्मजात स्वत्व है"। हम ब्रिटिश सरकार से "स्वराज्य-भिक्षा" नहीं माँगते और न हम यह समझते हैं कि हम उसके योग्य नहीं। राजा, पितृतुल्य होता है, पुत्र को युवा देखकर पिताजी उसका अधिकार देते हैं, इससे पुत्र प्रसन्नतापूर्वक और भी अधिक कर्तव्यपालन करता है। हमारी सभ्यता हमको उपदेश कर रही है कि हम संसार की किसी जाति से कम नहीं। यदि इस समय हमारी जाति जगत् की दौड़ में पीछे है तो अब उद्योग करने से अवश्य वह साथ हो जायगा। हम "स्वराज्य की मांग" के लिए, इस उद्देश्य से नहीं कि "ब्रिटिश जाति का सम्बन्ध तोड़ दें", कटिबद्ध हैं, बल्कि इस लक्ष्य से कि ब्रिटिश-साम्राज्य के गौरव को और भी बढ़ावें, ब्रिटिश का शत्रु हमारा शत्रु हो और ब्रिटिश जाति के साथ २ हम भी कंधे से कंधा मिलाकर खड़े हो सकें। देशवासियो! अपने पूर्वजों के चरित्रों पर अभिमान कीजिये और "राष्ट्र-सेवा" के सच्चे उपासक बन कर धर्मपूर्वक जननी जन्म-भूमि के गौरवार्थ राष्ट्रीयता स्थापन करने का दृढ़ संकल्प कीजिये। परमेश्वर हमारी सहायता करेंगे। ईश्वर उन्हीं की सहायता करता है जो स्वयं अपनी सहायता करते हैं।

वंदेमातरम्

स्वामी रामतीर्थ ।

[लेखक—श्रीयुत गोपीनाथ गुप्त ।]

इन लोक-विश्रुत महात्मा का जन्म सन् १८७३ ई० को दीपावली के दिन मुरारीवाला जिला गुजरानवाला में हुआ । इनके पिता पंडित हीरानन्द साधारण स्थिति के किन्तु बड़े भगवद्भक्त मनुष्य थे । वे अद्वितीय ईश्वर-भक्त गोस्वामी तुलसीदास जी के वंशज थे । पिता के संस्कारों का प्रभाव पुत्र पर पड़े बिना नहीं रह सकता, अतः हमारे चरित्र-नायक के हृदय में भी आदि से ही ईश्वर-भक्ति का अंकुर दीख पड़ता था । जब यह बालक ही थे तो मन्दिर में शंख की आवाज को सुनकर रोने लगते थे और ज्योंही हीरानन्दजी उनको गोद में उठाकर मन्दिर की ओर चलते, त्योंही वे रोना छोड़, प्रसन्नता से फूल उठते थे ।

बचपन ही में इनकी माता का स्वर्गवास हो गया । माता की मृत्यु के पश्चात् पं० हीरानन्द की बहिन तीर्थदेवी ने बड़े प्रेम से उनका पालन किया ।

शिक्षा ।

७ वर्ष की अवस्था में ये अपने गाँव की पाठशाला में पढ़ने के लिए बैठे और वहाँ की ५ वर्ष की पढ़ाई इन्होंने अपनी बुद्धि, स्मृति और परिश्रम के प्रताप से केवल ३ ही वर्ष में समाप्त कर डाली । इसके पश्चात् "राम" ने एन्ट्रेन्स तक गुजरानवाला में शिक्षा पाई । राम के पिता चाहते थे कि वे एन्ट्रेन्स पास करने के बाद धन-संग्रह करके घर का दारिद्र दूर करें किन्तु "राम" की इसमें रुचि न थी । जब पिता ने आगे की पढ़ाई का कोई प्रबन्ध न किया तो राम एक दिन बिना किसी से कहे सुने ही लाहौर आकर मिशन कालेज में भर्ती होगये । यहाँ वह सिर्फ छात्रवृत्ति पर निर्वाह करके अध्ययन करते रहे, कभी एक समय और कभी कभी भूखे ही रह कर वे कठिन परिश्रम करते और परीक्षा में सदैव प्रथम हुआ करते थे ।

पिता ने जब देखा कि मेरी सहायता के बिना ही "राम" अपना खर्च चला सकते हैं तो उन्होंने उनकी स्त्री को भी उन्हीं के पास भेज दिया । अब स्वामी राम बड़ी आपत्ति में पड़े, छात्रवृत्ति से अपना ही निर्वाह कठिन था और गृहस्थी का भार भी सर पर आपड़ा । किन्तु 'राम' इस कठिनाई से तनिक भी नहीं घबराये और उसे झेलते रहे । उन्होंने दो पैसे की प्रातः और एक पैसे की शाम को रोटी खाकर गुज़र किया. एक दिन जब वे शाम को रोटी लेने के लिए दूकान पर गये तो दूकानदार ने कहा कि तुम एक पैसे की रोटी के साथ दाल मुफ़्त में खाजाते हो, मैं पैसे की रोटी नहीं बेचता, इस असहनीय वाक्य ने 'राम' के हृदय में बड़ी वेदना पहुँचाई और उस दिन से वे सिर्फ एक ही वक्त खाकर समय बिताने लगे । पाठक! साहस और धैर्य इसी का नाम है ! क्या आज भी कोई ऐसे विद्यार्थी हैं ?

यद्यपि 'राम' को पेटभर भोजन न मिलता था तथापि वे परिश्रम से तनिक न चूकते थे, फ़ारसी और गणित में कोई छात्र उनका समानता नहीं कर सकता था, बहुतसे विद्यार्थी उनके पास गणित पढ़ने आया करते थे । एक बार जब 'राम' एफ० ए० में पढ़ते थे तो उनके एक साथी ने ईर्ष्यावश यह सोचकर कि "यदि राम अनुत्तीर्ण हो जायँ या अच्छे नम्बरों में पास न हों, तो मैं ही प्रथम रहूंगा", 'राम' से कहा कि तुम ब्राह्मण होकर भी संस्कृत नहीं जानते यह कैसी लज्जा की बात है" । राम को यह बात असह्य हुई और वे दूसरे ही दिन फ़ारसी

छोड़कर संस्कृत के कमरे में जा बैठे । परीक्षा निकट थी, यद्यपि राम ने बड़ा परिश्रम किया तथापि संस्कृत के पर्चे में वे अनुत्तीर्ण होगये । दूसरे वर्ष राम ने जी तोड़ कर परिश्रम किया और सर्व-प्रथम पास हुए, गणित के प्रश्नपत्र में परीक्षक ने ६ प्रश्न देकर लिखा था कि इनमें कोई ५ प्रश्न हल करो किन्तु राम ने सब प्रश्नों को हल करके लिख दिया कि कोई से ५ देख लो यद्यपि और लड़के कठिनता से ५ प्रश्न हल कर सके ।

बी० ए० पास करने के पश्चात् राम मिशन हाई स्कूल में प्रोफेसर हो गये । ये प्रसिद्ध गणितज्ञ थे ही, करोड़ों का गुणा ज़बानी लगा डालना इनके लिए कोई बात ही न थी । इनके स्कूल में लड़के धड़ाधड़ भर्ती होने लगे । अब "राम" को पर्याप्त वेतन मिलने लगा किन्तु वे बड़े उदार थे, सब का सब रुपया परोपकार में ही लगा देते थे, प्रायः इनके पास खाने को भी रुपया न बचता था, ऐसी दशा में वे बहुधा ऋण लेकर अपना पालन करते थे ।

राम समय २ पर शहर के भिन्न २ समाजों में व्याख्यान भी दिया करते थे. इनके व्याख्यान प्रायः भक्तिरस से परिपूर्ण और हृदयग्राही होते थे । बहुत समय भक्ति के आवेग में वे अपने को भूल जाते और फूट फूट कर रोने लगते थे (एक दफा 'राम' अपने कमरे में बैठे प्रार्थना कर रहे थे कि हे कृष्ण ! क्या मुझे तुम्हारा दर्शन न होगा ? कब तक छिपे रहोगे ? यही कहते २ वे बेहोश हो गये, जब होश हुआ तो देखा कि एक काला साँप फन उठाये उनकी ओर आरहा है, किन्तु 'राम' उसको देखकर तनिक भी न हटे और निर्भीकता-पूर्वक कहने लगे कि हम तुम मिलेंगे मेरे प्यारे के तुम भी प्यारे हो । कहते २ वे पुनः बेहोश गये । सच्ची लगन और प्रेम इसीका नाम है ।)

यह लगन अन्त समय तक कम नहीं हुई रोज़ बढ़ती ही गई, अन्त को राम ने प्रोफ़ेसरी छोड़कर युवावस्था में ही सन्यास ग्रहण किया । बहुत समय तक इधर उधर वनों में घूमकर टेहरी-नरेश की सहायता से वे जापान गये, वहाँ राम ने अनेक व्याख्यान दिये, जिन्होंने उस देश में तहलका मचा दिया, बाद को राम अमेरिका गये, वहाँ उनकी बड़ी इज़्ज़त हुई. अमेरिका के प्रेसीडेन्ट तक राम से मिलने आये थे । बड़े बड़े योग्य और विद्वान अमेरिकन उनके शिष्य हो गये । उनकी शिक्षा से अनेकों नास्तिक आस्तिक बन गये ।

अमेरिका से लौटकर 'राम' अधिक समय तक जीवित नहीं रहे, एक दिन गंगा में स्नान करते समय वे भंवर में फँस गये, बहुत कोशिश करने पर भी वे निकल न सके, अन्त को समाधि लगाकर बात की बात में वे परमधाम को चल बसे । इस समय इनकी अवस्था सिर्फ ३५ ही वर्ष की थी, दीपावली का दिन था, रात को जब सारे भारत में रोशनी होनेवाली थी किसी को क्या मालूम था कि भारत-भूमि को अपने तेज से प्रकाशित करनेवाला दीपक आज गुल होकर देश में अन्धकार फैलावेगा । इनकी मृत्यु पर भारत ही में नहीं, वरन् जापान और अमेरिका में भी बड़ा शोक मनाया गया और एक अमेरिकन लेडी इनके गाँव की यात्रा के लिए आई थी ।

यद्यपि स्वामी राम अब इस संसार में नहीं हैं और वे अल्पायु में ही स्वर्ग सिधार गये तथापि उनकी विश्वव्यापिनी कीर्ति की पताका युग-युगान्तरों तक फहराती रहेगी । वे सदा के लिए अमर हैं । अटल ईश्वरभक्ति, उत्कृष्ट बुद्धि, अतुल परिश्रम, निर्लीन साहस, धैर्य, प्रेम और परोपकार आदि गुणों ने उनके नाम को सदा के लिए अमर बना दिया है ।

मनकामना ।

[लेखक—श्रीयुत नृसिंहनाथ त्रिपाठी ।]

(१)

हे दयामय ! क्यों दया इस देश पर करते नहीं ।
इस आर्य भारतवर्ष की आपत्ति को हरते नहीं ॥
जन्मान्तरों में कौनसा भारी किया वह पाप है ।
जगदीश ! जिसके हेतु से वह पा रहा उत्ताप है ॥

(२)

अज्ञान-राक्षस दुःखभारी दे रहा इस देश को ।
यदुनाथ ! आप बिना नशावे कौन इसके क्लेश को ॥
कीजे क्षमा अपराध हे माधव ! इसे अपनाइये ।
करके कृपालो ! निज कृपा अति शीघ्र दुःख नशाइये ॥

(३)

फिर वीरता से पूर्ण भारतवर्ष की सन्तान हो ।
नित धर्मजाति स्वदेश का प्रभुवर ! हमें अभिमान हो ॥
जिस कार्य में लग जायँ हम छोड़ें उसे न कभी विभो ।
बिन सफलता पाये कभी मोड़ें न मुख उससे प्रभो !

(४)

हम काल को भी देखकर मनमें न भय लावें कहीं ।
आलस्य मोहप्रमाद से निज धर्म को खोवें नहीं ॥
हम अजर अविनाशी सदा हैं नाथ ! ऐसा ज्ञान हो ।
यदि ध्यान हो हमको सदा निज देश का ही ध्यान हो ॥

(५)

यदि तान हो तो वीरता का ज्ञान गीता मान हो ।
यदि दान हो तो देश के हितप्राण का भी दान हो ॥
अन्तर पवित्र बने हमारा है मनोर्थ यही सदा ।
यश की पताका विश्व में उड़ती रहे प्रभु सर्वदा ॥

(६)

यदि ऋषि बनें तो मदनमोहन मालवीय समान हों ।
या गुणविज्ञेता देशनेता गोखले भगवान् हों ॥
स्वाधीनता मिल जाय हो आनन्द का ही सामना ।
खिल जाय उच्च-विचार सारे, है यही 'मनकामना' ॥

जल ।

[लेखक डा० बा० के० मित्र ।]

जल मनुष्य के शरीर का एक प्रधान उपकरण है। यह हमारे भोज्यपदार्थों में अधिकता से सम्मिलित रहता है । अतः निर्मल जल प्राप्त करना स्वास्थ्य के लिए अत्यन्त आवश्यक है ।

रासायनिक दृष्टि से पानी आक्सिजन (अम्लजन) और हाइड्रोजन (उद्जन) दो वायुओं का यौगिक और सबसे बड़ा प्राकृतिक द्रावक है । इसलिए विशुद्ध जल-प्राप्त करना दुस्तर है। वृष्टि का जल प्रकृति में सबसे विशुद्ध अवस्था में रहता है परन्तु बादलों से गिरते समय वायु में से इसके भीतर कितनी ही दूसरी वस्तुएँ सम्मिलित हो जाती हैं । पृथ्वी पर गिरकर तो बहुत प्रकार के पार्थिव पदार्थ इसमें सम्मिलित हो जाते हैं. परन्तु साधारणतः जल में सबसे अधिक अस्वास्थ्यकर वस्तुएं जीवाणु ही हैं. जो जल में रहकर मनुष्य के शरीर को हानि पहुंचा सकते हैं । ये विविध प्रकार के अति क्षुद्र देहविशिष्ट प्राणी होते हैं और मनुष्यशरीर में प्रविष्ट होकर अनेक रोगों को उत्पन्न करते हैं। इनका वर्णन अन्यत्र दिया जायगा ।

मनुष्य शरीर के लिए रासायनिक रीति से विशुद्ध जल की आवश्यकता नहीं, परन्तु पानी में इतने पार्थिव पदार्थ या जीवाणु न होने चाहियें कि स्वास्थ्य के लिए वे हानिकारक हों।

अब विचार करना चाहिये कि विशुद्ध जल प्राप्त करने के क्या २ साधन हैं।

(१) जल का सबसे बड़ा भाण्डार समुद्र है। इसका जल इतना खारा है कि काम में लाने योग्य नहीं। परन्तु हम आवश्यकता होने पर इसको अग्नि द्वारा बाष्प बनाकर विशुद्ध रूप में प्राप्त कर सकते हैं। प्राकृतिक अवस्था में यह सूर्य की किरणों से उत्पन्न होकर भाप के रूप में उड़ता और जमकर बादल बन जाता है। एक और अवस्था तक जमने पर बादल के भीतर जल के तुषार इतने भारी हो जाते कि वे वृष्टि के रूप में पृथ्वी पर गिरते हैं। यदि वृष्टि के प्रथम बौछारों को छोड़कर किसी रीति से वृष्टि का जल एकत्रित किया जाय तो वह सबसे विशुद्ध प्राकृतिक जल होगा। किन्तु इन प्रान्तों में, जहां वर्षा की न्यूनता है, इसको अधिक परिमाण में एकत्रित करना कठिन है। वर्षा का पानी कुछ तो नदी-नालों के द्वारा बह जाता, कुछ भाप बनकर उड़ जाता और कुछ पोली ज़मीनों में घुस कर स्रोत बन जाता है।

(२) पर्वतों पर से बर्फ पिघलने अथवा वर्षा होने के पश्चात छोटी २ नदियों और नालों में बहनेवाला जल भी एक प्रकार का अत्यन्त निर्मल प्राकृतिक जल है।

(३) स्रोत (झरने)—इनको एक प्रकार की भूगर्भस्थित नदियाँ कहना चाहिये। ये भी निर्मल जल प्राप्त करने की साधन हैं। इनमें से भूपृष्ठ पर पानी एकत्रित होकर सरोवर वा तालाब बन जाते हैं। पहाड़ी स्थानों में प्रायः इनका जल विशुद्ध होता है परन्तु सघन बस्तियों में यह जीव-जन्तुओं के मल-मूत्र आदि से मिलकर सेवन के अयोग्य हो जाता है।

(४) पहाड़ी नदियां में प्रायः जल निर्मल होता है, परन्तु समतल भूमि पर आकर बड़े २ नगरों के मलादि के सम्मिलित होने से कहीं २ इनका जल बहुत दूषित हो जाता है। किन्तु शीघ्रगामी नदियों में यह विशेषता होती है, कि इनमें जल, वायु के आक्सिजन (अम्लजन) के साथ मिलकर सूर्य-किरणों के प्रभाव से स्वयं दोषहीन हो जाता है। अतएव एक नगर के कई मील नीचे नदी का जल द्वितीय बार सेवन के योग्य हो जाता है।

(४) कूप तथा तालाब—ये एक प्रकार के कृत्रिम सरोवर हैं और प्रायः पृथ्वी को खोदकर बनाये जाते हैं। भारतवर्ष के अधिक प्रान्तों में अबतक इन्हीं का पानी व्यवहार किया जाता है। अतएव इनके विषय में कुछ अधिक ज्ञान होना चाहिये।

तालाब—इनमें जल आने के दो साधन हैं, एक भूमिपृष्ठ और दूसरा भू-गर्भस्थित स्रोत से आनेवाला जल।

भूमिपृष्ठ पर होनेवाली वर्षा का जल नालों द्वारा बहकर तालाब में एकत्रित होता है। स्पष्ट ही है कि इस देश में यह कितना हानिकारक हो सकता है। परन्तु अच्छे तालाब वे हैं, जिनमें भूगर्भस्थ स्रोतों से जल आता है। यदि ये सुरक्षित रक्खे जायँ अर्थात् इनमें मनुष्यों को शौचादि करने, नहाने और कपड़े धोने से रोककर यदि आसपास की ज़मीन साफ रक्खी जाय तो इसका जल पीने के योग्य रह सकता है। साधारण तालाबों में विविध प्रकार के मत्स्य या पौधे रहने के कारण इनका जल किञ्चित शुद्ध होता रहता है। इसके अतिरिक्त बड़े २ तालाबों में जल के सञ्चलन, वायु के मिश्रण, सूर्य की किरणें और अन्यान्य जीवाणुओं के प्रभाव से भी जल शोधित होता रहता है। यदि ऐसा न हो तो वह कुछ समय में मोरी की भांति मल से पूरित हो जाय।

कूप—गहराई के विचार से कुएँ तीन प्रकार के हैं। एक साधारण (कम गहरे); दूसरे इँदारे (गहरे); तीसरे 'आर्टीज़ियन' अर्थात् नल के गहरे कुएँ। प्रथम-श्रेणी के कुएं वे हैं, जो लग-

भग १०-१५ हाथ गहरे होते हैं। इनमें पृथ्वी के ऊपरी भाग से पानी शोषित होकर आता है अतएव इसमें विविध प्रकार की हानिकारक वस्तुएँ सम्मिलित हो सकती हैं परन्तु रेतीली मिट्टी के भीतर से वर्षा का पानी आने से इसका अधिकांश मल पृथक् हो जाता है। इसीलिए उनका जल स्वच्छ और मीठा होता है, तथापि ऐसे कम गहरे कुओं का पानी तालावों की भाँति संशयजनक ही रहता है। कारण इनमें केवल जीवाणु ही नहीं रहते, प्रत्युत वर्षाऋतु में भूगर्भस्थ जलपृष्ठ के ऊँचे हो जाने से इनका सम्बन्ध प्रत्यक्ष आवर्जना कुण्डों से होकर इनका पानी अत्यन्त दूषित हो सकता है।

(२) इंदारे (कुएँ)—इन प्रान्तों में इनकी गहराई चालीस, पचास हाथ या इससे भी अधिक होती है। यदि ये यथानियम बनाये जायँ तो इनको जल केवल गहरे स्रोतों से ही आ सकता है। भूपृष्ठ के स्रोतों तथा गहरे स्रोतों के बीच चिकनी मिट्टी की कई तहों के रहने के कारण दोनों स्रोतों में सम्बन्ध नहीं रहता। अतएव इनको ईंट-चूने से पक्के बनाने चाहियें। इनकी दीवालें पक्का और सीमेंट से बनानी चाहियें जिससे प्रथम तह के स्रोतों का जल कूप के भीतर न जा सके। गहरे स्रोतों के पानी में बहुत दूर के स्थान से एकत्रित होकर आने के कारण रोग उत्पन्न करनेवाले जीवाणु कम होते हैं, परन्तु इसके साथ ही इनका जल अधिक खारा होने की सम्भावना रहती है।

(३) आर्टीज़ियन वेलस या नल के गहरे कूएँ उन्हें कहते हैं, जो पृथ्वी में बरमें से सैकड़ों हाथ छिद्र करके बनाये जाते हैं। इनका नीचे का सिरा सबसे गहरे स्रोतों का जल एकत्रित होनेवाले पार्वतीय तल पर टिकता है। ये केवल उन्हीं घाटियों में बन सकते हैं जिनके आसपास की ज़मीन ऊँची होती है। अतएव इनके भीतर से जल फ़व्वारे की भाँति निकलता रहता है। इन कुओं की बराबरी साधारण कम गहरे नल के कुओं से न करनी चाहिये जो केवल २० हाथ तक गहरे होते हैं और पम्प द्वारा जिनका पानी खींचा जा सकता है। यह स्पष्ट है कि पम्प के ये कुएँ कम गहरे कुओं के बराबर ही हैं। इनमें जल पृथ्वीतल के प्रथम स्रोतों से ही आता है। अल्पकाल के मेले या सैनिक कार्यवाही के लिए साफ़ बनों के भीतर या पुरानी और सूखी नदियों के तलों में से अति उत्तम जल निकाला जा सकता है। परन्तु नगरों के भीतर मोरी और आवर्जना कुण्डों से सम्बन्ध होने के कारण विशेषतः वर्षा में इनका जल अल्प गम्भीर कुओं की तरह शंकाजनक होता है।

कूप विषयक नियम।

साधारण कूप बस्ती से कम से कम सौ गज़ दूर होने चाहियें। क़बरिस्तान तथा श्मशान के स्थान और खाद दिये हुए खेतों आदि से इनको बहुत दूर पर बनाना चाहिये। इनके आस पास दूर तक मैले जल गड्ढे या नाले आदि नहीं रहने चाहिये। इनकी भीतें आवश्यकतानुसार पक्की होनी चाहिये। अर्थात् गहरे कुओं की दीवारें पक्की सीमेंट से घुटी हुई होनी चाहियें और कम गहरे कुओं की दीवारें ऐसे पदार्थों से बननी चाहिये, जिनसे पानी झर सके। इनके मुख पर महीन तार से मढ़ी हुई खिड़की होनी चाहिये बाक़ी बन्द रहना चाहिये। कूप के ऊपर एक ऐसी मेंड़ होनी चाहिये कि जिसके द्वारा निकाला हुआ पानी फिर लौटकर भीतर न जा सके और गिरा हुआ जल किसी पक्की नाली द्वारा दूर लेजाकर फेंकना चाहिये।

यह सिद्ध है कि कुओं पर नहाना, कपड़े धोना आदि अति अनुचित है। कुएँ के पास कोई वृक्ष न होना चाहिये, इससे न केवल पत्ते और पक्षियों के बीट से पानी मैला होता है, प्रत्युत वृक्षों की जड़ों से कुएँ की दीवालों में छिद्र हो जाने की सम्भावना रहती है। कूप के भीतर

हर एक मनुष्य को अपने पात्र विशेषतः चर्म का डोल-डालना और धातुनिर्मित डोल ज़ंजीर के द्वारा व्यवहार करना चाहिये। इसके लिए पञ्जाबी चिरनी उत्तम है। नगरों में पम्प से काम लेना चाहिये जिसका मुख कूप से दूर स्थापित होना चाहिये।

इँदारे कूपों के लिए धातु का रहट अत्यन्त उपयोगी है। प्रत्येक कूप को वर्ष में एक बार (वर्षा ऋतु से पहिले) जल निकलवा कर साफ़ करवाना चाहिये, दीवालों की मरम्मत करवानी चाहिये और उसके जल में इतनी 'परमैंगनेट आफ़ पोटास' मिलाना चाहिये कि इसका रङ्ग कम से कम आध घंटे तक लाल रहे। १२ या २४ घंटे में यह जल सेवन-योग्य हो जाता है।

पानी का विकार—किञ्चित विचार करने से ज्ञात होगा कि जल अपने मूलस्थान पर ही ख़राब हो सकता है। फिर वहां से नहर तथा नदी के द्वारा विविध नगरों में होते हुए पृथ्वी के तल का मल भी घुल २ कर इसमें सम्मिलित हो जाता है। कूप तथा तालाबों में एकत्रित रहने पर इनके भीतर मोरी तथा अन्य प्रकार का निकृष्ट जल मिल जा सकता है और वहां से घरों में ले जाकर रखने में मैले मश्क़ तथा मैले घड़े यहां तक कि मैले हाथ लगने से इसमें कई प्रकार का मल, विशेष कर जीवाणु सम्मिलित हो जाते हैं।

पानी के जीवाणु विसूचिका, टाईफ़ाइड, (मोती भरा) अतिसार, पेचिश, कितने ही प्रकार के आंतों के कीड़े, रक्त के कीड़े (जो फ़ीलपाव या श्लीपद आदि रोगों के कारण हैं) और कई तरह के चर्मरोग पैदा कर देते हैं।

जल में मिश्रित पार्थिव पदार्थों से भी कितने ही रोग उत्पन्न हो सकते हैं। इनमें अश्मरी (मसाना की पथरी) अधिक विचारणीय है। पार्थिव पदार्थों की अधिकता से जल खारा हो जाता है। इसमें दाल और हरी तरकारियां उत्तमता से नहीं गल सकतीं। इस प्रकार के खारे जल में साबुन उत्तमता के साथ झाग नहीं देता और त्वचा को साफ़ करने के स्थान में उसपर चिकट जाता है।

खारे जल के दो भेद हैं, एक स्थायी, दूसरा अस्थायी। अस्थायी खारा जल वह है जिसका पार्थिव भाग उबालने या दूसरी रासायनिक क्रिया द्वारा सुगमता से पृथक हो जाता है। स्थायी खारा जल वह है जो उक्त उपायों से साफ़ नहीं किया जा सकता।

पानी साफ़ करने के उपाय—जल साफ़ करने की दो बड़ी २ प्रथाएँ हैं। एक प्राकृतिक, दूसरी मानुषिक। प्राकृतिक, जैसे कि पहिले बताया गया है सूर्य किरणों तथा वायु के आक्सीजन द्वारा जल के भीतर बहुत प्रकार के रोगजनक जीवाणु नष्ट हो जाते हैं। यह आक्सीजन वायु में से वेग से बहनेवाली नदी के जल में सम्मिलित हो जाता है और कुछ जल में उगनेवाले पौधे और आक्सीजन उत्पन्न करनेवाले जीवाणुओं के द्वारा प्राप्त होता है। इसके अतिरिक्त पानी में रहनेवाले कितने ही प्रकार के जीव तथा मछलियाँ, झींगा, घोंघे, सीपियां आदि जल में से बहुत प्रकार के मल को खाकर क्षय कर देती हैं। यह घन मल नीचे जमने के पश्चात् अन्य जीवाणुओं के प्रभाव से हानिकारक नहीं रहता।

मानुषिक उपाय—इसकी कितनी ही रीतियां हैं, जिनको हम तीन बड़े २ भागों में विभक्त कर सकते हैं। प्रथम भौतिक, दूसरा रासायनिक, तीसरा जैविक।

भौतिक उपाय।

(१) छानना—यह सबसे सुगम है, परन्तु साधारण कपड़े या पुरानी रीति के फ़िल्टरों के द्वारा छानने पर जल में से स्थूल प्रकार के मल का कुछ भाग पृथक् हो जाता है; परन्तु इन

से जीवाणु नहीं रुक सकते, प्रत्युत साधारण फ़िल्टरों में जीवाणु और भी अधिक उत्पन्न हो जाते हैं। अल्प परिमाण में जल साफ़ करने के लिए 'पास्च्यूर चेम्बरलैन्ड' या 'बर्कफ्यल्ड' का यन्त्र अत्यन्त उपयोगी और विश्वास योग्य है। इसका नियम यह है कि साधारण प्रकार से साफ़ किया हुआ जल किसी रसनेवाले मिट्टी के नलचे के भीतर से दबाकर निकाला जाता है जिसमें से जीवाणु नहीं निकलने पाते परन्तु इसके लिए दबाव का प्रबन्ध करना आवश्यक है।

अधिक परिमाण पर जल (जैसे कि नगरों में नलों के लिए किया जाता है) रेत और बजरी के स्तरों द्वारा छाना जाता है परन्तु वास्तव में छनने का साधन रेत नहीं किन्तु एक स्तर जीवितपदार्थ का गाद होता है जो रेत की पीठ पर जमकर पानी को जीवाणुओं से पृथक् करता है।

(२) उबालना—यह भी एक भौतिक प्रक्रिया है जिससे जल के सभी प्रकार के जीवाणु नष्ट होकर कई प्रकार के खार भी पृथक् हो जाते हैं। इससे जल का स्वाद फीका हो जाता है। उबाले हुए जल को बारम्बार एक पात्र से दूसरे पात्र में ऊँचे से डालने से वायु के मिश्रण से वह पुनः स्वादिष्ट हो जाता है।

(३) भभके द्वारा जल को साफ करना—इससे बहुत से घुले हुए घनपदार्थ सुगमता से पृथक किये जा सकते हैं और यह प्रक्रिया जहाज़ों पर अथवा रासायनिक अभिप्राय के लिए प्रयोग की जाती है। परन्तु इसमें बड़ी झंझट है खर्च भी अधिक पड़ता है, इसलिए साधारण व्यवहार में यह प्रथा उपयोगी नहीं है और यद्यपि इसके द्वारा सब से विशुद्ध जल प्राप्त होता है तथापि कई प्रकार के वायवीय पदार्थ साफ किये हुए जल में भी चले आ सकते हैं इससे जल स्वादिष्ट नहीं होता।

रासायनिक रीति।

(१) मल को तल में जमानेवाले पदार्थ—यथा फटकरी, परक्लोराइड आफ आयरन तथा निर्मली के द्वारा पानी के तल पर लालावत् मल का जाल बन जाता है जो उतरने में अपने साथ सब प्रकार के मल और जीवाणुओं को लपेट लेता और साफ जल ऊपर रह जाता है।

(२) जीवाणुनाशक औषधियां—यथा परमैंगनेट आफ पोटास, नीलाथोथा, नेस्फील्ड साहब की टिकिया, पार्थिव तथा उद्भिज अम्लद्रावक आदि जीवाणुओं को नष्ट करने की शक्ति रखते हैं, परन्तु इनपर बहुत भरोसा नहीं करना चाहिये।

(३) जैविक—अधिक परिमाण में जलशोधन करने के लिए जैविक साधनों से ही अधिक लाभ उठाया जा सकता है। इसके लिए यथाशक्ति विशुद्ध जल प्राप्त करना चाहिये। शहर या बस्ती से दूर नदियों से जल लेकर उसको विशेष प्रकार के चौबच्चों में छान करना चाहिये। चौबच्चों के नीचे के स्तर में छोटे २ रोड़े हों। इनके ऊपर एक स्तर मोटी बजरी हो और इसके ऊपर एक स्तर बारीक रेत रहे। नीचे से जल ऊपर छनने में भिन्न २ स्तरों के स्थूल और भासमान मल पृथक हो जाता है। परन्तु जीवाणु रेत में से भी सुगमता से निकल जाते हैं। रेत के ऊपर गाढ़ पदार्थ का एक स्तर जम जाता है जो एक प्रकार से जीवाणुओं का उपनिवेश है। जल में जितने भी हानिकारक जीवाणु होते हैं वे इस गाद में उलझकर रह जाते और विशुद्ध जल ऊपर छन जाता है।

पानी ठंढा करने की विधि—इस देश में किसी २ ऋतु में इसकी अधिक आवश्यकता पड़ती है। इसकी साधारण प्रचलित विधि रसनेवाले घड़े अथवा सुराहियों में पानी का रखना है। परन्तु इनके छिद्रों के भीतर जीवाणुओं का पालनपोषण होने के कारण यह भय से खाली नहीं। अतएव इनको समय २ पर

बदलना चाहिये अथवा धूप में तपाना चाहिये। यह स्पष्ट है कि मशक और चमड़े के छागल इनसे भी अधिक हानिकारक हैं। कपड़े से मँढ़ी हुई जस्ती सुराही इनसे उत्तम है जिसके ऊपर का कपड़ा भिगो कर रखने से जल कुछ ठंढा रह सकता है और मैली होने पर धूप या अग्नि द्वारा तपाई जा सकती है। ठंढा करने के लिए जल में बर्फ़ डालना साधारण विधि है परन्तु बाज़ार से बर्फ़ प्रायः मैले कपड़ों में लपेट कर लाई जाती है। इससे कितने ही रोग उत्पन्न होने की आशंका रहती है। हां उबाले हुए जल को न रखनेवाले पात्रों में बर्फ़ के भीतर रखकर ठंढा करने में कोई शंका नहीं। परन्तु जिनको इतनी बर्फ़ नहीं मिल सकती उनके लिए यह विधि बताई जाती है कि दिन भर मिट्टी के पात्रों को उलट कर धूप में रक्खें और सायंकाल के समय जल भर कर किसी हिंडोले में रखकर वायु में हिलाते रहें।

मत्सूशीमा यात्रा।

१५-७-१५।

लिनन का कारख़ाना देखने के बाद हम लोगों ने मत्सूशीमा के लिए प्रस्थान किया। गाड़ी में १ घंटे का विलम्ब था। इसलिए एक जापानी उपहार-गृह में जाकर मध्याह्न भोजन कर लिया। गृह की अधिष्ठात्री ने आसन बिछाकर सामने एक छोटी सी चौकी धर दी। हाथ धोने के लिए वह एक बड़े कटोरे में जल भर कर ले आई, मैंने संकेत से उसको बतलाया कि मैं इसमें हाथ नहीं धो सकता, तुम शुद्ध जल मेरे हाथ पर डालो तो मैं हाथ मुंह धोऊं। उसने ऐसा ही किया। भोजन के समय वह पास में बैठकर पंखा झलती रही। भोजन के उपरान्त जल, बरफ तथा स्थान व मेहनत के लिए हम उसको पांच आने देकर चल पड़े।

जापान में ६, ७ बड़े नगरों को छोड़ कर अन्य स्थानों में योर-एमेरिका जैसे होटल नहीं हैं। कारण आम तौर पर जापानी लोग देशी ढंग के भोजनालयों व वासस्थानों को ही पसन्द करते हैं। वेही उनके लिए स्वाभाविक और सुविधा के भी होते हैं। हाँ, उन बड़े २ नगरों में, जहां योर-एमेरिका निवासियों का अधिक आना जाना होता है, उस ढंग के होटल बने हैं। यह भी जापानी सरकार की मेहरबानी समझनी चाहिये, क्योंकि यदि वह भी उसी प्रकार का बर्ताव योर-एमेरिकावालों से करना चाहती, जैसा वे एशियानिवासियों से करते हैं, तो उसे मना करनेवाला कोई भी नहीं था। इससे मेरा अभिप्राय यह है कि योर-एमेरिका में एशिया-वालों के लिए कहीं भी कुछ भिन्न प्रबन्ध नहीं है।

इन स्वदेशी भोजनालयों में भोजन का मूल्य देना पड़ता है पर चाय, स्थान व मेहनत के लिए कोई रकम नियत नहीं है। इसका देना आगन्तुक की इच्छा पर निर्भर रहता है। हर एक व्यक्ति को कुछ न कुछ देना होता है, इसे "चढ़ाई" कहते हैं। योर-एमेरिकावालों ने इसका नाम "टी मनी" रक्खा है।

यहां से रवाना होकर हम रेल पर सवार हुए। चारो ओर हरे २ धान के खेत ही खेत दिखाई दे रहे थे। इनके सिवा वन्य-वनस्पतियों से भरे स्थान और ऊँचे नीचे टीले भी दिखाई देते थे। हरियाली से कहीं भी मिट्टी दिखाई नहीं देती थी। इस समय आकाश स्वच्छ नील-वर्ण था। गर्मी के मारे तबियत बेहाल होती जाती थी। कहीं वायु का नाम तक नहीं था। पानी पीते २ पेट फूल उठा तथापि प्यास बन्द नहीं हुई। इसलिए थोड़ी गरम चाय मँगा-कर पी, तब ज़रा प्यास रुकी। राम २ करते घंटे भर में 'उतसुनोमिया' स्टेशन पर आपहुंचे। यहां गाड़ी बदलनी पड़ती है। यह स्टेशन बहुत

बड़ा है। इसके प्लेटफ़ार्म पर ठंढे जल से भरा कांच का एक बड़ा कुंड बना है, जिसमें कृत्रिम पहाड़ बने हैं। इसमें लाल मछलियां और जल के पौधे भी हैं। इसके बाहर १ दर्जन नल लगे हैं, उन्हें खोल कर लोग पानी लेते हैं। यह नवीन दृश्य देखकर बहुत देर तक मनबहलाव हुआ।

जापान की बड़ी २ दूकानों व निवासस्थानों में कृत्रिम कुण्ड बनाकर उनमें जल व मत्स्य रखते हैं। कहीं २ इनमें फव्वारे और छोटे बड़े पेड़ भी लगे रहते हैं। पुराने समय में हमारे घरों में भी फव्वारे रहते और राजप्रासादों में छोटी २ नहरें बहा करती थीं, किन्तु अब तो ये बातें स्वप्नवत हो गईं। अब फव्वारों के बदले घरों में आग जलाने की चिमनियों की प्रथा चल पड़ी है। इसीका नाम है "भेड़ियाधसान।"

हम यहां से मत्सूशीमा की गाड़ी पर सवार हुए। गर्मी अभी तक कम नहीं हुई थी। पांच बजे के बाद आकाश में कहीं २ बादलों के टुकड़े दिखाई देने लगे और कुछ बयार भी चलने लगी। इससे ज़रा जी में जी आया। इसी समय उपासना का ध्यान आया। मुख धोने के लिए हम कमरे में गये। यहां एक अजब लीला दिखाई पड़ी। इसमें पायखाना योर-एमेरिका जैसा नहीं वरन् अपने देश कासा बना था। मुख धोने की व्यवस्था भी जापानी ढंग ही की थी। योर-एमेरिकावालों के लिए बाज २ गाड़ियों में काठ का एक तख़्ता रक्खा रहता है। आवश्यकता होने पर मामूली पायखाने पर उसको रख उस पर बैठकर उनको काम चलाना पड़ता है। इससे यूरोपियनों को वैसी ही असुविधा होती है जैसी हम लोगों को अपने देश में अँगरेज़ी ढंग के पायखानों से।

बड़े आनन्द से सब कामों से निपट कर हम बाहर आये और उपासना के उपरान्त बाहर का मनोहर दृश्य देखने लगे। अब सूर्य अस्ताचल के निकट पहुंच चुके थे, उनकी अन्तिम लालिमा बादलों पर पड़ रही थी। बादलों के पीछे छिपकर बैठा हुआ बाज़ीगर भी अपना करतब बादलों को नाना प्रकार का रूप देकर दिखाने लगा। अभी ऊंट था, फिर हाथी बन गया। देखते २ एक बन्दर की शकल आगई, सामने एक शेर भी दिखाई देने लगा। उसके माथे पर राजा का एक मुकुट आगया, इतने में एक गृद्ध ने झपटकर मुकुट गिरा दिया और दोनों आपस में गुथकर एक दूसरे में विलीन हो गये। कुछ देर में भारत का मानचित्र दिखाई देने लगा। सूर्य की अन्तिम रश्मि की आभा से वह लाल था किन्तु क्षितिज के नीचे जाने से वह हरा बन गया। देखते २ मानचित्र दो मनुष्यों के रूप में परिणत हो गया। जान पड़ता था कि इन दोनों के हाथों में एक २ पताका है और दूसरे हाथ आपस में मिले हैं। इतने में एक बड़े स्टेशन में गाड़ी के पहुंचने से बादल का तमाशा समाप्त हो गया।

मनुष्य की मानसिक शक्ति बड़ी प्रबल है। मन में जैसा विचार आता है वैसी ही शकल सामने आजाती है। रेल पर चलते समय पटरियों में से जो शब्द निकलते हैं उनको मनोगति से आप भैरव, कान्हरा, श्यामकल्यान, विहाग आदि जो चाहें वह राग दे दें जो राग आपके मन में आये उसीको वह शब्द गायेगा। इसी भांति नाना प्रकार के रूप व चित्र बादलों में भी मानसिक शक्ति बनाती व मिटाती है।

पौने नौ बजे हमारी गाड़ी निर्दिष्ट स्थान के निकट पहुंची। होटल का आदमी मौजूद था, उसने सामान सम्हाल लिया। हम लोग भी रिकशा पर चढ़ कर रवाना हुए। उस समय आकाश में बादल छाये हुए थे, झीमी झीमी झींसी पड़ रही थी। जाने का मार्ग पतला था, दोनों ओर खेतों में जल भरा था, कहीं २ तालतलैयां भी थीं। मार्ग में नितान्त अँधेरा था, केवल हमारे रिकशा की लालटेन काही कुछ प्रकाश पड़ता था। कहीं २ इधर उधर जुगनू चमक जाते थे और कभी २ दामिनि

भी प्रकाश दिखलाती थी। खेतों में दादुरों ने भयानक शोर मचा रक्खा था। उनके टर्र टर्र शब्द से कान फटे जाते थे। रास्ता ऊँचा नीचा होने से अंधकार के कारण भय भी लगता था कि कहीं गाड़ी खींचनेवाला गड्ढे में न गिरा दे, किन्तु यह भ्रममात्र ही था। थोड़ी देर में हम ग्राम में पहुंच गये। उस समय दूकानें बन्द हो गई थीं तथापि किसी २ के भीतर कुछ उजाला था। कहीं कोई कुछ लिख रहा था व कहीं मा, बच्चे को दूध पिला रही थी या कहीं लोग बैठे आपस में बातें कर रहे थे। घरों के सामने बाहर मैदान में भी लोग चौकी बिछाये पड़े और दिन के परिश्रम को मिटा रहे या इष्टमित्रों से वार्तालाप कर अपना समय बिता रहे थे। बाज़ार पार कर हम होटल के सम्मुख पहुंच गये। टोकियो होटल के एक पूर्वपरिचित कर्मचारी ने हमारा स्वागत किया और भीतर ले जाकर हमें एक कमरा दिखा दिया। हम भी दिन भर के थके मांदे थे, बिस्तर पर जाते ही निद्राभिभूत हो गये।

१६-७-१५।

सूर्योदय के बाद नींद टूटी। आखें खोल कर देखा तो सामने दूर तक समुद्र तट दिखाई दिया। यह पल्ली, समुद्र तट पर बसी है। यहां दूर तक समुद्र पृथ्वी में घुस आया है। मीलों तक जल थोड़ा ही थोड़ा है व इसमें छोटे २ टापू भी बहुत से हैं। इनमें बहुतों पर कुछ लोग भी रहते हैं, पर अधिकतर निर्जन ही हैं। चीड़ के बड़े २ वृक्ष भी उन पर लगे हैं। छोटी २ डोंगियाँ पाल उड़ाती हुई इधर उधर घूमती और मछलियाँ पकड़ती फिरती हैं।

प्रचण्ड धूप होने के कारण बाहर निकलने का साहस नहीं हुआ। होटल में बैठे २ समुद्र का मजा लेते रहे। दिन के ढलने पर जब धूप कम हुई, तब एक डोंगी पर घूमने को गये। २, ३ घन्टे तक इधर उधर घूमने के उपरान्त होटल में लौट आये।

यदि ज़मीन के भीतर किसी प्रकार से वृक्ष दब जाता है, तो उसकी कायापलट हो जाती है। यदि दबाव व ऊष्णता अधिक हुई तो वह कोयला बन जाता है। ऊष्णता कम होने से बहुत समय बीत जाने पर वह पत्थर बन जाता है। ऐसे पत्थरों के समूचे वृक्षों के तने संग्रहालयों में बहुत दिखाई देते हैं। पत्थर होने के पूर्व उनमें गुरुता बढ़ती है। ऐसे गुरुताप्राप्त वृक्षों के तने, जो पत्थर होने के निकट पहुंच चुके हैं, यहां बहुत हैं। यहां उनके पात्र बनाये जाते, जो बड़े चिकने व वज़नदार होते हैं। परदेशी लोग इनको स्मारक समझकर अपने देश में ले जाते हैं। मैंने एक छोटी थाली लेने का विचार किया था परन्तु उसका मूल्य १५) मुझे अधिक जान पड़ा, इसलिए उसको हमने नहीं ख़रीदा।

शाम को भोजन करने के समय अनेक बालक बालिकाएँ बाहर इकट्ठी हुईं। उनकी ओर देखने से वे दूर भाग जाते थे। मैंने ख़्याल किया कि ये हमको अजनबी समझ कर हमसे खेलाकर रहे हैं। कौतूहल से मैं एक रोटी का टुकड़ा लेकर बाहर आया और उनको बुलाने लगा। उनमें से एक लड़के ने आकर रोटी ले ली, तब मुझे मालूम हुआ कि ये रोटी चाहते हैं। मैंने एक बड़ी रोटी लेकर उसके टुकड़े उन्हें बाँट दिये। रोटी देने के समय आँखों में आंसू भर आये, एशिया की दीनावस्था की याद आगई। मैंने स्वप्न में भी यह कल्पना नहीं की थी कि जापान में भी ऐसी ही अवस्था होगी। योर-एमेरिका में यह अवस्था कहीं भी नहीं दिखाई देती। जर्मनी के बारे में तो यहां तक सुनने में आया है कि निर्धन कुटुम्ब के बालकों के लिए राष्ट्र-कोष से धन दिया जाता है। वहां कोई भी बालक रात्रि में भूखा नहीं सोता। सुना है कि वहां के राजा को जब यह समाचार मिल जाता है कि राज्य के सब बालकों ने भोजन कर लिया तब स्वयं राजा भोजन करते हैं।

संगीत

[लेखक—आचार्य लक्ष्मणदासजी ।]

बाबूजी—क्या वसंतराग को तुमलोगों ने याद कर लिया ।

लड़के—जी हां, हम लोगों ने इसे भली-भांति याद कर लिया है । (सुनाते हैं) ।

बाबूजी—हां ठीक है, अच्छा आज हम तुम्हें 'रागिनी हमीर' का एक भजन बतलाते हैं ।

लड़के—चाचाजी इस रागिनी के गाने का कौनसा समय है ?

बाबूजी—इसके गाने का समय रात्रि का प्रथम प्रहर है । इसका विशेष हाल इस दोहे से मालूम होगा ।

दोहा ।

दो मध्यम तीवर सबहिं, धैवत बादी जान ।
संवादी गंधार है, राग हमीर बखान ॥

लड़के—चाचाजी, हम इसका मतलब समझ गये । इसका मतलब है कि इस राग में दोनों मध्यम और सब स्वर शुद्ध लगते हैं । इसका वादी स्वर धैवत और संवादी गंधार है ।।

बाबूजी—हां ठीक है, अब तो तुम लोग दोहे से ही मतलब समझ लेते हो ।

लड़के—यह सब आपकी कृपा है ।

बाबूजी—अच्छा इस भजन को याद कर उसकी स्वर-लिपि भी कर लो ।

भजन हमीर ।

नमन करुं मैं गुरू चरणा,
भवभय हरणा वंदित चरणा,
तरणा प्रणत जन सुशरणा ।

अंतरा ।

कलिमल हरणा-सब सुख करणा,
अभय वितरणा-जगदुद्धरणा पातकहरणा ।

स्वरलिपि (नोटेशन) ।

भजन हमीर, तिताला ।

३				०				१				×			
नी	ध	सं	सं	ध	नी	प	—	प	प	ग	म	ध	—	—	—
न	म	न	कं	रूं	ऽ	म	ऽ	गु	रू	च	र	ण	ऽ	ऽ	ऽ
प	प	प	प	ध	ध	प	ऽ	ग	—	म	रे	स	रे	स	—
भ	व	भ	य	ह	र	णा	ऽ	वं	ऽ	दि	त	च	र	णा	ऽ
सं	सं	ध	—	सं	रें	सं	नी	ध	प	ग	म	ध	—	—	—
त	र	णा	ऽ	प्र	ण	त	ज	न	सु	श	र	णा	ऽ	ऽ	ऽ

अन्तरा ।

नोट—ध्यान रहे कि अंतरा खाली से उठता है ।

०				१				×				३			
प	प	प	प	सं	सं	सं	—	सं	सं	सं	सं	सं	रें	सं	—
क	लि	म	ल	ह	र	णा	ऽ	स	ब	सु	ख	क	र	णा	ऽ
सं	सं	गं	गं	मं	रें	सं	—	सं	रें	सं	—	ध	ध	प	—
अ	भ	य	वि	त	र	णा	ऽ	ज	ग	दु	ऽ	द्ध	र	णा	ऽ
मंप	धनी	संरें	नीसं	ध	प	ग	म	ध	—	—	—				
पाऽ	ऽऽ	ऽऽ	ऽऽ	त	क	ह	र	णा	ऽ	ऽ	ऽ				

नोट—इसके बाद फिर वही 'नमन करूं मैं' इत्यादि आरम्भ होगा।

लड़के—चाचाजी, यह भजन बहुत सरल और प्रिय मालूम होता है। हम इसको बहुत जल्द याद कर लेंगे किन्तु इसमें एक जगह पर अन्तरे में एक खाने में आठ सरगम लिखे हैं।

बाबूजी—वे सरगम उन्हीं चार मात्राओं के साथ तान के रूप में निकलेंगे और कोई विशेष बात नहीं है।

इतना कह कर बाबूजी उठ खड़े हुए और लड़के उस भजन को हार्मोनियम में निकालने की चेष्टा करने लगे।

हमारा पुस्तकालय।

"पैरोकार हाईकोर्ट"—इस उर्दू पुस्तक के रचयिता हैं, पंडित एम० एम० शर्मा, ४३५ कर्नैलगंज, इलाहाबाद। पृष्ठ संख्या १ सौ, मूल्य १)।

जब कोई वादी या प्रतिवादी हाईकोर्ट जाता है तो उसे वहां के कायदे क़ानून जानने के लिए सिर्फ़ मुहर्रिरों के मुंह की ओर ताकना पड़ता है। अब तक हिन्दी या उर्दू में इन विषयों को थोड़े में समझानेवाली कोई पुस्तक नहीं थी। इसलिए इस पुस्तक को प्रकाशित कर शर्माजी ने एक बहुत बड़ा अभाव पूर्ण किया है। हमें आशा है कि शीघ्र ही इसका हिन्दी संस्करण भी प्रकाशित हो जायगा। इसमें अदालत-सम्बन्धी सब बातें जैसे तलबाना और अन्यान्य फीसें देने के नियम, अपील करने का समय, अपील तैयार और फाइल करने के नियम आदि बड़ी सरलता से समझाये गये हैं। मतलब यह कि थोड़े में सब बातें ही इसमें दी गई हैं। आशा है कि लोग इससे अवश्य लाभ उठावेंगे।

'ओथेलो'—अनुवादक हैं श्रीयुत गोविन्द प्रसाद घिलड्याल, डिप्टी कलेक्टर। पुस्तक सजिल्द है। पृष्ठसंख्या १६८, मूल्य ॥)। प्राप्ति-स्थान लक्ष्मीनारायण यंत्रालय, मुरादाबाद।

अँगरेज़ी के प्रसिद्ध नाटककार शेक्सपियर के "ओथेलो" नामक नाटक का यह हिन्दी अनुवाद है। मूलकवि ने इस नाटक में लौकिक व्यवहारों की शिक्षा की बड़ी आवश्यकता दिखलाई है। इस अनुवाद के द्वारा हिन्दी पाठक भी उसे भलीभांति समझ सकेंगे। यागो, केसियो आदि पात्रों के चरित्र शिक्षाप्रद हैं। रसिक पात्रों के चरित्र में कुछ अश्लील शब्द दिये गये हैं। तथापि पुस्तक का विषय अच्छा और मनोरंजक है।

सम्पादकीय टिप्पणियां।

रूस में बलवा।

ज़ार सिंहासन से अलग किये गये।

प्रजातन्त्र की स्थापना।

संसार के इतिहास में इतने बड़े परिवर्तन के समान आज पर्यन्त कोई परिवर्तन नहीं हुआ। प्रजाशक्ति की महिमा इसीसे प्रगट होती है कि खूनखराबा भी नाममात्र को ही हुआ और परिवर्तन कुछ घंटों में ही हो गया। हम संसार को और विशेषकर रूस जाति को

प्रजाशक्ति की विजय

पर बधाई देते हैं। रूस जाति तो इस परिवर्तन का फल चक्खेगी ही किन्तु उसके साथ ही साथ संसार के इतिहास और उसमें बसनेवाली जातियों पर भी इसका प्रभाव पड़ेगा। रूस का विप्लव

समय की गति

का द्योतक है, यह दिखलाता है कि समय की लहर किस ओर और किस उद्देश्य से बह रही है, साथ ही साथ निरंकुश शासकों को यह संदेश दे रहा है कि चेतो या न चेतो, समय तुम्हारे विरुद्ध है, विवेक, मानवी सभ्यता, मनुष्योचित अधिकार, स्वतंत्रता और समता इन सब बातों के विचारों के साथ साथ तुम्हारी स्थिति असंगत है और विरोधाभास के अलंकारसदृश है। युद्ध के आरम्भ के समय में हमने कहा था कि इस युद्ध का (material) भौतिक फल चाहे जो हो किन्तु इसका (moral) नैतिक प्रभाव यह होगा कि मानव-स्वतन्त्रता का अधिक विस्तार होगा, राजाओं की कमी होगी, समस्त अधिकार धीरे धीरे प्रजा के हाथ में होंगे। ईश्वर ने मनुष्यों को एक समान पैदा किया है, एक ही प्रकार के हाथ पैर, आँख, मुंह, पेट से उसने उनको अलंकृत किया है और उसकी इच्छा यही है कि सब एक समान रहें। कोई धनमद, शक्तिमद या और ही किसी मद से किसी के स्वत्व न अपहरण कर सके और न कोई किसी के आधीन ही रहे। हमने लिखा था

"संसार की शान्ति

के लिए, अनेक राजाओं का न होना भी अवश्यम्भावी है।………संसार में एक ही राजा हो सकता है और मानवसमाज सब उसी की प्रजा हो सकती है"। यह सर्व आज नहीं हुआ जाता, सम्भव है इसमें अभी दो चार सौ या हज़ारों वर्ष की देर हो किन्तु इसकी सत्यता में हमको सन्देह नहीं है। यदि संसार किसी नियम से चालित होता है तो यह होगा, संसार की समस्त जातियों की एक पार्लामेंट होगी। वह सब के लिए नियम बनावेगी जैसे भारत में बड़े लाट की कौंसिल देशभर के लिए नियम गढ़ती है। स्थानीय शासन के लिए प्रान्तीय कौंसिलों की भांति प्रत्येक देश की जातीय महासभाएँ होंगी। ऐसा होने ही पर ईश्वर की सृष्टि

पूर्ण विकाश

को प्राप्त करेगी और संसार में शान्ति विराजेगी। रूस से श्रीगणेश हुआ है, जर्मनी पीछे नहीं रह सकता, इसी युद्धकाल में या युद्ध के कुछ ही समय बाद वहां भी परिवर्तन होगा इसके बाद आस्ट्रिया-हंगरी और यूनान में प्रजातंत्र की विजय होगी और इसी प्रकार से यह लहर बढ़ती जायगी। यह तो हुई

भविष्य की बात।

अब हम इस रूसी विप्लव के सम्बन्ध में भी कुछ कह देना चाहते हैं। सबसे पहिली और आवश्यक बात इसके सम्बन्ध में यह है कि यह

सन्धि

के लिए नहीं हुआ। रूस जाति ने ज़ार को

सिंहासन से इसलिए नहीं अलग किया कि वह युद्ध से घबरा गई हो और चाहती हो कि सन्धि स्थापित हो जाय । इसके विपरीत इस विप्लव का अर्थ यह है कि युद्ध में समस्त शक्तियां लगा दी जायँ और कोई बात उठा न रक्खी जाय । पाठक पूंछ सकते हैं कि युद्ध तो हो ही रहा था ऐसी अवस्था में और फिर ऐसे संकट के समय में रूस जाति के भक्तों ने, उसके उद्धारकों और उसकी वेदी पर अपने को न्योछावर करनेवालों ने, विप्लव करने की क्यों ठानी इससे तो युद्ध को हानि पहुंच सकती है । इसका उत्तर यही है कि विप्लव होना तो निश्चित था और आज कितने ही दिनों से प्रजा इसकी तैयारी कर रही थी । पहिले देशभक्तों ने यह तय किया था कि विप्लव युद्ध के बाद किया जाय किन्तु जब प्रजा के हितैषियों को यह विदित होने लगा कि सम्भव है युद्ध के बाद रूस जाति के मुंह पर कालिमा लग जाय, युद्ध समाप्त होने के पहिले ही वह शत्रु-दल से संधि कर ले, जब उन लोगों ने देखा कि दिखावे के लिए सब कुछ होते हुए भी युद्ध में पूरी शक्ति नहीं लगाई जाती, व्यर्थ में सैनिकों को बलि किया जा रहा है तब उन लोगों ने

युद्ध के बाद विप्लव

के इरादे को बदल दिया । विप्लव का असली कारण अत्याचार, अन्याय, निरंकुश-शासन, प्रजा के हाथ में शक्ति का न होना; सब कानून अफसरों की मुट्ठी में होना, देशभक्तों का, प्रजा के वकीलों का जेलों में सड़ना और हर प्रकार से जकड़े रहना था । यह बहुत दिनों से चला आ रहा था किन्तु प्रजा के असन्तोष की

अग्नि में घृत

डालने के लिए जो सन्निकट कारण हुए वे ये हैं:—

(१) ज़ार का ड्यूमा (प्रजा की जातीय महासभा) के अधिवेशन को स्थगित रखने की अवधि बढ़ाना।

(२) अन्न कष्ट।

ज़ार जानते थे कि असन्तोष बढ़ रहा है, उनके शुभचिन्तकों ने उनको समझाया भी कि ड्यूमा का अधिवेशन होने दीजिये किन्तु उनके मन में यह बात नहीं आई।

"हम"

ने उनको उनके कर्तव्य से विमुख रक्खा। प्रथम चार्ल्स ने जिस तरह पार्लामेंट के पाँच सभ्यों को पकड़ने की ज़िद में सिंहासन से हाथ धोया और सूली पर चढ़ा, उसी प्रकार ड्यूमा को स्थगित रखने के यत्न में ज़ार सब कुछ खो बैठे। इन सब बातों को भले प्रकार से समझने के लिए यह आवश्यक है कि रूस में जो कुछ हो रहा था उस पर ध्यान दिया जाय। पाठकों को यह भी ध्यान में रखना होगा कि इस विप्लव में

कैसर का हाथ

भी था। कैसर ने जो चाहा था वह सब हो गया किन्तु उनका उद्देश्य सफल नहीं हो सका। कैसर कूटनीतिज्ञ हैं और हम एक बार लिख चुके हैं कि संसार में उनके समान कूटनीतिज्ञ कम होंगे। वे मित्रदल में भंडाफोड़ करना चाहते थे और रूस से अकेले सन्धि चाहते थे। लोभ, साम, दाम सब उनके अस्त्र थे। सन् १९१४ के जुलाई मास में हो अस्त्रों की धमकी से वे रूस की कमर तोड़ना चाहते थे। वे समझते थे कि जैसे

१९०८-०९

में रूस दबकर बैठ गया था वैसे ही वह बैठ जायगा। जुलाई १९१४ में वे रूस में बलवा कराना चाहते थे जिसमें रूस, युद्ध में योग न दे सके किन्तु पासा उलट गया। ग्रेट ब्रिटेन में आयर्लैंड और रूस में प्रजादल, साम्राज्य से विमुख नहीं हुआ।

१९१५

में जर्मन फौज जो रूस पर चढ़ी थी वह चाल भी सैनिक और राजनैतिक नीति दोनों ही से

पूरी थी। दस वर्ष पहिले मंचूरिया के मैदान में हार की खबर से ही रूसी प्रजा अस्तव्यस्त हो गई थी, मालूम हुआ विप्लव हो जायगा, ज़ार ने तुरन्त सन्धि कर ली। यदि रूस लड़ता तो

जापान का जीतना

कठिन हो जाता किन्तु लड़ता कौन वहां तो घर की फ़िक्र थी कि कहीं घबराकर प्रजा लूट-मार न शुरू कर दे। जर्मनी की चढ़ाई का उद्देश्य यह तो था ही कि रूसी सेना नष्टभ्रष्ट की जाय किन्तु उसके साथ ही साथ उद्देश्य यह भी था कि चारो ओर से

जर्मनी की जीत

सुन कर रूस के प्रधान बड़े आदमी डर जायँ और सन्धि की चर्चा शुरू कर दें।

चाल की सफलता

में विश्वास इतना था कि रूसी सेना के बेतरह पीछे हटने पर जर्मनी में सन्धि की शर्तें तैयार हो गई थीं और जर्मनी रूस को उन उदार शर्तों को बतलाने को तैयार था जिन पर वह सन्धि कर लेता, इसमें केवल युद्ध के लिए नहीं किन्तु अनन्तकाल के लिए सन्धि के प्रस्ताव थे। प्रजा में अन्न कष्ट भी विकराल रूप धारण कर रहा था। प्रजा यह जानती थी कि देश में अन्न की कमी नहीं क्योंकि पैदावार पिछले वर्षों की अपेक्षा अच्छी हुई थी, प्रजा समझती थी कि

प्रबन्ध की गड़बड़ी

के कारण हार भी हो रही है और अन्न कष्ट भी। वह उतावली हो रही थी। उसी समय ज़ार ने युद्ध-सञ्चालन का भार अपने हाथों में ले लिया। नौका डूबते डूबते बच गई और वह आगे बढ़ निकली। हम ज़ार के विरुद्ध कुछ नहीं कहना चाहते, उनमें वही साधारण दोष था जो निरंकुश-शासकों में हुआ करता है। वह समझते थे कि ईश्वर ने उनको राज्य करने और दूसरों को शासित होने के लिए पैदा किया है। उनके दिमाग में यह बात नहीं आती थी कि आखिर वे महलों में क्यों रहें और दूसरे लोग पेट की ज्वाला से जलते हुए सड़कों पर पड़े पड़े क्यों प्राण छोड़ दें? इन सब के सिवाय वे कमज़ोर हृदय के थे, दूसरे उन पर हावी थे और विशेषकर उनकी

रानी

जो चाहती करती थी। इनकी रगों में कहीं पर जर्मन-रक्त की धारा भी प्रवाहित होती थी। इनके साथवाले भी स्वेच्छाचारी, अत्याचारी और

"हम" के चेरे

थे। इनमें कितने ही कैसर के हाथ में भी थे। एक तो ये अत्याचार करते थे, प्रजा यों ही इन से असन्तुष्ट थी, दूसरे जर्मनी से ये कुछ कुछ मिले हुए भी थे। इनमें एक

रासपुटिन जो महात्मा

के नाम से प्रसिद्ध था, बड़ा ही व्यभिचारी, शराबी, अपढ़ और दुष्ट था। स्त्रियों का शिकार उसका खेल था। यह एक साधारण साइबीरिया का कृषक था किन्तु अपनी चालों से यह इतना बढ़ा कि रूस में इसका प्रभाव ज़ार से कम न था। रानी इसकी चेरी थी। उनकी मज़ाल न थी कि उसकी मर्ज़ी के बिना एक तिनका भी खसका सकतीं।

रानी में कोई विशेषता

भी नहीं थी। स्त्री-स्वभाव ही उनका दुश्मन था उनके पुत्र नहीं था। कन्याएँ होती थीं। एक साधारण स्त्री, पुत्र के लिए व्यग्र रहती है फिर वे तो रानी थीं। वे देखती थीं कि बाद में सिंहासन खाली रहेगा। रासपुटिन ने उनपर रंग जमाया। लोग कहते हैं हिप्नाटिज़्म से उसने उन्हें अपने वश में कर रक्खा था। जो हो इसने कहा कि हम पुत्र देंगे और रानी को उसी वर्ष में पुत्र पैदा हुआ। फिर क्या था रूस में उसीकी तूती बोलने लगी। ज़ार के कुटुम्बी तथा राष्ट्र के अन्य बड़े बड़े अमीर-ओमरा उससे, उसके कुत्सित

चरित्र के कारण घृणा करते थे। ज्यूंमा किसी मनुष्य को किसी काम पर नियुक्त करती, रासपुटिन की इच्छा से रानी उसे हटा देतीं और उसकी जगह पर रासपुटिन का कोई अत्याचारी साथी बैठ जाता। जो लोग रूस के तारों को पढ़ते रहे हैं, उनसे छिपा नहीं है कि मन्त्रिमंडल में वहां आजकल रोज ही परिवर्तन हुआ करता था। युद्ध-मन्त्री जो नियुक्त होते थे रासपुटिन के चेले होते थे। इसलिए जेनरल सुखोम्लीनोवो, शीग्लोविटो, मेल्कावो आदि मंत्री होते हुए भी प्रजा की घृणा से जेल में बन्द किये गये हैं। मि० स्टरमर प्रधान सचिव होते हुए भी जर्मनी से मिले हुए थे। इधर तो युद्ध के सञ्चालन में ये गड़बड़ी कर ही रहे थे, उधर कैसर को उन्होंने यह वचन दे रक्खा था कि हम देश में बलवा करा देंगे और फिर

अलग सन्धि

करने का हमें अच्छा वहाना मिल जायगा। मि० स्टरमर हटाये गये किन्तु रानी ने उन्हें Minister of the Interior सचिव नियुक्त कर दिया। अन्नकष्ट के द्वारा और लोगों को उभार कर वे बलवा कराने के प्रयत्न में लीन हुए। प्रजा, सब कुछ देखता थी, जानती थी किन्तु लाचार थी। अन्त में राष्ट्र के अमीर-ओमरावों ने

रासपुटिन की हत्या

करने का निश्चय कर लिया। इतना ही कह देना अलम् होगा कि ज़ार के भाई ग्रैंड ड्यूक माईकेल जिनके पक्ष में ज़ार ने सिंहासन छोड़ा, इस हत्या में सम्मिलित थे। रासपुटिन की हत्या रूसी इतिहास में सदा स्वर्णाक्षरों में लिखी रहेगी। निरंकुश शासन के अन्त की बिगुल इसने रूस में बजाई। लोग पेट्रोग्राड में सहज ही में यह बहस करने लगे कि ज़ार और रानी की हत्या कब होगी? ज़ार और रानी की भी आंखें खुल गईं। रासपुटिन के साथियों ने रानी से कहा जब प्रजा पर आपका अधिकार हो नहीं तब फिर कौन कह सकता है कि कल ही वह आप पर या ज़ार पर अपना हाथ न साफ़ करेगी। यदि बलवाइयों को दंड नहीं दिया जाता, यदि ये कुचले नहीं जाते तो फिर सर्वनाश निश्चित है। अन्याय और अत्याचार बढ़ा, प्रजा के प्रतिनिधि दबाये गये और फलस्वरूप विप्लव हो गया। प्रजा, फौज और नौ-सेना वाले सब एक हो गये, मारकाट शुरू हो गई, सरकारी महलों पर कब्ज़ा किया गया, देशभक्त जो जेलों में सड़ रहे थे, इज़्ज़त के साथ लाये गये। जेलखानों के द्वार खोल दिये गये, ज़ार सकुटुम्ब अलग किये गये,

प्रजातन्त्र स्थापित

हो गया और इस तरह से अन्याय, अत्याचार और निरंकुश शासन के संसार से विदा होने की दुंदुभी बजाई गई। राष्ट्रीय-सभा का शीघ्र ही संगठन होगा, प्रत्येक मनुष्य को राष्ट्रीय सभा के चुनाव में वोट देने का अधिकार होगा। जो लोग कहते हैं कि भारत में शिक्षा नहीं, यहाँ प्रत्येक मनुष्य इस योग्य नहीं कि उसे वोट देने का, शासन में भाग लेने का अधिकार दिया जाय, ज़रा रूस की दशा देखें और आंख खोलें। हमारे जो अँगरेज़ राजनीतिज्ञ और यूरोपीय कूटनीतिज्ञ यह कहा करते थे कि रूस अधिकतर पूर्वीय है, वहां के लिए स्वेच्छाचार और निरंकुश-शासन ही उपयुक्त है, वहां प्रजासत्तात्मक राज्य की स्थापना स्वप्नमात्र है, आज प्रजा की शक्ति के महत्व को वे भी देखें लें। अस्तु। पाठक पूंछ सकते हैं कि इस विप्लव का

युद्ध पर प्रभाव

कैसा पड़ेगा। यह कहना बहुत कठिन है किन्तु सब कुछ होते हुए भी हम इतना अवश्य कह देना चाहते हैं कि युद्ध का अन्त अब निकट है। रूस की समस्या इस समय बहुत कठिन है। रूस जाति जी तोड़ कर जर्मनों से युद्ध करेगी। इतिहास हमको बतलाता है कि १८९० में

सिडान की लड़ाई

की हार के बाद भी फ्रेंच विप्लव के बाद फरासीसी सेना ने शत्रुओं को देश से बाहर भगा दिया था। विप्लव के बाद प्रकृति से ही जाति में नूतन रक्त और नूतन बल का सञ्चार हो जाता है। चीरफाड़ और रक्तपात से फोड़े का विकारयुक्त मवाद शरीर के बाहर हो जाता और शरीर बलिष्ठ हो जाता है। रूसी सेना में भी इस समय नवजीवन प्रवाहित हो रहा है। एक सैनिक में इस समय दो सैनिकों का बल है। किन्तु इस सब के साथ ही हमको यह भी नहीं भूलना चाहिये कि नूतन राष्ट्र के सामने राष्ट्र संगठन की भी

भीषण समस्या

उपस्थित है। राष्ट्र की समस्त शक्ति इसमें लग जायगी। विप्लव से नई नई आशाओं का संचार हुआ है। लोग स्वर्ग को पृथ्वी पर देखना चाहेंगे। आशा पूर्ण न होने पर उनमें असन्तोष फैलेगा। नेता, यथाशक्ति नव-आशाओं की पूर्ति के लिए चेष्टा करेंगे, जितनी पूर्ण होंगी उतनी ही वे और बढ़ेंगी, उनके हाथ पाव भी ढीले पड़ेंगे। ऐसी दशा में Extreme wing यानि अत्यन्त गरमदलवाले अलग हो जायँगे। संभव है ऐसी गड़बड़ी से प्रजा घबरा जाय और फिर बलवा हो जाय या चीन की भांति ड्यूमा का सभापति यूआनशिकाई सदृश कोई मनुष्य हो जाय। यह भी संभव है कि गड़बड़ी देख, ज़ार के साथी फ़ौज तैयार करें और एक बार राजा और प्रजा में खून की नदियाँ बह जायँ। क्या होगा यह कोई नहीं कह सकता किन्तु राष्ट्र-संगठन के लिए कम से कम एक मास कड़ा परिश्रम करना होगा। यदि इसी मास में

जर्मनी ने चढ़ाई

करदी तो सब कुछ नष्टभ्रष्ट हो जायगा। यदि संगठन हो गया तो रूसी सेना एक मास के बाद जर्मनी का अन्त कर देगी, युद्ध समाप्त हो जायगा, यदि जर्मन सेना ने तुरन्त चढ़ाई की तो रूसी सेना के हाथ पैर फूल जायँगे और युद्ध अन्त हो जायगा। हर प्रकार से युद्ध का शीघ्र अन्त होना एक प्रकार से निश्चित है। युद्ध पर विप्लव का यही प्रभाव होगा।

संसार को शिक्षा

भी इससे ग्रहण करनी चाहिये। जो "हम" के भक्त हैं, जो स्वार्थ के लिए, शक्ति के लिए, आत्मसम्मान के लिए, बलदर्पी हो दूसरों के स्वत्वों को अपहरण करना, उनको पैरों तले रौंदना अपना सहज स्वत्व समझते हैं, जो अधिकारी होने से दूसरों के अधिकारों की तनिक भी परवा नहीं करते, जो इस मसले

> "बजा कहे जिसे आलम उसे बजा समझो।
> ज़ुबाने खल्क को नक़्क़ारये खुदा समझो॥"

की सत्यता में विश्वास नहीं करते, प्रजा की आवाज को ईश्वरीय आज्ञा न समझ कर उसको दबाना चाहते हैं, जबान बन्द करने के लिए कानून बनाते हैं, प्रजा के प्रतिनिधियों को ज़ार के समान जेल में सड़ाते हैं, उनके लिए यह विप्लव विशेष प्रकार से उपदेशप्रद है। उनको इसका यह उपदेश

> "रुकाव खूब नहीं तबा की रवानी में।
> कि बू फसाद की आती है बन्द पानी में"॥*

सदा अपने सामने स्वर्णाक्षरों में लिख रखना चाहिये।

लम्पट महात्माओं

को भी यह शिक्षा लेनी चाहिये कि अंधेर अँधेरे में ही रह सकता है प्रकाश में आते ही यह नष्ट-भ्रष्ट होगा; राजा चेला हो, रानी चेरी हो, प्रधान अपना गुण गानेवाला हो किन्तु यदि

* तबीयत को रोकना ठीक नहीं, पानी के बहाव के बन्द करने से पानी में बू पैदा हो जाती है और वह हानिकर हो जाता है, इसलिए पानी और तबीयत के बहाव को रोकना अच्छा नहीं है।

प्रजा विरुद्ध है तो प्रजापति को भी विरुद्ध ही समझना चाहिये और आज नहीं तो कल

कुत्ते की मौत

मरना होगा। प्रजा को इस अटल सिद्धान्त— अत्याचार स्थायी नहीं हो सकता, संसार में सर्वश्रेष्ठ शक्ति प्रजा के हाथ में है और अन्त में उसीकी विजय होगी—में सदा विश्वास होना चाहिये।

देशभक्तों

को इस विप्लव से यह शिक्षा मिलती है कि साइ-बीरिया की बर्फ में गलते रहने पर भी जिनके लिए वह दुःख उठाता है वे उसे नहीं भूलते और अवसर आते ही वे उसका आदर करते हैं।

राज्य के विभीषणों

को यह शिक्षा मिलती है कि तुम कितने ही शक्तिशाली क्यों न हो, तुम्हारे पापों का फल तुमको भोगना पड़ेगा, देश और देश भाइयों का विरोध कर कोई सुखी नहीं रह सकता।

रूस में Universal Enlightment and freedom सार्वजनिक प्रकाश और स्वतंत्रता का बालसूर्य उदित हुआ है, हम इसका स्वागत करते हैं और आशा करते हैं कि संसार के घोर अन्धकार को यह शीघ्र ही छिन्न भिन्न करेगा।

❋

विलायती कपड़े पर कर।

पाठकों को सुनकर प्रसन्नता होगी कि विलायती कपड़ों पर ७॥) सैकड़ा के दर से कर बैठाया गया है। इसके पहिले विलायती कपड़ों पर ३॥) सैकड़ा के दर से चुंगी-कर लगता था। जैसे ही यह कर लगाया गया था विलायत के स्वार्थान्धों ने इसका विरोध किया था। जिसकी लाठी उसकी भैंस के सिद्धान्त के न्याय से लंका-शीयरवालों की जीत हुई। विलायती कपड़ों पर से कर हटाया जाना अन्याय होता इसलिए ज़हर को मारने के लिए स्वार्थी फैसला करने-वालों ने देशी कपड़ों पर भी ३॥) के दर से कर बैठा दिया था। भारतवासी बहुत चिल्लाये किन्तु कोई सुनवाई नहीं हुई। काँग्रेस में प्रस्ताव पास हुए, कौंसिल में चखचख हुई किन्तु सब व्यर्थ हुआ क्योंकि सब तरह से न्यायोचित होते हुए भी इससे विलायती व्यापारियों को हानि पहुंचती। स्वार्थ, सदा न्याय का गला घोटता रहा। इस समय भारत सरकार ने विलायती सरकार को युद्ध के लिए

१॥ अरब दान

दिया है। यह कर्ज़ लेकर दिया जा रहा है। कर्ज़ के रुपयों के लिए सूद के रुपयों का प्रबन्ध करना था। इन्हीं रुपयों के लिए विला-यती कपड़ों पर ७॥) सैकड़ा के दर से कर बैठा दिया गया है। यह अच्छा हुआ है, यद्यपि न्याय यह भी चाहता था कि देशी कपड़ों पर जो ३॥) का टैक्स लगता है, वह उठा दिया जाता।

लंकाशीयर ने विरोध

किया, उन लोगों ने धमकी दी कि यदि सुनवाई नहीं हुई तो लंकाशीयरवाले

युद्ध से उदासीन

हो जायँगे। (यदि भारतवासी किसी संबन्ध में ऐसा कहते तो क्या होता?) किन्तु मि० चेम्बर-लेन ने उनको सूखा जवाब दे दिया। यद्यपि हम जानते हैं कि सूद के रुपयों के लिए ही यह कर बैठाया गया है, यद्यपि हमको यह भी भय है कि युद्ध के अन्त होने पर कदाचित यह कर न रह जायगा तथापि हम भारतीय सरकार और विशेषकर अर्थ सचिव सर विलियम मेयर को इसके लिए धन्यवाद देते है। देशी कपड़े के कारखानों के हाथ अवसर आया है, यदि केवल धन पैदा करना ही उनका उद्देश्य नहीं है तो वे बहुत कुछ उन्नति प्राप्त कर सकते हैं

और भविष्य के लिए वे अपनी जड़ भी मज़बूत कर सकते हैं।

❋

नई बात।

भारतीय ब्रिटिश-शासन में यह पहिला ही अवसर था कि भारत की ललनाओं का डेपूटेशन वाइसराय के पास गया हो। कुली-प्रथा का मूलोच्छेद कराने के लिए तथा अपनी बहनों को हीन दशा से उबारने के लिए देश की कुछ प्रसिद्ध अग्रगण्य ललनाओं का दल श्रीमान वाइसराय की सेवा में उपस्थित हुआ था। श्रीमान वाइसराय ने स्वागत करते हुए प्रसन्नता प्रगट की और कहा कि ऐसी कुत्सित प्रथा का एक बार बन्द होकर फिर जारी होना कठिन है। हम आशा करते हैं कि बात ऐसी ही होगी।

❋

सूखा जवाब।

भारतीय प्रेस एसोसिएशन का भी एक डेपूटेशन वाइसराय से मिला था। श्रीमान ने बहुत ही नीरस, कड़ुआ और सूखा उत्तर दिया। प्रेसऐक्ट सदृश गलाघोटू और अन्यायोचित कानून को उन्होंने न्यायोचित सिद्ध करने की चेष्टा की। शक्ति में सब शक्ति है और क्या कहें।

❋

विष से अमृत।

"भारत रक्षा कानून" अभी तक अधिकतर मिसेज़ बीसेन्ट, मि० तिलक, पाल और वाडिया आदि सज्जनों को दुःख पहुंचाता था, उसने कोई ऐसा काम नहीं किया था जिससे वह अपना नाम सार्थक करता, किन्तु अब उस विष से अमृत की बूदें टपकी हैं। कुलीप्रथा को एकदम उसने बन्द कर दिया। जहाज़ों की कमी के साथ ही रणक्षेत्र में कुलियों की आवश्यकता ही इसका कारण है। प्रजा का आन्दोलन एक तरह से सफल हुआ। कम से कम अब युद्ध के समय तक हमारे देशी भाई कुली न बनाये जायँगे। हमारा विश्वास है, यदि भारतवासी सचेत रहे तो युद्ध के बाद भी यह नाशकारी प्रथा न प्रचलित हो सकेगी।

❋

हिन्दू और मुसलमान।

"होता है बन्धु-विरोध जहाँ,
है सर्वनाश ही उचित वहाँ"

प्रान्तीय कौंसिल में माननीय मि० चिन्तामणि ने यह प्रस्ताव उपस्थित किया था कि न्यायविभाग के निम्नश्रेणी के न्यायाधीशों के लिए जिस प्रकार से उर्दू का ज्ञान वैसेही हिन्दी का भी ज्ञान अनिवार्य कर दिया जाय। यह सर्वथा न्यायोचित था क्योंकि प्रस्ताव हिन्दी या उर्दू या हिन्दी ही के लिए नहीं, वरन हिन्दी और उर्दू दोनों के लिए था। मुसलमान सदस्य किन्तु इसे सहन न कर सके, स्वराज्य, होमरूल, भाईचारा आदि का स्वप्न हवा हो गया और बड़े ज़ोर से इस प्रस्ताव का विरोध किया गया। नवाब अब्दुल मजीद को यही नहीं मालूम था कि हिन्दी कोई भाषा भी है। वे कहने लगे, उर्दू के शत्रुओं का यह आन्दोलन है। मि० रज़ाअली ने प्रस्ताव उपस्थित किया कि उर्दू के साथ साथ रूसी, फ्रेंच, लेटिन, स्पेनिश, इटैलियन भाषा का ज्ञान अनिवार्य कर दिया जाय किन्तु हिन्दी का नहीं। जो चाहे हो किन्तु हिन्दी न होने पावे, विरोधियों का मन्तव्य यही था। राष्ट्रीय दल के मुसलमान सैयद वज़ीर हसन ने भी विरोधियों का ही साथ दिया। हमारे दो एक हिन्दू भाइयों ने भी जो कदाचित उर्दू ही को अपनी मातृभाषा समझते हैं और जो स्वराज्य का भी स्वप्न देखा करते हैं, चुप्पी साध कर हिन्दी का विरोध किया। यदि उर्दू के साथ साथ हिन्दी का जानना भी आवश्यक कर दिया जाय तो हानि क्या है? जो मुसल-

मानों को खुश रखकर हर तरह से अपने स्वत्वों को कुचलने को तैयार हैं, वे इसका उत्तर दें। हिन्दुओं को साथ ही साथ मुस्लिम नेताओं द्वारा दी हुई इस शिक्षा के मर्म को भी समझना चाहिये।

तुम्हारे शत्रु हैं।

"केपिटल" पत्र ने लिखा है "होमरूल दल" के स्वयं-सेवक सैनिकदलों की भर्ती को देखकर भारतनिवासी अँगरेज़दल चिन्तित हो गया है। अभी मि० तिलक की एक सभा में ५०० स्वयं-सेवकों ने नाम लिखवाये थे। अँगरेज़ मि० तिलक की इस चाल को गूढ़ मतलब से भरी हुई समझते हैं। कौन कह सकता है कि समय पर ग्रेटन के स्वयं-सेवकों की भांति सरकार के विरुद्ध ही ये न खड़े हो जायँगे। एक ओर यह है दूसरी तरफ से सरकार यदि इन स्वयं-सेवकों की सेवा न स्वीकार करे तो मि० तिलक और उनके साथियों को भीषण आन्दोलन करने का मौका मिलेगा।" इसी तरह की बातों को लिखकर पत्र ने अपने कलेवर को काला किया है। बात तो यह है कि यदि मि० तिलक यह कहते कि स्वयं-सेवक मत बनो, इससे कोई लाभ नहीं तब भी ये पत्र गाली देते। इनका सिद्धान्त तो देशभक्तों को गाली देना है। इनका कहना तो यह है "हम तुम्हारे शत्रु हैं, तुम जो चाहे करो, हम तुम्हारे विरुद्ध ज़रूर लिखेंगे।

सवाल यह है

कि यदि येही बातें किसी देशी पत्र में निकलतीं तो प्रेसऐक्ट का वह शिकार बनता या नहीं? जातियों में मनोमालिन्य पैदा करनेवाला यह लेख प्रायः चार सप्ताह हुए छपा था, किन्तु मालूम पड़ता है सदा, सजग प्रेसऐक्ट की धार चलानेवाले सो रहे हैं, उनकी दृष्टि में यह लेख नहीं आया। खेद से कहना पड़ता है कि जब सरकार भाईचारा, प्रेम, विश्वास, सहयोग आदि का राग अलापती है, कुछ संकीर्ण हृदयवाले ऐसी बातों को कहकर देशभक्तों को पीड़ा पहुंचावें। क्या हम आशा करें कि सरकार इसका ख्याल न कर कि लेख एक एँग्लो-इन्डियनपत्र में छपा है, कुछ अपनी कार्यवाही करेगी?

होमरूल।

कामन्स सभा में मि० बानरला ने कहा है कि सरकार आयरिश-होमरूल के प्रश्न के निपटारे को फिर शीघ्रही हाथ में लेगी। सौभाग्य से मि० बानरला विलायत में हैं, वे भारतीय नहीं हैं, नहीं तो युद्ध के समय में ऐसे विवादात्मक और महत्वपूर्ण प्रश्न को छेड़ने के कारण एँग्लो-इंडियन-पत्रों और मेकड़ानल सिडेनहम सदृश लार्डों की जलीकटी बातें उनको सुननी पड़तीं।

साम्राज्य-सभा

की बैठक आरंभ हो गई है। यह सन्तोष की बात है कि सभा में भारत को प्रायः वही सम्मान और अधिकार है जो अन्य साम्राज्य के अङ्गों को प्राप्त हैं।

युद्ध की गति

एक दम बदल गई है। सभी देशों में जर्मन पीछे हटते जारहे हैं और मित्रदल की जीत हो रही है। अब खबर आई है कि जर्मन सेना रूस और इटली पर चढ़ाई करने के लिए प्रस्तुत है।

स्वराज्य।

"युद्ध के बाद सुधार" की चर्चा करते हुए रेवरेन्ड डा० लाजरस ने लिखा है:—

Nothing Short of Home Rule can satisfy Indian Patriots. They could administer public trusts much better and far more successfully than foreigners. They deserve it and therefore demand it. They respect parental supremacy but long for the grown-up child's freedome. Witness the success and boldness with which political and social reforms are introduced in our Protected States. *A foreign mind can not sympathise with the Indian any more than* an angel can enter into the feelings of a human being. *The foreigner cannot forget that he is white* while the Indian is not. What has been possible for Japan in fifty years can not be impossible for India in a hundred.

अर्थात् भारतीय देशभक्तों को होमरूल से हीन कोई वस्तु भी सन्तुष्ट नहीं कर सकती। शासन का कार्य विदेशियों की अपेक्षा कहीं अधिक सफलता से वे सम्पादन कर सकते हैं। वे इसके योग्य हैं और इसीलिए वे स्वराज्य चाहते हैं। ......विदेशी यह कभी नहीं भूल सकता कि उसका चमड़ा गोरा है और भारतीयों का काला। जापान ने ५० वर्षों में जो कुछ कर लिया वह भारत के लिए सौ वर्षों में असंभव नहीं हो सकता।

जनता की अयोग्यता

की चर्चा करते हुए साहब ने लिखा है "सभी और देशों में जनता धीरे धीरे उन्नति करनेवाली होती है। इङ्गलैंड में भी शिक्षा को अनिवार्य हुए अभी बहुत दिन नहीं बीते। स्वराज्य होते ही भारतवासी सब से पहिले शिक्षा को अनिवार्य कर देंगे, अर्थ-विभाग और शासन कार्य को श्रेष्ठ रूप से चलाने के लिए कितने ही "टोडरमल" पैदा हो जायँगे। केवल स्वतंत्रता का न होना ही सब विभागों में भारतवासियों की उन्नति का बाधक है"।

उपर्युक्त बातों को एक तटस्थ अङ्गरेज़ ने लिखा है; वह विदेशियों का शत्रु नहीं, और न वह भारतवासियों का पक्षपाती ही है। हमारे विरोधियों के पास क्या इन बातों का कोई उत्तर है?

❋

सवाल कुछ जवाब कुछ।

पाठकों को विदित है कि पञ्जाब सरकार ने यह आज्ञा प्रचारित की थी कि लो० तिलक पंजाब प्रान्त में न घुसने पावेंगे। लो० तिलक ने पंजाब के प्रधान को लिखा कि न किसी ने पंजाब से उन्हें बुलाया ही था और न स्वयम् उनका जाने का विचार ही था, ऐसी अवस्था में ऐसी मनगढ़न्त बातें क्यों छापी गईं। लो० तिलक को अब यह जवाब मिला है कि उनकी प्रार्थना की सुनवाई नहीं हो सकती। लो० तिलक ने कोई प्रार्थना नहीं की थी फिर भी यह जवाब। इस जवाब के गढ़ने में पंजाब सरकार ने एक मास का समय लिया!

अभ्युदय प्रेस, प्रयाग में बद्रीप्रसाद पाण्डेय के प्रबन्ध से छपकर प्रकाशित हुई।

भाग १३] मई, सन् १९१७—वैशाख [संख्या ५

ऐक्य।

[लेखक—श्रीयुत कृष्णविहारी मिश्र, बी० ए० ।]

भारत में बहै एकता धार !!!
'उच्चविचार सिखर' सों विगलित
पतित 'प्रताप पहार'।
तितसों 'समता समतल' 'जलभल'
विरमत करत विहार॥
'भिन्न धरम के ललित कूल' लखि
'मन में सुखसञ्चार'।
'आतमबल के प्रबल भँवर' परि
प्रगट घोर गुञ्जार॥
लहरत 'लहर विविध भावन की'
सरसावन सुखसार।
अति अथाह 'परवाह' पुन्यमय
सब विधि 'देस सुधार'॥
'कुरुचि-कीच' पर 'सुरुचि जीव जल'
सुख सों सिखत सिकार।
'गौरव कमल' अमल विकसित बहु
सुरभित यस सतकार॥
'देस प्रीति ही सस्य स्यामला'
झलकत दोऊ पार।
'राष्ट्र समुद्र' समुद नियरानों
मिलन अवसि निरधार॥
'जातीयता पुनीत परब' को
होय अचल विस्तार।
भारत में बहै एकता धार !!!

सभ्यता की काटछांट।

[लेखक—श्रीयुत गुलाबरायजी, एम० ए०।]

संकोच और काटछांट आधुनिक सभ्यता का मुख्य लक्षण है। सभ्यता की कैंची चारो ओर चलती है। हमारे आन्तरिक भाव तथा वाह्यावरण दोनों ही काल के प्रबल प्रभाव से संकीर्णता को प्राप्त होते जाते हैं। सब लोग ही 'अलमिति विस्तरेण' पुकार रहे हैं, 'हर प्रकार की वृद्धि को कम करो' यही आजकल की उन्नतिशालिनी समाज के कर्तव्यशास्त्र का पहिला सूत्र है। इस बात को सिद्ध करने के लिए हम समाज के भिन्न २ विभागों की यथाक्रम आलोचना करेंगे। सबसे पहिले हम बाहरी बातों ही पर दृष्टि डाल कर देखेंगे कि हमारे कथन की कहां तक पुष्टि होती है।

वस्त्र और वेष—पुराने चाल की ढीली ढाली पोशाकें इस काल के कठिन वेग में हमारी समाज से उड़ती जारही हैं। चारो ओर चुस्ती की दुहाई दी जाती है। उठने बैठने में चाहे जितना ही कष्ट क्यों न हो किन्तु आजकल का शिक्षित समुदाय धोती या पायजामा पहन कर असभ्यता का कलङ्क अपने ऊपर नहीं आने देता, पतलूनों के पांइचे सुकड़ २ कर ब्रीचेज़ का आकार पाते जा रहे हैं और हमारे कोट तो इतने ऊपर को चढ़ते जा रहे हैं कि शायद कुछ काल में कोट और वास्कटों में कुछ अन्तर ही न रहेगा। विलायत की स्त्रियों के सायों में इतना संकोच हो गया है कि उनको साधारण रीति से चलना ही कठिन हो जाता है। इसी कारण बहुत सी रमणियों ने ब्रीचेज़ पहनना आरम्भ कर दिया है। वकील और प्रोफ़ेसरों की गाउने ही प्राचीनकाल के स्मारकरूप से स्थित हैं; किन्तु वे भी किसी समय संसार की परिवर्तनशीलता का परिचय देने लग जायँगी। पुराने ज़माने में लोग अपने शरीर के परिमाण की लाठी बांधा करते थे परन्तु क्रमशः घटते २ अब वह वेत के रूप में परिणत हुई है। चश्मा, आजकल की सभ्यता का चिह्न है किन्तु हमारा उत्तरोत्तर वर्धमान समाज उसका भार न सह सका, इसी कारण उसके भी किनारे और कमानियों को विदाई दी जारही है। हमारे देश के प्राचीन लोग बड़ी मूछों को गौरव का चिह्न समझते थे, किन्तु आजकल की समताप्रिय समाज ने उनका भी लोप कर स्त्री-पुरुषों के अनावश्यक भेद को उड़ा दिया है। इससे अधिक काट छांट की और क्या पराकाष्ठा हो सकती है?

बोल-चाल—प्राचीन लोग विस्तार के भय से कभी २ सूत्रों में लिखा करते थे किन्तु आजकल तो हम सभी लोग तार की अल्प शब्दवाली भाषा बोलकर अपनी मानप्रतिष्ठा बढ़ाना चाहते हैं। 'मुझे फ़ुर्सत नहीं है' "अच्छा' बस और कुछ कहना है" 'सलाम' ये सब बातें परिश्रमशीलता और कार्यकुशलता की सूचक समझी जाती हैं। हम लोग एक या दो शब्द से पूरे वाक्य का काम चलाना चाहते हैं और शायद कुछ दिनों के बाद नये व्याकरणों में क्रिया का अभाव, दोष न समझा जायगा हम अपने हृदय के संकोच को भाषा के संकोच से और भी संकुचित कर देते हैं और बहुत से भोले-भाले लोगों के हृदय में नैराश्य और असन्तुष्टता का बीज बो देते हैं। दो चार शब्द और बोल कर हम एक गरीब आदमी को सन्तुष्ट कर सकते हैं किन्तु हमारी मितव्ययिता हमें शब्दों की फ़ज़ूलखर्ची से भी रोकती है। इसी मितव्ययिता का नियम चिट्ठीपत्री में भी पालन किया जाता है।

लेखन-शैली—संक्षेपता की जरूरत केवल हास्यपूर्ण लेखों ही में नहीं वरन् सभी प्रकार

के लेखों में इसकी आवश्यकता है। अपने पत्र-व्यवहार के ऊपर निगाह डालिये तो आपको मालूम होगा कि सभ्यता की कैंची इस ओर भी स्थिर नहीं रही है। सिद्धश्री सर्वगुणनिधान सर्वोपमा योग्य इत्यादि २ वाक्यों का बिलकुल लोप हो गया। आजकल तो केवल 'प्रियवर' अथवा 'श्रीमान् महाशय' से हमारा सन्तोष हो जाता है। नीचे भी भवदीय कृपाभिलाषी लिखने का लोग कष्ट नहीं करते, केवल भवदीय लिखकर ही भाषण का ऋण चुका देते हैं। जहां तक संकेतों से काम चलता है वहां तक पूरे शब्द लिखने का कष्ट नहीं उठाते। कन्हैयालाल शर्मा के बजाय के० एल० शर्मा ही लिखकर समय की फ़ज़ूलखर्ची के दोष से बचना चाहते हैं। भाषा की शुद्धि के बहाने एमेरिकावाले Though को केवल the ही लिखते हैं आजकल सभी पत्र दूकानदारी की रीति पर लिखे जाते हैं। सम्भव है कि कुछ काल के बीतने पर विस्तार से लिखनेवाले पर टेक्स लगने लगे। आजकल समालोचक लोग तो पहिले और आखिरी सफ़े के अतिरिक्त और कुछ पढ़ते ही नहीं शायद किसी समय लेखक लोग भी समालोचकों का श्रम बचाने के लिए दो सफ़े से अधिक परिमाण की किताब को लिखना बन्द कर देंगे।

रीति-व्यवहार—इधर तो काट छांट का काम खूब ही उत्साह से हो रहा है। जरा नमस्कार-प्रणाम की रीति की ओर देखिये। पहिले तो साष्टांग प्रणाम किया करते थे—फिर हाथ जोड़कर प्रणाम करना आया, उसके बाद दोनों हाथों का एक हाथ ही रह गया, अब एक हाथ से एक उङ्गली ही रह गई—"सभ्यता की कांट छांट" का यह अच्छा उदाहरण है। समाज-संशोधन का आश्रय लेकर आजकल के लोग विवाहादि में फ़ज़ूलखर्ची कम करने का यत्न कर रहे हैं, लेकिन सब मितव्ययिता; फैशनेबिल कपड़े पहिन कर मोटरकार में चढ़ने के लिए की जाती है। त्योहारों में शामिल होना, समय खराब करना समझा जाता है लेकिन समय की यह बचत पोलो और गोल्फ खेलने के निमित्त की जाती है। सभी बातें सभ्यता के प्रवाह में बही जा रही हैं। जो बातें अभी तक स्थित हैं, उनके लिए आश्चर्य है। अब जरा आन्तरिक भावों और विचारों की ओर निगाह फेर कर देखना चाहिये कि सभ्यता की तीक्ष्ण छुरी की पहुंच कहां तक हुई है?

सौहार्द और उदारता का भाव,—इन भावों की आजकल बहुत ही कमी होती जा रही है। आजकल सभी लोग कृतबुद्धि (Practical) हो गये हैं। सच्चे भाविक पुरुष, मूर्खों की संज्ञा में रक्खे जाते हैं। ऐसे लोगों को संसार में कहीं ठिकाना नहीं है। मित्रता तो जहां तहां रही, विवाद भी अर्थशास्त्र के नियमों से शासित रहते हैं। होटलों के खुल जाने से अतिथि-धर्म की महिमा भी उठती जा रही है। सभी लोग अपने और पराये में भेद करने लग गये हैं। वकीलों और न्यायालयों की बदौलत घर २ में फूट मच रही है। अविभक्त कुटुम्ब (joint family) कुछ दिनों में ऐतिहासिक खोज का एक विषय बन जायगा। सभी लोग पैतृक, धार्मिक और राजनैतिक अधिकार को छोड़ व्यक्तित्व (Individuality) के झंडे के तले आरहे हैं।

दार्शनिक विचार—आजकल की यूरोपियन फिलासफ़ी आध्यात्मिकता की ओर तो अवश्य झुक रही है किन्तु वहां के दार्शनिक विचारों में आधुनिक संकोच की झलक भली भांति प्रतीत होती है। सब बातों में ही परिमितता आगई है। देश (space) और काल (time) दोनों ही परिमित माने जाते हैं। प्रेगमेटिज़्म (Pragmatism) के अनुयायी तो ईश्वर में भी परिमितता का दोष लगाने में नहीं चूकते। वर्तमान काल के तत्ववेत्ता जीव को ईश्वर से पृथक् मानकर जीव की उत्कृष्टता को घटा देते हैं। इसी प्रकार सब विचार, सीमाबद्ध हो जाने के कारण ज़माने की काटछांट का परिचय

दे रहे हैं। विकाशवाद के अनुसार मनुष्य-जाति की उत्पत्ति भी बन्दरों की पूंछ के क्रमशः संकुचित होकर लोप हो जाने के कारण हुई है। हमारी कल्पना की पुष्टि के लिए इससे अधिक और क्या प्रमाण चाहिये?

यह ऊपर की हास्यपूर्ण समालोचना चाहे ठीक हो, चाहे गलत वह एक बात की अवश्य गवाही देती है। वह यह है कि बाहर और भीतर में बहुत ज्यादा फ़र्क नहीं है। दोनों ही एक दूसरे के आश्रय हैं। संकोच का नियम जैसा वेष और रहन सहन में चल रहा है वैसा ही भावों और विचारों में घटता है। यदि हमारी पोशाक संकुचित होती जाती है तो उसके साथ हमारे विचार भी सीमाबद्ध हो गये हैं। इन दोनों में कार्य-कारण सम्बन्ध अवश्य है। अतः इस संकोच का कारण भी हमको अपने विचारों में ही देखना चाहिये, यह संकोचवाली सभ्यता पहिले पहिल पश्चिम से ही चली है। इस हवा के झोके में बेचारे भारतवासियों के मन डावाँडोल हो गये हैं। हमें देखना चाहिये कि पाश्चात्य देशों के विचार में क्या विशेषता है। पाश्चात्य देशों के लोग प्रकृति देवी की उपासना में अधिक तत्पर रहते हैं। हमारे कहने का यह अभिप्राय नहीं कि यूरोपवाले कोरे प्रकृतिवादी ही हैं; किन्तु उन लोगों का झुकाव प्रकृति की उन्नति की ओर अधिक है। उनके यहां का धार्मिक इतिहास भी राजनैतिक झगड़ों से दूषित हो रहा है। ज्ञान का प्रचार भी भौतिक पदार्थों की भांति क्रयविक्रय के नियमों में बँधा हुआ है। यदि १० आदमी आत्मोन्नति की ओर झुके हुए हैं तो सौ प्रकृति की उपासना में प्रवृत्त हैं। भारतवासी गरीब दूकानदार अपने वाणिज्य में भी धार्मिक भाव रखते हैं। बहीखातों पर 'श्रीरामजी सदासहाय' अपनी दूकान को महादेव का भण्डार बतलाता है। वह अपनी पूंजी को श्रीलक्ष्मीजी की मूर्ति समझता है। इन सब बातों को लोग चाहे अन्धविश्वास कहें किन्तु ये भारतवर्ष की धर्मपरायणता की बड़े गम्भीर स्वर से घोषणा कर रही है। आत्मा की कोई सीमा नहीं, इसी कारण भारतवर्ष की प्राचीन सभ्यता में कोई संकोच के चिह्न न थे। प्रकृति जड़ है, जड़ चीज़ सदा बन्धन की कारण होती है। प्रकृति की उपासना से विचारों का संकोच कोई आश्चर्य की बात नहीं। प्रकृति का विस्तार परिमित है। आत्मा के विस्तार की कहीं सीमा नहीं। हम जिसके ऊपर अधिक विचार करते हैं उसीके गुण हममें आजाते हैं। हमारे देश में आत्मा की ओर अधिक विचार हुआ, इसी कारण सभी बातों में विस्तार है। हमारे यहां काल की गणना में विस्तार-बाहुल्य भलीभांति प्रकट होता है। कुछ दिन हुए यूरोपवालों का यह विश्वास था कि सृष्टि को बने केवल ५००० ही वर्ष हुए हैं। यह भी उनके विचारों की परिमितता का सूचक है। हमारे यहां तो छोटे से छोटा युग भी ३२ लाख वर्ष का है। हमारे यहां की संख्या में भी विस्तार के चिह्न वर्तमान हैं।

संकोच और विस्तार का यह प्रश्न बड़ा जटिल है। दोनों में किसका अधिक आवश्यकता है यह कहना कठिन है; किन्तु यह अवश्य मानना पड़ेगा कि आवश्यकता दोनों ही की है। न तो इतना संकोच ही होना चाहिये कि वस्तु के गुणों का पूर्णतया वर्णन ही न हो सके और न इतना विस्तार ही होना चाहिये कि वह बुद्धि की ग्राहकता से बाहर हो जाय। इसी प्रकार न तो प्रकृति की खोज में हमको नीरस भावरहित मशीन के पहिये की भांति क्रिया-परायण होना चाहिये और न आत्मा के ध्यान में संसार को भूल जाना चाहिये। भारतवर्ष यदि संसार से बिलकुल अलग होता तो केवल आत्मोन्नति से काम चल जाता। हम समाधि लगाये बैठे रहें किन्तु संसार की प्रबल अशान्ति हमारी सुख की समाधि को कब स्थित रहने देगी? पत्तियों को भी हवा की रुकावट के बिना

उड़ना असम्भव हो जाता है। उसी प्रकार आत्मा की उन्नति भी प्रकृति के बन्धन बिना सहज नहीं है। भारतवर्ष को प्रकृति की उन्नति की ओर अवश्य ध्यान देना चाहिये; किन्तु साथ ही इसका भी ख्याल रखना चाहिये कि प्रकृति की उपासना करते हुए धार्मिकोन्नति के मार्ग में एक इञ्च भी पीछे न हटना पड़े। अन्य देश के लोगों से हमारे देशवालों में धार्मिकोन्नति के अच्छे संस्कार मौजूद हैं। हमारे लिए धार्मिकोन्नति केवल भूली हुई बात को दोहराकर ठीक ठीक तौर से याद कर लेना है। हम अवश्य सोये हुए हैं, किन्तु हमारे जागरण पर ही संसार की बहुत सी कठिनाइयों का हल होना निर्भर है, अतः हमको अपने तथा संसार के उद्धार के हेतु शीघ्र ही अपनी मोह-निद्रा से जागना चाहिये।

हिन्दी का महत्व।

[लेखक—श्रीयुत जगदीपलाल विद्यार्थी।]

हम हैं हिन्दू हिन्द के वासी,
हिन्दी ही को पढ़ा करें।
पढ़ कर हिन्दी ज्ञानी होवें,
गन्दी बुद्धी तजा करें॥ १॥

हिन्दी बिन्दी माथे होवे,
हिन्दी होवे मन में ध्यान।
हिन्दी ही सर्वपूज्य हमारी,
हिन्दी से होवे कल्यान॥ २॥

हिन्दी ही की माला पहनें,
हिन्दी ही को जपा करें।
हिन्दी नाम को रटना लब पै,
हिन्दी ही को रटा करें॥ ३॥

सुनो ऐ हिन्दु, हिन्द के वासी,
हिन्दी तेरे सर का ताज।
माथे इसकी मौड़ा पहनो,
सुधरेगा सारा ही काज॥ ४॥

सम्राट् अकबर की कूटनीति।

[लेखक—श्रीयुत मातादीन शुक्ल।]

भारतवर्ष में ब्रिटिश शासन के पहिले मुसलमानों का राज्य था। यद्यपि मुसलमानों की कई जातियों ने भारत-शासन का भार अपने हाथों में लिया, तथापि मुग़ल खानदान के बादशाहों का नाम इतिहास में बहुत प्रसिद्ध है। इसके दो प्रधान कारण हैं। एक तो यह कि मुसलमानों के शासन की जड़ मुग़ल बादशाहों ने ही मज़बूत की। दूसरे यह कि मुग़ल शासकों ने ही मुसलमान साम्राज्य की अन्तक्रिया भी की। अस्तु मुसलमान साम्राज्य की वास्तविक उन्नति का श्रेय मुग़ल खानदान के प्रथम छः बादशाहों को है। इन छः बादशाहों में मुसलमान साम्राज्य की जड़ जमानेवाला पहिला मुग़ल बादशाह बाबर था और इस साम्राज्य को उन्नति की पराकाष्ठा पर पहुंचानेवाला तीसरा बादशाह अकबर हुआ। छठे मुग़ल सम्राट् औरँगज़ेब ने यद्यपि मुग़ल-शासन को लगभग सारे भारत में विस्तृत कर दिया, तथापि मुग़ल साम्राज्य के विनाश की कालिमा प्रायः उसी के मत्थे मढ़ी जाती है। परन्तु इसी विनाश का सूत्रपात सम्राट् अकबर की कूटनीति के कारण सोलहवीं शताब्दी में हो चुका था।

सम्राट् अकबर में प्रायः सभी राजकीय गुण मौजूद थे। परन्तु उसमें कुछ दुर्गुण भी ऐसे थे जो प्रजा के हृदय में राजा के प्रति बुरे और घृणित विचार पैदा करने के लिए पर्याप्त थे। तेरह वर्ष की अवस्था में ही अकबर के पिता हुमायूं का देहान्त हो गया था, अभी वह संसार-क्षेत्र में अवतीर्ण होने के योग्य कदापि नहीं था, परन्तु होनहार था। राज्य का भार अपने ऊपर होते ही उसकी वह प्रतिभा चमक उठी जिसने उसे अन्त में इस उच्चपदवी तक पहुंचाया। इसी अनुपम प्रतिभा के प्रभाव से उसके हृदय में राजनीति का स्रोत बहने लगा। सबसे प्रथम उसके हृदय में वह विचार उत्पन्न हुआ कि भारतवर्ष की तत्कालीन जनता की विचार-धारा साधारणतः किस ओर बह रही है। उस धारा के अनुकूल चलना अच्छा होगा या प्रतिकूल। उसकी विचित्र कूटनीति का सब से भारी और क्लिष्ट सिद्धान्त यही था। सुचारुरूप से इसको मनन करके उसने यह निश्चय किया कि हिन्दुओं, विशेषतः राजपूतों के विपक्षी बनकर उसका कल्याण नहीं हो सकता। इस कूटनीति को कार्य में परिणत करने के दांव-पेंच उसने निकाले।

महाराज पृथ्वीराज और शाहबुद्दीन ग़ोरी तथा महाराणा संग्रामसिंह और बाबर के बीच जो युद्ध हुए, उनके कारण मुसलमानों के हृदयों में राजपूतों की बहादुरी का सिक्का भलीभांति पहिले ही से जम चुका था। इस बात को अकबर भी भलीभांति जानता था। यही कारण था कि उसने राजपूतों को मिलाना प्रारम्भ किया और इस चाल से उसने इच्छानुसार लाभ उठाया। कई कुलकलंकी राजपूतों ने उसकी मातहती स्वीकार करली। उसने भी इनका यथेष्ट सम्मान कर|उनको साम्राज्य के ऊँचे २ पदों पर नियुक्त किया और उनके साथ विवाह-व्यवहार की प्रथा पैदा की। राजपूत अपने धर्म और पैत्रिक मर्यादा को तिलाञ्जलि देकर, धनलोलुपता के पाश में इस तरह जकड़ गये कि उन्हें निजत्व का ज्ञान भी दगा देकर चल बसा। इस प्रकार अकबर ने उस समय के अधिकांश उद्दंड, प्रतापी और पराक्रमी राजपूतों को अपने चंगुल में फांस लिया। इन पर धन की आवश्यकता एवं मदान्धता का इतना प्रभाव पड़ा कि ये लोग जान पर खेलने लगे; उस प्रसिद्ध एवं महत्वपूर्ण उद्देश्य के लिए नहीं, जिसके कारण राजपूत वीरता की विजयवैजयन्ती आज भी आकाश में उड़ रही है—जिसके कारण उनका स्थान इतिहास में सर्वोत्कृष्ट माना जाता है—वरन् द्वेषपूर्ण पतित विधर्मियों का पक्ष लेने के लिए! दूसरी ओर जातीयता के आदर्श महाराणा प्रताप जैसे नरपुंगव अपनी धार्मिकता और स्वतन्त्रता पर प्राण निछावर करने के लिए तत्पर हुए। अन्त को इस कूटनीति के प्रभाव से राजपूतों में ऐसी दलबन्दी हो गई कि वे परस्पर एक दूसरे के खून के प्यासे हो गये।

राजपूतों के साथ मेल बढ़ जाने और अपनी शक्ति प्रबल होने पर, अकबर ने उन मुसलमान सरदारों की खबर लेनी चाही जो हुमायूं के मरने पर उसको निर्बल समझकर दिल्ली के सिंहासन पर दांत लगाये हुए बैठे थे। इन सरदारों को परास्त करने में राजपूतों ने बड़ी बहादुरी दिखलाकर बहुत बड़ी सहायता दी। इन उपकारों के भार से दबकर अकबर को राजपूतों का सदैव ऋणी रहना चाहिये था, परन्तु कूटनीति के उपासक अकबर ने यह उचित नहीं समझा। राज्य के अधिक विस्तृत हो जाने पर, स्वार्थ-साधन के लिए उसने राजपूत वीरों को बहुत सा कार्यभार सौंप दिया; परन्तु स्वयं सञ्चालक और सूत्रधार बन कर वह दूसरों के भरोसे दुनिया का मज़ा लूटने लगा।

अकबर की कूटनीति ने उसे स्वयं इतना छली, कपटी और व्यभिचारी, तथा राजपूतों को इतना निर्बल और प्रतिस्पर्द्धानुरागी बना

दिया कि वे लोग उसके मर्म को न समझ सके। वह स्वयं इतना कपटी था कि प्रकट में वह अपने को हिन्दू धर्मावलम्बी कहलाता था। इससे हिन्दुओं का उसपर अधिक विश्वास बढ़ने लगा। यहाँ तक कि आजकल के इतिहासकार भी यह कहने में संकोच नहीं करते कि 'अकबर धार्मिक विषयों में औरंगज़ेब से अच्छा था', परन्तु मेरा जहाँ तक अनुमान और विश्वास है, मैं कह सकता हूं कि भारतवासियों की मान-मर्यादा, सच्चरित्रता और कीर्ति पर जिस द्वेष एवं स्वार्थ के वश होकर अकबर ने आक्रमण किया, वैसा औरंगज़ेब ने नहीं किया। अकबर ने हमें भुलावे में डालकर हमारी मानसिक शक्ति को तोड़ दिया परन्तु औरंगज़ेब ने हमारे धर्म पर खुल्लमखुल्ला आघात कर हमें सचेत कर दिया।

इस तरह हिन्दू, अकबर के स्वार्थपूर्ण रंग में रँग गये। इधर अकबर का दूसरी धुन सवार हुई। हिन्दुओं के मान पर कालिख लगाने के लिए तो मानो उसका जन्म ही हुआ था। फिर क्या था, व्यभिचार का बाज़ार गर्म हो चला, मीनाबाज़ार की दूकानदारी जमते जमते पूरी तौर से जम गई और हिन्दू सती रमणियों पर हाथ साफ़ किया जाने लगा।

इस मीनाबाज़ार के माल का भाव बहुत ऊँचा रहा। पहिले तो कुछ समय तक इसका गूढ़तत्व गुप्त ही रहा, परन्तु अन्याय कब तक गुप्त रह सकता है, अन्त में इसकी भी पोल खुल गई। राजपूतों के कान खड़े हो गये। सम्राट् के रिश्तेदार होने में सौभाग्य समझनेवाले कुछ न्यायप्रिय राजपूत उसके कट्टर विरोधी हो गये। स्वयं अकबर को भी एक राजपूत वीरांगना से उपयुक्त उपदेश मिला परन्तु हिन्दुओं के इस अपमान की कालिमा उस समय तक नहीं मिट सकती, जब तक संसार में एक भी स्वाभिमानी हिन्दू इतिहासवेत्ता मौजूद है। अन्त में उन बातों का यह परिणाम हुआ कि अकबर स्वतंत्रता के उपासक राजपूतों की आँखों से उतर गया। उसको अपना प्राण बचाना कठिन हो गया। उसकी नीति के कारण घर में द्वेष का बीज़ बोया गया। इसीका फलस्वरूप हल्दीघाट का भीषण और चिरस्मरणीय युद्ध हुआ। यह युद्ध उन्हीं राजपूतों से, जो सदैव उसके लिए प्राण निछावर करने को उद्यत रहते और अलाउद्दीन के व्यवहारों को भुलाकर उसके अनन्यभक्त बन गये थे, उन्हीं से ठन गया। इस समराग्नि में भारत के वीरों ने जिस वीरता और दृढ़ता से प्राण विसर्जन किये उसका हाल इतिहासवेत्ताओं से छिपा नहीं है। अकबर की स्वार्थप्रिय नीति ने भारत में फूट के पौधे को और भी बढ़ाया। राजनैतिक दृष्टि से अकबर की यह नीति स्वार्थसाधक थी। यद्यपि यह नीति उसके हक़ में हितकर हुई तथापि भावी मुग़ल बादशाहों का नाश इसीके परिणामों से हुआ।

इसमें सन्देह नहीं कि अकबर की इस नीति से मुग़ल साम्राज्य की नींव कुछ समय के लिए मज़बूत हुई। हिन्दुओं के लिए तो यह घातक ही हुई, कारण इससे उनमें परस्पर वैरभाव और स्वार्थपरायणता का सितारा चमक उठा। सिर्फ़ इससे यह लाभ हुआ कि उनकी धार्मिक और मानसिक स्वतंत्रता जाग उठी। इससे मुग़लों के विनाश का बीज पल्लवित होकर फलफूल देने लगा, जिसका अन्त औरंगज़ेब के साथ हुआ।

हिन्दुओं की कीर्ति पर अकबर की कूटनीति ने जितना प्रभाव जमाया उतना शायद ही और किसी बादशाह की नीति ने जमाया हो। वह नीति चोर से कहती कि चोरी करो और साहूकार से कहती कि होशियार रहो। किसी दृष्टि से देखने से भी यही कहना पड़ेगा कि भावी मुग़ल साम्राज्य के विनाश के कारणों में अकबर की कूटनीति ही प्रधान सहायक हुई है।

भारतवर्ष में रेलवे का आरम्भ।

[लेखक—श्रीयुत गोपालरामजी।]

सन् १८५४ ई० की १५वीं अगस्त इस देश के इतिहास में एक स्मरणीय तिथि है कारण उसी दिन हिन्दुस्तान में पहिले पहिल ईस्ट इन्डियन रेलवे खुली है।

सन् १८५४ ई० से आज सन् १९१७ ई० तक चौसठ वर्ष बीत गये। इस अवसर में कर्मवीर अङ्गरेज़ों के प्रताप से रेलवे लाइनें आज भारत-वर्ष में प्रायः सर्वत्र छागई हैं। अनेक कम्पानियों ने अपनी अपनी रेलें खोल रक्खी हैं। प्रधान लाइनों के सिवा चारो ओर शाखा-लाइनों की भी बड़ी चहलपहल है। ई० आई० रेलवे के बाद जी० आई० पी०, ओ० आर०, बी० बी० सी० आई०, साउथ इण्डिया, मद्रास, बङ्गाल नागपुर, नार्थ-वेस्टर्न, सदर्न मरहट्टा, बङ्गाल और नार्थ वेस्टर्न इत्यादि कितनी ही रेलें भारतमाता की छाती पर आज लोहजाल के समान भरी पड़ी हैं। अब इनकी सहायता से महीनों का रास्ता दिनों में तै होता है। इससे लोग बारह घंटे में काशी से कलकत्ता, २४ घंटे में कालका और ३० घंटे में बम्बई पहुंचते हैं। पहिले जगन्नाथपुरी और हरिद्वार या बद्रीनारायण अथवा द्वारका जाने के लिए नगर और गाँवों में कुहराम मच जाता था। लोग समझते थे कि वहां से लौटकर आना इस जिन्दगी में नहीं होगा। इस कारण घर गृहस्थी का बन्दोबस्त और बाँटबखरे का वसीयत करके लोग जाया करते थे। हज़ारों लाखों में जो चारोधाम की यात्रा कर आता उसको लोग बड़ा भाग्यवान समझते थे और वह भी समझता था कि हम पृथ्वी की परिक्रमा कर आये। उन दिनों यात्री पैदल या बैल गाड़ी पर जाते थे, उन पर रास्ते में चोरचाई और डाकुओं की बड़ी विपत्ति आती थी। लोग दिन भर रास्ता चलकर सन्ध्या को चट्टी पर, नहाते और कहीं रोटी पानी करते थे, फिर रात भर विश्राम के बाद सबेरे उठकर "जय जगन्नाथपुरी की जय" जय बद्रीनारायण की जय, जय द्वारकाधीश की जय आदि कह कर अपना अपना रास्ता लेते थे। इसी तरह महीनों चलकर उस समय के धर्म-प्राण हिन्दू अपने तीर्थों का दर्शन करते थे। कितने बीच ही में मर जाते और इस तरह प्राण-दान से अपने को कृतार्थ समझते थे। किन्तु अब उन सङ्कट और आपदाओं का सामना नहीं करना पड़ता। पुरी के जानेवाले सीधे पुरी का टिकट लेकर रेल में बैठने के पीछे अपने को पुरी में ही पहुंचा हुआ समझते हैं और दो चार जगह गाड़ी बदलने के सिवा उन्हें पुरी पहुंचने में और कुछ रुकावट नहीं रह जाती। यही हाल अब प्रायः सब तीर्थों का है। सुख और विलास का सब सामान मौजूद है। जैसा दाम दे वैसा बेंच और गद्दी तकिये पर सुखशयन करता हुआ चला जाय। इन दिनों हवड़ा स्टेशन में रोज ही सोनपुर का लक्खी मेला और हरिद्वार का कुम्भपर्व लगा रहता है। दिन तो दिन, रात को भी वहां दिन ही है। वहां बिजली की रोशनी के सैकड़ों गोले चमचमा रहे हैं, धड़ाधड़ ट्रेनें आती और जाती हैं, यात्रियों में धक्का मुक्की, पीठ से पीठ छिलना, लोटा, थाली, गठरी, हुक्कों का ठकरमकर, भूले हुए साथियों का चिल्लाना, दौड़ना, हाँफना, सिपाही, खलासी और जमा-दारों का धक्का खाना, कुलियों को घूंस और यात्रियों की दुर्गति यह सब देखते ही बनता है।

जिस दिन हवड़े से पहिले पहिल रेलगाड़ी छूटी था, हम उसी दिन की एक बात कहना चाहते हैं। आजकल हवड़े का जो स्टेशन है उसकी तो बात ही नहीं, जो पहिला पुराना स्टेशन आठ दस वर्ष पहिले था उसका भी उन दिनों नाम-निशान नहीं था। भागीरथी के किनारे से पाँच

मिनट रास्ता चलने पर एक छोटीसी कुटीर मिलती थी वही पहिले हवड़े का स्टेशन था। सर ब्राडफोर्ड लेस्ली का कीर्तिस्तम्भस्वरूप वर्तमान विराटकाय जो 'फ्लोटिङ्ग ब्रिज' भागीरथी के पेट पर झूल रहा है, उसका भी उन दिनों पता नहीं था, न रेलवे कम्पनी का बड़ा बकलैंड जहाज़ ही उन दिनों बना था। उन दिनों डोंगी पर भगीरथी पार होकर कीचड़ से लदफद पाँव उठाते हुए लोग स्टेशन पहुंचते थे। हवड़े की ओर लोगों को उतरने के लिए कोई पक्का घाट भी नहीं था। नदी-तट से स्टेशन जाने को गाड़ी या पालकी का भी कुछ प्रबन्ध नहीं था। साहब, हिन्दुस्तानी, छोटे बड़े सब एक ही दर्जे से पैदल आते जाते थे। आजकल की तरह हवड़ा शहर भी उन दिनों नहीं था, केवल एक छोटासा गांव था। स्टेशन के पास कुछ गुलज़ार अवश्य था। रेल की चीज़ों का टाल, गाड़ी बनाने का कारख़ाना, लोकोमोटिव शेड, एंजिन वगैरः बनाने के कारख़ाने मौजूद थे और जितनी गाड़ियाँ तैयार होती थीं, सब हवड़े में रहती थीं। हवड़ा उन दिनों कलकत्ते से बिलकुल अलग था।

उन दिनों वहाँ एक छोटे से खपरैल के घर में टिकट बँटता था। वहाँ बड़ा धक्कमधुक्का, बड़ी कुचलपचल और बड़ा हुल्लमहपाड़ हुआ करता। दो बङ्गाली बाबू टिकट बेंचते थे। उन बेचारों पर बड़ी आफ़त थी, एक तो नया नया काम, दूसरे मुसाफिरों की भीड़ के मारे पड़ी का पसीना कपार पर जाता था।

उन दिनों एक अँगरेज़ यात्री ने अँगरेज़ी-अखबार में हवड़े के टिकट बेंचने के विषय में जो कुछ लिखा था, वह यहां उद्धृत किया जाता है:—

"To get a ticket is a work of time and most trying to the temper of the impatient traveller. The whistle was screaming but hardly louder than the Bengali writers were vituperating each other instead of attending to our wants."

एक और मंडली दूसरी ही बात कहती है। उसका कहना है:—

टिकट ही ख़रीद लेने से गाड़ी में जगह मिल जायगी इसका पक्का भरोसा नहीं था। कुल तीन अव्वल दर्जे की, दो दूसरे दर्जे की और तीसरे दर्जे के लिए तीन खुलती (Truck) मालगाड़ियां थीं। वह इसी देश की बनी हुई थीं। किसी निर्दिष्ट प्लैन से ये गाड़ियां नहीं तैयार हुई थीं। लोको के सबसे पहिले सुपरिन्टेन्डेन्ट हजसन साहब की निगरानी में वे बनाई गई थीं। विलायत के गुडविन जहाज़ पर लाद कर जो गाड़ियां यहां के वास्ते भेजी गई थीं, वह भी यहां नहीं पहुंचीं थीं। रेल खुलने के कई दिन पहिले सैण्डहेड में माल लदा हुआ वह जहाज़ समुद्र में डूब गया।

जिस दिन पहिले पहिल रेल खुली उस दिन एक हज़ार आदमियों ने टिकट माँगा था, उनमें अँगरेज़ ही बहुत थे। लेकिन उस दिन सौ आदमियों को भी जगह मिलने का भरोसा नहीं था। इस कारण बाकी सब निराश होकर लौट गये। साधारण समाचार-पत्रों में रेल खुलने के दिन सब सरकारी आफ़िस बन्द करने की बात उठी थी, लेकिन स्टेशन में लोगों को जगह नहीं मिलेगी, यह विचारकर सरकार ने वह बात मंज़ूर नहीं की।

उन दिनों हफ़्ते में छ दिन रेल चलती थी और इतवार को सब आफ़िसों की तरह रेल की भी तातील रहती थी। उन्हीं दिनों अँगरेज़ी के 'हरकारा' नामक अखबार में 'प्रिटर्स डेविल' नाम देकर एक महाशय ने लिखा था:—

"इस देश में रेल नहीं थी। नई खुली है। हज़ारों आदमी रेल देखने के लिए स्टेशन जाते हैं। लेकिन हम लोगों को रविवार के सिवा और कोई दिन छुट्टी नहीं है। अगर रविवार

को भी रेल चले तो हम लोग इस लोहे के घोड़े को एक बार देखलें। हम लोगों की विनती यही है कि रविवार को रेल चलाने का प्रबन्ध किया जाय।

यह कहना नहीं पड़ेगा कि प्रिन्टर्स डेविलों की विनती पर रेल के अफसरों ने कान दिया उन दिनों २६ नं० थियेटर रोड में ई० आई० रेलवे का हेड आफिस था। मि० मेकडानल्ड स्टीफेन्सन इस रेलवे के पहिले पहिल एजेन्ट हुए थे। स्टीफेन्सन साहब ने एक विज्ञापन दिया था:—

'सब लोगों के प्रार्थनानुसार हम लोग अब रविवार को भी रेल चलावेंगे। दो रेलगाड़ियां रविवार को पांडुआ तक जायँगी।'

तभी से रविवार को भी रेल चलने लगी। उन दिनों, दिन ही को रेल चलती थी। रात को गाड़ियों का चलना एकदम बन्द रहता था।

विलायत में जार्ज स्टीफेन्सन ने भाफ से रेल चलाने की विद्या पहिले पहिल निकाली और हिन्दुस्तान में राबर्ट मेकडानल्ड स्टीफेन्सन ने ई० आई० रेलवे के एजेन्ट-पद पर रहकर भारतवर्ष में पहिले पहिल रेल चलाई। ऐसे शुभ दिन में पहिले पहिल रेल चली थी कि देश भर में आज रेलों की रेलपेल है। इन्हीं रेलों के प्रसाद से कलकत्ते में बैठकर लोग सिलहट का सन्तरा, नागपुर की नारङ्गी, लखनऊ का सफ़ेदा, काशी का लँगड़ा, बनारस का बैर, पेशावर का पिश्ता, मुज़फ़्फ़रपुर की लीची और हापड़ के पापरों का भोग लगाते हैं।

गाड़ियों में भी तब की अपेक्षा अब आकाश पाताल का अन्तर हो गया है। प्रयाग की प्रदर्शिनी में पहिले की रेलगाड़ी और एंजिन तथा उसके सामने ही आजकल की गाड़ी और एंजिन दिखलाये गये थे। उन दिनों के फर्स्ट क्लास से आज के फर्स्ट क्लास में बड़ा भेद है। उन दिनों फर्स्टक्लास में किसी भारतवासी का पैसा देकर सवार होना साहबों के जी में कैसा होता था उसका भाव अँगरेज़ी पढ़े हुए लोगों को समझने के लिए यहां उन दिनों के एक अखबार से उद्धृत किया जाता है:—

"The up going passengers in the first class carriages on the day noted were for the most part exceedingly respectable but all sorts of riff-raff of all colors were in the same carriages on the return trip. Some of the male gender were all the worse for their holiday making and two of them in the same compartment amused the other passengers with their amativeness. The very dark East Indian Gentleman and his very dark lady, stood up the greater part of the journey, looking out of the window, the sterner sexed passenger winding his arm fondly round the neck of the passenger of the feminine gender. There was another billing and cooing couple of the saxon breed and two, were almost vehemently affectionate. Another Gentleman treated his fellow passengers with a brief dance and various practical jokes &c. यह तो अँगरेज़ और यूरेशियन समाज की बातें इसके सिवा "Only natives in a state akin to nudity in the first class carriages इस तरह के मामले भी उन दिनों बड़े जोर से होते थे।

उन दिनों इस देश के लोगों में भी अजीब अजीब बातें सुनी जाती थीं। एक बङ्गाली चीना बाज़ार में गन्धी की दूकान रखता था, उसके पास हुगली का टिकट था। जब—"हुगली आगई, तो उससे कहा गया उतरिये, उतरिये।" वह भौंचकासा चारो ओर देखने लगा। निदान गाड़ी से उतरने पर भी उसको विश्वास नहीं हुआ कि वह इतनी जल्दी हुगली पहुंच गया।

है। कई आदमियों से पूछने पर ज्ञात हुआ कि यही हुगली है। तब उसे बड़ी खुशी हुई।

एक दिन एक आदमी सन्ध्या के छः बजे चितपुर रोड की ओर दौड़ता जाता था, जिसके जी में जो आया उसने वहीं उसके दौड़ने का अर्थ लगाया। एक सिपाही ने सन्देह करके उसे पकड़ लिया, पूछने पर उसने जवाब में कहा कि थोड़ी देर हुई मैं रेल से उतर कर आया हूं और उसीकी चाल की नकल करके दौड़ रहा हूं।

राधालङ्कार वन्द्योपाध्याय नाम के एक निष्ठावान और कृतविद्य ब्राह्मण को एक बार रेल पर चढ़ने की इच्छा हुई। उन्होंने पत्रा-पञ्चाङ्ग देख कर शुभ लग्न में यात्रा की। वे नित्य त्रिकाल स्नान करते और इष्टदेव का एक सहस्र नाम जपते थे। जब तक यह गाड़ी में रहे और गाड़ी चलती रही तब तक मौन होकर अपने स्थान पर बैठे रहे। हुगली पहुंचकर ब्राह्मण देवता गाड़ी से उतर कर भागे। कारण पूछने पर उन्होंने बड़ी गम्भीरता से उत्तर दिया—"देखते नहीं, कहां हवड़ा और कहां हुगली। जो अग्निगर्भ-यान पथ-ह्रास कर सकता है वह जीवनपथ का ह्रास नहीं करेगा? बार बार रेल पर यात्रा करने से आयुक्षय होने का भय है। जब आप लौटकर घर पहुंचे तब पड़ोसियों के पूछने पर बोले—"एञ्जिन के गंभीर गव्हर में एक दैत्य है, उसकी दुम में जलता अङ्गार लगाने से वह कल घुमाने लगता है। इसीसे रेल चलती है। जब गर्म लोहे की छड़ से दैत्य मारा जाता है, तब वह रह रह कर चिल्लाया करता है।

यह शौक हिन्दुस्तानियों ही को नहीं था। बहुत से साहब लोग भी रेल में चढ़कर बड़ा आनन्द मनाते थे। इसका एक उदाहरण देकर हम इस प्रबन्ध को समाप्त करेंगे। जोन्स नामक एक साहब रेल खुलने पर तीन दिन तक लगातार रेल पर सवार होते रहे। रोज वे एक बार हुगली जाकर लौटते थे। एक बार उनके दिमाग़ में एक अजब बात समाई। उनके एक बग्घी गाड़ी थी। एक बुड्ढा घोड़ा बहुत दिन से उनका दाना पानी खाकर गाड़ी खींचता था। रेल से लौटने पर बेचारे बुड्ढे घोड़े को चाबुकों के मारे उन्होंने बदहवास कर डाला। उनका मतलब था कि चाबुक मार कर घोड़े को रेल की तरह तेज़ चलावें, साहब भी बहुत हैरान हुए लेकिन जब किसी तरह घोड़ा उतना तेज़ नहीं दौड़ा तब अन्त को एक दिन उनके मरज़ से वह सनक दूर होगई।*

---

* Having acquired a notion of speed such as he never knew before he can no longer reconcile himself to the jogtrot of his buggy horse and accordingly does nothing but whip the poor brute as soon as he gets behind him, in the vain hope of making him go at something like Railway speed.

विद्यार्थियों से विनय।

(१)

विद्यार्थीगण बन्धु! हमारी विनय सुनो हितकारी।
हेर रहो है होनेवाली-उन्नति, राह तुम्हारी॥
'धूल भरे' बन चुके, बनो अब रत्न चमकनेवाले।
होने लगें तुम्हारे द्वारा जग में कार्य निराले॥

(२)

यथा-साध्य विद्या पढ़ने से मुंह मत कभी चुराना।
भार जानते अभी अगाड़ी देगी सुख मनमाना॥
विद्या-धन है श्रेष्ठ; धनो भी गुणियों को नत होते।
पूर्ण गुणीजन कभी न अपने हैं, दुख से दिन खोते॥

(३)

अस्तु बन्धु! जो उच्च-भाव में परिणत होना चाहो।
तो एकाग्र-चित्त बनने का पूरा नियम निवाहो॥
कोई भी हो काम उसीमें दत्तचित्त हो जाओ।
और कहां तक, खेल-समय भी मन न अंत दौड़ाओ॥

(४)

जहां ज़रा भी चित्त इधर से उधर चला जाता है।
तो कोई भी काम न इससे पूरा हो पाता है॥
सब कामों के लिए समय को निर्धारित कर लोजे।
उसी नियम से चलो निरंतर कभी न त्रुटियां कोजे॥

(५)

प्रथम कठिन है चित्तसाधना मनकी दौड़ प्रबल है।
वही मानसिकशक्ति मनुज की कर देती निर्बल है॥
धीरे धीरे किन्तु कठिनता स्वयं सरल हो जाती।
उक्ति-सत्य 'साहसी मनुज से बाधा भी घबड़ाती'॥

(६)

बार २ भी अकृत-कार्य हो, किन्तु न आशा छोड़ो।
इष्ट मार्ग में बढ़े चलो बस कभी न मुख को मोड़ो॥
मन एकाग्र अवश्य बनेगा जब अभ्यास करोगे।
तब सत्वर ऊँची कक्षाएँ सुख से पास करोगे॥

(७)

विद्या ही क्या, सब कामों में प्राप्त सफलता होगी।
इसी क्रिया से ईश्वर को भी पाते हैं ऋषि योगी॥
हैं दो चार और भी बातें उपयोगी पढ़ने में।
धरो ध्यान में ये सहायता देंगी यश मढ़ने में॥

(८)

सहपाठीगण, बन्धुवरों से प्रेम परस्पर रखना।
झगड़े, कलह, फूट के फल को नहीं भूलकर चखना
शुचि उपदेश मान्य गुरुजन के सदा ध्यान में लाना।
क्रूर कुमित्रों की सङ्गति में पड़कर मत फँस जाना॥

(९)

'ब्रह्मचर्य व्रत' सर्वश्रेष्ठ है, स्वस्थ शरीर बनावे।
विद्याध्ययन-काल में तो यह कभी न डिगने पावे॥
ब्रह्मचर्य के ही प्रताप से ज्ञानी धीर हुए हैं।
परशुराम, हनुमान, भीष्म से योद्धा वीर हुए हैं॥

(१०)

कभी २ परिणाम हँसी का, दुखदायी बहु होता है।
अधिक हास्यरस कहीं वैर का पूर्ण बीज बोता है॥
अस्तु न ऐसी हँसी कीजिए जिससे दिल दुख पावे।
हाँ विनोदकारक समयोचित हँसी सभी को भावे॥

(११)

पूज्य-पूर्वजों के चरित्रवर, पढ़कर मत रह जाना।
कर अनुकरण, समान उन्हींके अपने भाव बनाना॥
कुरुचिपूर्ण किस्से कवितादिक कभी न छूना भाई।
शिक्षाप्रद सद्ग्रंथ-सुधारक सदा पढ़ो सुखदाई॥

(१२)

आत्मोन्नति सब विध करने का सच्चा यही समय है,
जीवनसुखद बनालो अपना, यों तो कंटकमय है॥
माँ-मंदिर के नींव तुम्हीं हो! दृढ़ता पर जय जाना।
हिन्दी-संयुत श्रीशारद को सब मिल सुख पहुंचाना

"रसिकेन्द्र"।

आत्म-शक्ति।

वैज्ञानिक उदाहरण सहित।

[लेखक—श्रीयुत विश्वेश्वरदयाल त्रिवेदी।]

स्वानुभवित विचारशृंखला।

बहुत दिन से विचार था कि स्वजातीय पत्रों में कुछ लिखकर स्वजन और परिजनों की सेवा करूं परन्तु इससे पहिले सफलता प्राप्त नहीं हो सकी। आज प्रथम ही मैंने एक ऐसे गहन विषय पर लिखने का विचार किया है जिस पर धुरन्धर विद्वान का लेखिनी उठाना समुचित होता। पर जो कुछ कहना है, घर ही में कहना है, इसलिए भय नहीं है। अतः इन टूटे फूटे विचारों से यदि एक भाई का भी किञ्चित लाभ पहुंचा, तो मैं अपनी धृष्टता को सफल समझूंगा।

आपने शीर्षक की तृतीय पंक्ति से जान ही लिया होगा कि इस निबन्ध में स्वानुभवित बातें ही कही जायँगी क्योंकि मैं आर्ष ग्रन्थों का विद्वान नहीं हूं। शीर्षक की द्वितीय पंक्ति से मेरा अभिप्राय स्पष्ट होता है क्योंकि आजकल का ज़माना ऐसा है कि बिना किसी पुष्ट प्रमाण के लोग सहसा किसी बात पर विश्वास ही नहीं करते। इसी लिए विज्ञान के प्रमाण दिये गये हैं।

अब विचार यह है कि शक्ति क्या वस्तु है? इसके बिना भी कोई व्यक्ति, चलने फिरने से लेकर, देश अथवा जाति का उद्धार कर सकता है या नहीं। संसार में प्रधान शक्तियाँ कौन कौन हैं? क्या शारीरिक-शक्ति, धन-शक्ति, विद्या-शक्ति, मानसिक-शक्ति, आचरण-शक्ति और आत्म-शक्ति के अतिरिक्त और भी कोई प्रधानशक्ति है? इनमें सर्व प्रधान शक्ति कौन है? प्रिय भ्रातृवृन्द! सर्वश्रेष्ठ शक्ति वही आत्मशक्ति है। मेरे कहने का यह अभिप्राय नहीं कि आत्मशक्ति के अतिरिक्त अन्य सब शक्तियां हेय हैं। इनका सम्पादन पुरुषमात्र को विहितमार्ग से करना ही होगा। मतलब यह है कि शारीरिक, धन, विद्या, मानसिक और आचरण शक्ति युक्त पुरुष भी आत्म-शक्तिरहित हो सकते हैं। परन्तु स्मरण रहे कि महत्कार्य, आत्मशक्ति द्वारा ही हो सकता है। संसार में महान् और चिरस्मरणीय कार्य करनेवाले महत लोग आत्मबली पुरुष थे। आत्मबल ही एक ऐसा है, जिसके प्रताप व तेज के सामने वीर धीर, धनी, विद्वान, मनस्वी या आचारी कोई भी ठहर नहीं सकता। आत्मनिष्ठ पुरुष भ्रूभङ्ग मात्र से सहस्रों का शासन कर सकता है। इसके अनेक उदाहरण, भारतवर्ष तथा पाश्चात्य इतिहास में मिल सकते हैं।

पाठकगण मेरी प्रार्थना पर ध्यान देकर कुछ देर के लिए निरर्थक आत्मवाद को छोड़ केवल इस बात पर ध्यान दें कि किन साधनों से उस अनिर्वचनीय शक्ति की प्राप्ति हो सकती है।

अब मैं पाठकों से मूल विषय और उस अलौकिकशक्ति प्राप्त करानेवाले साधनों के परिशीलन की ओर चलने के लिए अनुरोध करूँगा। पाठकगण! इस महागम्भीर विषय को प्रथम मैं आपके समक्ष संक्षेप में रखना चाहता हूं तत्पश्चात् विस्तारपूर्वक समझाने की चेष्टा करूँगा "आनन्दाम्बु पूरित हर्षोत्फुल्ल हृदय-सरोवर में, आत्म-कमल वर्धित, पल्लवित, पुष्पित और विकसित होता है और यही चिन्ता, ग्लानि शोक और भय से संकुचित, मूर्छित ह्रास, एवं नाश को प्राप्त होता है।" इस कथन का तात्पर्य यह है कि हर्षवर्धक कार्य कर भयानक कर्मों का त्याग करना चाहिये; या यों कहिये कि अकुत्सित कर्मों में अनुराग और कुत्सित कर्मों से विरक्त होना चाहिये। अकुत्सित और कुत्सित कर्म पुण्य और पापमय कार्यों को कहते हैं। पुण्य

और पापमग्न कर्म उपकार और अपकार को कहते हैं।

सहृदय पाठक! आइये इन उपर्युक्त थोड़े से शब्दों पर एकाग्र व दत्तचित्त होकर विचार करें। ये कोई अपरिचित नहीं वरन् अहर्निश हम लोगों के सम्मुख आने और झख मार कर लौट जानेवाले शब्द हैं। हमारे विकारपूर्ण हृदयों में इन्हें स्थान नहीं मिलता। यह निर्विवाद है कि दिन रात चिन्ता, ग्लानि और शोक के हृदय में विराजमान रहने से शक्ति-पुञ्ज भी नष्टप्राय होता है और जहां किसी प्रकार की कोई शक्ति ही नहीं, यदि वहां ऐसे विचारों ने आसन जमाया तो कहना ही क्या है? नाश को अवश्यंभावी के अतिरिक्त और क्या कहा जा सकता है। इसके विपरीत, आनन्द शक्तियों के उत्पादन, परिवर्धन और परिपोषण का मूल हेतु होता है। प्रसन्नता, स्वयम् दैवी सम्पत्ति है। भगवत् स्वरूप सम्बन्धी ध्यान में ऐसे उदाहरण बहुत कम मिलेंगे, जिनमें प्रसन्नता का समावेश न हो। इसके विषय में 'प्रसन्नवदनं ध्यायेत्', 'स्पर्धिनेत्र प्रसन्नम्' इत्यादि अनेक उदाहरण दिये जा सकते हैं। प्रसन्नता की महिमा के ज्वलन्त उदाहरण रोज के व्यवहारों में भी दिखाई देते हैं क्योंकि परस्पर मिलने से साधारणतः यह कहा जाता है कि चित्त प्रसन्न तो है? आप आनन्द तो हैं? इत्यादि। इससे यह प्रतीत होता है कि यदि आप प्रसन्न हैं तो सब ठीक है, किसी और वस्तु की अपेक्षा नहीं। इसके सिवा इसका यह अर्थ भी होता है कि यदि आप प्रसन्न हैं तो सब कुछ कर सकते हैं अथवा सब कुछ आपके पास है, तभी तो आप प्रसन्न हैं।

अब प्रश्न यह है कि क्या प्रसन्नता, हर्ष, आनन्द, चिन्ता, ग्लानि और शोक के भी भेद हो सकते हैं, क्या ये मात्राएं भी अनेक प्रकार की हो सकती हैं? इनके फलाफल भी सूक्ष्मातिसूक्ष्म या सूक्ष्म और स्थूल रूप में हो सकते हैं? इसके उत्तर में कहा जाता है कि चिन्ता, ग्लानि और शोक, किसी उत्तम पुरुष के श्लाघणीय कार्यसाधन में कठिनता और बाधा उपस्थित हो जाने और मनोवेग में आकर गर्हित मार्ग के अवलम्बन से विफल मनोरथ हो जाने से भी होते हैं। परन्तु अपकार या नीच स्वार्थवश होकर, प्राणियों को दुःख पहुंचाने के कारण जो चिन्ता, ग्लानि और शोक आदि उत्पन्न होते हैं, वे विशेषतया नाशकारी होते हैं। न्यायमार्ग से पतित हो जाने के डर से भी भय उत्पन्न होता है। परन्तु निन्द्यकर्म करने और कर्ता के प्रति सत्पुरुषों में शत्रुता का भाव जड़ पकड़ जाने से जो भय प्राप्त होता है, उसमें बड़ा अन्तर है। इसी प्रकार से प्रसन्नता, हर्ष और आनन्द, आमोद-प्रमोद, विषयभोग और इच्छित पदार्थों की प्राप्ति से भी होता है। परन्तु जो प्रसन्नता तथा हर्ष और आनन्द, प्राणिमात्र की सेवा करने से प्राप्त होता है वह मोदप्रमोदादि जन्य प्रसन्नता का आनंद कुछ और ही है। इन दोनों प्रकार की प्रसन्नता की तुलना स्वयं पाठक ही करें। आमोद-प्रमोदादि से हर्ष आदि के सम्पादन में तो हम लोग इस भोगविलास के काल में सदैव लगे ही रहते हैं, परन्तु यदि हम में से कभी किसी को निःस्वार्थ और निष्कपट भाव से किसी दीन हीन के आँसू पोंछने का सौभाग्य प्राप्त हुआ हो, तो वह दोनों भावों की तुलना कर सकता है। एक महापुरुष अपने विद्योपार्जन काल की एक कथा कहते हुए कहा करते थे कि, 'भाई, मैंने तो अवस्था भर में एक छोटा सा काम किया है, जब कभी ईश्वर के सामने जाऊँगा तो सामने रख दूंगा'। वह बात यह है, सायङ्काल को परिभ्रमण करते हुए उन्होंने देखा कि राजमार्ग पर एक मलिन-जीर्णवसना वृद्धा एक चिट्ठीरसा के पीछे रोती हुई चली जारही है। ये भी उसी ओर जा रहे थे। जब वे अनुमान से वृद्धा के रोने का कारण न जान सके, तो उन्हें पूछने पर मालूम हुआ कि उस दीना हीना अनाथवृद्धा का एकमात्र पुत्र,

कुली-डिपो वालों की कृपा से १४ वर्ष से लापता था। आज उसका पत्र मारिशस से बैरंग आया है और उसे लेने के लिए उस बेचारी के पास पैसे नहीं हैं। चिट्ठीरसा ने भी बिना पैसे के पत्र देना अस्वीकार किया। मोह और दैन्यावस्था के कारण उस माता का हृदय क्षुब्ध हो रहाथा। किङ्कर्तव्य विमूढ़ावस्था को प्राप्त होकर वह अश्रुविमोचन करती हुई चिट्ठीरसा के पीछे पीछे चली जा रही थी। दृश्य ने इनके हृदय को यह देखने पर और भी विचलित कर दिया कि उनके पास भी पैसे नहीं हैं। इसपर भी उन्होंने चिट्ठीरसा से कहा, भाई! इस समय हमारे पास भी पैसे नहीं हैं। हमारे छात्रालय में रहने के स्थान का पता लिख लो, वहां से ले जाना। बहुत कुछ कहने सुनने के पश्चात् चिट्ठीरसा ने पत्र दे दिया। इन महानुभाव ने उस वृद्धा को अपने स्थान पर ले जाकर पत्र पढ़ सुनाया। उत्तर भेजने में उसको असमर्थ जान उन्होंने उत्तर भी लिखकर डाक में छोड़ दिया। सहृदय पाठक! अब थोड़ासा कष्ट उठाकर उस दुःखितहृदय से निकले हुए आशीर्वादों के मूल्य का अनुमान कीजिये और यदि आपको भी कभी इसी प्रकार दयार्द्र होकर किसी दीन की सेवा करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ हो तो स्मरण कर देखिये कि उस समय आपके हृदय की क्या दशा हुई थी और वह कैसे अनिर्वचनीय आनन्द से भर गया था? यह पूर्वकथित वही आनन्दरूपी जल है, जिसके अन्तःकरण में पूरित रहने से आत्म-कमल दिन दिन विकसित होकर अलौकिक आत्मशक्ति को अप्रतिहत गति से बढ़ाता है। इसी प्रकार के कार्य आपको स्मृतियों, पुराणों, वेदाङ्गों और वेदों में अनेक विधि से बारबार कहे गये हैं। इन्हीं का नाम "उपकार या पुण्यकर्म" है। इन्हीं से स्वर्ग, मुक्ति और ईश्वर-प्राप्ति बतलाई गई है।

शब्द प्रमाण मात्र पर नितान्त अश्रद्धा रख कर उन्हें 'बाबा वाक्यम् प्रमाणम्' समझ ऋषि वचनों का तिरस्कार करनेवाले पाठकगण! कहिये इस 'बाबावाक्य' का सार कुछ समझ में आया? यदि नहीं तो इसके और भी उदाहरण लीजिये:—कहिये आपको प्रशंसा अच्छी लगती है या नहीं? (स्वार्थवश की हुई निन्दा या स्तुति से मेरा अभिप्राय नहीं) यदि आपको अच्छी न लगती हो तो आपके हृदय ही नहीं। फिर उसका आनन्द से भरना और उसने आत्म-शक्ति का स्थान पाना कैसा? ऐसे पुरुष तो गुणातीत और जड़-भरत हैं। ऐसे महानुभावों से मुझे कुछ नहीं कहना है।

आंख सतत लड़ती रहे।

[लेखक—श्रीयुत शिवदास गुप्त।]

रोष भरी इन आँखों से देखो नहीं,
हृदयविदारक मोहजन्य यह दृश्य है।
मारो नहीं कटारी बाँकी भौंह की,
दयाकरो इस आर्त विनय को मानलो॥
मुसकाते हो, कहर मचाते हो अजी?
आँख लड़ाकर हृदय निकाला चाहते।
हटो-चलो यह कैसा भारी पाप है,
जोड़ तोड़ना प्रेम-पाश की ग्रन्थि को॥
कहो न कैसा इसमें सूक्ष्म विनोद है,
जिसे तीसरा कभी न अनुभव कर सका।
बूझ सके फिर कौन प्रेम के मर्म को,
इस रहस्य को एक आपही जानते॥
अस्तु दया की दृष्टि सदा फेरा करो,
किसी भांति तो "आँख सतत लड़ती रहे"।

प्रायश्चित्त।

[अनुवादिका—श्रीमती यशोवती देवी।]

स्वर्ग और मृत्युलोक के बीच में अनिर्देश अराजक स्थान है। वहां त्रिशंकु राजा घूमते फिरते हैं, जहां आकाश-कुसुम का अजस्र आवाद रहता है। उसी वायुदुर्गवेष्टित महादेश का नाम है "करने से हो सकता"। जिन्होंने बड़े २ काम कर अमरता लाभ की है, वे धन्य हैं; और जो सामान्य क्षमता लेकर साधारण मनुष्यों के बीच में साधारण भाव से संसार के मामूली कामकाजों के साधन में सहायता करते हैं, वे भी धन्य हैं; किन्तु जो लोग ईश्वर के भ्रमक्रम से हठात् दोनों के बीच में पड़ गये, उन लोगों को और कोई उपाय नहीं है। वे लोग कुछ से कुछ हो सकते थे किन्तु उसी कारण से उन लोगों के पक्ष में कुछ का कुछ होना बिलकुल असम्भव है।

हमारे अनाथबन्धु वही मध्यदेश-विलम्बित, विधिविडम्बित युवक हैं। सबका यह विश्वास है कि इच्छा करने से सभी विषयों में वे कृतकार्य हो सकते हैं। किन्तु उन्होंने न तो कभी इच्छा की और न वे किसी विषय में कृतकार्य ही हुए। सब का उनमें अटल विश्वास है। सब कहते हैं कि, परीक्षा में वे फर्स्ट होंगे। उन्होंने परीक्षा ही नहीं दी। लोगों का विश्वास है कि जब ये नौकरी करना चाहेंगे तब अनायास ही किसी डिपार्टमेंट का कोई उच्चतम स्थान ग्रहण कर सकेंगे,—उन्होंने कोई नौकरी ही नहीं की। साधारण लोगों को वे अनादर के साथ देखते थे, क्योंकि वे अत्यन्त सामान्य हैं; साधारण लोगों की ओर उनकी श्रद्धा बिलकुल ही न थी, क्योंकि केवल इच्छा करने ही से वे उनकी अपेक्षा साधारण हो सकते थे।

विधाता ने केवल वास्तव राज्य में उनको एक धनी श्वसुर और एक सुशीला स्त्री का दान दिया था! स्त्री का नाम विन्ध्यवासिनी है। यह नाम अनाथबन्धु को पसन्द नहीं है और रूपगुण में भी वह उसको अपने योग्य नहीं समझते। किन्तु विंध्यवासिनी के मन में स्वामी के सौभाग्य-गर्व की सीमा न थी। सब स्त्रियों के स्वामियों की अपेक्षा उनका स्वामी सब विषयों में श्रेष्ठ है, इसमें उनको कोई सन्देह न था। उनके स्वामी के सम्बन्ध में और लोगों की धारणा भी इसी विश्वास के अनुकूल थी।

यह स्वामिगर्व पीछे कुछ कम न हो जाय; इसलिए विन्ध्यवासिनी सदा सशङ्कित रहती थीं। यदि वह अपने हृदय के अभ्रभेदी, अटल भक्ति-पर्वत के ऊँचे शिखर के ऊपर अपने स्वामी को चढ़ाकर मूढ़ मर्त्यलोक के समस्त कटाक्ष-पात से दूर रक्षा कर सकतीं, तो वह निश्चिन्त होकर पति-पूजा में जीवन बितातीं। किन्तु जड़-जगत् में केवल भक्ति के द्वारा कोई भक्ति-भाजन को ऊपर नहीं उठा सकता है और अनाथबन्धु को भी पुरुषों का आदर्श न माननेवाले प्राणी संसार में कम नहीं मिलेंगे इसीलिए विन्ध्य-वासिनी को अनेक दुःख उठाने पड़ते हैं।

अनाथबन्धु जब कालेज में पढ़ते थे तब श्वसुर ही के घर में रहते थे। परीक्षा का समय आने पर उन्होंने परीक्षा नहीं दी और दूसरे साल से कालेज छोड़ दिया।

इस घटना से सर्वसाधारण के सामने विन्ध्यवासिनी अत्यन्त कुण्ठित हुई। रात को मृदुस्वर से अनाथबन्धु से विन्ध्य ने कहा, "परीक्षा देही देते तो अच्छा होता।"

अनाथबन्धु ने तुच्छ हँसी हँस कर कहा, "परीक्षा देने से क्या चतुर्भुज हो जाते? हमारे केदार भी पास हुए हैं।"

विन्ध्यवासिनी यह सुनकर शान्त हुई। देश के बहुत से बैल और गदंभ जिस परीक्षा में

पास होते हैं उसीसे अनाथबन्धू का गौरव क्या और बढ़ जायगा ?

उसकी बाल्यसखी पड़ोसिन कमला बड़े उत्साह से यह ख़बर देने आई कि उसका भाई रमेश इस बार पास हो गया और उसको स्कालरशिप मिली है । यह सुनकर अकारण ही विन्ध्यवासिनी ने अपने मन में सोचा कि कमला का यह आनन्द शुद्ध आनन्द नहीं है, इसके बीच में उसके स्वामी की ओर किञ्चित व्यंग भी हैं। इसीलिए वह सखी की खुशी में आनन्द प्रकाश न कर रूखे स्वर से कहने लगी कि, "एल०, ए० भी कोई परीक्षा में परीक्षा है ? विलायत में तो बी०, ए० के नीचे किसी कालेज में परीक्षा" ही नहीं है । यह समाचार विन्ध्यवासिनी ने स्वामी के निकट से संग्रह किये थे ।

कमला सुखसंवाद देने के लिए आकर, सहसा परमप्रियतमा प्राणसखी से ऐसा आघात पाकर पहिले तो चकितहुई, किन्तु थोड़ी ही देर में विन्ध्यवासिनी के मन का भाव समझ गई । भाई के अपमान से उसकी ज़बान के आगे भी तीव्र विष का एक बिन्दु सञ्चारित हुआ। उसने कहा, "हम लोग विलायत तो गये नहीं और साहब से विवाह भी नहीं किया, फिर इतनी खबर कहां से मिलेगी । मैं मूर्ख लड़की केवल यही जानती हूं कि, बंगाली के लड़कों को कालेज में एल०, ए० देना पड़ता है;—यह भी तो सब नहीं पास कर सकते ।" अत्यन्त निरीह और मीठे भाव से ये बातें कह कर कमला चली गई । कलह-विमुख विन्ध्य ने निरुत्तर सब सुनकर कमरे में जाकर रोना आरम्भ किया ।

थोड़े ही दिनों के बीच में एक और घटना हुई । एक दूरस्थ धनी कुटुम्ब ने कलकत्ते में आकर विन्ध्यवासिनी के पित्रालय में कुछ दिनों के लिए आश्रय ग्रहण किया । इससे उसके पिता राजकुमार बाबू के घर में एक विशेष धूम मच गई है । बाहर के जिस बड़े बैठक में दामाद रहते थे वह मेहमानों को देने और मामा के घर में रहने का उनसे अनुरोध किया गया । इस घटना से अनाथबन्धू का अभिमान उबल उठा । पहिले तो स्त्री के निकट आकर उसके पिता की निन्दा कर उसे रुलाया; फिर इसके बाद अनाहार इत्यादि अन्यान्य प्रबल उपायों से अभिमान प्रकाश करने का उपक्रम किया । यह देख कर विन्ध्यवासिनी बहुत लज्जित हुई । इससे उसको बहुत दुःख हुआ और किसी तरह हाथ पांव जोड़ और रोकर उसने बड़े कष्ट से स्वामी को शान्त रक्खा ।

विन्ध्य अविवेचक नहीं थी, इसीलिए उसने अपने माता पिता को कोई दोषारोपण नहीं किया; वह समझती थी कि यह एक सामान्य और स्वाभाविक बात है; किन्तु यह बात भी उसके मन में आई कि उसके स्वामी ससुराल में रह कर कुटुम्ब के आदर से वंचित हैं । उसी दिन से वह रोज़ अपने स्वामी से कहने लगी कि मुझे अपने घर ले चलो; मैं अब यहां न रहूंगी ।

अनाथबन्धू के मन में अहङ्कार यथेष्ट था किन्तु आत्मसम्भ्रमबोध नहीं था । उनको अपने दरिद्र घर में रहना किसी तरह नहीं रुचा । तब उनकी स्त्री ने कुछ दृढ़ता प्रकाश कर कहा कि यदि तुम न जाओगे तो मैं अकेले ही जाऊँगी ।

अनाथबन्धू ने मन ही मन विरक्त होकर अपनी स्त्री को कलकत्ते के बाहर दूर एक छोटे से गांव में अपने कच्चे घर में लेजाने का उद्योग किया । यात्रा के समय राजकुमार बाबू और उनकी स्त्री ने कन्या को और थोड़े दिन रह जाने के लिए कई तरह से अनुरोध किया; कन्या के सिर नीचा करके गम्भीर मुख से बैठने ही से मालूम हो गया कि—नहीं, यह नहीं हो सकेगा!

सहसा उसकी ऐसी दृढ़प्रतिज्ञा देखकर माता पिता को सन्देह हुआ कि शायद भूल से उसे

किसी प्रकार का आघात पहुंचा हो। राजकुमार बाबू ने व्यथित होकर पूछा, बेटी क्या हम लोगों के किसी अज्ञानकृत आचरण से तुमको दुःख हुआ है।

विन्ध्यवासिनी ने करुण दृष्टि से पिता का मुख निहारकर कहा, एक मुहूर्त्त के लिए भी नहीं। आपके यहां बड़े सुख और आदर से मेरे दिन बीते! यह कहकर वह रोने लगी, किन्तु उसका सङ्कल्प अटल रहा।

बाप माँ ने दीर्घनिश्वास छोड़ मन में कहा, चाहे जितने स्नेह और आदर से लड़की को पालो, विवाह करते ही वह पराई हो जाती है। अन्त में अश्रुपूर्ण नयनों से सब से विदा लेकर अपना आजन्मकाल का स्नेहमंडित पितृगृह, परिजन और सङ्गिनीगण को छोड़ कर विन्ध्यवासिनी पालकी पर सवार हुई।

(२)

कलकत्ते के धनी और पल्लीग्राम के गृहस्थघर से बड़ा भेद है। किन्तु विन्ध्यवासिनी ने एक दिन के लिए भी अपने भाव और आचरण से असन्तोष नहीं प्रकाश किया। बड़ी खुशी से वह गृहकार्य और सास की सेवा करने लगी। उन लोगों की दरिद्र अवस्था जानकर पिता ने अपने ख़र्च से कन्या के साथ एक दासी भेजी थी। विन्ध्यवासिनी ने स्वामी के घर पहुंचते ही उसको विदा कर दिया। उसके ससुराल की दरिद्रता देखकर बड़े आदमी के घर की दासी घर बड़ी मन ही मन नाक सिकोड़ेगी, यह आशङ्का भी उसे असह्य बोध हुई।

स्नेहवश उसकी सास उसे मेहनत के काम से अलग रखने की चेष्टा करतीं, किन्तु विन्ध्य ने निरलस, अविश्रान्तभाव और प्रफुल्लमुख से सब कामों में योग देकर सास के हृदय में अधिकार कर लिया और गाँव की स्त्रियां भी उसके गुणों से मुग्ध हो गईं।

किन्तु इसका सम्पूर्ण फल सन्तोषजनक नहीं हुआ। क्योंकि विश्वनियम नीतिबोध, प्रथम भाग की तरह साधुभाषा में रचित सरल उपदेशावली नहीं है। निष्ठुर और विघ्नप्रिय शैतान ने बीच में आकर सब नीतिसूत्रों को उलझा दिया। इसीसे अच्छे कामों का सर्व समय शुभ फल नहीं होता। हठात् एक न एक बाधा पड़ ही जाती है। अनाथबन्धू के दो छोटे और एक बड़ा भाई था। बड़ा भाई परदेश में नौकरी कर के जो पचास रुपये पाता उसी से उसकी गृहस्थी चलती और दोनों छोटे भाई पढ़ते थे।

आजकल पचास रुपये में गृहस्थी का काम चलाना असम्भव है, किन्तु बड़े भाई की स्त्री श्यामशङ्करी के लिए यही यथेष्ट था! स्वामी साल भर से काम करते हैं; इसी कारण उनकी स्त्री को सालभर से विश्राम का अधिकार प्राप्त हुआ था। वह कोई काम न कर ऐसी चाल चलती थी, मानों अपने स्वामी की स्त्री होकर उन्होंने समस्त संसार को परमबाधित कर लिया है। जब विन्ध्यवासिनी ससुराल आकर गृहलक्ष्मी की तरह दिन रात घर के काम में प्रवृत्त हुई, तब श्यामशङ्करी के सङ्कीर्ण अन्तःकरण को चोट पहुंची। उसका कारण समझना कठिन है। मालूम होता है कि बड़ी बहू ने अपने मन में सोचा कि बड़े घर की लड़की होकर केवल लोगों को दिखलाने और उनको (बड़ी बहू को) लोगों की नज़रों से गिराने के लिए यह ऐसा कर रही है। चाहे जिस कारण से क्यों न हो, पचास रुपये महीने की स्त्री किसी तरह धनीवंश की कन्या को न देख सकी। उन्हें उसकी नम्रता में घमंड के असह्य लक्षण दिखाई दिये।

इधर अनाथबन्धू ने गांव में आकर एक लाइब्रेरी स्थापित की; स्कूल के दस बीस लड़कों को जोड़कर स्वयं सभापति बन ख़बर के कागज़ों को समाचार भेजने लगे, इस तरह गांव के लोगों को चकित कर दिया, परन्तु घर में एक पैसा भी वे नहीं ले आये और ज़्यादा ख़र्च

होने लगा। इससे विन्ध्यवासिनी उन्हें कोई नौकरी करने के लिए अनुरोध करने लगी, परन्तु उन्होंने उस पर कान न देकर स्त्री से कहा, उनके उपयुक्त नौकरी है सही किन्तु पक्षपाती अँगरेज़ सरकार उन पदों पर बड़े बड़े अँगरेज़ों को नियुक्त करती है, बंगालियों को हज़ार योग्य होने पर भी नहीं।

श्यामशङ्करी अपने देवर और देवरानी के मुंह पर और पीठ पीछे हमेशा ही वाक्यविष प्रयोग करने लगी। घमंड के मारे अपने को वह दरिद्र कहकर कहने लगीं, मैं गरीब हूं, बड़े आदमी की लड़की और बड़े आदमी के दामाद को कैसे रख सकती हूं? वहाँ तो मज़े में थे, कोई दुःख नहीं था, यहां दाल भात खाकर क्या इतना कष्ट सह सकेंगे? सास बड़ी बहू को डरती थीं इससे वे दुर्बल का पक्ष लेकर कुछ कहने का साहस नहीं करती थीं। मँझली बहू (विन्ध्यवासिनी) पचास रुपये दाल भात और उसकी स्त्री की वाक्यरूपी मिर्च खाकर चुपचाप हज़म करने लगी।

इसी बीच में अनाथबन्धू के बड़े भाई छुट्टी में कुछ दिन के लिए घर आकर स्त्री से उद्दीपनापूर्ण बातें सुनने लगे। अन्त में जब रोज़ निद्रा में व्याघात होने लगा तब उन्होंने एक दिन अनाथबन्धू को बुलाकर शान्तभाव और स्नेह के साथ कहा, "तुमको नौकरी कोई करना चाहिये। मैं अकेले सारा गृहस्थी कैसे चला सकूंगा"?

अनाथबन्धू पदाहत सर्प की तरह गर्ज कर बोला, दोनों दो मुट्ठी अत्यन्त अखाद्य मोटे चावल पर इतना ताना नहीं सह सकते। उसने उसी समय स्त्री को लेकर ससुराल जाने का संकल्प किया।

किन्तु स्त्री ने यह बात किसी तरह नहीं मानी। उसकी समझ में भाई के अन्न और भावज की गाली में छोटे भाई का अधिकार है, किन्तु पिता के आश्रय में रहना बड़ी लज्जा की बात है। विन्ध्यवासिनी ससुर के घर में दीन हीन की तरह नीची होकर रह सकती है किन्तु पिता के घर अपनी मर्यादा की रक्षा करके सिर उठाकर चलना चाहती है।

इसी समय गाँव के एन्ट्रेंस स्कूल के तृतीय शिक्षक का पद ख़ाली हुआ। इसे स्वीकार करने के लिए अनाथबन्धू के बड़े भाई और विन्ध्यवासिनी के कहने पर हित के विपरीत हुआ। वह सोचने लगे कि अपना भाई और धर्मपत्नी एक तुच्छ कार्य के योग्य समझती हैं, इससे उनके मन में दुर्जय अभिमान का सञ्चार हुआ और संसार के समस्त कार्य में पहिले से चतुर्गुण वैराग्य उत्पन्न हुआ। यह देखकर दादा (जेठ) ने हाथ पकड़ कर विनती करके किसी तरह उनको ठंढा किया। सब लोगों ने सोचा कि इनसे कुछ कहने की ज़रूरत नहीं: अभी किसी प्रकार इनका घर में रह जाना ही गृह-सौभाग्य है।

छुट्टी के अन्त में दादा नौकरी पर चले गये; अनाथबन्धू ने विन्ध्यवासिनी से आकर कहा कि आजकल बिना विलायत गये कोई बड़ी नौकरी नहीं मिलती, इसलिए मैं विलायत जाना चाहता हूं, तुम अपने पिता से किसी तरह धन मांगो। एक तो विलायत जाने की बात सुनकर उसके सिर पर मानों बज्र गिर पड़ा; फिर पिता से अर्थभिक्षा मांगने की बात के मन में आने से मारे लज्जा के वह मृतवत् होगई।

ससुर से स्वयं रुपया मांगने में भी अनाथबन्धू के अहङ्कार ने बाधा डाली। इसलिए वे यह नहीं समझ सके कि क्या बाप के यहां से छल अथवा बल से धन क्यों न लायेगी। अनाथ इसी बात पर बहुत खफ़ा हुए और मर्मपीड़िता विन्ध्यवासिनी को आंसू बहाना पड़ा। इसी तरह सांसारिक अभाव और मन के कष्ट से कुछ दिन कट गये। अन्त में शरत्काल-

की पूजा क़रीब आई। कन्या और दामाद को बुलाने के लिए राजकुमार बाबू ने बड़े समारोह के साथ निमंत्रण भेजा।

एक साल के बाद कन्या स्वामी के साथ पिता के घर आई। पहिले से इस बार दामाद ने अधिक आदर पाया। विन्ध्यवासिनी बहुत दिन के बाद घूंघट खोलकर रात दिन स्वजन-स्नेह और उत्सव में मग्न रहने लगी। आज छठ है। कल सप्तमी को पूजा आरम्भ होगी। इससे कोलाहल और काम की सीमा नहीं। दूर और निकट के सम्बन्धियों और कुटुम्बियों से छत के हर एक कमरे भरे हैं। उस रात को विन्ध्य-वासिनी बहुत थककर सोई। पहिले जिस कमरे में वह सोती थी, यह वह कमरा नहीं है; इस बार सास ने विशेष आदर कर के दामाद को अपना कमरा छोड़ दिया। विन्ध्य ने यह भी नहीं जाना कि अनाथबन्धू कब सोने आये क्योंकि उस समय वह गाढ़निद्रा में मग्न थी। सवेरा होते ही शहनाई बजने लगी। किन्तु थकी हुई विन्ध्यवासिनी की निद्रा नहीं भङ्ग हुई। कमल और भुवन दोनों सखियां विन्ध्य के कमरे की ज़ंजीर खटखटा कर हार गईं, अंत में बाहर से परिहासपूर्वक ज़ोर से हँस पड़ीं; विन्ध्य ने झटपट उठकर देखा कि उसके स्वामी कभी उठकर चले गये हैं। लज्जित होकर चारपाई से उतर कर देखा उसकी माँ का लोहे का संदूक खुला है और उसके अन्दर उसके बाप का जो कैशबाक्स रहता था, वह भी ग़ायब है।

तब याद आया, कल शाम को मां के चाबियों का गुच्छा खो गया था। इस कारण घर में ख़ूब हलचल मची थी। इसमें कुछ संदेह नहीं कि किसी चोर ने वही चाभी चुराकर यह काम किया है। उसके मन में हठात् यह शंका भी हुई कि शायद उसी चोर ने पीछे मेरे स्वामी को भी चोट पहुंचाई हो! इससे उसका हृदय धड़कने लगा। बिछौने के नीचे ढूंढ़ने लगी तो देखा कि पैताने माता की चाबियों के गुच्छे के नीचे एक पत्र दबा हुआ रक्खा है।

यह पत्र उसके स्वामी के हाथ का लिखा है। खोलकर पढ़ने से मालूम हुआ कि उसके स्वामी ने अपने किसी एक बन्धु की सहायता से विलायत जाने के लिए जहाज़ का भाड़ा संग्रह किया है। किन्तु ख़र्च चलाने का और कोई उपाय न देखकर गई रात को ससुर का धन चोरी कर वे बरामदे में काठ की सीढ़ी लगा कर ज़नाने बाग में उतरे और दीवार डांक कर भाग गये। आज ही सुबेरे जहाज़ छूटा था।

चिट्ठी पढ़कर विन्ध्यवासिनी का ख़ून सूख गया। उसी जगह वह चारपाई का पाया पकड़ कर बैठ गई। उसके शरीर और कानों में निस्त-ब्ध मृत्युरज़नी को झिल्लीध्वनि की भांति एक शब्द होने लगा। फिर उसी पर आँगन से, पड़ोसियों के घरों से और दूर अट्टालिकाओं से बहुतसी सहनाइयों ने बहुत से राग निकाले। उस समय समस्त बङ्गदेश आनन्द से उन्मत्त होगया थ

शरत्काल की उत्सव-हास्य-रंजित धूप ने बड़े कौतुक से शयनगृह में प्रवेश किया। इतनी देर हुई तथापि उत्सव के दिन द्वार बन्द देखकर भुवन और कमल जोर से हँसकर उप-हास करते, करते द्वार में धमाधम घूंसे मारने लगीं।

विन्ध्यवासिनी ने रूंधे कंठ से कहा, "आती हूं; तुम लोग अभी जाओ।" वे लोग सखी को बीमार समझ उसकी मां को बुला लाईं। माता ने आकर कहा, "बिन्दु, क्या हुआ है, बेटी अभी तक द्वार क्यों बन्द हैं।" विन्ध्य ने आंसुओं को रोक कर कहा, "बाबा को साथ लेआओ।"

मां डरकर उसी दम राजकुमार बाबू को साथ लेकर दर्वाजे पर आई। विन्ध्य ने द्वार खोलकर उनके कमरे में आते ही जल्दी से किवाड़ बन्द कर लिये। फिर विन्ध्य ने पिता के

पैरों पर गिरकर रोते २ कहा, "बाबा मुझे क्षमा करो, मैंने तुम्हारे सन्दूक से रुपया चोरी किया है।"

वे अवाक् होकर बिछौने पर बैठ गये। विन्ध्य ने कहा, मैंने अपने स्वामी को विलायत भेजने के लिए यह काम किया है। उसके बाप ने पूछा, "हम लोगों से क्यों नहीं मांगा ?"

विन्ध्यवासिनी ने कहा, "विलायत जाने में आप लोग बाधा देते।" राजकुमार बाबू बहुत खफ़ा हुए। मां रोने लगीं, बेटी भी रोने लगी और कलकत्ते के चारो ओर विचित्र आनन्द के बाजे बजने लगे। जिस विन्ध्य ने कभी बाप से भी धन नहीं मांगा और जो स्त्री अपने स्वामी के थोड़े से अपमान को अपने सगे से सगे लोगों से छिपाने के लिए प्राणपण चेष्टा कर सकती है, आज एक दम उत्सव में आये हुए लोगों के बीच में उसका पत्नी-अभिमान दुहितृसम्भ्रम और उसकी आत्म-मर्यादा चूर्ण होकर प्रिय और अप्रिय, परिचित और अपरिचित सबों के पैरों की धूल की तरह लोटने लगी। आत्मीयों, कुटुम्बियों और सारे घर में हलचल मच गया कि पहिले ही सलाह करके षड़यंत्रपूर्वक चाबी चुराकर स्त्री की सहायता से रातोरात धन लेकर अनाथबन्धु विलायत भाग गया है। द्वार के निकट भुवन, कमल और अनेक स्वजन पड़ोसी, दास दासी दामाद के कमरे में कर्ता और गृहिणी को उत्कंठित प्रवेश करते देख कर सभी कौतूहल और शंका से व्यग्र होकर दौड़े आये थे।

विन्ध्यवासिनी ने किसी को भी मुंह नहीं दिखाया। वह दवाज़ा बंद करके अनाहार बिछौने पर पड़ी रही। उसके शोक और दुःख का अनुभव किसी ने नहीं किया। षड़यंत्रकारिणी की दुष्ट बुद्धि से सभी चकित हुए। सब लोगों ने सोचा कि विन्ध्य का चरित्र इतने दिनों तक अवसर न मिलने से प्रकाश नहीं हुआ था। निरानन्द गृह में किसी तरह पूजा का उत्सव समाप्त होगया। अपूर्ण।

गेय-गीत।

[लेखक—श्रीयुत लक्ष्मणसिंह क्षत्रिय, 'मयंक' ।]

(उपेन्द्रवज्रा)

उठो ! उठो ! भारत को उठाओ !
प्रभात है सुन्दर सौख्यकारी,
सरोज-संघात-विपत्ति-हारी।
जगे सभी उन्नत-मार्गचारी,
उठो ! उपेक्षा बस है तुम्हारी॥
न सौख्य में काल वृथा विताओ;
उठो ! उठो ! भारत को उठाओ ! १॥

मदान्धता, हर्ष-विषाद-छाया,
अनङ्ग सेवा-धन-धान्य-जाया।
प्रमाद-लिप्सा, निज मोहमाया;
विराम-आराम, स्वप्राण-काया॥
स्वतन्त्रता पै बलि हां चढ़ाओ,
उठो ! उठो ! भारत को उठाओ ! २॥

स्वदेश-सेवा-हित जन्म जानो,
सु-बुद्धि ही को गुरु मन्त्र मानो।
स्वतन्त्रता की शुभ ठान ठानो,
सु-कीर्ति के भव्य-वितान तानो॥
स्ववंश के गौरव को बढ़ाओ,
उठो ! उठो ! भारत को उठाओ ! ३॥

"स्वदेश की जै" वर वीर बोलो,
विदेशियों से निज-शक्ति तोलो।
कलङ्क के अङ्क निशङ्क धोलो,
जगो ! जगो बन्धु ! दगाब्ज खोलो॥
स्वजाति की कीर्ति-कला बढ़ाओ,
उठो ! उठो ! भारत को उठाओ ! ४॥

विवेक, विद्या, बल, बुद्धि जोड़ो,
विरोध के वे सब-व्यूह तोड़ो।
विपत्ति से भी मुख को न मोड़ो,
प्रभुत्व के स्वत्व कभी न छोड़ो॥
गये हुए गौरव को बचाओ,
उठो! उठो! भारत को उठाओ॥ ५॥

विरोधियों के हठ को हटा दो,
घमंड की घोर-घटा घटा दो।
स्वदेश को बन्धन से छुटा दो,
चलो! प्रसादी 'जय' की बँटा दो॥
स्वराज्यवादी बन वीर जाओ,
उठो! उठो! भारत को उठाओ! ६॥

सफलता का आनन्द।*

कोई काम सफलतापूर्वक कर लेने पर आनन्द होना स्वाभाविक है। हाथ लगाये हुए काम के पूर्ण हो जाने पर सदा सुख और शान्ति मिलती है। अमरसन्त का कहना है कि जब मनुष्य अपना कर्तव्य कर चुकता है तब उसका हृदय हलका और मन प्रसन्न हो जाता है। काम छोटा ही क्यों न हो उसे तन मन से कर लेने पर सन्तोष होता है।

सब से दुखी, काम से भागनेवाले हैं। जिन कर्तव्यों और आवश्यक कामों में परिश्रम और उद्योग के व्यय की आवश्यकता है, उनसे बचने ही में सुख और आनन्द समझनेवालों का चित्त सदा व्याकुल और चंचल रहता है, वे अपनी आन्तरिक लज्जा के भार से दबे रहते हैं और मनुष्यत्व और पुरुषार्थ को खो बैठते हैं। कारलाइल का कथन है कि जो अपनी योग्यता के अनुसार काम नहीं करते उन्हें अपनी आवश्यकता के अनुसार गिरने दो। यह नैतिक नियम है कि जो मनुष्य अपने कर्तव्य से भागते हैं, जो अपनी पूर्णशक्ति का उपयोग नहीं करते, वे गिरते हैं; पहिले आचरण से और अन्त को शरीर और दशा से। जीवन और कर्तव्य समानार्थक हैं। जैसे ही मनुष्य दैहिक या मानसिक अध्यवसाय से, भागने की कोशिश करता है वैसेही उसका पतन आरम्भ हो जाता है।

जो मनुष्य अपनी शक्ति के पूर्ण प्रयोग से बाधाओं को कुचलते हुए मानसिक या दैहिक परिश्रम से अपने अभीष्ट को प्राप्त करते हैं, उनके पौरुष की सदा वृद्धि होती रहती है।

अहा, वह बालक जिसने अपना पाठ पूर्ण रूप से मनन कर लिया है, कितना प्रसन्न होता है। जिसने अपने शरीर को महीनों या वर्षों के परिश्रम और संयम के अनन्तर अपने स्वास्थ्य और बल को उन्नत किया है वह पहलवान परम सुखी है, जब वह अखाड़े से बाज़ी मार कर प्रफुल्लहृदय घर को लौटता है, तब मित्रों की बधाइयों से वह गद्गद हो जाता है। वर्षों के कठिन परिश्रम के उपरान्त विद्यार्थी का हृदय विद्या प्राप्त करके आनन्द से उमड़ जाता है। व्यापारी अपनी कठिनाइयों और अड़चनों का बदला नफे के रूप में पाजाता है और गृहस्थ कठिन भूमि जोत कर पैदा किये हुए अन्न की रोटी खाकर परम प्रसन्न होता है।

सांसारिक या आध्यात्मिक सभी कार्य मनुष्य के परिश्रम का बदला सफलता के रूप में दे देते हैं। आध्यात्मिक उद्देश्यों के पूरे होने पर जो आनन्द होता है वह सत्य, गंभीर और चिरस्थायी रहता है। जब मनुष्य अपने आचरण के किसी दोष को अथक प्रयत्न के अनन्तर निकाल कर संसार के सन्मुख रखता है, तब उसे असीम आनन्द होता है। जो धर्मप्राण सज्जन

---

* जेम्स ऐलेन (James Ellen) के Mastery of Destiny के अन्तिम परिच्छेद के आधार पर लिखित।

सदाचरण के नियम बनाने के पवित्र कार्य में लगे हुए हैं वे आत्मशासन की प्रत्येक सीढ़ी पर अपूर्व आनन्द लूटते हैं। वह आनन्द उनके जीवन के साथ है बल्कि उनके आध्यात्मिक स्वभाव का वह एक मुख्य भाग ही है।

जीवन युद्धमय है। बाहरी और भीतरी दोनों ही दशाओं में मनुष्य को लड़ना आवश्यक है। संसार में अपनी स्थिति बनाये रखना ही प्रयत्न और सफलता का एक क्रम है। मनुष्य-समाज के एक लाभदायक अङ्ग बने रहना, यह बाहरी प्राकृतिक तत्वों से और भीतरी धर्म और सत्य के द्रोहियों से सफलतापूर्वक लड़ने की शक्ति पर निर्भर है।

मनुष्य का यह प्राकृतिक स्वभाव है कि वह सदा अच्छी से अच्छी चीजों, उच्च कामनाओं और बड़े बड़े उद्देश्यों को प्राप्त करने में लगा रहे। इन्हें प्राप्त कर लेने ही में मनुष्य का आनन्द है। जो सीखने के लिए लालायित रहते हैं, जानने के अभिलाषी हैं, वे प्रयत्न करने पर अवश्य जान जाते और अनुपम आनन्द का अनुभव करते हैं। आरम्भ में छोटी २ चीज़ की प्राप्ति के लिए, फिर बड़ी के लिए, पश्चात् उससे भी बड़ी के लिए मनुष्य को प्रयत्न अवश्य करते रहना चाहिये और वह प्रयत्न उस समय तक बराबर जारी रखना चाहिये जब तक वह सर्वश्रेष्ठ प्रयत्न के योग्य न बन जाय। अन्त में उसे 'सत्य' के लिए प्रयत्न करना चाहिये, जिसमें सफल होने पर वह चिरानन्द प्राप्त करे।

जीवन का मूल्य प्रयत्न है। प्रयत्न का उद्देश्य सफलता है और सफलता, आनन्द का मुख्य साधन है। धन्य हैं वे मनुष्य जो स्वार्थ के विरुद्ध प्रयत्नों की सफलता का आनन्द उठाते हैं।

"महेन्द्र"।

चगड।*

[लेखक—श्रीयुत जगन्नाथप्रसाद मिश्र।]

कौरव पितामह वीरश्रेष्ठ महात्मा भीष्म का उज्ज्वल चरित्र जिस प्रकार देदीप्यमान है, उसी प्रकार राजपूत वीर चगड का चरित्र भी इस युग में प्रसिद्ध है। भीषण प्रतिज्ञा करने के कारण जिस प्रकार उनका नाम विश्व के इतिहास में स्वर्णाक्षरों से लिखा है उसी प्रकार प्रचगड प्रतिज्ञा पालनकर चगड ने भी अपने नाम को सदा के लिए अमर किया है। चगड मेवाड़ाधिपति राणा लक्ष के ज्येष्ठ पुत्र थे। एक दिन राणा अपने मन्त्री तथा अन्य राजकर्मचारियों के साथ सभा में बैठे हुए थे। उसी समय मारवाड़ के राजा रणमल्ल का भेजा हुआ दूत एक नारियल का फल हाथ में लिये हुए वहां उपस्थित हुआ। राणा ने दूत का यथोचित सम्मान करके मारवाड़ेश्वर का कुशल समाचार पूंछकर उसके आगमन का कारण पूंछा। दूत बोला "महाराज रणमल्ल ने महाराणा के ज्येष्ठ पुत्र चगड के साथ अपनी कन्या का परिणय सम्बन्ध स्थिर करके यह फल भेजा है।" राणा ने दूत को कुछ समय तक ठहराकर कहा कि शीघ्र ही चगड यहां आकर इस प्रस्ताव पर अपनी सम्मति प्रदान करेंगे। राणा उस समय अपनी मूंछ ऐंठते हुए परिहासरूप से बोले—"जान पड़ता है कि बाल श्वेत हो जाने के कारण मुझे इस प्रकार की सामग्री भेंट नहीं की जाती है"। राणा लक्ष के इस मधुर तथा कौतुकपूर्ण वचन को सुनकर सभा में जितने लोग थे

* राजस्थान के इतिहास से।

सभी हँस पड़े। उसी समय चण्ड ने भी सभा में उपस्थित होकर सब बातें जान लीं। पिता ने कौतुकरूप से क्षणभर के लिए जिस सम्बन्ध को अपने विषय में माना था, उस सम्बन्ध में पुत्र अपने को कैसे आबद्ध करता। चण्ड ने निश्चय कर लिया कि किसी प्रकार भी इस सम्बन्ध में अपनी सम्मति प्रदान न करूंगा। जब राणा लक्ष को यह बात विदित हुई तब उन्होंने अनेक प्रकार से चण्ड को समझाया बुझाया, परन्तु चण्ड ने अपने दृढ़ संकल्प का परित्याग नहीं किया। राणा अब बड़े सङ्कट में पड़े।

इधर चण्ड की कठोर प्रतिज्ञा और उधर मारवाड़ नरेश रणमल्ल का घोरतर अपमान। अपने पुत्र के प्रति राणा के उपदेश, स्नेहवचन, अनुरोध, आदेश और अन्त में भयप्रदर्शन सभी निष्फल सिद्ध हुए। दृढ़प्रतिज्ञ चण्ड किसी प्रकार भी, अपने संकल्प से नहीं टले। अन्त में राणा अपने पुत्र से अत्यन्त विरक्त होकर रणमल्ल के सम्मान-रक्षणार्थ स्वयं ही विवाह-सम्बन्ध को स्वीकार करने पर बाध्य हुए। महाराणा ने अतिशय रुष्ट होकर अपने पुत्र का तिरस्कार किया। परन्तु तेजस्वी चण्ड ने अविचलित भाव से पिता के समस्त तिरस्कार को सहन किया। अन्ततोगत्वा राणा ने चण्ड को बुला कर इस प्रकार कहा—"चण्ड! मैं स्वयं ही उस रमणी का पाणिग्रहण करता हूं। उससे जो पुत्र उत्पन्न होगा वही राजा होगा, और तुम राज्याधिकार से वञ्चित रहोगे, मेरे समक्ष तुम इस बात को शपथ करो। चण्ड अतिशय नम्र होकर स्थिर भाव से बोले—"पिता! मैं ईश्वर का नाम ले कर शपथ करता हूं कि पुत्र होने पर मैं स्वयं ही राज्य का समस्त स्वत्व परित्याग करूँगा।" उस पत्नी के गर्भ से राणा के एक पुत्ररत्न उत्पन्न हुआ। उसका नाम मुकुल पड़ा। मुकुल जब पाँच वर्ष के हुए, उस समय महाराणा ने युद्धार्थ गया को प्रस्थान किया। प्रस्थान से पूर्व ही उन्होंने चण्ड को बुलाकर कहा "चण्ड, मैंने जिस कार्य को अपने ऊपर लिया है उसे समाप्त कर पुनः सकुशल लौटने की बहुत कम आशा है। यदि मैं न लौट सकूं तो मुकुल की उपजीविका का क्या प्रबन्ध होगा"। तेजस्वी चण्ड ने विनम्र होकर उत्तर दिया—"चित्तौर के सिंहासन के विषय में आप किसी प्रकार का सन्देह न करें। मैं आपके प्रस्थान के प्रथम ही मुकुल का अभिषेक-कार्य समाप्त कर देना चाहता हूं"। उनकी अद्भुत प्रतिज्ञा तथा आत्मत्याग को देख कर सब लोग अत्यन्त विस्मित हुए। चण्ड ने पांच बरस के बालक मुकुल को राज्योचित सम्मान पूर्वक राज्यसिंहासन पर बिठा कर उनके अनुगत तथा विश्वस्त बने रहने की प्रतिज्ञा की। पिता की अनुपस्थिति में तथा उनकी मृत्यु के उपरान्त चण्ड मेवाड़ राज्य के मंगल साधनार्थ सुचारुरूप से शासन करने लगे। परन्तु उनकी अपूर्व राज्यक्षमता को देखकर उनकी विमाता का हृदय जलने लगा। उसने अपने मन में निश्चय कर लिया कि जब तक पुत्र शासन के योग्य न हो तब तक शासनकार्य स्वयं ही देखा करूंगी। ऐसा विचारकर वह बराबर चण्ड के राज्यकार्य में दोष ढूंढ़ने का यत्न करने लगी किन्तु चण्ड राज्यकार्य में पूर्ण दक्ष थे। राणा के समान राज्यकार्य परिचालन करने पर भी उन्होंने राणा की उपाधि नहीं धारण की। कालक्रम से चण्ड को अपनी विमाता के विषय में समस्त वृत्तान्त श्रवणगोचर हुआ और उनके उदार हृदय पर इस बात का घोरतर आघात पहुंचा। वे धीरभाव से अपनी विमाता के समक्ष जाकर इस प्रकार बोले—"माता आपकी बुद्धि में भ्रम हो गया है। मुझे यदि राज्यसिंहासन पर बैठने की अभिलाषा होती तो आज आपको राजमाता कहकर कौन संबोधन करता। आपके कथन पर मुझे कुछ भी चिन्ता नहीं है। दुःख केवल चित्तौर राज्य के परित्याग का है। अब एकमात्र आप ही के ऊपर राज्य का सुख दुःख, सम्पद, विपद, निर्भर है; ऐसा करना

जिसमें राजकुल का मान विलुप्त न होने पाये।" इतना कहकर चण्ड चित्तौर से चले गये। चण्ड के गमनोपरान्त मुकुल के मातृकुल का प्राधान्य चित्तौर पर बढ़ने लगा। राणा रणमल्ल अपने दौहित्र के सहित राज्यसिंहासन पर उपविष्ट होते हुए सुख-स्वप्न देखने लगे। बालक मुकुल के चले जाने पर भी रणमल्ल उसी प्रकार राजचिह्नों से सज्जित होकर सिंहासन पर समारूढ़ रहते थे। किसी को साहस नहीं पड़ता था कि उनके इस अनुचित व्यवहार का प्रतिवाद करे। किन्तु राजकुल की एक वृद्धा धात्री रणमल्ल की इस दुरभिसन्धि को भलीभांति समझ गई। दारुण दुःख और घृणा से खिन्न होकर वह मुकुल की माता के समीप जाकर कहने लगी—"राजमाता, क्या तुम राजकार्य कुछ नहीं समझती हो? तुम्हारा पितृकुल तुम्हारी शिशु सन्तान को राज्य से वञ्चित करना चाहता है और तुमने इस विषय में बिलकुल मौन ग्रहण कर लिया है।" धात्री के इस कथन को सुन कर राजमाता के हृदय में सन्देह उत्पन्न हुआ और वह अपने पिता रणमल्ल की दुरभिसन्धि से सशंकित हो गई। और राजमाता को स्वार्थशून्य सरल-हृदय चण्ड के अपमान पर बड़ा पश्चात्ताप होने लगा। परन्तु इस समय भी चित्तौर के उद्धार के लिए चण्ड के अतिरिक्त और कोई दूसरा व्यक्ति उन्हें दृष्टिगोचर नहीं हुआ। ऐसा निश्चय कर उन्होंने चण्ड को चित्तौर आने के लिए अपनी अवस्था का सविस्तर वर्णन एक पत्र में लिखा। चण्ड पूर्व ही से चित्तौर का सब वृत्तान्त जानते थे और एक प्रकार से चित्तौर के उद्धार के लिए प्रस्तुत भी हो चुके थे। उसी समय राजमाता का अनुरोधपूर्ण पत्र पाकर शीघ्र ही चित्तौर की ओर वे रवाना हुए। चण्ड ने अपूर्व वीरत्व और कौशल प्रदर्शन कर चित्तौर का पुनरुद्धार किया। राजकुमार मुकुल भी राजसिंहासन पर उपविष्ट होकर सुखपूर्वक एकाधिपत्य करने लगे। संसार के इतिहास में चण्ड के समान स्वार्थत्याग का दृष्टान्त विरले ही कहीं मिलता है।

मुन्नू।

माता के मरने के समय मुन्नू केवल तीन वर्ष का था! अन्त समय में मुन्नू की माता ने मुन्नू को एक बार निकट बुलाकर छाती से लगाया और डबडबाई हुई आँखों से मुन्नू को बाहर जाने को कहा। मुन्नू यह कुछ नहीं समझा। पहिली रात को जब मुन्नू अकेले सोने को तैयार न हुआ तब उसकी बहिन रमिया ने बहुत सी झूठी सच्ची कहानी सुनाकर उसे सुला पाया। सुबह उठकर जब मुन्नू को भूख लगी तब वह जल्दी से पेट के बल खाट से उतरकर सीधा अम्मा के कमरे की ओर दौड़ा लेकिन रमिया ने उसे बीच में ही पकड़ कर समझा दिया कि मा कमरे में नहीं हैं अस्पताल गई हैं। अच्छी होने पर आवेंगी। मुन्नू ने इसका विश्वास कर लिया। रमिया की उमर केवल दस वर्ष की है। वह भोली नहीं है, सब समझती है। लेकिन मुन्नू के सामने उसे कभी किसी ने रोते नहीं देखा।

एक दिन मुन्नू को एक डोरे की ज़रूरत हुई। वह सीधा अपनी मा के कमरे में दौड़ता हुआ पहुँचा। लेकिन चौखट पार करते ही उसे याद आगई "अले! अम्मा तो अछपताल गई है, चलो डोला लमिया छे लेलें" यह कह कर वह पीछे देखता हुआ लौट आया। उस दिन जन्माष्टमी के दिन जब मुन्नू सब बच्चों के साथ शाम को झांकी देखने गया, उसने एक स्त्री को अपने छोटे से लड़के को गोद में लिये देखा। मुन्नू ने

अपने दिल में पक्का विचार कर लिया कि मैं भी घर चलकर मा की गोदी में चढूंगा लेकिन घर को लौटने तक वह इसे भूल गया।

मुन्नू रात को सदा अपनी माता के पास ही सोता था। पिता के पास लेटने से वह बहुत चिढ़ता था। किन्तु माता की मृत्यु के बाद उसे अक्सर पिता के पास ही सोना पड़ा। एक दिन रात को सोते सोते उसकी आंख खुल गई। उस समय उसे अचानक कुछ ऐसा ध्यान आया मानो उसकी माता ने पहिले की तरह आज रात को फिर उसे पिता की खाट पर छोड़ दिया है। अंधेरे में सूरत तो दिखाई देती न थी। धीरे धीरे उठकर वह सोते हुए पिता के पैरों को टटोलते २ पैर की उँगलियों तक हाथ ले गया। बिछुये तो हैं ही नहीं, यह मा नहीं हो सकती, आज मा ने फिर धोखा दिया, ऐसा सोचकर उसने चुपके से उतरकर मा की खाट पर जाने को सोचा ही था कि इतने में पिता की आंख खुल गई और उन्होंने उसे फिर लिटा लिया। लेटने पर उसे याद आया हां अम्मा तो आज कल हैं नहीं।

मुन्नू की बुआ एक दिन सुबह को मुन्नू और अपनी लड़की को, जो मुन्नू ही की उमर की थी, खिलाने बैठीं। रात की बची पूरी एक ही थी बाकी पराठे थे। मुन्नू की बुआ ने पूरी लेकर उसके नीचे एक टुकड़ा पराठे का रख लिया। अपनी लड़की को वह पूरी में से कौरे तोड़ २ खिलाती जाती थीं और मुन्नू को नीचे के पराठे में से। मुन्नू ने यह कुछ नहीं देख पाया। जब कौरे मुंह में नहीं चले तब मुन्नू ने केवल इतना ही कहा "देख बुआ, यह पूली देखने में कैछी पतली है, पल खाने में बली मोटी है। अम्मा की पूली देखने और खाने दोनों में बली पतली होती थीं।" रमिया खड़ी २ यह देख रही थी। उस दिन उसका रोना दिन भर नहीं रुका।

एक बार मुन्नू बैठक में अपने पिता के पास बैठकर एक कागज़ पर टेढ़ी मेढ़ी लकीरें कर रहा था। अचानक हाथ लग जाने से दावात लौट गई। मुन्नू के पिता ने हँसी में कहा "दावात गिरा दी आज तुझे खूब पीटूंगा।" मुन्नू का मुंह उतर गया। पर उसका भी तो कुछ ज़ोर था। उसने कहा "पीटोगे, मैं अम्मा छे नहीं कह दूंगा।" लेकिन इससे उसे सन्तोष नहीं हुआ। वह वहां से उठकर घर की ओर भागा। उसने सोचा कि चलो मा की गोद में ही न छिप जाऊँ फिर मुझे कौन पकड़ पावेगा। लेकिन घर आते आते रास्ते में ही उसे याद आगई कि मा तो घर नहीं हैं। रमिया भी उस समय नहीं थी वह पाठशाला गई हुई थी। शाम को जब रमिया आई तब मुन्नू सुस्त बैठा था। बहुत पूंछने पर उसने पिता की शिकायत की। रमिया ने उसे गोद में उठाकर कहा "वाह, हमारे मुन्नू को भला कोई मार सकता है।"

शाम हो गई थी। रमिया बैठी कुछ बचा हुआ सोना सी रही थी। मुन्नू भी उसके बराबर में बैठा कैंची से बेकार कत्तलें काट रहा था। इतने में दासी दिया रखने आई। उसके पैर की आहट सुन मुन्नू चौंक पड़ा। उसे ऐसा मालूम पड़ा मानों मा के पैर की आहट हो। दासी दिया रखकर चली गई। मुन्नू कुछ देर सोचता रहा, फिर बोला "क्यों लमिया, अम्मा क्या अब अछ्पताल से आवेंगा ही नहीं? मुझे तो अब उनकी बली याद आती है"। रमिया बड़ी मुश्किल से आंसू रोक कर बोली "क्यों नहीं, ज़रूर आवेंगा।"

× × × ×

मुन्नू की मा! क्या तुम्हें सचमुच अपने मुन्नू की बिलकुल याद नहीं आती। मुन्नू तो तुम्हारी बड़ी याद करता है।

"धीर"।

राष्ट्रीय एकता और प्रजातन्त्र राज्यपद्धति ।

[लेखक—श्रीयुत कृष्ण सीताराम पंढरकर ।]

मर्यादा की गत श्रावण और आश्विन की संख्याओं में उपर्युक्त शीर्षक में पहिले दो लेख दिये जा चुके हैं। अब इस लेख में हम उसका तीसरा भाग या

सन् १८४८ से १८७१

तक का अन्तिम विवरण देकर इस माला को समाप्त करते हैं। इस लेख के दूसरे अध्याय के विवरण से सन् १८४८ ई० में 'राष्ट्रीय एकता और प्रजातन्त्र राज्यपद्धति' के सिद्धान्तों को कार्य में परिणत करने के लिए जो आन्दोलन हुआ, वह प्रजा के भावों को स्पष्ट रूप से ज़ाहिर ही करता है। उससे आप इसका अन्दाज़ा लगा सकते हैं कि उस समय लोगों के विचार कैसे थे। यह सच है कि उस समय यह आन्दोलन बाल्यावस्था में होने के कारण पूर्ण सफलता प्राप्त नहीं कर सका तथापि यह भी सच है कि यूरोप की राज्यव्यवस्था में अपने सिद्धान्तों को फैलाने का प्रजा का निश्चय इससे नष्ट नहीं हुआ था।

सन् १८४८ ई० में इटली में आस्ट्रिया की विदेशी राजसत्ता को उखाड़कर राष्ट्रीय एकता कर राज्याधिकार प्राप्त करने के लिए सार्डीनिया के राजा के नेतृत्व में इटैलियनों ने बलवा किया था। यद्यपि उस समय बलवाइयों को सफलता नहीं प्राप्त हुई तदपि उनका उत्साह तिलभर भी कम नहीं हुआ। इसके विपरीत इस बग़ावत में सार्डीनिया के राजा के मिलने से उन्हें यह भलीभांति मालूम हो गया था कि भविष्य में उन्हीं की सहायता से इटली को स्वाधीनता प्राप्त हो सकेगी। इसी समय सार्डीनिया के राजा ने अपनी प्रजा को राज्यशासन में कुछ अधिकार दिये थे। इससे उनके घराने के साथ इटैलियनों का प्रेम और भी बढ़ गया।

सन् १८५१ में सार्डीनिया के राजा विक्टर इमानुएल ने केव्हर नामक एक सेनापति को मन्त्री नियुक्त कर उनसे राज्यशासन का सुधार करने के लिए कहा। उस समय के यूरोपीय राजनीतिज्ञों में केव्हर की योग्यता बहुत ऊँचे दर्जे की थी। वे समझते थे कि सार्डीनिया के अधिवासियों को राजकीय हक़ देकर उनका सुधार किये बिना समस्त इटली की एकता नहीं हो सकती। इसी समय आस्ट्रिया के राजा ने सार्डीनिया के राजा विक्टर इमानुएल को यह धमकी दी कि तुम प्रजा को दिये हुए अधिकार छीन लो, नहीं तो इसके करने पर हम तुम्हें बाध्य करेंगे। परन्तु केव्हर के कहने पर उन्होंने इस धमकी के अनुसार काम करना अस्वीकार किया। इस घटना से इटैलियन लोगों की श्रद्धा और भी बढ़ गई और उनको यह विश्वास होगया कि राजा इमानुएल, इटली की एकता का संगठन करने में अवश्य ही सफल होंगे। विक्टर इमानुएल ने आरम्भ ही से इसको अपना ध्येय बनाया था। इसके बाद केव्हर, मेज़िनी, गैरीबाल्डी आदि देशभक्तों के इस ध्येय की सफलता में साथ देने से वे इसकी सिद्धि के लिए अविश्रान्त परिश्रम करने लगे।

आरम्भ में केव्हर ने सार्डीनिया में कई विषयों का सुधार कर राज्यव्यवस्था का उत्कर्ष साधन किया। इसके बाद सार्डीनिया को यूरोप और इटली के छोटे २ राज्यों में महत्व प्राप्त होने के लिए केव्हर ने 'क्रीमियन युद्ध' में रशिया के विरुद्ध इङ्गलैंड और फ्रांस को सहायता पहुंचाई। इससे उनका हेतु सिद्ध हुआ। इस तरह सब आरम्भिक व्यवस्था कर केव्हर इटली से आस्ट्रिया को उखाड़ने के लिए किसी दूसरे राष्ट्र की सहायता पाने की चेष्टा करने लगे। पहिले पहिल उन्होंने इस विषय में इङ्गलैंड से

बातचीत आरम्भ की थी किन्तु उससे निराशाजनक उत्तर मिलने पर वह फ्रांस के राजा तृतीय नेपोलियन से सहायता माँगने पर बाध्य हुए। तृतीय नेपोलियन से यह तय हुआ कि यदि वे इटली को स्वाधीन बना दें तो उन्हें अमुक २ प्रदेश दिये जायँगे। इस तरह सब व्यवस्था के हो जाने पर १८५९ ई० में सार्डीनिया के राजा ने फ्रान्स की सहायता से आस्ट्रिया के विरुद्ध युद्ध-घोषणा की। आरम्भ ही में फ्रान्स और इटली की संयुक्त सेना ने दो बार आस्ट्रियन सेना को परास्त कर लम्बार्डी प्रदेश से भगा दिया। किन्तु इसी समय तृतीय नेपोलियन के मन में यह भय उत्पन्न हुआ कि सार्डीनिया की शक्ति वृद्धि अपने हक़ में अनिष्टकर होगी। इससे उसने आस्ट्रिया के सम्राट् से मेल कर इटली का वेनिस नामक प्रदेश उसे अपने अधिकार में रखने की सम्मति दी। अनन्तर लम्बार्डी प्रदेश आस्ट्रिया के राज्य से अलग किया जाकर सार्डीनिया के राज्य में सम्मिलित किया गया। इसके सिवा तृतीय नेपोलियन ने अपने वचन के अनुसार मध्य और दक्षिण इटली के छोटे २ राजाओं के विरुद्ध सार्डीनिया के राजा को सहायता देने से भी इन्कार किया।

नेपोलियन के इस विश्वासघात से निरुत्साह न होकर इटली के अधिवासियों ने आत्म-शक्ति से इटली की एकता का संगठन करने का संकल्प किया। देशभक्तों के प्रभावशाली उपदेशों से पर्मा, मोडिना, टस्कनी' नेपिल्स, सिसिली आदि के अधिवासियों ने उत्तेजित होकर अपने विदेशी राजाओं के विरुद्ध बग़ावत का झण्डा खड़ा किया। उन्होंने गैरीबाल्डी और मेज़िनी की अध्यक्षता में सार्डीनियन सेना की सहायता पाकर अपने देश से विदेशी राजाओं को निकाल दिया और सब प्रदेश सार्डीनिया के राज्य में सम्मिलित कर लिये गये। इस तरह आस्ट्रियन साम्राज्यभुक्त वेनिस और नेपोलियन के अधिकारभुक्त रोम प्रान्त को छोड़कर इटली के अन्य सब भागों की राष्ट्रीय एकता सार्डीनिया के राज्य में संगठित हुई। यद्यपि वेनिस और रोम के कारण यह एकता उस समय सर्वाङ्ग-सुन्दर और परिपूर्ण नहीं हुई तदपि १८६६ के आस्ट्रो-प्रशियन और १८७० के फ्रान्को-जर्मन युद्ध के बाद इटली को ये दोनों प्रदेश भी मिल गये।

इस तरह इटली को सम्पूर्ण स्वाधीनता मिली। उदार स्वभाव विक्टर इमानुएल ने लोगों की मांगों पर ध्यान देकर राष्ट्रीय सभा के प्रतिनिधियों की राय से राजकाज चलाने की पूर्ण व्यवस्था की। इस प्रकार बहुत वर्षों के अविश्रान्त यत्न के बाद देशभक्तों को सफलता प्राप्त हुई और उनके इच्छानुसार इटली में राष्ट्रीय एकता और प्रजासत्तात्मक राज्यपद्धति की पूर्ण प्रतिष्ठा हुई।

अब यह देखना चाहिये कि इन सिद्धान्तों का परिणाम जर्मनी में कैसा हुआ? सन् १८४८ ई० में जर्मनी के उदारदलवालों की स्वराज्य-स्थापन चेष्टा के विफल होने से कुछ दिनों तक वहां राजकीय शान्ति विराजमान था। यद्यपि यह शान्ति १८६१ तक क़ायम रही तदपि उदारदल के लोग अपनी कार्रवाई चुपचाप कर ही रहे थे। सन् १८६१ में प्रथम विलियम प्रशिया के राजसिंहासन पर आरूढ़ हुए। उन्होंने अपने प्रधान मन्त्री के पद पर बिस्मार्क नामक एक सरदार को नियुक्त किया। उस समय यूरोप भर में बिस्मार्क के बराबर कोई भी राजनीतिनिपुण पुरुष नहीं था। उन्होंने शीघ्र ही यूरोप और जर्मनी में राजनैतिक सुधार कर डाला। बिस्मार्क को भली भांति दिखलाई दिया कि जब तक जर्मन राज्यों पर अपना सिक्का जमाने के लिए आस्ट्रिया और जर्मनी में झगड़ा चलता रहेगा तबतक जर्मन राज्यों की एकता की आशा दुराशा मात्र है। इसलिए उनको विश्वास हो गया कि जर्मनी में का आस्ट्रियन प्रभाव पहिले नष्ट करना ही इसका प्रधान और

प्रथम उपाय है। इसके सिवा जर्मनी के छोटे २ राज्य भी स्वेच्छा से एक साम्राज्य में सम्मिलित होने पर तैयार नहीं थे। इसलिए बिस्मार्क ने यह निश्चय किया कि उन्हें ज़बर्दस्ती अपने राज्य में सम्मिलित करना चाहिये। उनका यह ध्येय था कि जर्मनी में प्रशिया का सम्मिलन न कर प्रशिया में जर्मनी का सम्मिलन होना चाहिये।

इस ध्येय को साध्य करने के लिए बिस्मार्क ने सब से पहिले डेन्मार्क के श्लीसविग-होलस्टेन प्रान्तों पर कब्ज़ा करने के लिए १८६४ में आस्ट्रिया से सहायता देने की प्रार्थना की। इसकी सहायता से बिस्मार्क ने डेन्मार्क के दोनों प्रदेश ले लिये। अन्त में इनके बँटवारे के विषय में आस्ट्रिया और जर्मनी में भी कुछ मनोमालिन्य होकर १८६६ ई० में दोनों में युद्ध आरम्भ हुआ। यद्यपि इस युद्ध में आस्ट्रिया को अन्यान्य जर्मन राज्यों की सहायता मिली, तदपि सडोवा के भीषण संग्राम में प्रशिया ने आस्ट्रिया को पूर्णरूप से परास्त कर उसे सन्धि करने पर बाध्य किया। इस सन्धि के अनुसार जर्मन राज्यव्यवस्था से आस्ट्रियन प्रभाव का नामोनिशान मिट गया। इस तरह १८६७ ई० में बिस्मार्क ने मेन नदी के उत्तर के सब जर्मन राज्यों को मिलाकर 'नार्थ जर्मन कन्फ़िडरेशन' नामक एक संयुक्तराज्य की प्रतिष्ठा की। इन राज्यों के अधिपति का पद प्रशिया के राजा ने ग्रहण किया। इसके अनुसार यह निश्चित हुआ कि प्रत्येक राजा, राष्ट्रीय प्रतिनिधियों की सहायता से अपने राज्य की आभ्यन्तरीण व्यवस्था देखें और परराष्ट्रीय राजनीति, सेना, नौ-सेना आदि राष्ट्रीय महत्व के विषयों की देखभाल, संयुक्त जर्मन राज्य के अधिपति राष्ट्रीय सभा के विचार से करें। इतना होने पर भी मेन नदी के दक्षिणस्थ जर्मन राज्यों के स्वतन्त्र रहने से जर्मनी की राष्ट्रीय एकता अधूरी ही थी। अन्त में १८७० ई० के फ्रान्को-जर्मन युद्ध से मेन नदी के दक्षिणस्थ जर्मन राज्यों के अन्तर्गत लोगों के मन में भी एकराष्ट्रीयत्व के विचारों का उदय हुआ। वहां के अधिवासियों ने अपने राजाओं को 'संयुक्त जर्मन-राज्य' में सम्मिलित होने पर बाध्य किया। इस तरह जर्मन राजनीतिज्ञ, जिस राष्ट्रीय एकता की प्राप्ति के लिए वर्षों से चेष्टा कर रहे थे, वह प्रिन्स बिस्मार्क जैसे धुरन्धर राजनीतिज्ञ के समय में पूर्णावस्था को प्राप्त हुई। इसके बाद से 'नार्थ-जर्मन कन्फ़िडरेशन' के स्थान में उक्त राज्य को 'जर्मन साम्राज्य' की संज्ञा मिली और प्रशिया के राजा को इसके सम्राट् होने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। इसलिए १९वीं सदी के जर्मन इतिहास का गूढ़ तत्व जानने के निमित्त प्रशिया का अधिकार और बिस्मार्क की धाक को भलीभांति जानना आवश्यक है, क्योंकि जर्मनों की उन्नति की जड़ में ये ही प्रधान कारण हैं।

मारियट नामक एक इतिहासकार ने लिखा है,—"इटली की अपेक्षा जर्मनों की राष्ट्रीय एकता यद्यपि भव्य और मज़बूत थी, तदपि वह सहज और सरल थी; कारण केवूर की अपेक्षा बिस्मार्क को बहुतेरे साधनों की सहायता प्राप्त हुई। रोमन साम्राज्य के नष्ट होने के बाद से इटली में एकता का कुछ भी नाम नहीं था, परन्तु जर्मनों की अवस्था इससे बहुत भिन्न थी। लगातार एक हज़ार वर्ष तक 'पवित्र रोमन' साम्राज्य ने जर्मनी में वास्तव में नहीं, पर नाममात्र के लिए, एकता कायम रक्खी थी। इन सब कारणों के होते हुए भी यह स्वीकार करना पड़ेगा कि १८७१ ई० की जर्मनों की राष्ट्रीय एकता १९वीं सदी के यूरोपीय इतिहास में सब से अधिक महत्व की घटना है।" इटली की तरह जर्मन राष्ट्रीयएकता के कई बार व्यर्थ होने पर भी अन्त में उसकी जीत हुई।

अब यह देखना चाहिये कि सिर्फ शक्ति के भरोसे पर अनेक जातियों को अपने अधिकार में रखनेवाले आस्ट्रिया की उस समय क्या

अवस्था थी। इटली और जर्मनी से निकाले जाने पर आस्ट्रिया को हंगेरी के अधिवासियों से मेलजोल बढ़ाने पर बाध्य होना पड़ा। यद्यपि आस्ट्रिया ने १८४६ ईसवी में रूस की सहायता से मग्यार लोगों के बलवे शान्त किये तद्‌पि उनमें असंतोष की आग धधक रही थी। उन्हें शान्त करने के लिए आस्ट्रियन राजनीतिज्ञों ने १८४६ के बाद कई बार चेष्टाएँ कीं, किन्तु मग्यार लोगों को स्वराज्य प्राप्ति के सिवा और कोई सुधार पसन्द नहीं था। अन्त में १८६७ ई० में आस्ट्रिया और हंगेरी के राजनीतिज्ञों में कुछ समझौता होकर यह झगड़ा तय हुआ। इससे यह स्थिर हुआ कि राजमुकुट और कानून बनाने तथा राज्य-व्यवस्था देखने का अधिकार दोनों देशों में भिन्न २ संस्थाओं को हो, परन्तु पर-राष्ट्रीय नीति, सेना और सरकारी जमा-ख़र्च का काम दोनों देशों के प्रतिनिधियों की सलाह से प्रधान-मंत्री करें, परंतु इस सुधार से भी शान्ति स्थापित नहीं हुई क्योंकि भिन्न २ जातियों के कलह से उत्पन्न होनेवाले विकट प्रश्नों का सन्तोषजनक निपटारा इस व्यवस्था से भी न हो सका। आज भी वहां ऐसा ही हाल है। अपना २ सिक्का जमाने के लिए मग्यार, जर्मन, क्रोट, स्लाव, पोलस, ज़ेच, इटैलियन आदि जातियों के अविराम झगड़ों से आस्ट्रियन राज्य के चीथड़े उड़ रहे हैं। इसमें स्मरण रखने के योग्य यह बात है कि यूरोप के प्रायः सब अन्य देशों में भिन्न २ जातियों का मिलन होकर वे एक जाति में परिणत हुई हैं। इससे उनमें राष्ट्रीय एकता के विचारों ने मज़बूती से जड़ पकड़ ली है। परन्तु आस्ट्रिया-हंगेरी में अनेक जातियों का वास है और वे एक दूसरे से अलग होना चाहती हैं, क्योंकि अब राष्ट्रीय एकता के विचारों का उनमें भी उदय हुआ है। इसीसे आस्ट्रिया-हंगेरी की शक्ति दिनों-दिन क्षीण होती जा रही है।

फ्रान्स में सन् १८५१ ई० में प्रजातंत्र राज्य-पद्धति को उखाड़ कर द्वितीय बार साम्राज्य की स्थापना करने के समय नेपोलियन ने कहा था,—'यूरोप में शान्तिप्रतिष्ठा करना ही हमारा ध्येय है।' परन्तु उसने अपने शासन के प्रथम १० वर्षों ही में चुप न रह कर क्रीमियन युद्ध में रूस के विरुद्ध इङ्गलैंड को और इटली-आस्ट्रियन युद्ध में इटली को सहायता दी। इससे फ्रान्सीसियों को उसका विश्वासघात मालूम हो गया, परन्तु इन लड़ाइयों में उसकी विजय होने के कारण वे चुप रह गये। उसके शासन के अगले दस वर्षों में उसकी वैदेशिक नीति की भूलों से यूरोप और फ्रान्स में उसकी धाक कम होने लगी। इसी अवसर पर आस्ट्रो-जर्मन युद्ध में आस्ट्रिया की हार होने से नेपोलियन के प्रभाव को सख़्त सदमा पहुंचा, क्योंकि इस जीत से यूरोप में प्रशिया का महत्व बहुत बढ़ गया।

इसी समय फ्रान्स में नेपोलियन की हालत बहुत ख़राब हो गई थी। लोगों में घोर असन्तोष फैला हुआ था और क्रमशः अधिकारों के मिलने की उनकी मांग बढ़ती ही जा रही थी। इसलिये नेपोलियन के मन में इस ख़यालात ने जड़ पकड़ ली कि अपने नष्टप्रभाव को फिर जमाने के लिये किसी बड़े युद्ध में जयलाभ करना चाहिये। इसी का फलस्वरूप १८७० का फ्रान्को-जर्मन युद्ध हुआ। इसके लिए नेपोलियन ने यह ख़ुराफ़ात निकाली कि स्पेन के राजसिंहासन पर प्रशिया के होहेन-ज़ोलर्न घराने का कोई भी पुरुष बैठ न सकेगा। इतना ही कहकर वह स्थिर नहीं हुआ, इसके साथ ही उसने जर्मनी से युद्धघोषणा की। परन्तु नेपोलियन की सैनिक-व्यवस्था और तैयारी अच्छी नहीं थी, इससे कई स्थानों में उसकी हार हुई और सेडान की भीषण लड़ाई के बाद उसे शरणागत होने पर जर्मनी ने बाध्य किया। इस समाचार के फ्रान्स में फैलते ही वहां असन्तोष की आग ने भभककर बलवे का भयानक रूप धारण किया और बाग़ी लोगों ने द्वितीय साम्राज्य का नामोनिशान मेटकर तृतीय प्रजातंत्र

प्रतिष्ठा की । जर्मनी से सन्धि होकर युद्ध के निपटते ही जनसाधारण की राष्ट्रीय सभा ने प्रजातंत्र राज्यपद्धति के अनुकूल कानून बनाये। उन्हीं कानूनों के अनुसार अब तक फ्रान्स का राजकाज चल रहा है।

यूरोप की इन महत्वपूर्ण घटनाओं का प्रभाव इङ्गलैंड पर भी बहुत पड़ा। इङ्गलैंड के सन् १८३२ के क़ानून के अनुसार उच्च और मध्यम-श्रेणी के लोगों को पार्लामेण्ट के प्रतिनिधियों को चुनने का अधिकार मिला था। इससे श्रमजीवी-समाज बहुत असन्तुष्ट था। इसके सिवा १८४८ ई० में किये हुए उनके 'चार्टिस्ट' नामक आन्दोलन के व्यर्थ होने से वे और भी असन्तुष्ट होगये थे। उपर्युक्त घटना से उनमें नया जोश फैला और उन्होंने दूने उत्साह से फिर आन्दोलन आरम्भ किया। इसमें उन्हें सफलता प्राप्त हुई। सन् १८६७ ई० में इङ्गलैंड का शासन-दण्ड लार्ड डर्बी और डिसरायली जैसे पुरानी लकीर के फ़क़ीर राजनीतिज्ञों के हाथ में था तथापि उन्होंने श्रमजीवियों की माँगों पर ध्यान देकर १८६६ ई० के सुधार का नया क़ानून बनाकर उसे पार्लामेंट द्वारा मंज़ूर कराया। इस क़ानून से शहर में रहनेवाले पुतलीघर के मज़दूरों को अपने प्रतिनिधि चुनने का अधिकार मिला। इस पर भी खेत में काम करनेवाले मज़दूर पहिले कैसे कोरे ही रह गये। अन्त में १८८४ ई० में ग्लैडस्टन साहब ने सुधार का और एक क़ानून बनाकर उन मज़दूरों को भी निर्वाचन का अधिकार दिया।

इस तरह राष्ट्रीयत्व और प्रजातन्त्र-राज्यपद्धति के सिद्धान्तों का प्रसार हुआ। १८वीं सदी में यूरोप में देश के विभाग और उनपर निरंकुश शासन चलाने में राजाओं का कैसा प्रभाव था; नेपोलियन बोनापार्ट के प्रचण्ड युद्ध से इन सिद्धान्तों का लोप होकर 'राष्ट्रीय एकता और प्रजातन्त्र राज्यपद्धति' के सिद्धान्तों का १९वीं सदी में कैसा उदय हुआ; सन् १८१५ ई० में नेपोलियन के पराभव से राजकीय शासन के सिद्धान्तों का किस तरह लोप हुआ; वायना की सभा ने व 'पवित्र-सन्धि' करनेवाले राजाओं ने कुछ दिनों के लिए १८वीं सदी के सिद्धान्तों को फिर कैसे पुनरुज्जीवित किया; अँगरेज़ राजनीतिज्ञ कैनिंग ने पहिले ही यह कैसे जान लिया कि यूरोप में १९वीं सदी के नये विचारों का फैलाव हुए बिना नहीं रहता; १८३० ई० के बलवे से इन सिद्धान्तों का प्रभाव कैसा दिखाई दिया; स्वाधीन यूनान का फिर कैसे उदय हुआ, बेल्जियम को फिर स्वाधीनता किस तरह मिली; कैनिङ्ग और पामर्स्टन की सहायता से स्पेन और पार्तुगाल के उदार-दलवालों ने प्रजातन्त्र-राज्य की प्रतिष्ठा कर राजपक्ष के लोगों से उसकी रक्षा कैसे की; फिर कुछ दिनों के लिए यूरोप में इन सिद्धान्तों का प्रभाव कैसा लुप्त हुआ; और १८४८ ई० की बग़ावतों से नये विचारों का अस्तित्व फिर कैसे दिखाई दिया और फिर इसकी कमी कैसे हुई और कुछ दिनों के बाद भिन्न २ देशों में राजसत्ता को नष्ट कर लोगों ने अपने अधिकार कैसे हस्तगत किये; प्रजातन्त्र राज्यपद्धति से इटली की एकता कैसी संगठित हुई; जर्मनी के राज्यों का सम्मिलन होकर जर्मन साम्राज्य का संगठन कैसे हुआ भिन्न २ जातियों के झगड़ों से आस्ट्रिया की शक्ति कैसी क्षीण हो रही है; फ्रान्स में राजसत्ता और प्रजासत्ता की कई बार स्थापना होकर अन्त में प्रजातन्त्र की प्रतिष्ठा कैसे हुई; इङ्गलैंड में पार्लामेंट के लिए प्रतिनिधि चुनने का अधिकार बढ़ते २ वह सब लोगों को कैसे प्राप्त हुआ और यूरोप के प्रधान २ देशों में राष्ट्रीयत्व के सिद्धान्तों का जिस तरह उदय हुआ उसका सम्पूर्ण वर्णन पाठकों ने देखा ही है। यह वर्णन भी कम कौतूहलजनक नहीं कि यूरोप की वर्तमान राजनीति पर इन सिद्धान्तों का प्रभाव कैसा आश्चर्यजनक पड़ा है? परन्तु यह विषय अलग है, इसलिए हम इसे यहीं समाप्त करते हैं।

जापान-भ्रमण।

होकैदो यात्रा।

रात्रि को यहां से प्रस्थान कर गाड़ी में बैठ समुद्रतट के लिए हम चले। आज, रात्रि की यात्रा थी, इससे हमने सोने की गाड़ी ली थी। यहां भी एमेरिकन ढंग की सेज का रिवाज़ है, उसी भांति बिस्तर वगैरः सभी कुछ यहां मिलता है। मच्छड़ों के कारण मसहरी भी सेज पर लगाई जाती है किन्तु उतना सुख यहां नहीं है, जितना एमेरिका की सेज-गाड़ियों में रहता है। वहां की सेज यहां से अधिक चौड़ी होती है। फिर यहां केवल प्रथम-श्रेणी के यात्री को ही सेज मिल सकती है, किन्तु एमेरिका में केवल एक ही श्रेणी है और वहां जो चाहे ४॥) देकर रात्रि भर सेज-गाड़ी में चल सकता है। हां, दक्षिण प्रान्त में बेचारे निग्रोजातिवालों को रुपये देने पर भी सेज गाड़ी में चलने का अधिकार नहीं है, क्योंकि एमेरिकावालों को व्यक्तिगत स्वातन्त्र्य का अभिमान है।

प्रातःकाल हम 'अमोरी' बन्दर पर पहुंच गये। यहां नित्यक्रिया से निपट कर होकैदो के लिए अगिनबोट पर सवार होकर पांच घंटे में हम उस पार पहुंचे। उस बन्दर का नाम 'हाको-डट' है। यह बन्दर सैनिकस्थान है, इससे किलाबन्द और पर्वत के दामन में बसा हुआ है। अभी रेल में एक घंटे की देर थी, इसलिए हम नगर में घूमने को गये। इस नगर में तसवीरें उतारने की आज्ञा नहीं है। यह नगर अच्छा न बना बसा हुआ है और यहां भी ट्राम गाड़ी चलती है। दूकानों पर यहां लौकी भी देख पड़ी। सिंगापुरी कसेरू की भांति एक मूल देख पड़ा, किन्तु यह रंग में ऊपर से हरा और खाने में फीका था।

यहां से अब रेल पर "सपोरे" के लिए रवाना हुए। यहां पर एक कृषि-सम्बन्धी विद्यालय है; इसीको देखना हमारा लक्ष्य था। यह द्वीप अधिकतर पहाड़ी इलाकों ही से भरा है। यहां जनसंख्या बहुत कम है किन्तु खनिज-पदार्थ अधिकता से हैं। यहां की ज़मीन भी बड़ी उर्वरा है। जापानी सरकार इस द्वीप को बसाना और इसकी सम्पत्ति को काम में लाकर अपनी सम्पत्ति को बढ़ाना चाहती है।

चार द्वीपपुञ्जों से जापान बना है। इनमें प्रधान द्वीप का नाम "होनेदो" है। यह सब से बड़ा है। दूसरे का नाम "होकैदो" तीसरे का "शिकोकू" व चौथे का "कियुशू" है।

होकैदो में जनता कम है, इससे उसे बसाने के लिए नाना प्रकार के यत्न हो रहे हैं। यहां खास तौर पर एक बड़ा भारी कृषि-विद्यालय खोला गया है। इसके सिवा यहां बैंक, रेलवे तथा और भी अनेक अन्य प्रलोभन हैं।

दोपहर को रवाना होकर कोई ११ बजे रात्रि में हम सपोरे पहुंचे। स्टेशन पर कृषि-शाला के प्रधान 'सेतो' महाशय के पुत्र हमें लेने आये थे। वे हमें "यमिबाताया" वासे में ले गये। यहां योर-एमेरिका के ढंग पर वासस्थान नहीं हैं, इससे हम जापानी वासे में ठहरे, पर यहां भी दुर्भाग्यवश हमें उस खण्ड में ठहरना पड़ा, जिसमें योर-एमेरिका निवासियों के ठहराने का प्रबन्ध है। कहने पर भी जापानी स्थान खाली न होने के कारण, नहीं मिल सका।

रास्ते में संध्या को एक स्टेशन पर यहां के प्राचीननिवासी "आइनो" जाति के लोगों को हमने देखा। ये लोग अब केवल उसी द्वीप में रह गये हैं। जिस प्रकार एमेरिका में कहीं २ रक्तवर्ण के प्राचीन मनुष्य रक्खे गये हैं, वैसे ही यहां ये 'आइनो' रक्खे गये हैं। ये लोग दाढ़ी मूंछें व सिर के बाल बड़े २ रखते हैं। इनकी सूरत भी मंगोलों कीसी नहीं है।

१८—७—१५।

सपोरो पशुशाला।

आज प्रातःकाल को सब कामों से निवृत्त हो कर हम सरकारी पशुशाला देखने के लिए गये। यह, नगर से कोई ६ मील की दूरी पर है। शाला के अध्यक्ष ने कृपा कर शाला से हमारे लिए गाड़ी भेज दी थी, उसी पर हम वहां गये। वहां पर एक कर्मचारी ने हमारी आवभगत कर हमसे बातें आरम्भ कीं।

इस शाला में गाय, भेड़ व सुअर आदि पशुओं पर परीक्षा हो रही है। इसके लिए सरकार को प्रति वर्ष ५० हज़ार येन का व्यय करना पड़ता है किन्तु आमदनी कुल २७ हज़ार ही की है। यह शाला फ़ायदे के लिए नहीं, किन्तु शिक्षा के लिए रक्खी गई है। यहां से ग्रामीणों को पशु उधार दिये जाते हैं।

यहां इङ्गलैंड के श्रौपशायर से भेड़ियाँ व स्विटज़रलैंड के होलसटाईम प्रान्त से गायें मगाई गई हैं। पहिले यहां ये पशु नहीं होते थे, अब इनके बढ़ाने का प्रबन्ध हो रहा है।

इस समय यहां १३६ भेड़ तथा २०७ गायें व १५ सांड़ हैं। भेड़ों के पालने का प्रयत्न इस देश में ४० वर्ष से हो रहा है, किन्तु अभी इसमें पूर्ण सफलता प्राप्त नहीं हुई है।

गो-पालन में सांड़ों का बड़ा भारी स्थान है। विना यथेष्ट सांड़ों के गो-सन्तानें नहीं बढ़ सकतीं, इसी से योरप-एमेरिका में सांड़ों के लिए बड़ा यत्न किया जाता है। ४० गौओं के पीछे कम से कम एक सांड़ होना अत्यावश्यक है। ५ वर्ष की अवस्था के उपरान्त सांड़ बढ़ाने के योग्य होते हैं और १० वर्ष की अवस्था के पीछे वे इसके पूर्ण उपयोगी नहीं रहते।

उसी प्रकार गाय का पहिला वियान ३८ महीने पर होना चाहिये। १२ वर्ष की अवस्था तक गाय, सन्तान पैदा कर दूध देती है, इसके बाद नहीं।

यहां की गौओं से प्रति वर्ष प्रायः १२००० पाउण्ड या कोई १५० मन दूध होता है। यदि एक गऊ, वियाने के बाद ८ मास तक दूध दे तो यह पड़ता मासिक कोई १८ मन का होता है। दूध का यह प्रमाण बहुत होता है, किन्तु गौओं के स्तन देख कर इतना दूध देने में कोई सन्देह नहीं जान पड़ता।

इनके दूध में प्रायः सैकड़े ३.७ या १०० मन में ३ मन २८ सेर घी निकलता है। यहां दूध को ५८° (घ) गर्मी पर मथकर मक्खन (Cream) निकालते हैं। १० मन दूध में १ मन मक्खन व १०० मन, मक्खन से २८ मन घी निकलता है। यहां मखनिया दूध अर्थात् लस्सी का सूखा खोआ भी बनता है, पर यह अधिकतर बच्चों के पिलाने के व्यवहार में लाया जाता है। यहां भी पन्हाने के लिए बछड़े नहीं छोड़े जाते। दूध की रबड़ी बनाकर टीन में की हवा निकाल उसे रखने से वह बहुत दिनों तक रक्खी जा सकती है। वह भी यहां बनती है।

गौओं को कई प्रकार का अन्न काटकर यहां खिलाया जाता है। अन्न निकालकर केवल डण्ठे का भूसा खिलाना पशुओं के लिए पर्याप्त नहीं है। हमारे देश में भूसी व करी खिलाई जाती है, उससे भी काम चल सकता है। यहां पशुओं को भूसे के बदले घास खिलाते हैं, क्योंकि उसमें जीवनीशक्ति अधिक रहती है। बर्सात में घास तथा अन्य प्रकार की सब्जी काट कर गड्ढे में भर लेते और उसे बराबर पानी से भर देते हैं। जब गड्ढा भर जाता है तो उसे मिट्टी से पाट देते हैं। इस क्रिया से वर्ष भर के लिए विना ख़राबी के हरी घास रक्खी जा सकती है। प्रयाग में यमुना मिशन कालेज के कृषि-विभाग में भी चरी इसी प्रकार रक्खी जाती है।

अपने देश में घी-दूध, निरामिषभोजियों का प्रधान खाद्य है परंतु क्रमशः इसकी भयानक कमी होती जाती है। इस ओर राजा तथा प्रजा,

दोनों को ध्यान देना चाहिये । इसके लिए प्रथमतः अँगरेज़ी फ़ौज के लिए भारत में गो-हत्या बन्द करने का आन्दोलन होना चाहिये। यदि यह आन्दोलन यथेष्ट रीति से हो, तो सरकार अवश्य इस ओर ध्यान देगी । (२) सांडों का प्रबन्ध यथेष्ट होना चाहिये। इसके लिए बाहर से सांड मँगाकर गो वंश की वृद्धि की चेष्टा करना परमावश्यक है। (३) नगरों के बाहर बड़ी २ गोशालाएँ बनानी चाहियें, जहां वैज्ञानिक रीति से गो-धन प्राप्ति का प्रबन्ध किया जाय । (क) दूध से मक्खन निकालने के उपरान्त लस्सी का केवल दही न जमाकर उसकी (ख) रबड़ी बना टीनों में भरकर नगरों तथा विदेशों में चालान करनी चाहिये। (ग) सूखा खोआ बनाकर (Milkpowder) टीनों में बन्द करके भी बाहर भेजा जा सकता है। इस प्रकार टीनों में बन्द होने से ये पदार्थ महीनों तक नहीं बिगड़ सकते । यह रबड़ी तथा सूखा खोआ परिमित गर्म पानी के मिलाने से दूध व खोआ बनाकर फिर काम में लाया जा सकता है, (घ) गोबर व गोमूत्र को कंडे पाथ व फेंककर हानि न उठा उनको खाद के काम में लाना चाहिये। उपर्युक्त रीति से गोशाला के चलाने से बड़ा लाभ हो सकता और जनता को अच्छा दूध-घी मिल सकता है । इससे व्यापारी भी अच्छा मुनाफ़ा उठा सकते हैं। संसार में जितने व्यापारी हैं, उन सब के नफ़े की कुञ्जी यही है कि कच्चे माल का कोई भाग भी ख़राब न जाय। अपने देश में घी निकालने के बाद जो माठा बचता है, वह बेंचा नहीं जाता, इसीसे घी में लाभ नहीं होता और इससे लाचार हो व्यापारी को तेल, चर्बी व नाना प्रकार की वस्तुएँ मिला कर नफ़ा उठाने की सूझती है।

कृषि-विद्यालय ।

यहां से लौटकर हम अपने स्थान पर आये और सन्ध्या को कृषि-विद्यालय के प्रधान "सातो" महाशय से मिले । आपका जन्म १८१२ में हुआ है, आपने १८३३ में विदेशी भाषा के स्नातक होकर सपोरो विद्यालय में १८३७ तक विद्याभ्यास किया । फिर कृषि-सम्बन्धी नियमों का (Agricultural economy) अध्ययन करने के लिए आप एमेरिका व जर्मनी गये। वहां से लौटने पर आप "सपोरो" में अध्यापक नियुक्त होकर १८५१ में प्रधान के पद पर विराजमान हुए । १८७१ में आप फिर एमेरिका गये थे।

यहां से मैं अध्यापक "यन्दो" से मिलने के लिए गया। आप अभी नौजवान होने पर भी बड़े होनहार व्यक्ति हैं। आपने जो विषय लिया है, वह अनोखा है । उसका नाम 'सामुद्रिक वनस्पतिशास्त्र' है । आपने स्वीडेन में रहकर इसका विशेष अनुभव लिया है। यह एक नया शास्त्र है।

१६—७—१५।

दूसरे दिन सबेरे हम कृषि-विद्यालय देखने गये। इस विद्यालय में ६३ अध्यापक और ८६१ छात्र हैं। २६ एकड़ के विस्तार में कालेज के भवन हैं, २५ एकड़ में वनस्पति-उद्यान है, १५२६४ एकड़ में ८ कृषि-शालाएँ हैं व सरकार ने इसके लिए २६७१६६ एकड़ जंगल दिया है। इसी की आमदनी से इसका काम चलता है।

विद्यालय की प्रधान गद्दियों के नाम ये हैं,—

नाम विषय ।	संख्या गद्दी ।
कृषि	२
कृषि-सम्बन्धी-रसायन ...	१
कृषि-सम्बन्धी पदार्थशास्त्र ...	१
वनस्पतिशास्त्र	२
जीव-शास्त्र	३
उद्यानशास्त्र (Horticulture) ...	१
जूटकेनी (Zootechny)	२
कृषि-सम्बन्धी अर्थशास्त्र तथा उपनिवेशन	१

नाम विषय।	संख्या गद्दी।
वन्य-शास्त्र (Forestry) ...	४
कृषि सम्बन्धी टेकनालाजी ...	१
पशुचिकित्सा	२
फ़ारेस्ट पौलिटिक्स तथा फ़ारेस्ट प्रबन्ध	१

हमने यहां का पुस्तकालय, मत्स्यसंग्रहालय तथा इधर उधर और घूमघाम कर देखभाल की। यहां मिएट, पुदीने का नाम है। यह बिलकुल अपने यहां के पुदीने जैसा ही होता है। गेहूं के डंठे से छिलका उतारकर यहां एक प्रकार की रेशाएँ बनाई जाती हैं।

मत्स्य-संग्रहालय में नाना प्रकार के मत्स तथा सामुद्रिक वनस्पति व नाना प्रकार के अन्य सामुद्रिक पदार्थ रक्खे हैं। इसीमें मछली फँसाने के नाना प्रकार के जाल, अनेक प्रकार के यन्त्र, नावों के नक़शे व नमूने आदि रक्खे हुए हैं। सीप तथा ह्वेल मछली की हड्डियों से बनी हुई तरह २ की चीज़ें, मछली का तेल, चर्बी तथा उसके चमड़े के जूते व अनेक अन्य पदार्थ भी यहां हैं। सामुद्रिक वनस्पति यहां व चीन में खाई जाती है। चीन में इसकी रफ़्तनी कर जापान को प्रति वर्ष २५ लाख रुपये का लाभ होता है। इस देश में दूध तथा पानी जमाने के काम में आनेवाली घास, वास्तव में घास नहीं, किन्तु सामुद्रिक वनस्पति का लबाब मात्र है। इसीमें सूखी हुई मछलियां भी अनेक प्रकार की देखने में आईं। ये सब यहां व चीन में खाई जाती हैं।

इन्हें देखकर हम घर लौटे व शाम को वनस्पति-उद्यान में, संग्रहालय देखने गये। इसमें पुराने आइनो जाति की वस्तुएँ रक्खी हैं। यहीं पुराने पत्थर की तीर की गांसी, छाल के कपड़े, मिट्टी के बर्तन आदि भी दिखाई दिये। जान पड़ता है कि प्राचीन समय में समस्त पृथ्वी पर एक ही प्रकार की सभ्यता प्रचलित थी।

यहां से रात्रि में विदा होकर दो रात्रि तथा १ दिन लगातार सफ़र करने के बाद हम २१ तारीख को टोकियो वापस आये। सपोरो छोड़ने के पूर्व यहां का सब से बड़ा लिनन का कारखाना भी हमने देखा। यहां लिनन के धोये व कोरे सब प्रकार के वस्त्र देखने में आये।

२४—७—१५।

दक्षिण जापान।

२२, २३ को कुछ विशेष घटना नहीं हुई, केवल टोकियो में बैठकर हम श्रम मिटाते रहे। आज प्रातःकाल ही प्राचीन राजधानी 'कियोटो' के लिए प्रस्थान किया।

'कियोटो' जिसका जापानी नाम 'मियाको' है, आठवीं शताब्दी से जापान की राजधानी है। वैसे तो दिल्ली इससे बहुत पुरानी राजधानी है, किन्तु गत हज़ार वर्षों के जल्दी २ तथा अनेक उलट फेरों के कारण व एक के बाद दूसरे हत्यारे व लुटेरों के आक्रमण से आज वह पुरातन गौरव की केवल स्मशान भूमि-मात्र रह गई है। इधर उधर १८वीं शताब्दी के बाद के कुछ बचेखुचे राजप्रासाद भी दिखाई देते हैं। कौरवों के समय के इन्द्रप्रस्थ का तो अब नामोनिशान बाकी नहीं है, हां दिल्ली से १५ मील पर मिट्टी की एक दीवाल बाकी है, जिसको लोग कौरवों का गढ़ बतलाते हैं। पृथ्वीराज के समय का भी केवल चिह्नमात्र ही लाट पर मिलता है, किन्तु यहां कियोटो में प्रारम्भ से आज तक किसी हत्यारे आक्रमणकारी को पैशाचिक-नृत्य करने का अवसर नहीं मिला है। इससे सब कुछ ज्यों का त्यों है। सिर्फ गोल कड़ी की इमारतें २ बार दावानल से भस्म हो गई थीं, किन्तु वे फिर वैसी ही बना दी गई हैं। इससे यहां जाने पर आपको ऐसा नहीं ज्ञात होगा कि हम प्राचीन सभ्यता की स्मशान-भूमि में आये हैं। यहां हरे भरे जीवित स्थान जैसा ही अनुभव होता है। आज दिन भी वह

स्थान बड़ी २ कारीगरियों का केन्द्र है। चीनी के बर्तन, रेशम की कारचोबी के काम, मखमली काम, रेशम की रँगाई व छपाई आदि सब का घर यहीं है। जहां टोकियो में आधुनिक जापान देख पड़ता है, वहीं कियाटो प्राचीन, किन्तु जीवित जापान की झलक दिखाता है। तीन दिन भी यहां ठहरना मनुष्य को जापान के पुराने गौरव का पता बतला देता है।

टोकियो से हमारी रेल चली। दोनों ओर फिर धान के लहलहाते खेत दिखाई देने लगे। उनमें मनुष्य, ताड़ व बाँस की बड़ी २ टोपियाँ पहनकर खेतों में काम कर रहे थे। कहीं २ दूर तक रेल की दोनों ओर कमलों से भरी तलैयें दिखाई दे रही थीं। यह दृश्य अपने देश में भी अब दुर्लभ हो गया है।

हमारी गाड़ी इस समय समुद्रतट के निकट से ही जा रही थी। कभी २ बाईं ओर समुद्र लहराता देख पड़ता था। समुद्रतट पर बालक-बालिकाएँ किल्लोलें करती, खेलती, कूदती, नहाती देख पड़ती थीं। सारा समा अत्यन्त मनोहर था।

२ घंटे चलने के उपरान्त विख्यात पर्वत 'फूजी' दिखाई देने लगा। दुर्भाग्यवश, इस पर्वत के शिखर उस समय मेघों के मुकुट से घिरे थे। इससे इसका सुन्दर मस्तक नहीं देख पड़ा। यह पर्वतशिखा चारों ओर से गोल पिरामिड की भाँति आकाश में डटी हुई है। इसकी ऊँचाई १२३६० फुट है। जापान में इसका बड़ा नाम है। यहां के विख्यात कवियों व चितेरों ने अपनी २ कला में इसका गुण गान किया है। अब भी इसके बड़े २ सुन्दर चित्र तथा कारचोबी के पर्दे बनते हैं।

जिस प्रकार बद्रिकाश्रम के पर्वतों पर वर्ष में हज़ारों नर-नारी, नर-नारायण की मूर्तियों के दर्शन करने के लिए नाना प्रकार के परिश्रम व कष्ट उठा कर जाते हैं, उसी प्रकार यहां भी फूजी की चोटी पर "कोनोहाना साकुयाहीमे" देवी के दर्शनार्थ हज़ारों नर-नारी इस पर आते हैं। यह मन्दिर शिएटो पन्थ का है। इसमें कोई प्रतिमा नहीं है, केवल दर्पण व एक प्रकार का विचित्र ढंग से कटा हुआ कागज़, जिसको "गोहेइ" कहते हैं, रक्खा है। पूर्व में इस पर्वत पर स्त्रियों को आने की आज्ञा न थी, क्योंकि स्त्रियां अपवित्र समझी जाती थीं, किन्तु अब स्त्रियां भी आसकती हैं।

घण्टे भर तक रेल पर से इस पर्वत का दर्शन होता रहा, बाद में गाड़ी के आगे बढ़ जाने से यह छिप गया। आज भी बड़ी सख्त गर्मी थी, किन्तु कोई चारा नहीं था। दिन भर चलने के उपरान्त सन्ध्या को हमारी गाड़ी कियोटो पहुंची। हम रेल से उतरकर मियाको होटल में आये और स्नान कर भोजन करने के बाद फिर बाहर जाने के लिए तैयार हुए।

आज "गियोन" मन्दिर की रथयात्रा का अन्तिम दिन था। जब हम रेल से होटल आ रहे थे, तभी हमने एक ट्रामगाड़ी को खूब सजी हुई देखा था। दीपमाला से वह खूब सजाई गई थी बाज़ार में भी अधिक सजावट व रोशनी थी।

बाहर निकलने पर सारा बाज़ार नरनारियों से ठसाठस भरा दिखाई दिया। रथ आने का समय हो गया था। यह रथ मन्दिर से आठ दिन तक बाहर था, आज इसके लौटने का दिन था। थोड़ी देर में रथ आगया, सामने बहुत से लोग लम्बे २ बाँसों में लालटेनें लटकाये हुए और फिर पीछे रथ को सैकड़ों मनुष्य कन्धे पर उठाये हुए थे। ये विमानवाहक, मज़दूर नहीं, किन्तु भले घर के नागरिक भक्ति से ऐसा करने यहां आये थे। यहां का समा बिलकुल वैसा ही था जैसा विजयादशमी की रात्रि को काशी में चित्रकूट की रामलीला का विमान उठने के समय होता है, किन्तु यहां इसको रथयात्रा ही कहना उचित है; और है भी यह रथयात्रा ही।

आज प्रातःकाल को कियोटो देखने के लिए निकल कर पहिले राजकीय संग्रहालय में गये। यहां नाना प्रकार के अस्त्र-शस्त्र देखने में आये। बहुत सी भीमकाय पुरानी मूरतें भी यहां रक्खी हैं। टोकियो के संग्रहालय में पुरानी जापानी तसवीरें दीख पड़ी थीं, किन्तु यहां इनका बहुत बड़ा संग्रह है।

काउएट मोतानी, जिन्होंने तुर्किस्तान की यात्रा कर बहुत सी वस्तुओं का संग्रह किया है, वे सभी यहां देखने में आईं। इनमें छोटी बड़ी बहुत सी भग्न मूर्तियाँ, दीवालों पर लिखे हुए कितने ही चित्रों के टुकड़े व नाना प्रकार की अन्य वस्तुएँ भी हैं।

इस संग्रहालय को देखने से बृहत्तर भारतीय-मंडल का ज्ञान होता है। जिस प्रकार आज सारे संसार में योरप-एमेरिका की सभ्यता की तूती बोल रही है, जहां सुनो वहां ही जर्मन 'कलचर' शब्द कर्णगोचर होता है, उसी तरह एक समय ऐसा भी था, जब संसार में भारत ही की तूती बोलती थी। जिस समय भारत का ज्ञान, कलाशिल्प, दर्शन, विज्ञान, सुकुमारशिल्प, धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष, की चर्चा संसार में थी, उस समय अब के उन्नत यूरोपवाले जङ्गलों और कन्दराओं में पशुओं की भांति पत्तों से बदन ढांक कर रहते थे। किन्तु अब वह दिन नहीं है, और समय के पलटने से संसार का पुराना गुरू भारत, असभ्यता व अविद्या के अन्धकार में पड़ा है।

भारत क्या था, भारत की सभ्यता क्या थी; उसका प्रभाव कहां तक पड़ा था; बृहत्तर-भारत-मंडल का क्या अर्थ है, इसके जानने के लिए एशियाई देशों में चक्कर लगाना चाहिये; अफ़गानिस्तान, तुर्किस्तान, चीन, तिब्बत व जापान के जंगलों की खाक छाननी चाहिये। इन देशों में पद पद पर भारत के अच्छे दिनों के चिह्न मिलते हैं। तुर्किस्तान, इन चिह्नों से भरा पड़ा है, किन्तु हम अविद्या के ऐसे गड्ढे में पड़े हैं कि हमें उनकी खोज करने की सुध तक नहीं है। हम चाहते हैं कि यह काम भी हमारे लिए कोई दूसरा ही करे। यह अकर्मण्यता की चरम सीमा है।

यहां से हम "सानजू सनगेनदो" में गये। यह मन्दिर ३३३३३ देवताओं के मन्दिर के नाम से प्रसिद्ध है (यह संख्या हिन्दुओं के तैंतीस कोटि देवताओं से मिलती जुलती है) यहां "कानन" देव की ३३३३३ मूर्तियां किसी काल में थीं। यह देवता क्षमा के अधिष्ठाता कहे जाते हैं।

यह मन्दिर संवत् ११८९ में 'टोवा' नामक राजा ने बनवाया था। इसमें १००१ मूर्तियां कानन की रक्खी थी; १२२२ में 'गोशिराकावा' महाराज ने उतनी ही मूर्तियां इसमें और रखवाईं। १३०६ में यह मन्दिर सब मूर्तियों के सहित भस्म हो गया; १३२३ में कमियामा राजा ने इसको पुनः बनवाया व सहस्रबाहु "कानन" देव की १००० मूर्तियां, इसमें स्थापित कराईं। यह मन्दिर ३८९ फ़ुट लम्बा व ५७ फ़ुट चौड़ा है। १७१९ में शोगून "इतसूना" ने इसकी फिर से मरम्मत कराई है।

इस समय पाँच फ़ुट ऊँची १००० मूर्तियां इसमें हैं। इन मूर्तियों के प्रभा-मंडल पर और छोटी २ मूर्तियां भी हैं। इन सबको मिलाकर गणना करने से ३३३३३ संख्या की पूर्ति होती है। मन्दिर के बीच में एक विशाल मूर्ति इसी देवता की है। मन्दिर की परिक्रमा में उत्तम २ अनेक मूर्तियाँ धरी हैं। ये मूर्तियां, मूर्ति-निर्माण कला को उत्तम आदर्श हैं।

इस मन्दिर के बाहर बहुत सी अन्य वस्तुएँ भी बिकती हैं। काठ के छोटे २ यन्त्र तथा बच्चों के गले व गृहों में लटकाने के लिए जगन्नाथ जी के पट जैसे अनेक पट व अन्य नाना प्रकार की पूजा के लिए चित्र भी बिकते हैं।

मन्दिर से निकलकर बाहर एक विश्राम-गृह में जरा बैठकर विश्राम करने के बाद जल-पान किया। बगल में एक तलैया थी, इसमें खूब पुरइन व कमल फूले थे। कमलों की शोभा देखकर मन मुग्ध हो गया और २, ३ फूल तोड़वा लिये। कमल का नाम यहां "हसनो हेना" है। यह बुद्ध भगवान का पवित्र फूल समझा जाता है।

यहां से हम "निशी होंगवाजी" मन्दिर में गये। सम्वत् १६४८ में हियोशी शोगून की आज्ञा से "होंगवाजी" सम्प्रदाय के बुद्धों ने अपना प्रधान स्थान कियोटो में लाया। उसी समय यह विशाल मन्दिर बना है। प्रधान फाटक अति विचित्र कारीगरी का जीवित उदाहरण है। इस पर गुलदाउदी के फूल व पत्ते इस खूबी से काट कर बनाये गये हैं कि देखते ही बनता है। इसपर की नक्काशी लोहे की जाली से घिरी हुई है, जिसमें पक्षी अपने घोसले बना कर इसे नष्ट न करें।

इस घेरे में २ मन्दिर हैं, एक "होनदो" व दूसरा "कोदोया अमिदादो"। प्रधान मन्दिर का प्रधान सभामण्डप १३८ फुट लम्बा व ९३ फुट चौड़ा है। ज़मीन पर ४७७ चटाइयां बिछी हैं। जापान में सब घरों का नाप चटाइयों की संख्या ही से होता है। ये, परिमित नाप की होती हैं। प्रायः इनका माप ६ × ३ फुट होता है। कमरे में कितनी चटाइयाँ हैं, यह बतला देने से कमरे के नाप का पता चल जाता है। पुरातन रीति के अनुसार प्रधान मण्डप "कियाकी" लकड़ी का सादा ही है; उसमें रंग नहीं लगाया गया है। प्रधान मण्डप की दोनों ओर २४ × ३६ फुट के दो दालान हैं। इस मन्दिर में बुद्धदेव की ध्यानावस्थित प्रतिमा है। इसे देखते ही जापान के वैभव की मूर्ति सामने आजाती है। इसके बगल का छोटा मन्दिर भी बड़ा और विशाल है। इन मन्दिरों में काठ की नक्काशी का काम बड़ा अपूर्व है और काठ के मोटे २ खम्भों को देखकर मनुष्य को चकित रह जाना पड़ता है।

यहां से मैं निकटवर्ती 'हिगाशी होंगवानजी' मन्दिर में गया। यह मन्दिर निशीहोंगवाजी का एक पुछल्ला है। इसकी स्थापना १७३९ में हुई थी, किन्तु वर्तमान मन्दिर १९५२ में ही बना है। यद्यपि यह कहावत यहां प्रचलित है, कि जापान में बौद्ध धर्म का ह्रास हो रहा है, किन्तु इस मन्दिर के निर्माण में जो उत्साह व भक्ति यहां की जनता ने दिखाई थी, उसके कुछ दूसरे ही अर्थ निकलते हैं। जनता के चन्दे से इसके निर्माणार्थ १५ लाख से अधिक धन एकत्रित हुआ था व लाखों मनुष्यों ने लकड़ी व मज़दूरी से इसकी सहायता की थी। विशाल शहतीर मनुष्यों के बालों के रस्सों से खींचकर ऊपर चढ़ाई गई थीं। ३ इञ्च मोटे व १५२ हाथ लम्बे २९ विशाल बरहे अभी तक यहां धरे हैं, जो भक्त स्त्रियों के माथे के केशों से बनाये गये थे। यह उन निर्धन स्त्रियों की भेंट थी, जो द्रव्य से सहायता करने में असमर्थ थीं।

यह मन्दिर शायद जापान में सब से विशाल है। यह २३० फुट लम्बा, १९५ फुट चौड़ा व १२६ फुट ऊंचा है। इसमें विशाल ९६ स्तम्भ व छत पर १७५९६७ खपड़े लगे हैं। सहन में आग बुझाने के लिए भीमकाय कांसे के फूल दान कासा एक पात्र है, जिसमें से हर घड़ी पानी बहा करता है। यह मन्दिर भी दर्शनीय है और इसकी शोभा वर्णनातीत है।

२६—७—१५।

रेशम का कारख़ाना।

आज हम यहां के विख्यात रेशम के व्यापारी के साथ, जिनकी शाखा-दूकान टोकियो में देखी थी, रेशम का कारख़ाना देखने चले। आप पहिले हमें जहां रेशम पर छपाई होती है, वहां लेगये।

यहां की स्त्रियां नाना रंग की चित्रकारी किये हुए रेशम के उत्तम क़िमोनो पहनती

हैं। यह रेशम हाथ से धोया जाता है। हमारे यहां जयपुर, मथुरा तथा लखनऊ के छीपीकार काठ के ठप्पों से वस्त्र छापते हैं, पर यहां ऐसा नहीं है। यहां, जिस प्रकार सांझी के कागज़ काटे जाते हैं, उसी प्रकार पानी से न गलनेवाले मोटे कागज़ के नकशों को वस्त्र पर रख, रंग लगा कर कपड़ा रँगने का काम होता है। उत्तम प्रकार के वस्त्रों पर सब सांचे एक के ऊपर दूसरे रखकर रंग लगाया जाता है, इससे रंगाई उत्तम व बारीक होती है। यहां, रंग में भात की माड़ी मिला कर कपड़े रंगे जाते हैं। पहिले यहां वनस्पतियों से रंग निकाला जाता था, पर अब प्रायः जर्मनी का कृत्रिम रंग ही काम में लाया जाता है।

हम यहां से कारचोबी का काम देखने गये। उस समय यहां ५, ६ मनुष्य काम कर रहे थे। जिस प्रकार कपड़े को लकड़ी की चौकठ में कसकर अपने यहां कारचोबी बनती है, उसी प्रकार यहां भी काम होता है, किन्तु यहां का काम बड़ा महीन व अत्यन्त उत्तम होता है। इस समय एक मनुष्य एक शेर बना रहा था। यह, कोई ३ मास से इसे बना रहा था। ऐसा नियम है कि महीन काम करनेवाले एक ही टुकड़े पर दिनभर काम नहीं करते, इसलिए वे एक साथ ३, ४ कामों में हाथ लगाते हैं। घंटे २ घंटे तक महीन काम करने के बाद फिर मोटा काम करने लगते हैं, क्योंकि महीन काम देर तक नहीं किया जा सकता। यही अवस्था चित्रकारों की भी है। चित्रकार भी एक साथ ही कई चित्रों को बनाना प्रारम्भ करता है। जब उसकी तबियत होती है तभी वह कूची उठाकर एक चित्र पर दो एक हाथ फेर देता व फिर मोटा काम करने लगता है। जिस प्रकार उत्तम काव्य हर घड़ी नहीं बन सकता, उसी प्रकार चितेरों व कारीगरों की अवस्था है। रेशम के चित्र बनानेवाले, चितेरों का काम भी भलीभांति जानते व रंग से भी चित्र बना सकते हैं। शेर बनानेवाले कारीगर ने कहा, मैं इस समय कूची से चित्र न बनाकर सूई से चित्र बना रहा हूं। अब तक चित्र का जितना अंश बन चुका था, वह बड़ा ही उत्तम था। जान पड़ता था कि मानो शेर की खाल काट कर रख दी गई है।

रेशम की खेती।

यहां से हम रेशम की राजकीय पाठशाला देखने गये। यहां रेशम के कीड़ों की उत्पत्ति, पालन-पोषण और उनके होने पर रेशम निकालने के सम्बन्ध की सब बातें देखने में आई।

(१) आरम्भ में रेशम की तितलियां एक सफ़ेद कागज़ पर काठ के गोले और छोटे घरों में रक्खी जाती हैं। यहां ये हज़ारों अंडे देती हैं, ये अंडे पोस्ते के दाने के बराबर होते हैं। बहुतों के भीतर लाल और बहुतों के भीतर काला काला कुछ देख पड़ता है। तीन दिन में ये अंडे फूट जाते और इनमें से धीरे २ सूई की आंख के सदृश कीड़े बाहर निकल आते हैं।

(२) इसके बाद इन कीड़ों को धीरे २ दूसरे साफ़ कागज़ पर झाड़ लेते और इन्हें बहुत बारीक कटी हुई शहतूत की नर्म पत्तियों से ढांक देते हैं। इन पत्तियों को खाकर ये एक सप्ताह में दो जौ के बराबर और एक मास में २ इञ्च लम्बे और चौथाई इञ्च मोटे हो जाते हैं।

(३) इसके बाद इनका भोजन बन्द कर दिया जाता है और ये कागज़ के तख़्तों पर बने एक प्रकार के खर के जंगल में रख दिये जाते हैं। यहां, ये अपने शरीर के अंश से अपने इर्द-गिर्द रेशम का घर बना लेते हैं। इन्हीं को "ककून" या रेशम के "कोए" कहते हैं। यह कार्य ३ दिन में समाप्त हो जाता है।

(४) चौथे दिन वहां से उठाकर ये गर्म जगह में रक्खे जाते हैं। गर्मी की अधिकता से यहां ये मर जाते हैं। यदि इस प्रकार ये

मारे न जायँ तो ककून काटकर ये बाहर निकल आयेंगे और ककून खराब हो जायगा। ककून बन जाने के उपरान्त इनका शरीर आध इञ्च लम्बा व पहिले से मोटाई में आधा रह जाता है। ककून का रंग इन कीड़ों के शरीर के रंग जैसा होता है। इनमें सफ़ेद ककून सब से उत्तम समझा जाता है।

(५) इन ककूनों से तार कातने के पहिले इनको उबाल लेना पड़ता है। ऐसा कर लेने से तारों के टूटने का डर नहीं रहता।

स्वर्ण-मंडप।

यहां से हम स्वर्ण-मंडप नामी उद्यान देखने को गये। इसका वास्तविक नाम "किंकाकूजी" या "रोकुजी" है। यह, बुद्ध धर्म के "जैन" सम्प्रदाय का मन्दिर है। संवत १४५४ में "अशीकागावा योशीमित्सू" नामक शोगून ने इस स्थान को पहिले के मालिकों से लेकर बनवाया था। उक्त शोगून ने अपने पुत्र को राज्य देकर संन्यास लिया और यहां एक उत्तम महल बनवाया था। यद्यपि उक्त शोगून नाममात्र के लिए माथा मुड़ा, भगवा वस्त्र पहिनकर साधु के वेश में यहां रहते थे, तदपि यहां पूरे ऐशा-आराम का सामान रहता था। इसके सिवा वे राजकाज भी यहीं बैठे २ किया करते थे।

यहां के प्रधान मन्दिर में पुराने चित्रों का बहुत बड़ा समूह है व मन्दिर बड़ा ही उत्तम बना है। मन्दिर का उद्यान भी अत्यन्त मनोहर है। इसमें चीड़ के ऊँचे २ वृक्षों ने इसकी शोभा को वन्यशोभा का स्वरूप दे दिया है। इसके बीच में एक कृत्रिम सरोवर बना है। इसमें छोटे २ कई टापू हैं, जिन पर चीड़ के छोटे बड़े कितने ही वृक्ष लगे हैं। तालाब, लाल मछलियों तथा एक प्रकार की जलकुम्भी से भरा है। यहीं पर एक तिमहला प्रासाद भी है। इसकी छतों पर सुनहला काम बना है, इसीसे इसका नाम सुनहला-मंडप पड़ा है।

इसके सामने एक ऊँचा और नीचे से ऊपर तक हरे २ वृक्षों से भरा हुआ पहाड़ है। इसका नाम "किनुकासायामा" या "रेशम के टोप का पर्वत" है। इसके विषय में एक कहावत प्रचलित है कि एक दिन ग्रीष्म की ताप से "उथा" नामक मिकाडो ने आज्ञा दी कि सामने का यह पर्वत श्वेत रेशम से ढांक दिया जाय, जिसमें यह हिम से ढँके हुए पर्वत कासा नज़र पड़े। ऐसा ही किया गया और तभी से इसका यह नाम पड़ा है। जान पड़ता है कि यहां के मिकाडो लोग भी वाजिदअली शाह से कम शौकीन न थे।

आज सन्ध्या समय हम 'विवा' ताल में जल-यात्रा करने के लिए गये। यह कियोटो से कोई १५ मील दूर है। इसका नाम "ओमो" ताल है, पर इसका आकार जापानी वीणा "विवा" कासा है, इसीसे इसका नाम भी विवा प्रचलित हो गया है। यह ताल ३६ मील लम्बा व १२ मील चौड़ा है। समुद्रतट से इसकी ऊँचाई ३२८ फुट है। कहा जाता है कि इसकी गहराई भी इतनी ही है, किन्तु जगह २ यह बहुत छिछला है।

इस ताल से विवा नामी एक नहर निकाली गई है। इसके द्वारा माल से भरे छोटे २ स्टीमर ओसाका समुद्र से विवा ताल में आ जा सकते हैं। यह नहर कई जगह पहाड़ के भीतर से सुरंगों में होकर गुजरी है। कियोटो पहुंचने तक यह १४३ फुट नीचे गिरती है, इससे इसमें वेग अधिक है। यह वेग बिजली उत्पन्न करने के काम में लाया गया है। इससे कियोटो को बड़ी भारी विद्युत्शक्ति प्राप्त होती है।

टोकियो विश्वविद्यालय के शिल्प-विद्यालय में "टनावासकूरो" नामी एक छात्र ने अपने उपाधि-निबन्ध के लिए यह विषय चुना था कि जल मार्ग द्वारा मनुष्य तथा माल की आमदरफ्त 'विवा' में से किस भांति हो सकती है। वह निबन्ध विद्वत्तापूर्ण था, इसलिए उसी नव-शिल्पी पर इस नहर का भार सौंपा गया। इस

काम को उसने बड़ी योग्यता से संस्थापित किया। आजकल प्रायः सब लोग ही विवा से इसी नहर द्वारा कियोटो लौटते हैं, पर रात्रि हो जाने के कारण हम ऐसा नहीं कर सके।

२७—७—१५।

आज प्रातःकाल को हम महाशय 'हैरादाय-सूकू' से मिलने गये। आप कियोटो में "दोशीशा" विद्यालय के प्रधान हैं। यह ईसाइयों की संस्था है और आप भी ईसाई धर्मावलम्बी हैं। आपका जन्म १८२० में हुआ था। आपने विदेशी भाषा की पाठशाला 'कुमामोटो' में शिक्षा लाभ कर 'दोशीशा' में भी शिक्षा प्राप्त की थी। उसके उपरान्त आप एमेरिका के विख्यात विश्वविद्यालय 'येल' में शिक्षा ग्रहण कर १८४८ में धार्मिक-कक्षा से स्नातक बने। इसके उपरान्त आप यूरोप में भ्रमण करने के बाद टोकियो, कियोटो व कोबे में कुछ दिनों तक 'पास्टर' का काम करते रहे। आप "रिकुगो-ज़ाशी" व "क्रिश्चियन वर्ल्ड" के सम्पादक भी हैं। १८५० से १८६३ तक आप जापानी 'क्रिश्चियन एण्डेवर यूनियन' के सभापति भी रह चुके हैं। १८५७ में आप लन्दन की जगत्-मंडली नाम्नी सभा में उपस्थित थे। १८६३ में आप भारत-भ्रमण कर गये हैं। एडिनबरा नगर में समस्त संसार के पादरियों की जो पञ्चायत हुई थी, उसमें भी आप उपस्थित थे। १८६६ में आपने एमेरिका के हावर्ड, येल तथा अन्य विद्यापीठों म व्याख्यान दिये थे। आपको एडिनबरा विश्व-विद्यालय से L. L. D. को व अम्हर्ष्ट कालेज से D. S. की उपाधि प्राप्त हुई है। आप बड़े ही विचारसिक हैं।

यद्यपि आप ईसाई व पादरी हैं व योर-एमेरिका की सफ़र कर आये हैं, तदपि आप साहेब नहीं बने हैं। अब भी आप हमसे अपने देशी वस्त्र किमोनो में ही मिले थे। जापान में ईसाई धर्म, राजनैतिक गूढ़ समस्या नहीं है। चाहे पूर्व में पादरी प्रचारक अन्य देशों की भाँति यहाँ भी देश को हड़प करने ही को आये हों, पर अब ईसाई धर्म इस देश का वैसा ही अंग हो गया है, जैसा अपने देश में इस्लामी धर्म बन गया है। आपसे बातचीत कर यह ज्ञात हुआ कि जापान के ईसाई अपना राष्ट्रीय चर्च बनाना चाहते हैं। जापानी ईसाई आत्मरक्षा व स्वाभिमान के विचार से धार्मिक संस्थाओं को विदेशियों के आधीन रखना, स्वतन्त्र-जीवन के विरुद्ध समझते हैं। इसीसे यहां शीघ्र ही राष्ट्रीय कलीसा बननेवाला है।

महात्मा ईसा ने एशिया खण्ड ही में जन्म ग्रहण किया था। उनकी परवरिश एशिया की आबोहवा में हुई थी। उन्होंने एशियाई विचार व बुद्धि से प्रेरित हो, पाप व कुचेष्टा को जीत कर ईश्वर का राज्य प्राप्त करने के लिए अपने धर्म का प्रचार किया था, किन्तु आज एशिया में प्रभु ईसा का एक भी स्वतन्त्र गिर्जा बाकी नहीं है। इस समय ईसाई धर्म यूरोप का प्रधान धर्म बना है। योर-एमेरिका के वर्तमान ईसाई धर्म को यदि धर्म कहा जाय, तो यह कहना पड़ेगा कि प्रभु ईसा की रूह वैकुंठ में बैठी अपने शिष्यों के कर्मों पर अफ़सोस करती होगी। १८ सौ वर्ष के उपरान्त एशिया के पूर्व छोर में जापान स्वतन्त्र ईसाई चर्च की स्थापना करना चाहता है। देखें, एशिया का यह चर्च योर-एमेरिका का केवल जूठनमात्र ही होता है, या वास्तविक धार्मिक केन्द्र बनकर मान पाकर धर्मपिपासा के बुझाने में कुछ सहायक बनता है।

मध्याह्न भोजन के उपरान्त महाशय "केनि-निशीओ" के साथ यहां के कुछ कारख़ाने देखने चले। रेशम के कारख़ानों को देखने की बड़ी इच्छा थी, पर आपने कोरा जवाब दिया कि रेशम के कारख़ानेवाले, कारख़ाना नहीं दिखला-वेंगे। ख़ैर, इससे हम निराश होकर उनके साथ "रामी" पौधे की रेशाओं से बननेवाले वस्त्र के कारख़ाने में गये। यह पौधा कोई एक ...

ऊँचा होता है और इसके पत्ते भिंडी के सदृश होते हैं। इसकी छाल का वस्त्र लिनन से भी अधिक उत्तम बनता व चीन में इसका अधिक व्यवहार होता है।

इससे बने वस्त्र को देखकर हम इसका कारखाना देखने गये, किन्तु कारखानेवाले ने टाल-मटोल कर दिया। लिनन का काम देखने के बाद इसका कार्य कैसे होता होगा, इसका अनुमान करना कठिन नहीं है।

यहां से चलकर हम एक दूसरे कारखाने में आये। यहां, राम पौधे के सूत का वस्त्र बुना जाता था, इसमें कोई विशेषत्व नहीं है, किन्तु यहां एक विचित्र चीज़ देखने में आई।

जापान में एक प्रकार का बहुत चिमड़ा व महीन काग़ज बनता है। यह, बड़ा मज़बूत होता और इससे आध इञ्च का चौड़ा फीता बनता है। इसे यदि आप तोड़ना चाहें, तो कठिनता से टूटता है। ज़रा ऐंठ कर दोहरा कर देने से तो इसे तोड़ना असम्भव सा ही है। यहां इसका व्यवहार मामूली रस्सी की जगह छोटे बड़े पुलिन्दे बांधने के लिए किया जाता है। इस कारखाने में वही फीता कपड़े की भांति बुना जा रहा था। पूंछने पर ज्ञात हुआ कि इससे 'पनामा टोपी' की तरह इसकी टोपियां भी बनाई जाती हैं। चीन में इनकी रफ़्तनी बहुत होती है। इसकी टोपी, ठीक पनामा टोपी की भांति बनती है, परन्तु इसका मूल्य उससे चौथाई भी नहीं है। मैली हो जाने पर यह धोई भी जा सकती है; इसे देखकर अचम्भित हो जाना पड़ा।

चीनी के बर्तन।

यहां से हम चीनी के बर्तनों का कारखाना देखने गये। यह एक बृहत् स्थान में था। ये बर्तन एक विशेष प्रकार के पत्थर को पीस व सान कर मामूली मिट्टी के बर्तन की भांति कुम्हार के ढंग पर बनाये जाते हैं। इसका चाक भी अपने देश की भांति हाथ से ही हिलाकर चलाया जाता है। एमेरिका में विद्युत् की शक्ति से यह चलता है।

प्रारम्भ में ये बर्तन खरिया मट्टी के रंग जैसे दिखाई देते हैं। सुखाने के बाद इन्हें ६००° से ७००° अंश के ताप में पकाते हैं। पकाने के उपरान्त भी ये खरिया जैसे ही दिखाई देते हैं, पर बजाने से इनकी आवाज़ कांच सी होती है।

यदि इस पर नक़्क़ाशी करना हो तो इसी समय वह की जाती व विशेष प्रकार के रंग से इस पर बेल बूटे भी बनाये जाते हैं। यह रंग ऐसा होता है कि आंच में पिघलकर ठंढा होने पर फिर कांच की भांति जम जाता है।

नक़्क़ाशी व चित्रण के उपरान्त इस पर एक विशेष प्रकार का आवेष्टन लगाया जाता है। यह पदार्थ भी देखने में खरिया का सा दीख पड़ता है। लुक हो जाने के उपरान्त ८००° से ६००° की आंच में ये ३६ घंटे तक फिर पकाये जाते हैं। इस ताप से सारा पदार्थ गलकर जिस प्रकार हम चीनी के बर्तन देखते हैं, उस प्रकार के बन जाते हैं।

चीनी के बर्तन बहुमूल्य होते हैं। कोई २ पुराने बर्तन दो दो और चार २ हज़ार तक हमने देखे हैं। इतने अधिक मूल्य का कारण उत्तम चित्रण व विशेष आभा के रंगों का बहुमूल्य पदार्थ होना ही है। ऐसे बहुमूल्य पदार्थ पकाने में अधिकांश टूट भी जाते हैं। इससे बच जाने-वाले बर्तनों का मूल्य और भी बढ़ जाता है।

यूरोप तथा जापान में भी उस प्रकार के चीनी के बर्तनों का कुछ पता न चला, जो दिल्ली के किले में अब भी रक्खे हैं व जिनके बारे में यह किम्वदन्ती है कि इनमें विषयुक्त भोज्य-पदार्थों के रखने से ये पात्र टूट जाते थे व इससे पता लग जाता था कि भोजन में विष है। चीन में भी इसका पता लगाने का यत्न करूंगा।

फ़ारसी पुस्तकों में एक प्रकार के वस्त्र का हाल भी हमने पढ़ा था। इसको "हरीरा" कहा गया

है। इसके विषय में कहा गया है कि यह चीन में बनता था व इसका गुण यह था कि पूर्णिमा की ज्योत्स्ना से यह वस्त्र फटकर गिर पड़ता था। विलासप्रिय नृपतिगण युवती वारांगनाओं को ये वस्त्र पहिनाकर चाँदनी में बुलाते व वस्त्र फट जाने पर हँसी मज़ाक किया करते थे। इस वस्त्र का भी संसार में पता नहीं चला। न जाने ये दोनों बातें कवियों की कल्पनामात्र ही हैं या पुराने ज़माने में इनका वास्तविक अस्तित्व था।

कारखाना देखकर हम चीनी बर्तन के व्यापारी की दूकान पर गये। आपने हमारा बड़ा सत्कार कर भोजन कराया तथा अन्य रूप से भी आदर किया। यहां चीनी के एक बार पके हुए पात्रों पर नाम लिखने को दिया, नामयुक्त ये पात्र नाम के सहित पक जाते हैं। मैंने देवनागरी में भगवान बुद्ध का नाम तथा विक्रम सम्वत् आदि लिख दिया था।

२८—७—१५।

चिओंनिन।

चिओंनिन का मन्दिर जापानी बौद्ध धर्म के "जीदो" सम्प्रदाय का प्रधान मठ है। यह कियोटो की पूर्व दिशा में पहाड़ियों के बीच में बना है। इस मन्दिर की स्थापना सं० १२६८ में हुई थी। इसकी प्रतिष्ठा यहां के प्रसिद्ध साधु "इनकोदेशी" ने की थी; किन्तु आधुनिक समय में यहां जो इमारतें हैं, वे १६८७ की बनी हुई हैं, क्योंकि पुरानी इमारतें जल गई थीं।

इस आश्रम के भीतर जाने के लिए बहुत बड़ा या कोई ८१ फुट लम्बा व ३७॥ फुट चौड़ा एक फाटक है। इसके भीतर जाकर कोई १०० सीढ़ियों को तै कर हम ऊपर के प्रधान मन्दिर के सम्मुख पहुंचे। यहां से दाहिनी ओर जरा ऊँचाई पर वृक्षों की झुर्मुट में १६७५ में बना हुआ एक मंडप है। इसमें एक विशाल घंटा लटका हुआ है; इसकी ऊँचाई १०.८ फुट व व्यास ९ फुट है। घंटे का दल ९॥ इञ्च मोटा व इसका वज़न ७४ टन, अर्थात् १९९८मन है। यह १६९० में ढाला गया था।

प्रधान मन्दिर का मुख दक्षिण दिशा की ओर है व यह १६७ फुट लम्बा, १३८ फुट चौड़ा व ९४॥ फुट ऊँचा है। यह योगिराज "इनकोदेशी" को समर्पित किया गया है। इनका स्मारकस्थान प्रधान वेदी के पीछे एक अन्य वेदी पर बना है। यह स्थान सुनहले ४ बड़े स्तम्भों से घिरा हुआ है।

प्रधान वेदी के पश्चिम एक दूसरी वेदी है इस पर "इयासू" व उनकी माता का स्मारक है। वहीं "हिदेतादा" का स्मारक भी है। प्रधान वेदी की पूर्व दिशा में बीच की वेदी पर "अमिदा" अभिन्नेश्वर की प्रतिमा है व कतिपय मठधारियों के स्मारक भी हैं।

प्रधान मन्दिर की पूर्व दिशा में मठ का पुस्तकालय है। इसमें बौद्ध धर्म सम्बन्धी प्रायः सभी पुस्तकें रक्खी हैं। प्रधान मन्दिर के पीछे लकड़ी का एक बरामदा है। उसपर चलने से एक प्रकार का चेंचें शब्द होता है; लोग मैना के शब्द से इसकी तुलना करते और कहते हैं कि यह जान बूझ कर ऐसा बनाया गया है। अब इस प्रकार की कारीगरी का होना असम्भव बतलाया जाता है। इस बरामदे द्वारा हम 'शुईदो" मन्दिर में गये। इसमें दो प्रधान वेदियों पर 'अमिदा व कानन की प्रतिमायें हैं। ये प्रतिमायें "इशिन सोजू" "केबुनशी" व "केबुन्दा" की निर्माण की हुई हैं।

यहां से होकर हम "इमित्सू" के महल में गये इसका नाम गोटन है। इसमें दो भाग हैं, एक का नाम "ओहोजू' व दूसरे का "कोहोजू" है। इन महलों में "कानो सम्प्रदाय" के चितेरों के चित्रों का अच्छा संग्रह है, किन्तु इनमें से अधिकांश चित्रों का रंग फीका पड़ गया है। दो कमरों में चीड़ व बकुल वृक्षों के दृश्य हैं। पेड़

'कानो नूरओनोबू' के खींचे हुए हैं । दूसरे में केवल चीड़ वृक्षों ही का दृश्य है । इसमें एक बार भूतपूर्व सम्राट् ने विश्राम किया था । एक में हिम का दृश्य बड़ा उत्तम दिखाया गया है। यहां अनेक कमरों में भिन्न २ चितेरों के उत्तम चित्र हैं । इन्हें बहुत समय तक देखने के उपरान्त हम यहां से आगे बढ़े ।

यहां से नीचे उतर कर हम "दाईबुत्सू" देखने गये । यह भगवान बुद्ध की एक भीमकाय काष्ठ मूर्ति है । १६४५ से यहां एक न एक भीमकाय बुद्ध मूर्ति बराबर रही है, किन्तु अग्नि, भूकम्प अथवा बिजली के गिरने से एक के पीछे एक नष्ट होता रहा । इस समय जिस मूरत को हमने देखा वह १८७८ में स्थापित हुई है । यह, लकड़ी के ढांचे पर लकड़ी की पट्टियां जड़ कर बनी है । इसकी शकल अत्यन्त भद्दी है । इसके निर्माण में शिल्प के किसी अङ्ग पर ध्यान नहीं दिया गया है । इस मूर्ति में केवल मस्तक व कन्धे मात्र हैं, शरीर का और भाग नहीं । इसपर भी इसकी उंचाई ५८ फुट है ।

इस मन्दिर में मूर्ति की चारों ओर आधुनिक समय की मामूली १८८ तसवीरें लगी हुई हैं । इन पर कुछ काव्य भी लिखा है । यहां कुछ पुराने लोहे का भी संग्रह है जो किसी समय किसी गृह के अंश थे ।

यहां से हम "अरशियामा" नदी देखने गये । यह "होजूगावा" नदी से बनी है । इसके दोनों तट, ऊंचे पहाड़, चीड़ व पद्म के वृक्षों से भरे हैं व बीच में से यह नदी बहती है। ग्रीष्म में जल-विहार के लिए यहां बहुत से लोग आते हैं । सुना है, वसन्त में जब पद्मकाष्ट फूलते हैं, तब इसकी शोभा अवर्णनीय होती है। हम लोग भी यहां २, ३ घंटे तक घूमते रहे फिर एक शिला पर संध्या की व नाव पर ही भोजन कर रात्रि में होटल की ओर लौटे। एमेरिका में रौकी पर्वतमाला को पार करते समय रेल एक दर्रे में से होकर गुजरती है। इसको वहां 'गोर्ज' कहते हैं । यहां भी अरशियामा की तरह कुछ २ यही दृश्य है । किन्तु गोर्ज में न तो नाव पर जल-विहार ही हो सकता है, न हरे वृक्ष ही दिखाई देते हैं ; हां, ऊँचे पर्वत व बीच में नदी अवश्य है ।

विनय ।

विधाता ! विनय करूं कर जोर ।
ईश-भजन परहितसाधन में सनी रहे मति मोर । जननी जन्मभूमि भारत सों होवे प्रेम अथोर ॥
सुखकारी प्यारी हिन्दी सो प्रेम बढ़े घनघोर । होमरूल चर्चा भारत में फैले चारो ओर ॥
बीते वेग निराशा रजनी हो स्वराज्य का भोर । मुखिया नरम गरम दलवाले बँधे सुमति की डोर ॥
देशभक्ति में भारतवासी रँगे रहें सरबोर । व्यापे ओर छोर भारत में जातीयता हिलोर ॥
राखे रहें प्रजा पै प्यारे जार्ज कृपा की कोर । बेड़ा पार करें भारत का नटवर नन्दकिशोर ॥

"दास" ।

कार्यकारिणी कौंसिल

संयुक्तप्रान्त में स्थापित हो इसके लिए बहुत दिनों से आन्दोलन हो रहा है। संयुक्तप्रान्त को कौंसिल कभी को मिल भी गई होती यदि हम लोगों के चिर मित्र लार्ड मेकडानेल, सिडेनहम आदि ने इसका घोर विरोध लार्ड सभा में न किया होता। समय टल गया किन्तु साथ ही साथ कौंसिल का मन्तव्य न टल सका। आज नहीं किन्तु कौंसिल स्थापित होगी, निरंकुश या प्रतिनिधिहीन शासन का अन्याय बहुत दिन नहीं चल सकता। अब

वायुदूत ने संदेश

भेजा है। सुनते हैं इसपर विचार हो रहा है कि कार्यकारिणी समिति का भारतीय सदस्य कौन हो। इतना ही नहीं यह भी खबर है कि प्रान्तीय सरकार ने कुछ मनुष्यों का नाम भी लिख भेजा है। इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं कोई भी सरकार प्रजा को उसके ईप्सित वर से वंचित नहीं रख सकती किन्तु आश्चर्य की बात है कि जिन मनुष्यों के नाम भेजे गये हैं वे किसी दृष्टि से भी हमारे प्रतिनिधि नहीं कहे जा सकते। खिताब अवश्य बड़े बड़े नाम के साथ लगे हुए हैं; राजा, रायबहादुर, करनल आदि नाम को लंबे करने के लिए काफी सुन्दर अवश्य हैं किन्तु साथ ही साथ यह भी छिपा नहीं कि भारत में अधिकतर खिताब अयोग्यता और ठकुरसोहाती के द्योतक हैं। जो हो यदि वास्तव में ऐसे ही सज्जनों के नाम हमारे प्रतिनिधित्व का पट्टा लिखा जाना उचित समझा गया है तो हमको यह अधिक स्वीकार होगा कि हमें कौंसिल न दी जाय और हम बिना अपने प्रतिनिधि के ही शासित हों "जिनके अगुआ भये ......" की कहावत भारत की ही है और इसके मर्म को भारतवासी खूब जानते हैं।

❀

सर जेम्स मेस्टन ने क्या किया?

'न्यू इंडिया' ने उपर्युक्त शीर्षक द्वारा लिखा है कि पांच वर्ष के शासन में सर जेम्स मेस्टन ने संयुक्तप्रान्त के खर्च में इस प्रकार कमी की है:—

शिक्षा	१० लाख
स्वास्थ्य	५ लाख
दवाई दर्पन आदि	१.७ लाख

इस तालिका से विदित होता है कि १९१३-१४ की अपेक्षा १९१७-१८ में संयुक्तप्रान्त की सरकार ने हितकर विभागों के खर्च में १७ लाख की कमी की है। जिन बातों के लिए नितप्रति खर्च में अधिकता होनी चाहिये उन्हीं में खर्च की कमी की गई है, इसके विपरीत मद्रास में इन्हीं सब विभागों में १५, ६ और ५ लाख की वृद्धि हुई है।

❀

दृढ़प्रतिज्ञ की विजय।

पाठकों को विदित होगा कि बिहार के प्रतिनिधियों के प्रार्थना करने पर कर्मवीर कर्तव्यधीर मि० गांधी अभी निलहे साहबों के अत्याचारों की छानबीन करने के लिए बिहार गये थे। मुज़फ्फरपूर में वे "निलहे साहबों की सभा" के मन्त्री मि० विलसन तथा डिवीज़नल कमिश्नर मि० मार्सशेड से मिले थे। उन्होंने यह इच्छा प्रकट की थी कि शासकों की सहायता से वहीं रह कर वे निलहे साहबों और रैयतों के मसले को हल करना चाहते हैं।

मि० गांधी ने यह भी कहा था कि वे शान्ति के उपासक हैं और नियमानुकूल रीति से ही विधिविहित कार्यवाही द्वारा वे जाँच करेंगे। यह सब कह सुनकर मि० गांधी मोतीहारी को पधारे। वहाँ पर पहुंचते ही वहां के कलेक्टर ने १४४ ज़ाब्ता फौजदारी की बिना पर उन्हें शहर छोड़कर चले जाने की आज्ञा दी; यह सर्वथा अन्यायोचित था। मि० गांधी ने जवाब लिख भेजा कि वे सत्य की जांच के लिए अपने

हैं और वे जगह से हट नहीं सकते। कलेक्टर को अधिकार है कि आज्ञा के उल्लंघन के लिए उन्हें सज़ा दे। मुकद्दमा चला, कचेहरी में मि० गांधी ने अपने वक्तव्य में कहाः—

"महाशय, मेरे नाम से ज़ाब्ता फौजदारी की १४४वीं धारा के अनुसार जो नोटिस दिया गया है, उसके विषय में मेरा वक्तव्य यह है कि इस प्रकार की आज्ञा देने की आपको आवश्यकता प्रतीत होने और मेरे कथन का कमिश्नर द्वारा इस प्रकार अर्थ विपर्यास होने से मुझे बड़ा दुःख हुआ है। जनसाधारण के हित की दृष्टि से मेरे ऊपर जो ज़िम्मेदारी है उसका विचार कर इस ज़िले को न छोड़ना मेरा कर्त्तव्य है। यदि वैसा ही कराने की अफ़सरों की मर्ज़ी हो तो इस आज्ञा-भङ्ग का जो दण्ड हो उसे मैं चुपचाप सहने को तैयार हूं।

कमिश्नर ने अपने पत्र में यहां आने के मेरे उद्देश्य के विषय में आन्दोलन करने की जो बातें कही हैं, उनका मैं ज़ोरों से प्रतिवाद करता हूं। मेरा उद्देश्य सिर्फ जानकारी प्राप्त करने ही का है और जब तक मैं कैद न कर लिया जाऊँगा तब तक उसे बराबर जारी रक्खूंगा।"

समस्त भारत में क्रोध और अशान्ति की लहर दौड़ गई। सब प्रान्तों के नेताओं के तार पर तार दौड़ने लगे। मालूम होता था देश के समस्त नेता मि० गांधी के साथ जेल चले जायंगे. अनुयायियों में भी बड़ा जोश था। गवर्नमेंट से यह सब छिपा न था, मि० गांधी को भी वह पहचानती है, वह जानती है कि मि० गांधी अपने कर्तव्यपथ से विचलित होनेवाले नहीं, जो हो, अन्तःकरण को वह किसी भय से त्रस्त होकर भी कुचलनेवाले नहीं, प्रेस्टीज़ आदि के विचार को बलायताक रखकर उसने तुरन्त ही मुकदमा कचेहरी से उठा लिया, इतना ही नहीं उसने यह भी प्रकट किया कि सरकारी अफ़सर सब प्रकार से जाँच में मि० गांधी को सहायता पहुंचायेंगे। अन्याय और अत्याचार ने अँधियारे का शरण ली और सत्य और न्याय की विजय हुई। मामला देखने में कुछ नहीं था, दो ही चार दिन के भीतर ही यह तय भी हो गया किन्तु इसके गर्भ में बहुत कुछ है। भारतीय स्वतन्त्रता के इतिहास में इस छोटे से मामले ने एक बड़ा ऊँचा स्थान प्राप्त किया है, त्याग और निष्क्रिय प्रतिरोध के सिद्धान्त के महत्व को भी यह सहज ही में दिखला देता है। हमें आशा है शासक और शासित दोनों ही इससे लाभ उठायेंगे।

प्रजातन्त्र का अर्थ।

रूस में प्रजातंत्र स्थापित हो गया। प्रजातन्त्र की घोषणा से पाठकों को स्वराज्य, सुशासन और प्रजातंत्र का अर्थ सहज ही में समझ में आजायगा। ड्यूमा ने यह निश्चय किया हैः—

(१) समस्त राजनैतिक तथा धार्मिक अपराधियों को क्षमा प्रदान।
(२) बोलने तथा लिखने की पूर्ण स्वतंत्रता।
(३) संघ, समिति, सभा आदि संगठन की पूर्ण स्वतन्त्रता।
(४) हड़ताल करने की पूर्ण स्वतंत्रता।
(५) सामाजिक तथा धार्मिक बाधाओं का अन्त।
(६) फाँसी की सज़ा का अन्त।
(७) जेल में अभियुक्तों को बेड़ी न पहननी पड़ेगी।
(८) प्रत्येक मानव को वोट देने का अधिकार होगा।
(९) राष्ट्र के समस्त पदों पर स्त्रियाँ नियुक्त हो सकेंगी। वे प्रधान मन्त्री के पद को भी अलंकृत कर सकेंगी।
(१०) पोलैंड और फिनलैंड को पूर्ण स्वराज्य दिया जायगा।
(११) परिश्रमजीवियों को केवल ८ घंटे प्रति श्रम करना होगा।

हम नव-रूस का हृदय से स्वागत करते हैं, ईश्वर करे वहां के निवासी दिन दिन प्रजातंत्र का अर्थ और भी अधिक भले प्रकार समझें।

मैदान में एमेरिका।

एमेरिका ने उदासीन रहने की बहुत चेष्टा की। डा० विलसन ने समझा था, बंदरघुड़की से काम निकल जायगा किन्तु विवश हो उनको भी अस्त्र उठाना पड़ा। जलनिमग्न नौकाओं के उपद्रव का यह फल हुआ है अब मित्रदल में एमेरिका भी सम्मिलित हो गया है। मित्रदल को एमेरिका से अब सब प्रकार की सहायता मिल रही है, एक एक मिलकर दो नहीं, किन्तु ग्यारह हो गये हैं। युद्ध पर इसका प्रभाव क्या होगा यह हम नहीं कह सकते किन्तु वाह्य दृष्टि से प्रभाव हितकर ही प्रतीत होता है।

स्वराज्य

के लिए आन्दोलन शीघ्र ही आरम्भ होगा। यह राजा, प्रजा और साम्राज्य सब को लाभप्रद होगा। पाठकों को यह सुनकर प्रसन्नता होगी कि साम्राज्य-सभा में भारतीय प्रतिनिधियों को उपनिवेशों के प्रतिनिधियों के समान ही स्वत्व प्राप्त हैं। यह सत्य है कि इन प्रतिनिधियों को भारतीय जनता ने नहीं चुना किन्तु

समता

का अधिकार स्वीकृत हो जाने से यह मसला भी शीघ्र ही एक दिन हल हो जायगा। ग्रेटब्रिटेन के अधिवासियों की सहानुभूति प्राप्त करने के लिए भारतीय नेताओं का एक डेपूटेशन, जिसमें देश के प्रायः सभी गणयमान्य प्रतिनिधि सम्मिलित होंगे, शीघ्र ही विदेश को जायगा। देश में भी जनता में ज्ञान विस्तार करने के लिए तथा उनको स्वराज्य के उपयुक्त बनाने के लिए आन्दोलन शीघ्र ही आरम्भ होना चाहिये। भारतवासी और उनके नेताओं के कर्तव्यपालन पर सब तरह से हमारा भविष्य निर्भर है। हम आशा करते हैं कि भारतवासी अपने कर्तव्य का पालन करेंगे।

जीवरक्षा और रीवां राज्य।

जब से श्रीमान् रीवां नरेश ने हरिहरक्षेत्र के मेले में निरीह गौओं का त्राण किया है तब से जीवरक्षा की ओर आपका विशेष ध्यान लगा हुआ है। सुनते हैं गत ज्येष्ठ मास में इस विषय में राज्य के अमीर उमरावों की एक कमेटी बैठी थी और सब से चन्दा देने को कहा गया था। राज्य में एक "जीवरक्षिणी सभा" स्थापित हो गई है और इसकी सफलता के लिए वे प्रयत्न भी खूब कर रहे हैं। हमें विश्वास है कि यदि उनकी दृष्टि इस ओर लगी रही तो यह सभा अपने उद्देश्य को सिद्ध करेगी किन्तु इसके साथ ही साथ श्रीमान् का ध्यान हम

खरचरु

की ओर आकृष्ट करते हैं। गोवंश तथा कृषि की उन्नति के लिए यह बहुत आवश्यक है कि मवेशियों के चरने के लिए चरागाह हों और उनके लिए कृषकों को कोई कर न देना पड़े। जीवरक्षा का यह कर्म अति उत्तम होगा, साथ ही कृषक प्रजा को भी इससे लाभ होगा।

दूसरी बात

इस संबन्ध में जो हम कहना चाहते हैं वह यह है कि जीवरक्षा के लिए एक प्रकार से हिंसक जन्तुओं की हत्या भी आवश्यक है। जहां तक हमको मालूम है, रीवां में गोवंश का नाश सिंहों द्वारा बहुत होता है। ऐसे जन्तुओं की हत्या के लिए अन्य शासक पारितोषिक की घोषणा किया करते हैं। इसके विपरीत रीवां में

सिंह रक्षित हैं।

रीवांनरेश के सिवाय किसी को अधिकार नहीं कि वह उनकी हत्या करे। ऐसा क्यों है ?

क्या रीवांनरेश की इच्छा है कि उनके राज्य में सिंह को मारनेवाले न पैदा हों ?

वीरता की बेकदरी ।

रीवां राज्य एक समय संकट में पड़ा था। महाराज अजीत सिंह के समय में एक बार महाराष्ट्र साम्राज्य के वीर यशवन्तराव होलकर ने बुन्देलखंड को नष्टभ्रष्ट कर बघेलखंड (रीवां) पर चढ़ाई की थी । रीवां राज्य में कोई सेना न थी, महाराजा भी महाराज ही थे । अब तब का समय था और लोग यही देख रहे थे कि कितने मिन्टों में मरट्ठों का झंडा फहराने लगेगा। ऐसे समय में राज्य के

दो सौ वीर

स्वदेशभक्ति की वेदी पर अपनी आहुति देने तथा नरमेध यज्ञ करने को खड़े हो गये। किसी ने इनका साथ नहीं दिया किन्तु साहस को कब किसी ने परास्त होते देखा है। दो सौ वीरों ने मरट्ठों की सेना का सामना किया, घोर युद्ध हुआ और अन्त में वीर प्रतापसिंह ने शत्रु सेनापति का सर काट लिया। मरट्ठों की सेना भाग खड़ी हुई और रीवां राज्य, वीरों की दया और भक्ति से बना रह गया। जो पुरुषसिंह खेत रहे, उनमें से ९ के स्मारक समाधि-मंदिर रीवां के उस रणक्षेत्र में बनाये गये थे। इसीके निकट एक शिवाला और बावली भी बनाई गई थी । इनकी दशा बहुत ही शोचनीय है, चार केवल खंडहर के रूप में दिखाई दे रहे हैं । रीवां राज्य के निवासी और रीवां नरेश का कर्तव्य है कि यदि आवश्यक हो तो अपने महलों की ईंट से और अपने पेट को काटकर वीरों की वीरता के चिह्न को बनाये रहें। स्मारकों को नष्ट भ्रष्ट होने देना वीरता की बेकदरी ही नहीं, वरन् वीरता के बहिष्कार और कायरता के आविष्कार का समाधि-मंदिर या खंडहर बनने देना है।

मि० तिलक बनाम पुलीस ।

मि० तिलक ने बंबई के गवर्नर की सेवा में एक प्रार्थनापत्र भेजकर प्रगट किया है कि नासिक पूना, बंबई आदि की खुफिया तथा साधारण पुलीस के कुछ मनचले अधिकारी "तिलक बनाम शिरोल" वाले मुकदमे के गवाहों से पूछ तांछ कर रहे हैं कि वे क्या गवाही देंगे। इसका अर्थ यह होगा कि गवाह, पुलीस की डर से बँहकेंगे । उन्होंने आशा प्रगट की है कि वे मनचले अधिकारी इस अन्यायोचित कार्यवाही से रोके जायँगे।

प्रार्थना सर्वथा उचित और पुलीसवालों की कार्यवाही बिलकुल अनुचित है । शिरोल साहब भारतीय सरकार नहीं हैं। साम्राज्य के दो निवासियों में मुकदमा चल रहा है, सरकारी नौकरों को पूर्णरीति से उदासीन रहना चाहिये इतना ही नहीं हम आशा करते हैं कि बंबई सरकार एक कमेटी बैठाकर इस मामले की जांच करावेगी और अपराधियों को दंड देगी।

अभ्युदय प्रेस, प्रयाग में बद्रीप्रसाद पाण्डेय के प्रबन्ध से छपकर प्रकाशित हुई।

भाग १३] जून, सन् १९१७—ज्येष्ठ [संख्या ६

घुण्डी बाधा ।

[लेखक—पं० कृष्णविहारी मिश्र, बी० ए०, एल० एल० बी० ।]

घुण्डी खोलि करहु विश्राम !
है छोटी मज़बूत लपेटी
अन्तर कठिन नयन अभिराम ।
बाहरवाले सुखद विचारत
दुखद सरीरहि यह सम दाम॥
रस में अनरस यासों उपजत
सब दोखन की धाम ।
सूचीकार कूर की कृति है
नीच काम अरु नाम ॥
स्रवत खेद सिगरे सरीर सों
सोह न बसन ललाम ।
पै न उतारि सकत यहि कारन
विजन वायु हू वाम ॥
स्वच्छन्दता आपनी यासों
है सब विधि बेकाम ।
मानस मंजु मौज को मारति
मुण्डी यद्यपि छाम ॥
बढ़ि न सकति है आप रंच हू
नियत ह्रास को ठाम ।
याही सों इरखावस रोकति
पर अनन्द आराम ॥
खटमल भय खटिया न तजत कोऊ
भन धरि आठौ जाम ।
नेक जतन सों पुरवहु सोई
जाको सुभ परिनाम ॥
घुण्डी खोलि करहु विश्राम !!

शुद्धजीवन के उपाय।

[लेखक—श्रीयुत ब्रह्मदत्त मिश्र, बी० ए० ।]

अच्छे स्वास्थ्य के लिए शरीर और मन की शुद्धता अत्यन्त आवश्यक है। विशेष करके युवावस्था में अशुद्धता के इतने अवसर आते हैं कि मित्रता के सम्बन्ध से कुछ सलाह और उपाय बतलाना उपयोगी ही सिद्ध होगा। इसके लिए नीचे हम कुछ उपाय बतलाते हैं,—

१—सब से प्रथम विचारों को शुद्ध रखने की आवश्यकता है। इसका अभिप्राय यही नहीं कि अशुद्ध विचारों से दूर रहो, परन्तु अपने अन्तःकरण में शुद्ध विचार की इतनी अधिकता रक्खो कि बुरे विचारों को स्थान ही न मिले।

अपना कार्य करने के समय मन लगाकर उसे करो और उसके हो जाने पर दिलबहलाव का कुछ काम करो या कोई अच्छी पुस्तक पढ़ो। नित्य का परिश्रम ईश्वरप्रदत्त एक सुख है जिससे हमारा आचरण शुद्ध होकर शरीर और मन को बल प्राप्त होता है। शुद्ध जीवन के लिए किसी प्रकार का व्यायाम भी आवश्यक है विशेषकर उन लोगों के लिए जिनको बैठे रहने का ही अधिक काम रहता है। व्यायाम से शरीर में रुधिर का संचालन अच्छी तरह होता है और शरीर में वात का बढ़ना रुक जाता है। इससे गाढ़ी नींद आती है, जो शरीर के लिए अत्यन्त उपयोगी है।

२—क्षुधा को अपने वश में रक्खो। भोजन साधारण और प्रकृति के अनुकूल होना चाहिये। क्षुधा को वश में कर लेने से काम-क्रोधादि अन्य वासनाएँ भी वश में हो जाती हैं। युवा मनुष्यों के लिए मांसभोजन हानिकारक है क्योंकि इससे मनुष्य की अधोवृत्तियां जागृत होकर काम-क्रोधादि की वृद्धि होती है।

मित्र और साथी अच्छे होने चाहियें, यदि अच्छे साथी न मिलें तो बुरे साथियों का साथ न करना चाहिये। युवक को शुद्ध वाणी बोलना चाहिये। यदि उसके सामने कोई दूषित बात कहे तो उससे नफ़रत करनी चाहिये। इसके लिए मानसिक बल की विशेष आवश्यकता है, परन्तु जिस युवक में यह बल नहीं, उसको मनुष्य कहना उचित नहीं है।

किसी युवक को इस विचार से धोखा न खाना चाहिये कि स्वास्थ्यपूर्वक रहने के लिए विषयवासनाओं में प्रवृत्त होना आवश्यक है। स्त्रियों के लिए शुद्ध जीवन उतना ही आवश्यक है जितना पुरुषों के लिए। हमारे समाज की रीतियों में बहुत कुछ सुधार की आवश्यकता है। जब तक कोई युवक अपने विचारों को शुद्ध बनाने और अपनी इन्द्रियों को वश में रखने को समर्थ न हो तब तक वह किसी कन्या से विवाह करने का अधिकारी नहीं है। इसलिए कर्मो धोखा न खाना चाहिये क्योंकि ईश्वर सर्वव्यापक और न्यायी है। जो जैसा पेड़ लगायेगा, वैसा ही फल पायेगा।

गुप्त बुराइयों का परिणाम।

आजकल प्रायः सब युवकों में जो बुरी आदतें पाई जाती हैं, उनसे शरीर के सम्पूर्ण अवयवों का बल ही नष्ट नहीं होता बल्कि उनसे मानसिक बल का भी ह्रास होता है। इससे मस्तिष्क निकम्मा हो जाता है। जो इनके शिकार बन जाते हैं, उनका सर्वथा नाश ही अवश्यम्भावी है। आजकल ऐसे अभागे युवकों की संख्या कम नहीं है, इसलिए स्वास्थ्य-सम्बन्धी लेखों द्वारा इसकी अधिक चर्चा होनी चाहिये। यदि ये दत्तचित्त होकर अपनी दशा सुधारना चाहें, तो वह सुधर सकती है। इसका होना

स्वास्थ्य-सम्बन्धी कुछ नियमों पर निर्भर है। इन अभागों के लिए तो यह विशेष उपयोगी हो है, परन्तु जो अभी तक इस बुराई से बचे हुए हैं उनको भी इससे अधिक लाभ हो सकता है।

स्वास्थ्य किस प्रकार से सुधर सकता है ?

१—सब से प्रथम निराश न होकर यह विचार करो कि हमारी अवस्था ऐसी असाध्य नहीं है जैसी कि हम सोचते हैं।

२—इलाज के लिए नोटिस और अखबारों की ओषधियों या उन वैद्यों और हकीमों पर ध्यान न दो जो अखबारों में नोटिस निकालते हैं, क्योंकि सुयोग्य वैद्यों के पास नोटिस दिये बिना ही बहुत रोगी आजाते हैं। किसी वैद्य या डाक्टर से अपना हाल साफ २ कह कर उसकी राय लो और नित्य के आहार-विहार के बारे में उससे पूछताछ करो। विषाक्त वा अधिक गर्म औषधियों का सेवन करना हानिकर होता है।

३—किसी प्रकार के मादक द्रव्य का सेवन मत करो, यदि करते हो तो छोड़ दो। तम्बाखू भी न खाओ न पीओ। तेज़ चाय वा काफ़ी का सेवन भी न करना चाहिये।

४—सदा प्रसन्नचित्त रहो। मन में अच्छे हो जाने का निश्चय करो। अपने सब विचार स्वास्थ्य पर दृढ़ करो। जो काम करने हों उन्हें स्वास्थ्य के लिए करो। भोजन, व्यायाम, निद्रा आदि सभी स्वास्थ्य के लिए करो। सदा सुखदायक और शुद्ध मित्रों का साथ कर प्रत्येक प्रकार की दुर्बलता को दूर करने की कोशिश करो। शोक, निराशा और चिन्ता को सदा अपने से दूर करो। शुद्ध वायु और फल फूलयुक्त उद्यानों और पहाड़ियों पर भ्रमण करो और प्रकृति के मनोहर दृश्यों को देखकर उनसे प्रेम करो। घर से [बाहर जाकर] यथासम्भव शुद्ध वायु में घूमो।

५—परमेश्वर की आज्ञा का पालन करो और अपना जीवन शनैः २ सुधारते जाओ, और उस उच्चकोटि के आनन्द को प्राप्त करो जो उस परब्रह्म परमात्मा की इच्छा है।

६—भूतकाल को भूल जाओ। तुमने जो भूलें और अपराध पहिले किये हैं, उनको भूल जाओ। ईश्वर पश्चात्ताप करनेवाले के अपराधों को क्षमा कर देता है। वह नहीं चाहता कि तुम उनका भार सदा अपने ऊपर लिये रहो। यदि तुम बीती हुई बातों का ही विचार करते रहोगे तो कभी वर्तमान समय के गुरुतर कार्य को नहीं कर सकोगे। याद रक्खो कि प्रत्येक दिन बिलकुल नया और शुद्ध आता है, मानो प्रत्येक दिन तुम अपने जीवन की पुस्तक में एक नया पन्ना उलटते हो। तुम उस साफ़ और खाली पत्र पर आनन्द देनेवाले और स्मरणीय शुद्ध विचार, उच्च अभिलाषा, दया और प्रीतियुक्त वचन और अच्छे २ कार्य लिख सकते हो। प्रत्येक दिन का तुम्हारा यही कर्तव्य है। यदि तुम अपनी भलाई चाहते हो तो इस सुअवसर को हाथ से न जाने दो। तुमको यथासम्भव सब से अच्छा जीवन बिताना और ईश्वर से उस सहायता और दया की आशा रखनी चाहिये, जो वह प्रार्थना करनेवाले को देता है।

हमारा राजनैतिक जीवन।

[लेखक—श्रीयुत देवीदयाल दीक्षित।]

संसार में लाखों जातियाँ जीती जागती हैं। इनमें कुछ पुरानी या आदिम जातियों की वंशज हैं और कुछ बाद में प्रकट हुई हैं। कितनी ही जातियां कालगति के प्रभाव से लुप्त हो गई हैं। आधुनिक हिन्दू जाति, सब से प्राचीन और पुराने बन्धनों से अब भी बँधी है।

जातीय उत्थान।

सृष्टि का यह नियम है कि सदा परिवर्तन होता रहता है। सब जातियाँ सभ्यता की ओर धीरे धीरे हो चलती हैं। आरम्भ में जगत्विख्यात अँगरेज़ जाति इस देश के वर्तमान पहाड़ियों से भी गई गुज़री थी। अँगरेज़ों के इतिहास का श्रीगणेश कन्दराओं में रहनेवाली जाति के इतिहास से आरम्भ होता है। हमारे इतिहास से पता चलता है कि कालक्रम से हमारी जाति शृङ्खलाबद्ध नियमों से चलकर उन्नति के मार्ग में अग्रसर हुई। एक समय वह था जब भारत-प्रभाव रूपी प्रचण्ड मार्तण्ड मध्य आकाश में विराजमान था। उस समय के राजाओं और बड़े २ प्रतिभाशाली मनुष्यों का वर्णन शिक्षाप्रद है। वे ही हमारे गौरव के स्तम्भ हैं। वैसी प्रतिभा किसी देश के जीवन में नहीं दिखाई देती। उन्होंने धार्मिक, नैतिक और सामाजिक जीवन के ऐसे नियम बनाये कि हमारी जाति पूर्ण विकाश को प्राप्तकर संसार में विख्यात हो गई।

जीवन का हेरफेर।

इसके बाद जब २ हमारी जाति ने एक अवस्था को छोड़ दूसरी अवस्था पर पैर रक्खे तभी उसकी चालचलन में फेरबदल होते गये। उसके साथ ही सामाजिक-जीवन भी इन्हीं सामाजिक और धार्मिक अवस्थाओं पर अवलम्बित था। जब जाति में, समाज में दुर्नीति का प्रवेश होता है, तभी उसको दबाने के लिए शासन की ज़रूरत होती है। इसी रीति के अनुसार हमारी जाति में भी शासन-प्रणाली की रीति चली होगी, परन्तु हमारे ऋषियों ने ऐसे सामाजिक बन्धन गढ़े कि कड़े हाथों से काम लेने की ज़रूरत ही नहीं पड़ी। इस रीति से समाज संगठित हुआ कि हर एक आदमी शान्ति की रक्षा करना अपना कर्तव्य समझता था। शायद इन्हीं भावों से प्रेरित होकर लोगों ने अपने २ काम बाँट लिये और इस तरह जाति-विभाग की नीव पड़ी होगी। मनुष्य राजा में दैवी अंश समझकर उसे सदा पूज्य दृष्टि से देखते थे। राजा भी उनपर पुत्र की भाँति प्रेम किया करते थे और इससे किसी काम के लिए बलप्रयोग करने की आवश्यकता नहीं होती थी। इसका प्रधान कारण वही श्रद्धा और भक्ति थी। मनुष्यों की दृढ़ धारणा थी कि राजा अपना कर्तव्य पालन करेंगे। इसीसे इङ्गलैंड के १६८८ ई० और फ्रान्स के १७८९ के राजविप्लव जैसे विप्लवों का वर्णन हमारे इतिहास में नहीं है। उनका राजनैतिक अस्तित्व सामाजिक और धार्मिक अस्तित्व में सम्मिलित था। जिसको आज राजनीति कहते हैं, उसको भी वे धर्म-दृष्टि से सीखते थे। राजनीति, धर्म की एक अंग थी और इससे हमारे पूर्वज इसकी ओर से उदासीन रहे। इसका फल हम आज भी भोग रहे हैं। शायद उन्हें इस बात का ख्याल भी न था कि हमारी संतानों को बड़ी २ आपदायें झेलनी पड़ेंगी। उन्होंने कभी यह ख्याल नहीं किया होगा कि यवन, टिड्डियों की भांति पहाड़ों से बिलबिलाकर हमारी सीधीसाधी सन्तानों पर टूट पड़ेंगे। उन्हें स्वप्न में भी इसका ख्याल न था कि तैमूर,

लंगड़ाता हुआ दिल्ली तक पहुंच जायगा और अंधेरशाही मचेगी । जब मुसलमान, पवित्र भारतभूमि को अपवित्र करने में सफल हुए तो हमारे राजनैतिक जीवन के मूल सामाजिक और धार्मिक विषयों पर भारी आघात पहुंचा। इससे सब बन्धन ढोले पड़ गये और राजनीति का लोप होकर समाज में अशान्ति फैल गई। यद्यपि प्रतापसिंह, अमरसिंह, शिवाजी आदि कुछ वीर राजनीतिज्ञ उत्पन्न हुए, तदपि भारत में राजनीति का अन्धकार नष्ट नहीं हुआ । हमारी वैसी ही अवस्था अँगरेज़ों के आने के बाद भी बनी रही। इन सब दुःखों का कारण वही एक उदासीनता थी। इङ्गलैंड के इतिहास से ज्ञात होता है कि वहां के रहनेवाले शुरू से ही राजनैतिक झगड़ों में लगे रहे । यद्यपि सैक्सन, नारमनों से हार गये और नारमैंडी का ड्यूक इङ्गलैंड का बादशाह हो गया, तो भी ईंगलैंड के अधिवासियों ने अपना काम जारी रक्खा था। जीवन-संग्राम में इसी प्रकार परिवर्तन होता रहता है । अब हमें यह देखना चाहिये कि हमारी

वर्तमान दशा कैसी है ?

किसी राष्ट्र की वर्तमान दशा जानने के लिए उसके साहित्य की ओर ध्यान देना चाहिये। इसके साथ ही उसके समुदाय की शक्ति को भी देखना होगा। साहित्य, व्यापक शब्द है। इसका केवल काव्य समझना भूल है। काव्य, इतिहास, अर्थशास्त्र इत्यादि साहित्य के प्रधान अंग हैं। हमारे साहित्य में काव्य तो खूब है परन्तु विज्ञान, इतिहासादि का पूर्ण अभाव है। अपर प्राइमरी तथा अन्य स्कूलों में जो इतिहास पढ़ाया जाता है, उससे हमारा अभाव पूरा नहीं हो सकता। इतिहास क्या है, उसमें कौन २ विषय लिखे जाने चाहिये, इसका वर्णन मैं नहीं करना चाहता। मेरा कहना इतना ही है कि दो चार हज़ार लड़ाइयों का सिलसिलेवार वृत्तान्त इतिहास नहीं है । इतिहास शब्द का अर्थ व्यापक है और हमारे जीवन की सभी बातों से उसका सम्बन्ध है। यों तो सभी बातों को हम इतिहास कह सकते हैं, परन्तु सुभीते के लिए उनको छाँट कर अलग कर लिया जाता है। इस प्रकार इतिहास का वह भाग, जो राजनैतिक जीवन के रहस्यों को प्रगट करे राजनैतिक इतिहास कहलाता है। ऐसे इतिहास का मर्म हम कुछ भी नहीं जानते। इसीलिए राजनीति का नाम सुनते ही हम घबड़ाने लगते हैं। इसी डर से बहुत से मनुष्य किसी सार्वजनिक काम में हाथ नहीं डालते, क्योंकि वे समझते हैं कि ऐसा करने से गवर्नमेंट उनको बाग़ी समझेगी। कैसा घोर प्रमाद है! हम लोग यह नहीं समझते कि राजनीति के न जानने ही से समाज में अशान्ति फैल सकती है। राजनीति हमें सिखलाती है कि किन २ कामों के करने से हमारी गिरी अवस्था उन्नत हो सकती है। वे कौन २ अधिकार हैं, जिनको पाकर हम खुश और श्रीमान हो सकते हैं और शान्तिपूर्वक हम अपने अधिकारों को पा सकते हैं। यदि इन सब बातों की जानकारी हम प्राप्त न करें तो शान्ति क्यों कर रह सकती है ? राजनीति हमको यह नहीं सिखलाती कि गवर्नमेन्ट के खिलाफ़ बन रहो, वरन् वह यह बतलाती है कि गवर्नमेंट को सुशासन के लिए मदद पहुंचाओ। यदि किसी देश की गवर्नमेन्ट को शान्ति रखनी हो तो उसे मुनासिब है कि वह स्वयम् अपनी प्रजा को इस शास्त्र में निपुण करे।

इसी तरह इस देश में अर्थशास्त्र का भी पूरा अभाव है। किन उपायों से धन उपार्जन करना और खर्च करना चाहिये, इनका ज्ञान अर्थशास्त्र के पढ़ने से होता है। इन दोनों शास्त्रों से हमारे राजनैतिक-जीवन का कितना सम्बन्ध है, यह सभी जानते हैं। सम्पत्तिशास्त्र से हमारे राजनैतिक-जीवन का गहरा सम्बन्ध है। इन सब बातों का जानना परमावश्यक है, धन क्या चीज़ है, यह किस रूप में वर्तमान रहता है

और कैसे हम लोगों को मदद पहुंचा सकता है। धन के बिना देशहितैषी काम नहीं हो सकते। हम हिन्दुस्तानी धन कमाते हैं परन्तु उसे रखना नहीं जानते; राष्ट्रनिर्माण में धन का स्थान बहुत बड़ा है। इन सब बातों की जानकारी केवल अर्थशास्त्र के अध्ययन और मनन ही से हो सकती है। अब यह देखना चाहिये कि हमारी

उन्नति क्यों नहीं होती ?

इसका जबाब बहुत सहज है। ऊपर मैं दिखला आया हूं कि इतिहास और अर्थशास्त्र का पूर्ण ज्ञान होना राष्ट्रनिर्माण के लिए परमावश्यक है। विदेशियों के लिखे इतिहास हमारे काम के नहीं हैं। उनका खींचा हुआ आदर्श, हमारा आदर्श नहीं हो सकता कारण वे हमारे घर से बाहर हैं। हमको अपना जीवनचरित्र स्वयं लिखना चाहिये। वही हमारा सच्चा इतिहास हो सकता है। इनके सिवा हमारी अवनति के और भी कई कारण हैं। संघशक्ति का हम में पूर्ण अभाव है। हम भारतवासी मिलकर काम करना नहीं जानते, कारण वैसी शिक्षा हमको नहीं दी जाती। उन्नति के पथ में एक प्रधान कण्टक यह भी है कि भारतवर्ष में धन का अधिक भाग ऐसे लोगों के हाथ में है, जो उसका उचित उपयोग नहीं करते। वे समझते हैं कि हमारे हाथों से रुपया गया और पानी में पड़ गया। वे केवल रुपये ही को धन समझते और सार्वजनिक कामों में खर्च न कर उसे गाड़ रखते हैं। उन्हें यह मालूम नहीं कि रुपया केवल विनिमय का साधन है। यदि अर्थशास्त्र का ज्ञान उन्हें हो तो वे ऐसी भूलों को कदापि न होने देंगे। इसी से बराबर मैं जोर देता आया हूं कि अर्थशास्त्र का पढ़ना अत्यन्त उपयोगी है। अज्ञानता से भूल करनेवाले इतने दोषी नहीं हैं, जितने कि वे जो जान बूझ कर उदासीन बने रहते हैं। भारतवर्ष में अधिक संख्या किसानों की है और इन्हीं की दशा शोचनीय है। इङ्गलैंड के प्रसिद्ध कवि गोल्डस्मिथ ने लिखा है,—

> Princes or lords may flourish or may fade ;
>
> A breath can make them as a breath has made :
>
> But bold peasantry, their country's pride.
>
> When once destroyed can never be supplied.

इससे यह भाव टपका पड़ता है कि कृषकवर्ग ही समाज का प्रधान अंग है, राजे, महाराजे, ड्यूक, अर्ल्स, बाबू और अपने को जेन्टलमैन कहानेवाले तो एक मिनट में बन और बिगड़ सकते हैं परन्तु कृषकों को सुधारने से देश की अवस्था सुधरती है और उनके बिगड़ने से सब बिगड़ जाता है। जो समाज के प्रधान अंग हैं, उनकी ही अवहेलना भारतवर्ष में अधिक होती है। इन्हीं के सुधार और शिक्षा के लिए हम लोगों को कटिबद्ध होना चाहिये। इसमें कोई सन्देह नहीं कि सब जातियों में हम लोग ही सबसे गिरे हैं, इसलिए सब से अधिक परिश्रम हम ही को करना चाहिये। बिगड़ी हुई चीज़ को ठीक करना कठिन व्रत है। इसके लिए अध्यवसाय, दूरदर्शिता, धैर्य और स्वार्थ-त्याग की ज़रूरत है। "हर्रा लगे न फिटकिरी, उतरे चोखा रंग" वाली कहावत के अनुसार चलने से उन्नति नहीं हो सकती, इसलिए कोई असली कार्रवाई करनी चाहिये।

समाज-सेवा ।

[लेखक—श्रीयुत जगन्नाथप्रसाद मिश्र ।]

भारतवर्ष की अज्ञानता धीरे २ दूर होकर अब भारतवासी मोह-निद्रा से जगने लगे हैं । उनकी आँखों के सामने से अज्ञानतम का पर्दा क्रमशः हट रहा है । भविष्य के लिए ये लक्षण अत्यन्त शुभसूचक हैं । भारतवासियों में स्वार्थपरता का भाव भी कम होता जाता है । शिक्षित भारतीय अपने को किसी खास समाज का व्यक्ति न समझकर संपूर्ण देश का एक आवश्यकीय अंग समझता है । इससे यह मतलब नहीं कि भारतीय समाज में स्वार्थ का भाव बिलकुल ही नहीं रहा, परन्तु भारतीय नेताओं तथा समाचार-पत्रों के उदार विचारों से यह जान पड़ता है कि शीघ्र ही भारतवर्ष, संयुक्त भारत के नाम से पुकारा जायगा । जिस प्रकार प्रकृति में बहुतसी शक्तियां छिपी हुई हैं, उसी प्रकार भारतवासियों में भी छिपी हुई अनेक शक्तियां वर्तमान हैं । यदि ठीक तरह उनका उपयोग किया जाय तो देश को बहुत लाभ पहुंच सकता है । जैसे कोई नदी एकाएक विस्तीर्ण होकर प्रवाहित नहीं होती, वरन् अनेक जलाशयों के जल से विस्तीर्ण होकर वह बड़ी होती है उसी तरह यदि प्रत्येक भारतवासी देशोन्नति के कार्य में हाथ न बटाये तो भारतवर्ष भी एक संयुक्त राष्ट्र नहीं बन सकता है । यदि भारतवासी संसार की उन्नत जातियों में अपनी गिनती कराना चाहें तो उन्हें उचित है कि सब से पहिले वे अपने देश में शिक्षा का प्रचार करें । इस अल्प समय में जापान की आश्चर्यजनक उन्नति होने का प्रधान कारण भी शिक्षा का प्रचार ही है । तीस करोड़ भारतवासियों की शिक्षा का प्रबन्ध सिर्फ सरकार नहीं कर सकती, इसके लिए स्वयं भारतवासियों को यत्न करना चाहिये । अँगरेज़ी में एक कहावत है, "Charity begins at home" यानी "दान घर ही से आरम्भ होता है ।" शिक्षा भी अपने घर और परिवार ही से आरम्भ होनी चाहिये । गृह-शिक्षा में स्त्रियों की शिक्षा पर अधिक ध्यान देने की आवश्यकता है, क्योंकि यदि स्त्रियां शिक्षिता होंगी तो उनकी सन्तानें भी सुयोग्य होंगी । पारिवारिक जीवन के सुधार में स्त्रियों की सहयोगिता की अत्यन्त आवश्यकता है । स्त्रियों की अज्ञानता देशोन्नति के पथ में बड़ी रुकावट है । कालेज के विद्यार्थियों को अपने परिवार में शिक्षा प्रचार के लिए विशेष ध्यान देना चाहिये । निरर्थक बातों में समय नष्ट करने की अपेक्षा गर्मी की छुट्टियों में यदि वे शिक्षाप्रचार के कार्य पर ध्यान दें तो देश को बड़ा लाभ होगा । लाहौर के पादरी फलेमिङ्ग साहब ने "Social Helpfulness" नामी पुस्तक में कुछ पंजाबी विद्यार्थियों द्वारा शिक्षाप्रचार के प्रशंसनीय कार्य का वर्णन किया है । शिक्षाप्रचार के लिए गावों में जानेवाले विद्यार्थियों को सादी पोशाक में रहना चाहिये, उन्हें अपने माता-पिता की सेवा में प्रस्तुत रहना चाहिये । इस बात को सदा ध्यान में रखना चाहिये कि माता पिता के प्रतिकूल चलने से गृह-शिक्षा कदापि पूरी नहीं हो सकती । पादरी फलेमिङ्ग साहब ने अपनी पुस्तक में एक विद्यार्थी के शिक्षाप्रचार के कार्य का वर्णन इस प्रकार किया है, —वह विद्यार्थी अपने घर की स्त्रियों के अन्धविश्वास को वैज्ञानिक सिद्धान्तों द्वारा दूर करने की चेष्टा किया करता था । संध्या समय बहुतसी स्त्रियों को विज्ञान के नये नये आविष्कार बताये जाते थे । इस प्रकार का काम सचमुच ही बहुत प्रशंसनीय है । कालेज के विद्यार्थी अपने परिवार को शिक्षित बनाकर

नगर या ग्राम की ओर ध्यान दें और असमर्थों को शिक्षित बनाने का यत्न करें।

यदि ग्राम में पाठशाला न हो तो उन्हें उसकी प्रतिष्ठा की चेष्टा करना चाहिये। यदि इसके लिए मकान न मिले तो किसी वृक्ष के तले बैठकर भी बड़े मजे में पाठ दिया जा सकता है। यदि इस प्रकार से शिक्षाप्रचार का कार्य आरम्भ हो तो शीघ्र ही गांव गांव में विद्या का प्रचार होगा। इसके साथ ही नीच जातियों की शिक्षा पर ध्यान देना चाहिये। भारतवर्ष की साम्पत्तिक उन्नति के लिए उन लोगों की सेवा अपरिहार्य है। यदि उन लोगों को अपनी गिरी हुई अवस्था का ज्ञान हो जाय तो वे अपने को सुधारने का यत्न करेंगे। पादरी साहब का कथन है कि इसके लिए एक, दिन और दूसरी रात की पाठशालाएँ स्थापित हों। दिन की पाठशालाएँ ११ से ३ बजे तक खुली रहें जिससे बालक अपने पिता माता की सहायता भी कर सकें। मि० पराँज़पे का अनुमान है कि ऐसी पाठशालाओं के लिए वार्षिक १००) रुपये व्यय होंगे। पेंशनप्राप्त शिक्षक इसमें शिक्षक नियुक्त किये जायँ। रात की पाठशालाएं उनके लिए खुलना चाहिये जिन्हें दिन में अवकाश न हो। इसके लिए काम करनेवालों का एक दल बनाना चाहिये। अब काम करने का समय है, जुबानी जमा खर्च से काम नहीं चल सकता। इस प्रकार के कामों से देश की दशा में बहुत कुछ परिवर्तन हो जायगा। किसी देश की उन्नति एकाएक न होकर धीरे २ होती है। यदि इस देश के प्रत्येक शिक्षित इन बातों पर ध्यान दें तो बात की बात में उन्नति हो सकती है।

सुमन।

[लेखक—श्रीयुत दयानन्द चतुर्वेदी]

कालिंगड़ा इकताला।

सुमन तुम काहे अति इतरात।

अतुलनीय उद्यान-जगत में
तव सौन्दर्य लखात।
सुमिरन करि निज अनुपम छबि को
मनहिं मनहिं हरखात॥

भूल गये क्या कुसुम भानु की
दशा देख विख्यात।
चढ़त चढ़त मध्याह्नकाल लौं
अन्त पतित होइ जात॥

कलित कलाधर भी प्रभात में
कान्तिहीन बिलखात।
यही नियम है प्रकृतिमात्र का
जो आवत सो जात।

तुमसे गुरुतर खिलिहैं कलिका
यहि उद्यान प्रभात॥
कुटिल काल अति ध्यानमग्न हो
देखत है निज घात।

सावधान तबहूं तुम नाहीं
अचरज की यह बात॥

मगध साम्राज्य का संक्षिप्त वृत्तान्त ।

[लेखक—श्रीयुत ओझा वामदेव शर्मा ।]

भारतीय इतिहास के पृष्ठों में मगध साम्राज्य का नाम भी अङ्कित है । यह वही साम्राज्य है, जहां बुद्ध भगवान ने अपनी जन्म और मरणलीला समाप्त की थी । यह वही साम्राज्य है, जहां बुद्ध भगवान ने समग्र भारत को एकता बन्धन में बाँध दिया था । यह वही साम्राज्य है, जहां पर चाणक्य ऐसे नीतिज्ञ हो गये हैं—जिन्होंने अपने बल से चन्द्रगुप्त को राज्यसिंहासन पर बैठाया । इसी चन्द्रगुप्त ने यूनाननिवासी सेल्युकस को पराजित किया था । सेल्युकस ने सन्धि में अपनी लड़की चन्द्रगुप्त से व्याही थी । यहीं पर अशोक कैसे चक्रवर्ती राजा भी हुए हैं । इसी साम्राज्य का संक्षिप्त वृत्तान्त आज पाठकों के मनोरंजनार्थ दिया जाता है ।

प्राचीन समय में मगध की राजधानी कुशागढ़पुर में थी । इस नगर में एक प्रकार की सुगंधमय घास होती थी । इसीसे इस नगर का नाम कुशागढ़पुर पड़ा । इस नगर के राजमार्ग की दोनों ओर कनकवृक्ष लगे थे । इन वृक्षों के पुष्प सुवर्ण रंग और महासुगन्धियुक्त होते थे ।

कुछ समय तक बिम्बिसार राजा की राजधानी भी यहीं थी । उसके शासनकाल में इस नगर की जनसंख्या बहुत अधिक थी । प्रत्येक गृह एक दूसरे से सटे हुए थे । इससे इस नगर में अगलगी बहुत हुआ करती थी । एक गृह में आग लगने से अनेक गृह भस्मीभूत हो जाते थे । इससे प्रजा ने अत्यन्त दुखी होकर एक बार राजा को अपना दुखड़ा सुनाया । राजा ने अपने मंत्रियों को बुलाकर कहा :—"मेरे पाप से प्रजा को कष्ट हो रहा है इसलिए प्रजा के कष्ट को दूर करने का प्रयत्न करना चाहिये ।" उत्तर में मंत्रियों ने कहा—"महाराज ! आपके सुशासन से प्रजा में शान्ति और एकता दिनों दिन बढ़ रही है । प्रजा क्रमशः उन्नत हो रही है, देश में धर्म और ज्ञान का प्रकाश फैल रहा है । प्रजा ही के दोष से ये उत्पात हो रहे हैं इसका अनुसंधान कर दोषी को देशनिर्वासन का दंड देने से यह उत्पात शान्त होगा ।" इस प्रस्ताव पर राजा ने विचार किया और आज्ञा दी कि जिसके घर में भविष्य में आग लगे उसीको देशनिर्वासन का दण्ड दिया जाय । इस आज्ञा के उपरान्त एक दिन राजभवन ही में आग लगी । समदर्शी राजा बिम्बिसार ने देशनिर्वासन-दण्ड से स्वयं दण्डित होकर राजधानी त्याग की और वे शीतवन में चले गये । इस बात से यह प्रमाणित होता है कि उस समय राजा और प्रजा के लिए एक से ही नियम थे । बिम्बसार को इस अवस्था में देखकर वैशाली के राजा ने उस पर आक्रमण करने का विचार किया किन्तु सीमान्त-रक्षक वीर मागधी सिपाहियों को इसका पता लगते ही वे चौकन्ने हो कर उसका सामना करने के लिए तैयार होगये । उन्होंने अपने राजा के लिए शीतवन में राजभवन बनवाये । क्रमशः राजकर्मचारी और प्रजागण भी उसी स्थान में आकर बसने लगे । कुछ दिनों में वह शीतवन जनाकीर्ण एक सुन्दर नगर हो गया और उसका नाम राजगृह पड़ा ।

राजगृह से कुछ ही दूर पर नालन्दा विहार था । इस नालन्दा विहार के पास बड़े बड़े आम्र वृक्षों का एक सुन्दर बाग़ था । कतिपय बनियों ने यह बाग़ बुद्ध भगवान को समर्पण किया था । तीन मास तक बुद्ध भगवान यहीं रहा करते और उनके अमृतमय सदुपदेशों से श्रोतृवृन्द अपने जीवन को कृतार्थ करते थे । बुद्ध भगवान की मृत्यु के बाद शकादित्य नामक

मगध देश के अधिपति ने यहां पर एक सङ्घाराम बनां दिया। शक्रादित्य के मरने पर उसके पुत्र बुद्धगुप्त को राजगद्दी मिली । इसने भी वहां एक सङ्घाराम निर्माण कराया। इसके बाद गुप्त राजा ने और एक सङ्घाराम निर्माण कराया। इस प्रकार क्रमशः नालन्दा का विस्तार और उसकी उन्नति होने लगी। अनन्तर मगध राज्य के अधिकारी होने पर बालादित्य ने एक नूतन सङ्घाराम बनवाया । इसके निर्माण के समय वहां एक बहुत बड़ी सभा हुई थी। उक्त सभा में देश विदेश के लोग उपस्थित थे। सभा का कार्य आरम्भ होते ही वहां दो विदेशी परिव्राजक आ उपस्थित हुए । उनसे पूछने पर ज्ञात हुआ कि वे चीन देश से आये हैं । उनके आने की सूचना राजा को दी गई । राजा भी कौतूहल से स्वयं उनसे मिलने के लिए बाहर आये परन्तु वे परिव्राजक कहीं चले गये थे। इस घटना से राजा कुछ विक्षिप्त से हो गये और वे राजपाट त्याग कर वन में चले गये। इसके बाद उनके पुत्र वज्र सिंहासन पर बैठे। राज्यसिंहासन पर बैठने के बाद इन्होंने भी एक सङ्घाराम निर्माण किया। इस प्रकार दिनों दिन नालन्दा की उन्नति होने लगी।

यह "नालन्दा-विहार" विचित्र ढंग का एक बौद्ध विद्यालय था । यह आजकल के विश्व-विद्यालयों का सा नहीं था। इसमें महान और विख्यात तथा निर्मल चरित्र सैकड़ों अध्यापक रहते थे । इनमें नैतिकभाव, आत्मबल और स्वदेश-प्रेम बहुत होता था । इस विद्यालय में विद्यार्थी भी वैसे ही निर्मल चरित्र रहते थे, वे आजकल के कुप और फैशन के गुलाम विद्यार्थियों के समान नहीं थे। उनके चेहरे से ब्रह्मचर्य की दीप्ति झलकती थी। इस विद्यालय में सर्वदा शास्त्राध्ययन हुआ करता था। चीन आदि विदेशों से भी इस विद्यालय में अध्ययन करने के लिए लोग आते थे। चीनी परिव्राजक हुएनसंग ने भी इस विद्यालय में कुछ समय तक अध्ययन किया था । इसकी प्रसिद्धि देश विदेश आदि सभी स्थानों में थी।

दक्षिण भारत से बभ्रून नामक एक पण्डित दिग्विजय की इच्छा से मगध राज्य का नाम सुनकर आया था क्योंकि उसके देश में नालन्दा विहार के आचार्य धर्मपाल की बहुत प्रसिद्धि थी। इस प्रसिद्धि को सुनकर वह ईर्ष्या और अभिमानवश मगध में आया । उसने राजा से कहाः—"मैं आचार्य धर्मपाल की ख्याति सुनकर यहां आया हूं। यद्यपि मैं सब शास्त्रों से अनभिज्ञ हूं तदपि आचार्य से शास्त्रालोचना करने की मेरी बड़ी इच्छा है।" मगध राज ने यह सुनकर धर्मपाल को बुलवाया। राजाज्ञा पाकर धर्मपाल राजसभा में आने की तैयारी करने लगे, इतने में उनका प्रधान शिष्य शीलभद्र अन्य शिष्यों के साथ वहां आपहुंचा। उसने आचार्य से पूछा, "गुरुदेव! आप कहां जाने के लिए प्रस्तुत हो रहे हैं।" आचार्य के अपनी यात्रा का वृत्तान्त कहने पर शीलभद्र ने कहा, "महाराज! मैंने कई स्थलों में शास्त्रालोचना की है। अतः मेरी प्रार्थना है कि इस विधर्मी को परास्त करने के लिए मुझे आप आज्ञा दें। शीलभद्र की विद्या-बुद्धि से आचार्य परिचित थे। इससे आचार्य ने शीलभद्र को शास्त्रार्थ करने की आज्ञा दे दी।

शास्त्रार्थ के दिन सभास्थल मनुष्यों से खचाखच भर गया। आरम्भ हो में पंडित जी ने अपने धर्म की व्याख्या की। शीलभद्र ने उनकी धर्म-व्याख्या का खण्डन किया। पण्डित जी शीलभद्र के प्रश्नों का उत्तर न दे सके और लज्जा से अधोवदन हो गये। राजा ने प्रसन्न होकर शीलभद्र को एक गाँव देने का प्रस्ताव किया। शीलभद्र ने कहाः—"महाराज! जिसने सर्वस्व त्यागकर संन्यास ग्रहण कर लिया है, उसको धन दौलत से क्या प्रयोजन ? क्षमा कीजिये, मैं धनदौलत नहीं चाहता"। किन्तु राजा ने कहा कि यदि विद्याप्रेमियों को पारितोषिक न

दिया जाय तो विद्यार्थीजनों का उत्साह कैसे बढ़ेगा? इससे मेरी प्रार्थना है कि आप इस पारितोषिक को सहर्ष स्वीकार करें। इस पर शीलभद्र ने पारितोषिक स्वीकार कर लिया और एक सङ्घाराम बनवा कर उसका व्यय चलाने के लिए वह गाँव दे दिया।

अशोक ने अपने शासनकाल में राजगृह से पाटलिपुत्र में अपनी राजधानी बनाया। पाटलिपुत्र का पहिला नाम कुसुमपुर था। कुसुमपुर से पाटलिपुत्र नाम होने के विषय में यह कहावत है,—एक विद्वान ब्राह्मण अपने शिष्यों के साथ कुसुमपुर के समीपस्थ एक वन में गये। उस समय उन शिष्यों में एक शिष्य चिन्ताकुल था। सहपाठियों के पूछने पर उसने कहा,—मुझे दुःख है कि मैं युवावस्था को प्राप्त होने पर भी अभी तक गृहस्थाश्रम में प्रवेश न कर सका। यह सुनकर उसके सहपाठियों ने दिल्लगी से एक पाटलिवृक्ष के साथ उसका प्रणय-बंधन किया। रात्रि को सब घर लौट आये किन्तु वह शिष्य वहीं रह गया। आधी रात के समय एक वृद्ध और वृद्धा ने वहां आकर एक सुन्दरी से उसका विवाह कर दिया। विवाह के एक वर्ष पश्चात् उसके एक पुत्र हुआ। उसका नाम पाटलिपुत्र रक्खा गया। उसीके अनुसार कुसुमपुर का नाम पाटलिपुत्रपुर और पाटलिपुत्रपुर से पाटलिपुत्र पड़ा।" बौद्ध ग्रन्थों में लिखा है कि अशोक अपने जीवन के प्रथम भाग में क्रूर और निर्दय था। वह बौद्ध धर्म को नहीं मानता था। एक समय उसने बोधिद्रुम में आग लगा दी किन्तु वह वृक्ष नहीं जला। आग बुझने पर एक आश्चर्यजनक दृश्य दिखाई पड़ा। वह यह था कि एक बोधि-वृक्ष के स्थान में दो वृक्ष उग आये। इससे अशोक को आश्चर्य और पश्चात्ताप हुआ और उन्होंने उसको दूध से सिंचवाया। इसके बाद रात भर में ही वह द्रुम शाखा और पल्लवों से हरा भरा हो गया।

अशोक ने एक नरकागार बनवाया था, जिसमें अपराधी रक्खे जाते थे। अपराधियों के दण्ड के लिए कई प्रकार के यन्त्र भी उसमें बने थे। यह नियम था कि यदि कोई निरपराध व्यक्ति उसके पास से जाय तो उसको भी नरक यन्त्रणा भोगनी पड़ती थी।

इसके बाद प्रसिद्ध बौद्धाचार्य उपगुप्त के साथ अशोक की भेंट हुई। उनके सदुपदेशों से अशोक अपने पाप कर्मों को छोड़ बौद्धधर्म ग्रहणकर तन मन धन से उसके प्रचार में लग गये। अशोक ने समग्र भारतवर्ष में स्तूप निर्माण कराये और बौद्धधर्म के प्रचार के लिए उन्होंने देश-विदेश में उपदेशक नियुक्त किये।

अशोक का सौतेला भाई महेन्द्र* बड़ा उत्पाती था। उसके उत्पात से व्याकुल होकर प्रजा ने राजा से शान्ति के लिए प्रार्थना की। इस पर अशोक ने महेन्द्र को दण्ड देने के लिए राजदरबार में बुलाया। महेन्द्र ने राजा से अपनी चालचलन सुधारने के लिए एक मास की अवधि माँगी। राजा ने उसकी प्रार्थना स्वीकार कर ली। एक मास के भीतर ही भीतर उसको अर्हत्-तत्व प्राप्त हो गया। यह देखकर राजा ने उसके लिए पहाड़ पर एक सङ्घाराम बनवा दिया जिसमें महेन्द्र अपना जीवन व्यतीत करने लगा।

गया के समीप एक शैल-शृङ्ग है। यह धर्मशिला के नाम से प्रसिद्ध है। प्राचीन समय में मगध देश के राजाओं में यह प्रथा प्रचलित थी कि राज्याभिषेक होने पर राजागण उस शिखर पर जाकर पूजा, पाठ हवन आदि किया करते थे। इसके बाद राजा होने का सन्देसा सर्वसाधारण को दिया जाता था। सम्भवतः उन लोगों का विश्वास था कि इससे हमारी ख्याति और कीर्ति पूर्वपुरुषों की अपेक्षा अधिक बढ़ेगी।

* महेन्द्र अशोक के पुत्र के नाम से प्रसिद्ध है। ले०

व्यर्थ-जीवन।

[लेखक–पं० ईश्वरीप्रसाद शर्मा।]

कहाँ आये थे और क्या कर चले।
अधर्मों की धारा बहा कर चले॥
न वेदों को माना न शास्त्रों को माना।
बड़े धर्मनिन्दक कहा कर चले॥
न व्रतध्यान-पूजा में मन को लगाया।
न गङ्गा व यमुना नहा कर चले॥
यह हिन्दी हमारी जो है मातृभाषा।
उसे उलझनों में फँसा कर चले॥
न भारत का कुछ भी भला कर सके।
वरन् उसका हित ही नसा कर चले॥
न गुरुजनकी सेवा बनी हाय हमसे।
सभी आत्मगौरव गँवा कर चले॥
यह जीवन हमारा हुआ व्यर्थ सारा।
न कुछ कर्म अच्छा कमा कर चले॥
मरण जन्म का तो बधा सिलसिला है।
कोई होवे पैदा कोई मर चले॥
है जीवन उसीका सफल भूमितल पर।
किसी का न जो कुछ बुरा कर चले॥
सुखी उसका जीवन सुखी वह मनुज है।
जो कुछ देशहित जातिहित कर चले॥
अमर है वही औ वही वीरवर है।
जो परमार्थ में सर कटा कर चले॥
फीरोज़ गोपाल* का देखो जीवन।
जो आये थे हँसते रुला कर चले॥
सभी देश-प्रेमी अमर कहते उनको।
हैं वे ही अमर जो भला कर चले॥
हमारी कोई याद क्योंकर करेगा।
सभी के दिलों को दुखाकर चले॥
बुरा होवे हमसे पतित पापियों का।
जो अंतिम समय तक न कुछ कर चले॥
न हमसा कोई पैदा करना अभागा।
यही ईश से हम विनय कर चले॥
कोई जग से हँसकर हँसा कर चले।
हम आँसू का दरिया बहा कर चले॥

आदि रोमीय इतिहास से ग्राह्य शिक्षाएँ।

[लेखक–श्रीयुत अखौरी कृष्णप्रकाश सिंह।]

धार्मिकों के आशास्तम्भ भगवान श्रीकृष्ण के गीता में कहे हुए इन वचनों का, "यदा यदाहि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत, अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानम् सृजाम्यहम्"। निरूपण राजनीतिज्ञ लोग, राजनैतिक भाषा में प्रदलित राष्ट्र के नैसर्गिक बल तथा उससे उत्पन्न राष्ट्र-क्रान्ति से करते हैं।

संसार के प्रत्येक उन्नत देशों के इतिहास में यदि टटोल कर देखा जाय तो तत्काल पता चल जायगा कि राष्ट्र की क्षीण प्रभुता, दुर्बलता, अवनति तथा संकुचित मति का नाश तभी हुआ है जब उस राष्ट्र के ऊपर स्थित शक्तियों का प्रबल थपेड़ा उसे लगा है, नींद तभी टूटी है, नूतन बल, धैर्य, प्रभुता का प्रकाश, आत्मबल, आत्म-सम्मान तथा आत्म-परित्याग का पूर्ण विकाश भी तभी हुआ है। संक्षेप में विश्वरूपी संसार रूपी राष्ट्र में भगवान कृष्ण का जन्म भी तभी हुआ है।

अब मैं पाठकों को वर्तमान युग से हटा कर ईसा के जन्म के पूर्व ५०८ वर्ष वाले युग में ले चलता हूं! पाठक, घबराएँ नहीं, लेखक

---

* स्वर्गीय मिस्टर फ़ीरोज़शाह मेहता और गोपालकृष्ण गोखले।

कोई जादूगर नहीं, जो आपको सचमुच 'छू मंतर' कर देगा; यहां बस भावना की सैर और आम के पेड़ के नीचे ही पड़े २ ऊपर के पके फल का स्वाद लेना है। अस्तु ईसा के जन्म के ५०६ वर्ष पूर्व किसी मास के किसी दिन को रोम में बड़ी धूम है, जनसमुदाय में मानों घुस पड़ना ही महावीर हो जाने की परीक्षा है। नगर के जितने मनुष्य हैं सभी आज आत्म-ग्लानि, लज्जा और क्रोध से पानी पानी हो रहे हैं! कारण क्या है? लीजिये, मालूम भी हुआ, रोम २४५ वर्ष के पैरों से रौंदने वाले राजसत्तात्मक राज्य के बाद आज एक क्षुद्र कन्या के अपमान से अपने को अपमानित हुआ जानकर एक स्वर से अपमानकर्ता के सिर का ग्राहक हो उठा है।

आज रोम कह रहा है हे अपने मन से चलनेवाले! हे अपनी प्रजा की बहू बेटियों पर धनमद से विजय पाने के उद्योग करनेवाले! अपनी राह लो! तुम्हारी प्रजा की नसों में, अधर्म से पीड़ित धरा के भार हरनेवाले श्रीकृष्ण रूप आत्माभिमान तथा आत्मगौरव के रुधिर का संचार हो गया है। अब तुम्हारा निस्तार नहीं।

पाठक ! आजकल रोम में 'टारक्विनिस सुपरबस' (Tarquinis Superbus) राजा का राज्य है, राजा महा अन्यायी क्रूर और प्रजा-पीड़क है, प्रजा इससे तंग आगई है, पर कुछ करते नहीं बनता क्योंकि "मिल जाय मुल्क खाक में हम काहिलों को क्या। मर जाना पर हाथ पैर हिलाना नहीं अच्छा" वाला रोग अभी इनके पीछे पड़ा है। अभी भूल जाओ, क्षमा कर दो (Forget and Forgive) वाला सात्विक गुण इनमें भरपूर है।

देखें यह कबतक रहता है? एक दिन राज-सभा में राजा ने अपने समस्त कर्मचारियों को न्योता देकर प्रासाद में भोजन को बुलाया। सन्ध्या होते २ गाड़ी घोड़े और रत्नजटित भूषण सज्जित कर्मचारियों की चमक दमक से दर्शक दंग रह गये।

सभा जमी हुई है, मदिरा देवी पधराई गई, प्याले पर प्याले चलने लगे; जब हृदय के मुकुलित कमल को स्फुटित करनेवाली मदिरा का रंग जमा, राजकुमारों ने मित्रों से उनकी प्यारी बीबियों के पातिव्रत विषय में प्रश्न करना आरम्भ किया। सबों ने अपनी २ स्त्रियों की प्रशंसा की किन्तु कौलेशिया ने अपनी स्त्री का बहुत गुण गान किया। उसने कहा वह देवी है और सतीत्व उसको प्राण से भी अधिक प्यारा है। किसी को तो कुछ ख्याल नहीं हुआ पर मन-चले बड़े कुमार की तबियत अपने दूर के नाते भाई लगनेवाले 'कौलेशिया' की स्त्री पर आगई। रसिकराज सभा से बिना कुछ कहे उठ खड़े हुए और बाहर जाकर घोड़े पर सवार हो 'कौलेशिया' के घर पहुंचे। वहां पहुंच उन्होंने किवाड़ खुलवा कर घर में अकेली रहनेवाली भाभी का सादर अभिवादन किया। एकान्त घर में समुज्वल दीप की ज्योतिर्मयी प्रभा में एक सुन्दरी युवती को देखकर नशे में चूर कुमार को सच्चिमवन सा भान होने लगा। किवाड़ बन्द कर, भावी देशाधिप के अनायास सम्मुख होने के कारण, सलज्ज अतएव घबराई हुई, 'ल्युक्रीशिया' ने कुमार को आतिथ्य सत्कार रूप दिये हुए मदिरापात्र को स्वीकार करने का अनुरोध किया। दुष्ट कुमार को ये बातें कहां भाती थीं उसने तत्काल अपनी दुष्टवासना प्रकट कर धन का लालच देना आरम्भ किया। 'ल्युक्रीशिया' गर्दन झुकाकर सन्न रह गई, कुछ उत्तर न दे सकी।

कुमार ने मौन को अर्ध स्वीकारी समझ कर हाथ बढ़ाया। पतिव्रता के अङ्गस्पर्श से इधर तो शीतलता और उधर अग्नि निकलने लगी। 'ल्युक्रीशिया' ने बाघिन की तरह तड़पकर डाटा। कुमार का नशा उतर गया। उसने टहलनी को

पुकार कहा कि कुमार को बाहर कमरे में ले जाकर उनके शयन का प्रबन्ध कर दो। सर नीचा किये हुए कुमार चले गये। रात्रि में उन्हें निद्रा नहीं आई। अपमान का बदला लेने की बात ही उनके दिमाग़ में नाच रही थी। रात्रि का सन्नाटा बढ़ने पर चुपके से उठकर वे ल्युक्रीशिया के कमरे में पहुंचे। ल्युक्रीशिया के सामने उस दुष्ट ने चमकता छुरा रखकर कहा कि यदि तू स्वीकार नहीं करती तो तेरी हत्या कर तेरे बगल में किसी गुलाम को सुलाकर उसकी हत्या करूँगा और प्रातःकाल यह प्रसिद्ध करूंगा कि क्रोध से मैंने दोनों की हत्या की है।

यह कह कर दुष्ट ने पतिवृता को भर जोर पकड़ लिया। 'ल्युक्रीशिया' क्रोध और भय से मूर्छित हो गई। कुमार ने क्या किया? पाठक आप स्वयम् विचार लें। कुमार, ल्युक्रीशिया को बेहोश छोड़ वहां से भाग गया।

हा! लेखनी काँपती है। उस दृश्य और 'ल्युक्रीशिया' की आत्मग्लानि का वर्णन करते कलेजा मुंह को आता है। ल्युक्रीशिया बेसुध रही, उसे कुछ मालूम नहीं, जब होश हुआ तो प्यारे पति, की गोद में अपना सिर तथा अपने पिता, भाई तथा नातेदारों को औषधि प्रयोग करते और पंखा झलते देख उसे रात की बातें एक एक कर स्मरण होने लगीं! हाय! क्या मैं पातिवृत धर्म से गिर गई? क्या मेरे पिता, पति, भ्राता सभी मुझे होश में लाकर 'भर्तस्ना करने को इकट्ठ हुए हैं?

नहीं! नहीं! हे ईश्वर! यह मेरा स्वप्न हो जाय। ऊंह! शरीर में कैसी बुरी वेदना हो रही है। आह! क्या मैं आग की चटाई पर सुलाई गई हूं। रक्षा! रक्षा! इस प्रकार चिल्लाकर निरपराध बालिका उठ खड़ी हुई। उसके नेत्रों से नार्किक ज्वाला निकलने लगी! खड़ी होते ही अपने युवक पति के नेत्रों में अश्रुकण देख, ल्युक्रीशिया चिल्ला उठी। प्रिय! क्यों रोते हो? पिता क्या तुम इसलिए लज्जित हो कि तुम्हारे रुधिर से उत्पन्न यह अधम ल्युक्रीशिया अन्य पुरुषगामिनी हुई है? भाई तुम्हारी आंखों से साफ़ घृणा टपक रही है।

प्यारे सम्बन्धियो! ल्युक्रीशिया दुश्चरित्रा नहीं है। विश्वास रक्खो! मेरे साथ बलप्रयोग किया गया है। मैं जीना नहीं चाहती! मैं केवल रोमवासियों को अपना अपमान सुनाकर अपने प्राण त्याग दूंगी।

हे रोमवासियो! तुम्हारी बहु-बेटियों की रक्षा के लिए मैं मरूंगी। मेरे रुधिर के दाग़ों को अन्यायी राजा और राजपरिवार के रुधिर से धोकर, मेरा तर्पण भी उसीसे करना। मैं स्वर्ग से या नरक से झांक २ कर देखूंगी कि तुमने मेरा—नहीं! नहीं! अपने राष्ट्र के अपमान का क्योंकर बदला लिया! मैं देखूंगी कि तुमने अपने मान को धन से तो नहीं बदल लिया। हे पुरुषो! मैं देखूंगी कि अपनी प्यारी स्त्रियों से प्राण की सौगन्ध खा २ कर तुम्हारी प्यार की बातें चापलूसी मात्र तो नहीं थी! मैं देखूंगी कि तुम सच्चे हो या झूठे, वीर हो या कायर, स्त्री-गर्भ से जन्म लेकर तुम उस स्वर्गीय पात्र की रक्षा करने में अपने आपको मिटा देते हो या उसे कलंकित कर अपमान की कालिमा पोतते हो।

बस! बस! अधिक नहीं। हे प्यारे जन्मदाता पिता, हे प्रिय सहोदर, हे प्राणप्रिय पति तुम्हें मैं लज्जित करना नहीं चाहती। हे जननी जन्मभूमि! तू मुझ अधम के भार से हलकी हो। इतना कह और उत्तर की कुछ भी परवा न कर उसने खूंटी पर टँगे हुए चमकते खञ्जर को ऐसे झपाटे से उतारा कि किसी का कुछ बस नहीं चला। उसने खञ्जर हाथ में लेकर एक बार चारों ओर देखा और फिर मुस्कुरा कर चिल्लाते हुए कहा,—रोमियो! सावधान! मेरा अपमान तुम्हारा⋯ ⋯बात पूरी करने के पहिले ही उसने तेज़ चमचमाता हुआ खञ्जर समुज्ज्वल, सुचिक्कण वक्षस्थल में खप से भोंक लिया।

पतिव्रता की पवित्र और तेज़ रुधिरधारा धरा को भिगोने लगी। होंठ ! हिल कर फिर "लाव...धा......कहते २ बंद हो गये। मानुषिक आवरण छोड़ उसकी आत्मा स्वर्ग को सिधार गई। काले कुन्तलों ने इधर उधर बिखरकर रोम के राजसत्तात्मक राज्य के नाश के मार्ग में मानों झाड़ू लगा दी।

आह ! पाठक ! यह भयानक दृश्य देखकर वहाँ पर खड़े हुए दर्शकों का हृदय काँपने लगा, कौलेशिया तो मानो पागल होगया, अपनी प्रिय भार्या के रुधिर-लिप्त शरीर में लिपट कर वह रो उठा। इस भयानक तथा मर्मस्पर्शी दृश्य का प्रभाव 'ब्रूटस' पर बड़े ज़ोरों का पड़ा, उसने अपने वस्त्र खोल डाले और सन्यासी का वस्त्र पहिनकर ल्युक्रीशिया का शव रोम के बीच बाज़ार में ले जाकर रक्खा, पतिव्रता के रुधिर का उसने तिलक लगाया और उसी जोश में उसीके वचनों में रोम के भावी उत्थान का संदेश कह सुनाया। कहते २ जब ब्रूटस ने ल्युक्रीशिया की अन्तिम कामना अर्थात् "हमारे रुधिर की दाग़ अपमानकारियों के रुधिर से धोया जाय" को दोहराया तब जनसमुदाय में प्रतिहिंसा की भयानक अग्नि दहक उठी। लोगों ने उसी दम इन्द्रिय-लोलुप राजा के राजभवन पर धावा बोल दिया। 'टारक्विनश' परिवार सहित प्राण लेकर भागा और रोम में प्रजासत्ताक राज्य स्थापित हो गया।

पाठक ! 'टारक्विनस' रोम छोड़कर भाग तो गया परन्तु पुनः राज्य-प्राप्ति की लालसा उसके चित्त में बनी ही रही। राज्यच्युत राजा ने जासत्ताक रोम के नाश का निश्चय कर रोम के प्रबल शत्रु 'लार्स पोरसेना (Lars Porsena) को उभाड़ा। "पोरसेना" ने अपनी अगणित सेना के साथ रोम पर चढ़ाई की तथा शहर के सम्मुख स्थित जैनिक्युलम (Janiculum) पहाड़ी पर अधिकार जमा लिया। इस स्थान से रोम जाने के लिए काठ के पुल का केवल एक छोटासा मार्ग बना था।

पाठक ! विचार कर सकते हैं कि पूर्ण रूप से शिक्षित सेना को अशिक्षित नगरवासियों के जीतने में कितना कम समय और परिश्रम अपेक्षित है। परन्तु नहीं पाठक ! मैं सैन्य-बुद्धिविहीन होते हुए भी यह कह सकता हूं कि हज़ारों का बल एक देश-प्रेमोन्मत्त उत्साह के सामने झूठा हो जाता है। यही कथन इतिहास के इस पन्ने से पूरा २ युक्तिसंगत प्रमाणित हो जाता है।

रात भर तो "पोरसेना" की सेना पहाड़ो पर पड़ी रही परन्तु भोर होते ही कूंच का बिगुल बजा और दस दस की पंक्ति करके सेना पुल के मार्ग से रोम में घुस पड़ने को तैयार हो गई। इधर रोमियों के हृदय में यह जोश था कि चाहे जो कुछ हो, पर रोम में पुनः "टारक्विनस" को पैर न देने देंगे।

एकान्त में इधर एक वीर युवक जिसका नाम "होरेशस" (Horatius) था, रोम पर आक्रमण होने का हाल सुन कमर कस कर तैयार हो रहा था। वह 'ल्युक्रीशिया' की समाधि पर सिर नवा कर बोला, हे देशोद्धारिणि ! तेरे गरम २ रुधिर से भीगी हुई पृथ्वी अभी ठंढी नहीं हुई है। हे मा ! मुझे तेरे अपमान की बात भूली नहीं है। हे देवि ! मैं तेरे अपमानकर्ताओं के अपवित्र चरण से तेरी वेदी को पुनः दूषित नहीं होने दूंगा। मुझे शक्ति और धैर्य प्रदान करो।

इसके बाद 'होरेशस' ने प्रधान सेनापति के निकट जाकर विनय की कि मैं शत्रुओं को रोकता हूं, तब तक आप लोग पुल को पीछे से तोड़ डालें। मेरे प्राणों की परवा आप न करें ! यदि मेरे प्राण जाने से देश की रक्षा हो तो बड़े सौभाग्य की बात है।

सेनापति ने यह बात स्वीकार कर ली और वीरवर 'होरेशस' ने दो मित्रों के साथ शत्रु को

सामना करना आरम्भ कर दिया। दो घंटे तक जमकर युद्ध हुआ, वीर के तेज़ तीरों से शत्रुदल तितर बितर होने लगा। 'होरेशस' अमानुषिक पराक्रम दिखा कर ज़ख्मों की व्यथा से गिरा ही चाहता था कि इतने में हड़! हड़! धड़ाम! पुल टूक टूक हो गया, घायल वीर के ओठों पर हँसी के चिह्न दीख पड़ने लगे, वह तत्काल अपना शस्त्र नदी में फेंककर "हे मा! एक रोम के अधिवासी के शस्त्र और शरीर को अपनी गोद में जगह दो" यह कहते हुए नदी में कूद पड़ा, शत्रु सेना यह अपूर्व रण-कौशल और वीरता देखकर भौचक्कीसी रह गई और आज का युद्ध निष्फल हो गया।

शत्रुओं ने देखा कि नगर में जाने का मार्ग तो अब रहा नहीं; ऐसा करना चाहिये कि रोम निवासी शहर के भीतर ही अन्न के बिना मर जायँ। यह विचारकर उन लोगों ने शहर के चारो ओर फ़ौज़ के पहरे बैठा दिये।

दिन पर दिन बीतने लगे, शहर में खाद्य वस्तुओं का ह्रास होते २ एकदम भारी अकाल पड़ गया और अन्न के बिना लोग मरने लगे। ऐसे समय में बहुतों ने यह सलाह दी कि अब शहर शत्रु को दे दिया जाय। परन्तु वाहरे रोम के नवयुवक वीर! सच्चे माई के लाल! उन लोगों ने इन कायर वचनों पर थू! थू! कर दिया। उन लोगों ने देश की रक्षा में अपने स्वत्व की प्राप्ति में अपने शरीर को कुछ न समझा, भला उनके दृढ़ संकल्प की आँधी के सामने सूखे पत्तों के समान शत्रुओं की सेना कैसे ठहर सकती थी? उसी दम तीन सौ वीरों ने प्रण किया और "ल्युक्रीशिया" की समाधि पर सौगन्द खाया कि "कार्यम् साधेयम् वा प्राणानि विसर्जेयम"।

चलिये पाठक! इन्हें यहीं छोड़िये, शत्रु सेना की सैर करें।

रात्रि की अँधियाली बढ़ रही है, कोई एक बजा होगा, प्रधान के डेरे के चारो ओर पहरेवाले चौकसी करते २ ऊँघ रहे हैं, निस्तब्ध रात्रि में निद्रित प्रतिध्वनि को जागृत सा करता हुआ एक छुप २ शब्द नदी में सुनाई देने लगा, पहरेवाले ने कुछ तो नींद से और कुछ भय से सुन कर भी अनसुना कर दिया।

थोड़ी देर में एक काली मूर्ति जो ऊपर मोमजामा के कपड़े पहिरे थी नदी के किनारे निकलकर खड़ी हो गई। कपड़े उतारते ही जान पड़ा कि मूर्ति नहीं एक सजीव मनुष्य है।

आगन्तुक नदी के किनारे से धीरे २ सावधानी के साथ प्रधान के डेरे की ओर चला, वहां पहुंचकर उसने देखा कि पहरेवाला सो गया है, दबे पांव पर्दा हटाकर वह भीतर गया। पाठक! डेरे के भीतर तेज़ रोशनी में हम लोगों को आगन्तुक के सुन्दर, चौड़े ललाट और विशाल नेत्रों के देखने का सुअवसर मिला, डेरे के भीतर दो पलँग बिछे थे, दोनों पर दो मनुष्य बहुमूल्य वस्त्र में लिपटे पड़े हुए खर्राटे ले रहे थे। युवक कुछ देर रुका और फिर अपने काले कुन्तलों को चौड़े ललाट से पीछे हटाकर उसने कमर से छूरा निकाला। छूरे की तीक्ष्ण धार रोशनी में चमक उठी। पाठक! इस भयंकर रात्रि में यह वीभत्स दृश्य कमज़ोर कलेजेवालों के लिए तो मरणान्तक ही होगा।

युवक ज़रा भी विचलित नहीं हुआ, एक पलँगवाले के निकट पहुंच भरपूर छूरा उसके कलेजे में उसने भोंक दिया! उधर मरा! का भयंकर चीत्कार हुआ और इधर युवक लैम्प गिराकर नौ दो ग्यारह हुआ।

समूची सेना में भयंकर कोलाहल मच गया, जगह २ पर मशालें जल गईं, हत्यारे के पकड़ने को सैकड़ों लोग दौड़ पड़े, अभाग्यवश युवक बहुत दूर जाने भी नहीं पाया था कि रक्षक सिपाहियों से पकड़ लिया गया।

सैनिक लोग युवक को प्रधान के डेरे में लाये। वहां पहुंचते ही सैकड़ों मनुष्यों के कं

स्वर से यह शब्द सुनाई दिया कि "पोरसेना" का सिकत्तर जो "पोरसेना" के साथ सोया था, मारा गया।

सिकत्तर मारा गया यह शब्द जब युवक के कान में पड़े तो उसके मुख पर नैराश्य का भाव झलक पड़ा, पर वह कुछ बोला नहीं।

युवक, 'पोरसेना' के सामने उपस्थित किया गया। प्रधान अपने प्रिय सिकत्तर के मरने से कुछ उदास और घबराया सा था। उसने पूछा हत्यारे! तू कौन है और किस अपराध से बेचारे सिकत्तर को तूने मारा है? बतला जल्दी बतला।

युवक—(निर्भीकतापूर्वक) "पोरसेना" तुम्हारे सम्मुख खड़ा रोम का एक साधारण अधिवासी 'कायस म्यूशीयस' (Cauis Mucius) है! मारने का कारण जो पूछते हो तो देशद्रोही से अधिक पापी कौन है। मुझे शोक इसका है कि तुम्हारे प्राण लेने के बदले मैंने तुम्हारे सिकत्तर के प्राण ले डाले!

प्रधान—(युवक के धृष्ट उत्तर से विस्मित होकर) "म्यूशीयस" तुम जानते हो, इस अपराध का क्या दण्ड है? शायद नहीं जानते! "कुत्तों से नुचवाकर प्राण देना होगा।"

म्यूशीयस—(हंसकर) और अपना एक हाथ धीरे २ धीरभाव से प्रधान के सम्मुख जलती अँगीठी में डालकर—'पोरसेना' तुम रोमीय मृत्यु को खेल समझने दो! देखो, मेरे हाथ का मांस कैसा चट चट कर तुम्हारी अँगीठी में जल रहा है—देखो तुम्हें साहस हो तो एक बार आंखें उठा कर देख लो। 'पोरसेना' तुम कायर हो, रुपये या राज्य के लोभ से दूसरे की शान्ति भंग करने आये हो! मैं वीर हूं! मुझमें सहनशीलता है। ऐसा न करने से मेरी जन्मभूमि परतन्त्रता की बेड़ी में जकड़ जायगी, हम दास बना लिये जायँगे। मेरा पक्ष स्वाभाविक और तुम्हारा कृत्रिम है। "पोरसेना" एक म्यूशीयस के मारने से तुम्हारा कोई लाभ नहीं, न तुम्हारे प्राणों की रक्षा ही सम्भव है क्योंकि मेरे बूंद बूंद रुधिर से रक्तबीज के से सैकड़ों हज़ारों म्यूशीयस पैदा होंगे। रोम तब तक परतंत्र नहीं होने का, जब तक एक भी देशभक्त की नसों में रुधिर है।

पोरसेना—'म्यूशीयस' वीर युवक अपना हाथ खींचो! खींचो! मैं अभी अपनी सेना के साथ जाता हूं। तुम वीराग्रणी और परम पराक्रमी हो। तुम्हारा स्वतन्त्र रहना ही शोभा देता है। आज से तुम्हारी वीर-प्रसविनी देश-भूमि के साथ मुझे पूरी सहानुभूति है। वाचक-वृन्द! बस यहीं से रोम स्वतन्त्र और सुखी हो गया।

ग्रीष्म-स्वागत।

[लेखिका—श्रीमती तोरन देवी (शुक्ली)।]

अब रूप प्रचंड बना करके
यह घोर प्रताप दिखाने लगे।
बिन सोचे विचारे कठोर बने
सब को जग में झुरसाने लगे॥
बस नम्र न होवे किसी से कभी
यह घोर कुमंत्र सिखाने लगे।
अब हाय सभी जड़ चेतन पै
तुम चौगुनी आग जलाने लगे॥१॥

प्रिय ग्रीषम है तो बधाई तुम्हें
व तुम्हारे लिए यह स्वागत है।
बस स्वागत काम हमारा सदा,
यदि कोई हमारा नवागत है॥
पर ध्यान न देवे जो औरों पै हाय
बड़ा ही अयोग्य वो आगत है।
तुम जाते हो भूल सदा जग को
कि हमारेहि यें शरणागत है॥२॥

प्रिय ग्रीषम क्या तुमने मृदुभाव
बसन्त का स्वप्न में देखा न था ।
न तो औरों पै दान दया ही करो
यह मंत्र किसी दिन सीखा न था ॥
उपकारी जनों का तुम्हारे यहां
कुछ मान न था कुछ लेखा न था ।
न तो होते सहाय जो दीनजनों पर
ऐसे दयालु को देखा न था ॥ ३ ॥

कमला की कलायें जो देख रहे
उनपै प्रभु आप दया न दिखाओ।
पर दीनजनों पर रंच दयाकर
आग प्रचंड नहीं बरसाओ ॥
अब देत बधाई हृदय से 'लली'
जब आवै समय तो सदैवहि आओ।
किन्तु जो आपहि आप जलैं
प्रिय ग्रीषम आप उन्हें न जलाओ॥४॥

एमेरिकास्थित वर्णभेद ।

[लेखक—श्रीयुत कृष्ण सीताराम पेंढरकर ।]

कुछ दिनों के पहिले श्रीमान् लाला लाजपति रायजी के 'युनाइटेड स्टेट्स' नामी पुस्तक के आधार पर मराठी "मनोरञ्जन" में एक सज्जन ने उपर्युक्त शीर्षक में एक लेख लिखा था। उसमें की कुछ बातें ठीक नहीं हैं, इसलिए बड़ाला के रेवरेण्ड एडवर्ड डब्ल्यू॰ फेल्ट नामक एक एमेरिकन पादरी साहब ने एक लेख प्रकाशित कर इसका खण्डन किया है। पाठकों के अवलोकनार्थ उसका सार नीचे दिया जाता है।

गत अक्तूबर मास के 'मनोरंजन' में श्रीयुत 'मधुप' जी ने उपर्युक्तशीर्षक में एक लेख प्रकाशित कराया है। उस लेख में श्रीमान लाला लाजपत रायजी की पुस्तक से एमेरिका की हबशी जाति की वर्तमान अवस्था का संक्षिप्त वर्णन दिया गया है। इससे पढ़नेवालों की यह धारणा होती है कि एमेरिका में भारत की तरह जाति-भेद माना जाता है।

स्वदेश की अवस्था का यह वर्णन पढ़कर किसी भी देशभक्त को यह देख लज्जित होना पड़ता है कि खृष्ट धर्मी कहलानेवाले देश में भी ऐसी ही बातें हुआ करती हैं। यह सच है कि एमेरिका में हबशी लोगों से होनेवाला व्यवहार एमेरिका के लिए लज्जास्पद है परन्तु भारत की बाल-विधवाओं और अज्ञान के अन्धकार में रहनेवाले जनसमूह को देखकर भारतीय देशभक्त को एमेरिकन देशाभिमानी की तरह लज्जा से अपनी गर्दन नीचे करनी पड़ती है। यह दिखाने के लिए कि पाश्चात्य देश अभी तक सर्वाङ्गीन उन्नतिकर सर्वोच्चशिखर को प्राप्त होने में समर्थ नहीं हुए हैं, एमेरिका के संयुक्त राज्य में लेखक को कितने ही अन्य दोष दिखलाई देते। यह कहने में अत्युक्ति न होगी कि इने गिने दो चार कुबेर पुत्रों की सम्पत्ति की तुलना में वहां की सर्वसाधारण प्रजा का दारिद्रय और मज़दूर तथा कारखानेवालों में होनेवाले झगड़ों में बड़े २ सुधार होने की आवश्यकता है। वादग्रस्त प्रश्नों में संयुक्त राष्ट्र के दक्षिणस्थ राज्यों में हबशी लोगों पर होनेवाले अत्याचार से हबशी और गोरे अधिवासियों का प्रश्न और भी जटिल बन गया है। इस अन्याय से एमेरिकन समाज और सुधार को प्रत्यक्ष रूप से कलङ्क की कालिमा लगती है।

यद्यपि एमेरिका ने विद्या-प्रचार, यान्त्रिक आविष्कार, प्राकृतिक वस्तुओं की उपयोगिता, अपराधी, कैदी, बीमार, पागल आदि के सुधार के लिए स्वायत्तशासन में बहुत से काम किये

हैं, तदपि वह महत्व के कई कामों में भूल कर रहा है और कितने ही कामों में बिलकुल मंद-गति से सुधार कर रहा है । इन्हीं में हबशी लोगों के सुधार की गिनती हो सकती है ।

यद्यपि मैं यह मानने को तैयार हूं कि एमेरिकास्थित हबशी लोगों की अवस्था दोष-पूर्ण है तदपि जाति-भेद के विषय में उक्त लेखक ने लोगों की जो भ्रमपूर्ण धारणा कराई है, उसे दूर करना भी मैं अपना कर्तव्य समझता हूं ।

हबशी जाति के प्रश्न को लिखते हुए लेखक ने उनके ऐतिहासिक कारण नहीं दिये हैं; उन्होंने उनके दोष तो दिखलाये हैं पर गुणों का वर्णन नहीं किया है । इसके सिवा अपनी बातों के समर्थन में उन्होंने जिन प्रमाणों और बातों का उल्लेख किया है, वे भी भ्रान्ति उत्पन्न करने-वाली हैं ।

सामाजिक इतिहास का अध्ययन करने से समाज की अवस्था के कारणों की खोजकर उनका प्रचार करना सुलभ होता है । परन्तु उस समय उनके गुण-दोष दोनों का वर्णन करना आवश्यक है । सिर्फ इतना कहने ही से उसका पूर्ण बोध नहीं हो सकता कि अमुक बात ठीक नहीं है या ऐसा न होना चाहिये । कितने ही पाश्चात्य अधिवासियों पर समाज की दूषित बातों को देखने से पहिले पहिल बुरा प्रभाव पड़ता है । वे भारतीय पुरुषों के चरित्र के नैतिक गुणों को न देखकर उसमें के दोष ही देखा करते हैं । इसीसे यह स्पष्ट है कि उसका बदला लेने के लिए एमेरिकन वर्ण-भेद शीर्षक लेख के लेखक ने हबशी-एमेरिकन सम्बन्ध में उनके दोषों ही के वर्णन में अपनी प्रवृत्ति दिखाई है ।

यदि बुद्धिमानी और निर्विकार चित्त से एमेरिका के इतिहास का अध्ययन किया जाय तो हबशी लोगों की वर्तमान अवस्था का रहस्य और उसका इतिहास भलीभांति दिखाई देगा । उसका कुछ ब्योरा यहां दिया जाता है;—

(१) एमेरिका के दक्षिणस्थ राज्यों की गरम जल-वायु उन्हें सहती है । कम मज़दूरी देने ही से उनका निर्वाह हो जाता है । इसी उद्देश्य से सन् १६१६ ई० में एमेरिका के दक्षिणस्थ राज्यों में हबशी लोग गुलाम के रूप में एफ्रिका से लाये गये थे । इसके बाद दुष्ट व्यापारियों ने इस व्यवसाय की बहुत वृद्धि की । सन् १८६२ ई० तक हबशी लोग गुलाम के रूप ही में काम करते रहे । यद्यपि गुलामों का समावेश आरम्भ में दक्षिणस्थ राज्यों ही में था, तदपि क्रमशः इसकी वृद्धि उत्तरस्थ न्यूयार्क, न्यू इङ्गलैंड आदि में भी हुई ।

(२) यद्यपि बहुत से सज्जनों ने आरम्भ ही से गुलामों के व्यवसाय का विरोध किया था, तदपि १८६०—६५ ई० तक उसको उग्रस्वरूप प्राप्त नहीं हुआ था । इसीलिए एमेरिका में स्व-जातियों में युद्ध होकर राज्यक्रान्ति हुई । उत्त-रस्थ राज्यों का कहना था कि नये बसनेवाले राज्यों में गुलामों की प्रथा जारी न की जाय और दक्षिणस्थ राज्यों में भी धीरे २ इसकी मर्यादा कम की जाय । सन् १८६२ ई० में प्रेसी-डेन्ट लिङ्कन ने एक घोषणा-पत्र निकालकर गुलाम का व्यापार बिलकुल बन्द कर दिया और इस तरह से हब्शी लोग गुलामी से मुक्त हुए ।

(३) सिविल-वार (नागरिक युद्ध) का स्वरूप धीरे २ कम होकर प्रेसीडेन्ट लिङ्कन का खून हुआ । शत्रुत्व मिटाकर मित्रत्व स्थापन कर राष्ट्र के पुनःसगठन के कठिन समय में जो मनुष्य शुद्ध आचरण से राष्ट्र के सब अधिकार अपने हाथ में रखकर राष्ट्र का कल्याण करता उसके खून से हबशी लोगों का एक पृष्ठरक्षक नष्ट हो गया ।

(४) स्वजातीय युद्ध के बाद कॉंग्रेस और स्टेट लेजिस्लेचर ने नया सुधार कर हबशी लोगों

की अज्ञानता पर कोई ध्यान न दे उन्हें राष्ट्रीय चुनाव में वोट देने का अधिकार दे दिया।

(५) लिंकन की मृत्यु से दक्षिणस्थ राष्ट्रों के विषय में उत्तरस्थ राष्ट्र का मन इतना बिगड़ गया कि वह उनसे निर्दयता का व्यवहार करने लगा। उसने वहां के जीते हुए राष्ट्रों में अपने गवर्नर नियुक्त किये। उन राज्यों में हबशियों की आबादी अधिक होने के कारण और उन्हें निर्वाचन में वोट देने का नया अधिकार मिलने से सरकारी दफ़्तरों में उनका प्राधान्य हुआ। निर्दय और कलुषित-हृदय गवर्नर और अज्ञान और बाल-स्वभाव हबशियों के हाथ में राजसत्ता के आने से दक्षिण के राज्यों में घोर अव्यवस्था आरम्भ हुई। सरकारी कर्मचारी रिशवत लेने लगे और गोरे अधिवासियों और पहिले के गुलाम हबशियों में द्वेषाग्नि की आग धधक उठी। इसीका परिणाम वर्तमान अवस्था है। उत्तरी एमेरिका के गवर्नरों को वापस बुला लेने पर दक्षिण के गोरे अधिवासियों ने उस कठिनाई से अपनी राह ढूंढ़ निकाली। वे लोग रिशवत आदि देकर हबशियों से उनके अधिकार छीनने और अपनी दलबन्दियाँ कर हबशियों के मकानों पर डाके डालने लगे। इससे सब स्थानों में अव्यवस्था और असन्तोष बढ़ गया। कानून सिर्फ कागज़ ही में रह गये। इसी अवस्था में 'लिंच' का बीज बोया गया और उसीमें घोर अन्याय और अत्याचार रूपी फल लगा।

एमेरिका के नये राज्यों में हबशियों से जो वर्णभेद किया जाता है, उसका प्रधान कारण उपर्युक्त ऐतिहासिक वृत्तान्त है। श्रीयुत मधुप ने लालाजी की पुस्तक से ये बातें लिखी हैं। लालाजी को उचित था कि वे दोनों पक्ष की बातें लिखते, परन्तु उन्होंने वैसा नहीं किया है। उन्होंने जिनका उल्लेख नहीं किया है, वे बातें बड़े महत्व की हैं, इसलिए उनका वर्णन यहां अप्रासङ्गिक न होगा।

(१) एमेरिकास्थित हबशियों के गुलामी से मुक्त होते ही थोड़े समय में उनकी जो उन्नति हुई वैसा उदाहरण एमेरिका के सिवा और कहीं होने का हाल मुझे मालूम नहीं है। ५५ वर्षों के पहिले हबशियों को अधीनता में एक पकड़ भी भूमि नहीं थी, इतना ही नहीं, उनमें पहिनने के लिए कपड़े तक ख़रीदने की शक्ति नहीं थी किन्तु आजकल वे लाखों एकड़ ज़मीन के मालिक होकर ज़मींदार हुए हैं। उनकी बड़ी २ दूकानें और बैंक हैं। पहिले एमेरिका में एक भी शिक्षित हबशी नहीं था। परन्तु अब एक करोड़ हबशियों में प्रायः सभी लिखना पढ़ना जानते हैं। एमेरिका में हबशियों को उच्च और कलाकौशल की शिक्षा देने के लिए बहुतेरे कालेज प्रतिष्ठित हुए हैं। हर एक काम के संचालक हबशी ही हैं। "मनोरञ्जन ग्रंथ प्रसारक कम्पनी द्वारा प्रकाशित आत्मोद्धार पुस्तक का नायक बुकरटी वाशिङ्गटन हबशियों का प्रधान नेता था।

(२) यह सुधार हबशियों के गुण या उनके दृढ़ निश्चय से अवश्य हुआ है, किन्तु तब भी उसमें उत्तर के एमेरिकन मित्रों और दक्षिण के पड़ोसियों की सहायता का भाग थोड़ा नहीं है। हबशियों के लिए खोले हुए अधिकांश स्कूल और कालेज गोरे मनुष्यों ने ही प्रतिष्ठित किये हैं। अपने हित की ओर न देखकर गोरे लोग हबशियों को शिक्षा दे रहे हैं। उन्हें सुशिक्षित बनाने के लिए एमेरिकन क्रिश्चियन संस्थाओं और अन्य दयालु एमेरिकनों की ओर से लाखों डालर्स (डालर ३=) के बराबर होता है) मिल रहे हैं। दक्षिणस्थ राज्यों में गोरे पड़ोसियों से हबशियों के नेताओं को कितने ही दोस्त मिले हैं और इससे उनकी एकता बढ़ती जा रही है। इसका प्रमाण बुकरटी वाशिङ्गटन की पुस्तक में मिलेगा। यद्यपि एमेरिका में एक पक्ष वर्णभेद मानता है तथापि दूसरा पक्ष उसको नष्ट कर हबशी मित्रों को

सुधारने के लिए अपना तन, मन और धन आरम्भ ही से सहर्ष अर्पण कर रहा है। कुछ वर्षों के पहिले की घटना यह है कि 'व्हाइट हाउस' में प्रेसीडेंट रूज़वेल्ट ने मिस्टर वाशिङ्गटन को अपने साथ भोजन कराया था। इन्हीं बातों से उपर्युक्त आक्षेपों की सत्यता प्रमाणित हो सकेगी।

यहां तक मैंने अपनी मातृभूमि की सच्ची अवस्था का ज्ञान कराने के लिए हबशियों के वर्तमान प्रश्न के विषय में ऐतिहासिक उदाहरणों के साथ सब घटनाओं को सामने रखने का प्रयत्न किया है। इसलिए अब श्रीयुत "मधुप" ने अपने लेख में हबशियों की अवस्था के विषय में जो विपरीत अर्थ और भ्रान्तिमूलक सिद्धान्त किये हैं, उनके विषय में यहां कुछ लिखने की इच्छा है। श्रीयुत "मधुप" ने अपने लेख का शीर्षक जातिभेद दिया है। क्या इसका अर्थ "वर्ण-भेद" होता है ? बारीक दृष्टि से न देखनेवाले को शायद जाति-भेद का अर्थ, वर्ण-भेद ही दिखाई दे सकता है। वर्ण-भेद, जाति-भेद का गौण अर्थ हो सकता है। जाति शब्द में धर्म के संस्कार और सिद्धान्तों का समावेश होता है। इस शब्द से जाति (Race) ही का बोध नहीं पर एक व्यवसाय से बनी हुई समाज और उसके अन्तर्गत अन्य छोटी समाजों का बोध भी होता है। वर्ण (Colour) शब्द से ऐसा अर्थ नहीं निकलता। मेरी समझ में श्रीयुत "मधुप" के लेख का शीर्षक जाति-भेद के बदले वर्णभेद ही अधिक उपयुक्त होता। इसके सिवा संपूर्ण लेख से यह दिखाई देता है कि लेखक एमेरिका की राजकीय घटनाओं से साधारणतः अनभिज्ञ हैं। एमेरिका के संयुक्त-राज्य में कुल ४८ राज्य हैं। उनमें प्रत्येक का राज्य शासन प्रायः प्रजातंत्र ही है। हबशियों का प्रश्न उन राज्यों का भीतरी मामला है और इसीसे कुछ राज्यों ने काले और गोरे के वर्णभेद के बारे में जो कानून बनाये हैं, उनमें कांग्रेस हस्तक्षेप नहीं कर सकती। ऐसी अवस्था होने पर भी इन थोड़े से राज्यों के सिद्धान्तों को लेखक ने कई स्थानों में ऐसा दिखाया है, मानो समस्त एमेरिका में वे प्रचलित हों।

श्रीयुत "मधुप" ने एमेरिका के काले और गोरों के परस्पर सम्बन्ध के विषय में निम्नलिखित चार बातों का उल्लेख किया है—

(१) "पहिली रुकावट यह है कि गौरकाय एमेरिकनों के लिए जलपान, चाय, काफी आदि की दूकानों में हबशियों को चाय देने तक की सख़्त मनाही है।

(२) हबशियों के लिए यह भी एक नियम है कि वे राह पर चलनेवाली ट्राम गाड़ियों और किराये की मोटरों में सामने के बेंच पर नहीं बैठ सकते। उन्हें पीछे के कुछ बेंचों पर बैठने की आज्ञा रहती है।

(३) किसी गोरी एमेरिकन स्त्री से विवाह करना भी हबशियों के लिए ग़ैर-कानूनी है।

(४) किसी हबशी को विचारपति का पद नहीं मिलता; इतना ही नहीं पर एक ही अपराध के लिए गोरे की अपेक्षा हबशियों को कड़ी और कष्टदायक सज़ा दी जाती है। किसी अपराध के सन्देह पर अदालत में उसका विचार न कर शहर के गोरे अधिवासी जाँच के सिवा सदर राह पर ही उसे फाँसी पर लटका देते, जीते जी जला देते या पत्थरों से मारकर उसका प्राण ले लेते हैं।"

दक्षिण के कुछ राज्यों में ऐसे कानून प्रचलित हैं, उसका प्रधान कारण काले और गोरों की पूर्व से प्रचलित दूषित ऐतिहासिक अवस्था ही है। यह अवस्था भी बुरी ही है। इससे किसी भी एमेरिकन सज्जन को लज्जा से मुंह नीचा करना पड़ता है। जैसे यह सत्य है कि हबशियों के विषय में अन्याय हो रहा है वैसे ही छोटे से राष्ट्र पर होनेवाले अन्याय को सारे राष्ट्र पर लादना भी अन्याय है। मुलाटो के विषय में लिखा हुआ अंश भी भ्रान्तिमूलक और

अप्रासंगिक है। गुलाम प्रथा के समय से इन दोनों जातियों का मिश्रण होने लगा। भिन्न २ जातियों के एक साथ रहने से कुछ दिनों के बाद उनका सम्बन्ध बढ़कर उनमें परस्पर कुछ मिश्रण स्वाभाविक है। ऐसा मिलावट दक्षिण के राज्यों ही में अधिकता से हो रही है। हबशी स्त्री से विवाह के सिवा सम्बन्ध रखनेवाला गोरा पुरुष उसी चालचलन की गोरी स्त्री को भी उपपत्नी के रूप में रखता है। इस पर भी यह कहना अन्याय होगा कि दक्षिण भाग के अधिकांश गोरों की प्रवृत्ति उपपत्नी रखने की होती है। चौथी बात 'लिञ्चिङ्ग' के विषय में है। हबशियों की तरह एमेरिकन गोरों को पशु की तरह बलि चढ़ाने (इनकी संख्या थोड़ी है) के उदाहरण भी मिलते हैं। उनका उल्लेख करना लेखक को उचित था। लेखक का पाँचवा अभियोग यह है कि गोरे, हबशियों से डाह करते हैं। इसके समर्थन में लेखक ने सिनेमा के एक चित्रपट का उल्लेख कर कहा है,—इस चित्र का उद्देश्य हबशियों के विषय में लोगों का मन कलुषित करना है। इसीसे यह चित्र लोगों को अत्यन्त प्रिय हुआ है और इसे देखने के लिए झुण्ड के झुण्ड लोग जाया करते हैं किन्तु राष्ट्र का जन्म (The birth of Nation) का दृश्य जब इस चित्र में दिखाया जाता था, तब उन्हें देखकर सब स्थान के एमेरिकनों के मन क्षुब्ध हो गये थे और उसे बन्द करने के लिए चारो ओर से सरकार के पास प्रार्थनापत्र भेजे गये थे। ज्ञान पड़ता है, लेखक महाशय यह नहीं जानते कि उन्हें कई शहरों में न दिखाने की आज्ञा दी गई थी।

अन्त में श्रीयुत 'मधुप' लिखते हैं कि एमेरिका में वर्णभेद की ऐसी अवस्था के होते हुए भी वहां के पादरियों की यहां आकर भारतीय समाज के सुधार में हस्तक्षेप करने की चेष्टा करना हास्यास्पद है। वहां खुल्लमखुल्ला ऐसी घटनाओं के होते हुए भी वहां के पादरियों का हम लोगों की दिल्लगी कर भारतवासियों को बदनाम करना और यह सिखलाने की डींग हाँकना कि ईसामसीह सब मनुष्यजाति को भ्रातृवत मानते हैं, उससे भी हास्यास्पद है।

श्रीयुत 'मधुप' के अभियोग का यही उत्तर है कि विवेकी एमेरिकन पादरी यह जानते हैं कि एमेरिका में बुराई है किन्तु वे यहां इसीलिए आये कि यहां कार्यकुशल नेता अधिक नहीं थे।

जहां कार्यकुशल सुधारक नेताओं की कमी हो या जहां उनकी आवश्यकता हो, वहां जाने के लिए परमेश्वर ने हम लोगों को आज्ञा दी है ऐसी एमेरिकन पादरियों की धारणा है। एक अर्थ से पाश्चात्य राष्ट्रों को क्रिश्चियन कहना योग्य नहीं है, यह पादरियों को मालूम है। उनका उद्देश्य इतना ही है कि प्राचीनकाल में पूर्वीय लोगों से उन्हें ईसामसीह रूपी जो दान मिला है, वही फिर उन्हें दिया जाय।

स्त्री-शिक्षा का आदर्श ।

[लेखक—श्रीयुत शोभाराम धेनुसेवक ।]

(१)

शान्तिमय सर्वेश का, अब ध्यान कर हे लेखनी ।
"तैयार हो" निज देश का, कल्यान कर हे लेखनी ॥
लेखनी तेरा परिश्रम, सफल होना चाहिये ।
निज देश का भर शक्ति तुझको, क्लेश खोना चाहिये ॥

(२)

राष्ट्र के उत्थान में, उद्योग जिनका कम नहीं ।
'हैं कौन से वे कार्य जिनमें नारियों का श्रम नहीं' ॥
वीर माताएँ सदा ही, देश-उन्नति मूल हैं ।
रह गई जो ये अशिक्षित, तो भयंकर शूल हैं ॥

(३)

दक्ष हो ये देवियां, जिस ओर को झुक जायँगी ।
उस ओर की सारी अवनति, आपदा रुक जायँगी ॥
कौन से वे कार्य जो ये कामिनी करती नहीं ।
कठिनाइयां वे कौनसी, जो स्त्रियां हरती नहीं ?

(४)

हो नहीं इन शक्तियों में "कौनसी वह शक्ति है" ?
धीरता है, वीरता है, भव्यता है, भक्ति है ॥
कौन कह सकता है इनके, पुण्यवर्द्धक कर्म को ?
कष्ट सह कर नष्ट होने, से बचाती धर्म को ।

(५)

धर्मरक्षक हैं यही, भय भ्रान्तिभक्षक हैं यही ।
कल्याण इच्छुक हैं यही, संतान शिक्षक हैं यही ॥
देश सेवा के लिए नर-रत्न दाता हैं यही ।
श्रीराम से वीरेन्द्र वर की वीर माता हैं यही ॥

(६)

हैं सही यह "स्त्रियां ही देश की आधार हैं ।
शक्ति की दातार हैं, ये भक्ति की भंडार हैं" ॥
स्त्रियां ही पथ-प्रदर्शक हैं पुरुष की सर्वथा ।
इस हेतु ही हमको सदा, इन देवियों का गर्व था ॥

(७)

वे देवियां भी कौन थीं ? जो सत्यता की मूर्ति थीं ।
थीं पूर्ति पुण्योद्देश की, वे तेज की स्फूर्ति थीं ॥
थे नवाते शीश जिनके सामने यमराज भी ।
धन्य सावित्री तुम्हें, जग कह रहा है आज भी ॥

(८)

विश्व में सीता सती की कीर्ति अब भी व्याप्त है ।
सन्मान आशातीत जिनसे आर्यों को प्राप्त है ॥
यह कर रहा सूचित कि हम थे नारि शिक्षा में बढ़े
पंडिताओं से सदा ही, पाठ उन्नति के पढ़े ॥

(९)

स्त्रियां शिक्षित बनाने, में सजग तब आर्य थे ।
इस हेतु ही आदर्श थे, संसार के आचार्य थे ॥
मूर्ख माताएँ न थीं तब, मूर्ख नहिं संतान थीं ।
पूर्ण पंडित पुत्र थे, क्यों ? मातु विद्यावान थीं ॥

(१०)

आजकल ज्यों स्त्रियां, वे मूर्खता सहती न थीं ।
कोइ भी गृह था न जिसमें, शिक्षिता रहतीं न थीं ॥
गृह देवियां पातीं जिसे, वह कौन शिक्षा मर्म था ।
उत्तर यहीं वह धर्म था, वह धर्म था, वह धर्म था ॥

(११)

आजकल सी लेडियां, वे देवियां होती न थीं ।
निज धर्म को वे स्वप्न में भी, भूल कर खोतीं न थीं ॥
थीं पढ़ीं स्वच्छन्दता ना लेश उनके पास थी ।
थीं पूर्ण संयमशील उनको, भोग तृष्णा नास थी ॥

(१२)

थीं कुशल गृहकर्म्य में, गृह भी हमारा स्वर्ग था ।
पति देवहित उन देवियों का, पूर्ण प्राणोत्सर्ग था ॥
गीत गाते थे जिन्हों के, अमर भी आनन्द हो ।
धन्य भारत देवियो, तुम धन्य हो ! तुम धन्य हो ॥

(१३)

धर्ममय वह नारि शिक्षा, का कहां आदर्श है।
ना रहे वे आर्य ही अब, वह न भारतवर्ष है॥
आज अब तो आर्य पुत्रों की निराली बात है।
था जहां विद्यादिवाकर, अब अँधेरी रात है॥

(१४)

सिंह थे जो हम कभी, अब आज जंबुक बन गये।
रत्न थे रमणीय जो हम, आज सम्बुक बन गये॥
थे गुरू संसार के अब शिष्य बनने योग्य हैं।
गृहकलह के हेतु अब भी आज हम आरोग्य हैं॥

(१५)

देख लो हम आज जग में, हाय इतने गिर गये।
मनुज तो बनते हैं पर मानुष्यता से फिर गये॥
जो किसी भी देश में, होती कुली की चाह है।
हों कुली हम आत्मगौरव, की नहीं परवाह है॥

(१६)

थे गिरे, निज नारियों को भी गिराया साथ में।
आदर्श तज अपकीर्ति का, टीका लगाया माथ में॥
अब नारियों को एक भी अक्षर पढ़ाना पाप है।
भारत तुम्हारे भाग्य पर हा शोक है, संताप है॥

(१७)

कौन कहता है हमारे पूर्वज, महिलाओं को।
ना पढ़ाते थे सिखाते थे, कला विकलाओं को॥
धर्म शिक्षा कला कौशल, वे सिखाते थे सभी।
गृह-देवियों को दासियां ही ना बनाते थे कभी॥

(१८)

जब जानते हैं हम स्वयं, नारी हमारा अङ्ग है।
वह लोक में परलोक में, सम्पति विपति में संग है॥
तब किस लिए हम स्त्रियों को, मूर्ख रखना चाहते।
शोक! हम नेत्रों बिना भी, लोक लखना चाहते॥

(१९)

सकता नहीं उड़ एक पर से, कोई भी पक्षी कहीं।
रथ भी अकेले चाक से तुम देख लो चलता नहीं॥
अर्द्धांगिनी के बिना त्यों उन्नति हमारी दूर है।
जो चाहते उन्नति स्वयं, उनकी समझ में धूर है॥

(२०)

अङ्ग आधा देह का, जो शून्य हो जावे कहीं।
संदेह पक्षाघात से, तब शेष जीवे या नहीं॥
जब ब्रह्म भी माया बिना, रचता नहीं है सृष्टि को।
तब स्त्रियों के महत्व पर तुम क्यों न देते दृष्टि को?

(२१)

आर्यवीरो तुम्हें इस पर, ध्यान देना चाहिये।
निज नारियों को मान, विद्या दान देना चाहिये॥
भगनियों का भारती से, शीघ्र नाता जोड़ दो।
तुम भी नहीं तो आज से, विद्वान बनना छोड़ दो॥

(२२)

जबतक रहेंगी मूर्ख माताएँ, हमारे देश में।
तबतक रहेंगे हम, हमारा देश दोनों क्लेश में॥
अज्ञान से अब अङ्गनाओं को उठो उद्धार दो।
सन्मान से करके सुशिक्षित, देश नैया तार दो॥

(२३)

ये रत्नगर्भा रमणियां, विद्या विनय सम्पन्न हों।
नररत्न जिनसे भीष्म, भारत, कर्ण फिर उत्पन्न हों।
भारत हमारा आज भी फिर स्वर्ग से बढ़ जायगा।
शोभा समुन्नति शिखर पर आदर्श हो चढ़ जायगा॥

पं० कृष्णकान्तजी मालवीय की वक्तृता।*

भ्रातृवृन्द,

इस विद्वन्मंडली में खड़े होते हुए आज मैं बहुत ही प्रसन्न हूं। मैं चाहता हूँ कि मैं कवि होता। उस अवस्था में कदाचित अपने हृदय की प्रसन्नता का चित्र आपके सामने चित्रित कर आपको दिखलाता कि वह कैसी है। यदि मैं वक्ता ही होता तो अपने भावों को प्रगट कर आपको यही दिखलाता कि मेरे हृदय की प्रसन्नता की सीमा नहीं है। किन्तु जैसा कि सब को विदित है एक गुलाब के पुष्प के साथ ही साथ अनेकानेक कांटे होते हैं। मेरी प्रसन्नता भी कंटकशून्य नहीं है। आप लोगों ने मेरा आदर किया है, अपने अधिवेशन में आप लोगों ने मुझको ऊंचा आसन दिया है, उदारतावश आपने मेरी अयोग्यता की ओर दृष्टि न कर मेरा सम्मान किया है, इसके लिए मैं कृतज्ञ हूं किन्तु साथ ही मुझे इतना कहने दीजिये कि "अयोग्यों का आदर" हानिकर होता है। मैं वक्ता नहीं, जीवन में कदाचित एक ही दो बार मैं सभा में बोला हूं। इस बात को भी अभी बहुत दिन नहीं हुए। जीवन के इस विभाग में अभी ही मैंने अआ इई का पाठ प्रारम्भ किया है ऐसी अवस्था में आप समझ सकते हैं कि इस समय सभापतित्व का बोझ उठाने के लिए मैं कितना असमर्थ हूं। मैं थोड़ा लिख लेता हूं किन्तु वह अभ्यास इस समय मेरी सहायता नहीं कर सकता। पं० दूधनाथजी तथा एक और मित्र मुझे राज़ी करने के लिए प्रयाग गये थे। मैंने हर तरह से चाहा कि मुझे माफी दी जाय किन्तु आपके दृढ़संकल्प दूत बिना आपका काम किये नहीं आना चाहते थे। जितना ही मैं उनको अपनी ओर करता उतने ही वे अपने पक्ष में और मज़बूत होते। मैंने अपनी हीनता उन पर प्रगट की, हर प्रकार से चाहा कि वे किसी दूसरे सज्जन को राज़ी कर लें किन्तु वे न पिघले लाचार होकर आप लोगों की आज्ञा मैंने शिरोधार्य की, यह समझकर नहीं कि मैं उपयुक्त सेवा कर सकूंगा, यह समझकर नहीं कि किसी भी दृष्टि से मैं इस पद के योग्य हूं, या मैं आपको किसी तरह से कुछ सुनाकर लाभ पहुंचा सकता हूं किन्तु केवल इस विश्वास से कि जब आपने हमको चुन ही लिया है तो आप मेरी त्रुटियों की ओर अधिक ध्यान न देंगे। 'अधिक' मैं इसलिए कहता हूं क्योंकि मेरा यह विश्वास है कि आपके उदारता रूपी समुद्र की लहरें भी मेरी त्रुटियों को अपने दया के कलोलों के नीचे बिलकुल ही निमग्न नहीं कर सकतीं।

आप लोगों की सम्मिलित इच्छा को मान्य समझना मैंने इस लिए भी श्रेयस्कर समझा क्योंकि मेरा यह विश्वास है कि समुदाय की सम्मिलित इच्छा के सामने व्यक्तिगत इच्छा का सिर झुकाना ही उचित है। इन्हीं सब कारणों से और यह विश्वास रखते हुए कि आपकी सहानुभूति तथा सहयोग मुझे कठिन मार्गों में सुरक्षित लेता चलेगा मैंने ऐसे दायित्वपूर्ण पद को स्वीकार किया है।

थोड़े समय के लिए अब अपनी प्राचीन दशा की ओर दृष्टि फेरिये। तब आप क्या थे और आज आप क्या हैं? अब आप राम, कृष्ण, अर्जुन, भीष्म, को क्यों नहीं पैदा कर सकते? रत्नगर्भा भारत भूमि में आज इतनी दरिद्रता क्यों छाई है? जिस भारत में राजा भोज के समय में एक कुम्हार भी संस्कृत में बातें करता था आज उसी भारत में हमारे करोड़ों ही भाई अआ इई

* गत १९ और २० मई को गोरखपुर देवरिया की 'नागरी प्रचारिणी सभा' के द्वितीय वार्षिकोत्सव के समय दिया गया सभापति पं० कृष्णकान्त जी मालवीय का व्याख्यान।

भी क्यों नहीं पढ़ सकते ? जिस भारत की लक्ष्मी की चर्चा सुन नादिर और तैमूर के हृदयों में लोभ का समुद्र उमड़ा था आज वह लक्ष्मी हमारी कहां गई ? आज हमारा व्यापार कहां गया ? बहुत दिन नहीं बीते जब कि भारतीय जहाज़ भारतीय मालों से लदे हुए चीन, मिस्र और रोम के बन्दरगाहों में जाते थे, आज हमारा वह व्यवसाय कहाँ गया ? व्यवसाय तो दूर रहा आज वे हमारे जहाज़ ही कहां गये ?

दन्तकथा नहीं ऐतिहासिक बात है कि भारत में विश्वविद्यालय अनेक थे। ऋषि मुनि नवयुवकों को शिक्षा दिया करते थे। एक एक केन्द्र में १० सहस्र ब्रह्मचारीगण पठन-पाठन करते थे। उत्तरचरित्र में पढ़ते हैं कि 'आत्रेयी' वाल्मीकि के आश्रम से अगस्त्य के आश्रम में वेदों और उपनिषदों के पढ़ने के लिए गई थीं। आज हमारी माताओं और बहिनों की दशा कैसी है ! आज समस्त भारत के लिए पाँच सात ही विश्वविद्यालय बहुत क्यों हैं ? पहिले जिस देश में "सात वार नौ त्योहार" थे आज उस देश के निवासियों पर एक ही त्योहार आने से संकट क्यों आजाता है ? सारांश यह कि आज आप इतनी गिरी हुई दशा में क्यों हैं ? जिस देश के चक्रवर्ती राजाओं को भेंट देने को दूर २ देशों से सामन्त आते थे आज वहीं के निवासी पर-मुखापेक्षी और दूसरों की कृपा और ठोकरों के भिखारी क्यों हो रहे हैं ?

संसार में सब उन्नति की कुंजी अपनी दशा का ठीक निदान करना है। संसार में नर और नारी ही नहीं पशु-पक्षी और कीट-पतंग भी सुखी होना चाहते हैं। आइये हम लोग भी मिल कर इस बात पर विचार करें कि हम आप सुखी क्योंकर हो सकते हैं ?

कोई समाज-सुधार ही को सर्व सुख देनेवाला समझता है, कोई धर्म प्रचार को ही सब कुछ समझ बैठा है, कोई सरकार से दो एक स्वत्व प्राप्त कर लेने को ही परमलाभ समझता है। हम सब भाइयों को आज मिल कर विचार करना है कि वास्तव में होना क्या चाहिये। जिन्होंने पूर्वजों ने संसार को सभ्यता दी, विद्या पढ़ाई, कपड़ा पहिनना सिखलाया, उनके वंशजों की ऐसी दशा हो जाना कि दूसरे उन्हें विद्या दें, कपड़ा द, यहाँ तक कि पहिनने के लिए "यज्ञोपवीत" भी दें यह कम दुःख की बात नहीं है। अपने ही घर में ग़ैर की भांति रहना और पतरी के पड़े हुए टुकड़ों से पेट भरना बड़ी लज्जा की बात है। इस दशा का सुधार ही वास्तव में संसार में हमको सुखी और सम्मानित बना सकता है। हम लोग बहुत दिन से प्रयत्न कर रहे किन्तु हमको सफलता जैसी चाहिये नहीं प्राप्त हुई। हमारी समझ में इसका एकमात्र कारण यह था कि हम लोग ठीक मार्ग का अनुसरण नहीं कर रहे थे। हम लोगों की दशा कुछ इस कथा के रोगी की भांति थी। एक समय एक मनुष्य किसी वैद्य के घर गया। पूछने पर उसने कहा कि पेट में दर्द है और उसकी दवा चाहिये। वैद्यजी के पूछने पर उसने कहा कि कल मैंने कुछ जली और कुछ कच्ची रोटियां खाई थीं। वैद्यजी ने हाल सुनकर एक पुड़िया उसके हवाले की और कहा कि इसका अंजन आंख में लगाना। रोगी बहुत चकराया। उसने कहा आंख में नहीं दर्द मेरे पेट में दर्द है। आंख की दवा से पेट का दर्द कैसे आराम होगा ? वैद्यजी ने हंस कर कहा तुम्हारी दवा वास्तव में यही है, यदि तुम्हारी आंख ठीक होती तो तुम जली और कच्ची रोटी न खाते। इसी रोगी से कुछ मिलती जुलती दशा हम लोगों की भी है। हम लोग भी पेट की ज्वाला से पीड़ित हैं, भूख के क्लेश से चिल्ला रहे हैं, दरिद्रता के शिकार हो रहे हैं, किन्तु चाहते हैं दो चार बड़ी २ नौकरी। हमारी आंखों से यह नहीं दिखाई देता है कि हमारी बीमारी

दूर करने के लिए यह आवश्यक है कि अपने कोष के रुपयों के खर्च का प्रबन्ध हमारे हाथ में आजाये क्योंकि ऐसा होने पर हम सब रोग और दरिद्रता को दूर भगाने का उपाय कर सकेंगे। हम लोगों को भी आंख के लिए अन्जन की आवश्यकता है। उस रसायन को प्राप्त करना हमारा और आपका एकमात्र उद्देश्य होना चाहिये।

इसी रसायन का दूसरा नाम

स्वराज्य है।

ज़मीन वही है, हल भी वही हैं, काम करनेवाले भी वेही हैं, गल्ला उतनाही नहीं वरन् उससे अधिक पैदा होता है किन्तु तब भी रोजही देश में दरिद्रता की चिल्लाहट सुनाई पड़ती है। इसी दरिद्रता के कारण अकालों में हमारे इतने प्राणी मरे हैं जितने प्राणी समस्त संसार में सौ वर्ष की लड़ाइयों में नहीं मरे। प्लेग, मलेरिया सी बीमारी क्या पहिले भारत में कभी हुई नहीं फिर आज ही इनका प्रकोप इतना क्यों है? इङ्गलैण्ड में भी एक बार प्लेग का भीषण प्रकोप हुआ था किन्तु उसके बाद प्लेग का निशान भी वहां नहीं दिखाई दिया। और सब बातों को जाने दीजिये अपने शरीरों से ही अपने पूर्वजों के शरीरों की तुलना कर देखिये, यह भी न सही स्वतंत्र देशों के नवयुवकों से अपने नवयुवकों की तुलना करिये। कितना अन्तर है? इन सब बातों का एकमात्र कारण स्वराज्य का न होना ही है। हम इन बातों का दोष अपने शासकों पर नहीं मढ़ते, हम यह नहीं कहते कि हमारी दुर्गति के कारण वेही हैं किन्तु हम इतना अवश्य कहेंगे कि बहुत कुछ अंशों में हमारी दीन दशा का एकमात्र कारण यह है कि हमारे घर का प्रबन्ध हमारे हाथों में नहीं है। यह अटल सत्य है कि अपने घर का प्रबन्ध जैसा हम कर सकते हैं वैसा युधिष्ठिर समान भी कोई विदेशी नहीं कर सकता। हमारा नहीं वरन् एक प्रसिद्ध अङ्गरेज सचिव का यह कहना है कि सर्वोत्तम सुराज भी स्वराज्य की बराबरी नहीं कर सकता।

अपनी वस्तु को हम चाहते हैं, अपने घर में हम स्वयम् मालिक होना चाहते हैं, अपना पैसा हम अपनी बुद्धि के अनुसार जिन कामों में अपनी भलाई हमको दिखाई दे उसमें खर्च करना चाहते हैं, इसमें कोई बुराई नहीं और न इसके लिए किसी सुबूत या प्रमाण का देना आवश्यक प्रतीत होता है। हम समझते हैं कि आप लोगों में क्या संसार में कोई ऐसा हीन नर न होगा जो यह न चाहे कि अपने घर में मालिक वही रहे। हम मानते हैं कि आप भी

स्वराज्य चाहते हैं

किन्तु बहुत से लोग इस स्वराज्य के प्रस्ताव को pious wish पवित्र आकांक्षामात्र समझते हैं। बहुतों को अपनी शक्ति में विश्वास नहीं है और कितने ही इसे अविश्वास की दृष्टि से देखते हैं। हमको विश्वास नहीं कि ऐसे लोग इस सभा में होंगे। किन्तु यदि ऐसे लोग हों, जो समझते हों कि स्वराज्य स्वप्नमात्र है, अभी उसकी प्राप्ति में बहुत समय बाकी है, उन सज्जनों से हमको इतना ही पूछना है कि वे आस्तिक हैं या नहीं, ईश्वर की शक्ति, उसकी इच्छा, उसकी प्रेरणा को वे सर्वोपरि मानते हैं या नहीं? यदि वे ईश्वर की सत्ता को स्वीकार करते हैं, यदि उनको यह विश्वास है कि संसार किसी विशेष नियम से चलाया जा रहा है, यदि वे मानते हैं कि ये विशेष नियम अमिट और सर्वोपरि हैं तो हमको विश्वास है कि वे शीघ्र ही इस सिद्धान्त को स्वीकार कर लेंगे कि भारत में स्वराज्य तुरन्त उदय होना चाहता है।

कुछ समय के लिए पृथ्वी के नक्शे को अपनी नजरों के सामने अंकित करिये। देखिये पूर्व बड़ा गोलार्द्ध आपके सामने है। इतिहास हमको बतलाता है कि सब से प्राचीन जाति आर्यों की, हम लोगों की, है। सबके पहिले हम लोग श्रेष्ठ हुए और हमी लोगों ने दूसरों को श्रेष्ठ बनने के योग्य बनाया। तात्पर्य यह कि स्वराज्य, सभ्यता या जो समझिये उसका सूर्य सर्व प्रथम

भारत

में उदय हुआ। भारत से यह फारस, टर्की आदि देशों में होता हुआ यूरोप पहुंचा, वहां से आगे बढ़कर अमेरिका होता हुआ वह जापान में पहुंचा, जापान से अब यह चीन में आया है, चीन के बाद अब भारत है। भूगोल हमको बतलाता है कि पृथ्वी गोल है, और इसका प्रमाण यही है कि एक मनुष्य किसी भी स्थान से यदि बराबर सीधा चला जाय तो घूम कर वह फिर अपने स्थान पर पहुच जाता है। स्वराज्य का सूर्य भी इसी तरह अब भारत में उदय होना चाहता है। इस सम्बन्ध में ध्यान में रखने को बात इतनी ही है कि भूगोल की परिस्थिति के अनुसार ही देशों का एक के बाद दूसरे का उदय हुआ है। संसार का इतिहास इसका साक्षी है। ऐसी अवस्था में विवश होकर हमको मानना पड़ता है कि भारत के स्वराज्य के दिन आगये, यह ईश्वरप्रेरित है और कोई भी सांसारिक शक्ति ईश्वरीय नियम को मेट नहीं सकती। यही नहीं संसार में यह भी नियम है कि "सबै दिन जात न एक समान" सदा के लिए कोई सुखी और दुःखी नहीं होता। उर्दू के एक कवि ने भी कह रक्खा है

जहां बजते हैं नक्कारे वहीं मातम भी होता है

आज जो हँस रहा है वह कल रोवेगा और आज जो रो रहा है वह कल हँसेगा। ईश्वर की यही लीला है। इस नियम की वैज्ञानिक, वेदान्ती या आध्यात्मिक टीका करने में हम आपका समय न लेंगे। कविकुल किरीट कालिदास के शब्दों में हम इतनाही कह देना अलम् समझते हैं कि "कस्यात्यन्तंसुखमुपनतं दुःखमेकान्ततो वा। नीचैर्गच्छत्युपरि च दशा चक्रनेमिक्रमेण।" कोई ऐसा नहीं होता जो सदा सुखी रहे न कोई संसार में ऐसा ही है जो सदा एकान्त दुःख ही का भोग करे। मनुष्यों की सुख तथा दुःख की दशा सदा रथ के पहियों की भांति ऊंची नीची होती रहती है। यह बात जैसे मनुष्यों की दशा के लिए ठीक है वैसे ही जातियों की दशा के लिए भी ध्रुव है। ईश्वर ने किसी जातिविशेष के नाम यह पट्टा नहीं लिख दिया है कि वह सदा विजयी ही रहे, सदा दूसरों का शासन ही करती रहे और न किसी जातिविशेष के ललाट में उसने यही लिख दिया है कि वह सदा पराजित और पर-पददलित ही बनी रहे। जो लोग यह समझते हैं कि ईश्वर ने अब यह नियम बना दिया है, कि गोरी जातियाँ सदा काली, पीली और भूरी जातियों का शासन करें, विजयी रहें वे ईश्वर को कलङ्क लगाते हैं, वे भूल करते हैं, उन्हें संसार का ज्ञान नहीं और न वे संसार की वर्तमान स्थिति से परिचित ही हैं। संसार में इस समय भी सब से गोरी, स्वरूपवती, सब से वीर और भली आयरिश, पोल और फिन जातियां हैं, किन्तु संसार से छिपा नहीं कि उनकी दशा कैसी है।

वर्तमान समय में संसार में रूस की बड़ी धाक थी किन्तु उस समय को बहुत दिन नहीं बीते हैं जब रूस तुर्किस्तान के आधीन था। जब तातार के अमीर ओमरा रूस की सैर को जाते थे, रूस के बड़े से बड़े अमीर सरहद पर जाकर उनको भेंट दिया करते थे और उनके पैरों पर सर नवाते थे। आज वही रूस उन्हीं तुर्क वंशजों के लिए हौआ हो रहा है।

आज से २५० वर्ष पहिले जर्मनी ही की काहे में गिनती थी। जर्मनी पर पोलैंड के राजाओं का अधिकार था। जर्मन राजे यूरोप के अन्य राजाओं की दरबारदारी किया करते थे और उनके टुकड़ों पर जीते थे किन्तु जैसे Peter the Great ने शृगाल रूस को भालू बना दिया, उसी तरह से फ्रेडरिक दि ग्रेट और बिसमार्क ने तोते जर्मनी को उकाब बना दिया और आज उसकी शक्ति क्या है यह आप रोज ही पढ़ते होंगे। पोलैंड का जर्मनी पर शासन था आज वही पोलैंड जर्मनी के अधीन है।

निद्रावस्था।

मनुष्यों के लिए जैसे निद्रा का समय होता है, जातियों के लिए भी वैसे ही निद्रावस्था का समय आता है। वह उनका पतनकाल होता है, सुख की अवस्था का पहिया घूम जाता है और कुछ काल के लिए पराधीनता, गुलामी और दुःख का साम्राज्य जम जाता है। चक्का घूमने पर जो जाति सुख भोगती रहती है वह दुःख भोगती है और जो दुःख भोगती रहती है वह सुख। रोमन राज्य की गाथा अब इतिहास के पृष्ठों को ही सुशोभित करती है किन्तु एक समय था जब संसार में उसकी तूती बोलती थी। मुस्लिम सभ्यता ने उस पर विजय लाभ की, वह दो पूर्वीय और पश्चिमीय खंडों में विभक्त हुआ। एक का केन्द्र रोम हुआ दूसरे का बेजन्टाइन किन्तु १८०६ में रोमन सम्राट की पदवी का भी नामोनिशान संसार से मिट गया। मुसलमानों का भी काल बहुत चढ़ा बढ़ा था। समस्त यूरोप में इनका दौरदौरा था। स्पेन, पोर्तुगाल और सभी बड़े बड़े राष्ट्रों को इन लोगों ने पददलित किया किन्तु निद्रा, विश्राम के लिए प्रकृति ने इन्हें भी बाध्य किया। यही दशा हमारी भी हुई। एक समय में भारत का भाग्यसूर्य दोर्दंड प्रताप से संसार रूपी गगन मंडल में चमक रहा था, इसने संसार को सभ्यता प्रदान की, कलाएँ सिखलाईं, और विद्यायें पढ़ाईं किन्तु प्राकृतिक नियमानुसार इसे भी निद्रा लेनी पड़ी। अन्य देशों में इसमें अन्तर इतना ही है कि उनका पता नहीं, उनका अस्तित्व केवल इतिहास के पृष्ठों में ही है किन्तु भारत का टिमटिमाता प्रदीप अब भी प्रज्वलित है। इससे भी प्रगट होता है कि ईश्वर इससे कोई बड़ा काम लेने वाला है और उसीके लिए अब यह अग्रसर हो रहा है।

प्रबुद्ध दशा।

सदा ही कोई मनुष्य सोता नहीं रह सकता। उसी प्रकार से सदा कोई जाति भी निद्रावस्था में नहीं पड़ी रह सकती। निद्रावस्था कोई ऐसी अवस्था नहीं जिसमें मनुष्य की शक्तियों का ह्रास हो जाय, जिसमें मनुष्य का चेतन शक्ति जाती रहे, उसका मस्तिष्क हीन हो जाय या उसकी मानसिक चित्तवृत्तियां बेकाम हो जायँ। निद्रावस्था में सब कुछ बना रहता है फर्क इतना ही होता है कि एक चादर की झिल्ली सी बीच में पड़ जाती है। इसके कारण सब कुछ पास रहते हुए भी मनुष्य अपने को खो बैठता है। दशा ऐसी हो जाती है कि वह सरीहन जीवित पलङ्ग पर पड़ा हुआ होता है और स्वप्न में देखता है कि वह फाँसी पर टँगा हुआ है। इतना ही नहीं कि वह अपने को फाँसी पर टँगा हुआ देखता हो वरन वह फाँसी के दुःख, उसकी यन्त्रणा को भी अनुभव करने लगता है। यद्यपि हम लोग जानते हैं कि वास्तव में बात यह नहीं है और यह कि आँख खोलकर देखने पर वह स्वयम् भी अपनी मूर्खता पर हँस सकता है। निद्रावस्था के अवसान का समय वह होता है जब वह अर्धसुप्त और अर्ध जागृत अवस्था में

होता है। इस अवस्था में वह बहुत कुछ समझने लगता है किन्तु निद्रावस्था के कारण वह आलस्य में पड़ा रहता है और अपने को असमर्थ समझता है। इस अवस्था से पूर्व दिशा में उगे हुए सूर्य का प्रचण्ड ताप, पक्षियों की चहचहाहट, तीक्ष्ण ठंढी हवा का मुंह पर आघात मनुष्य को जगा देता है। सोती हुई जातियों को शासकों का अत्याचार और पड़ोसी जातियों का जागना और उनका उत्कर्ष जगा देता है। भारत के लिए भी ये सब साज आज मौजूद है। निद्रावस्था भारत की बीत चुकी है। जापान की रूस पर विजय, चीन के जागने और वहां प्रजातन्त्र के स्थापित होने ने भारत की निद्रा भंग कर दी है। भारतवासियों के कर्तव्यपथ पर आरूढ़ होने में इस समय कोई रुकावट नहीं है। ज़रा आँख खोलकर देखने से वे स्वयम् अपनी दशा पर हँस सकते हैं और समझ सकते हैं कि असमर्थता का विचार जो उन्हें सता रहा है वह केवल निद्रावस्था का मोहजाल है और कुछ नहीं।

प्रबुद्ध काल

आगया है। भारत इस समय निद्राग्रस्त नहीं वरन् प्रबुद्ध भारत है, उसके शरीर के अवयव सब ठीक हैं, उसकी मानसिक शक्तियाँ सब ठीक हैं, उसमें किसी प्रकार की हीनता विद्यमान नहीं है और हर प्रकार से कर्मक्षेत्र में उतरने के लिए वह उपयुक्त है। हमारी शक्तियों को हमसे छिपाने के लिए, उनके ज्ञान से हमको रहित करने के लिए जो निद्रावस्था की झिल्ली या मोहजाल का चादर हम पर छोड़ा गया था उसे भी हम लोगों ने उतार फेंका है और आँख खुलने पर आज हम साफ देख रहे हैं कि हम मोहनिद्रा में थे, भ्रमजाल में फँसे थे और हम में किसी प्रकार की कमी नहीं। हम पर एक

मायाजाल

रच दिया गया था। हम बराबर यह सुना करते थे कि हम हीन हैं, हमारी मानसिक शक्तियां हीन हैं, हम में संगठन शक्ति नहीं, ऐक्य नहीं तात्पर्य यह कि उत्कर्ष की सभी बातें हममें नहीं हैं। सुनते सुनते हमें ऐसा ही विश्वास भी हो गया था यद्यपि वास्तव में न ऐसा था ही और न अब है। आपने यह कथा सुनी होगी। एक मुसलमान थे। धनी थे साथ ही बहुत कड़े और लड़कों को सदा पंजे के तले रखते थे। लड़कों को न धन ही देते न स्वतन्त्रता। बहुत दुःखी होने पर एक दिन लड़कों ने मिलकर सलाह की कि कुछ करना चाहिये। चारों पांचो लड़कों ने एक बात तय की। अनन्तर एक के बाद एक सब पिता के पास पहुंचे। पहिले ने जाते ही कहा "मियां जान आज आप सुस्त क्यों हैं क्या कुछ तबियत अलील है? पिता ने कहा कुछ तो नहीं मैं तो बिलकुल अच्छा हूं। कुछ देर बाद दूसरे लड़के ने पहुंचकर कहा, "आज आपकी तबियत कुछ खराब मालूम होती है, बात क्या है। पिता ने कहा नहीं २ किन्तु उनके हृदय में शक हो गया कि वाकई कुछ हुआ तो नहीं। इसी तरह तीसरे, चौथे और पांचवे पुत्र ने आकर पूंछ तांछ की। इस सब का फल यह हुआ कि मियां साहब को विश्वास हो गया कि वे बीमार अवश्य हैं. वे जाकर खाट पर लेटे और थोड़े दिन बाद समाप्त हो गये। तात्पर्य यह कि बहुत दिनों से सुनते सुनते कि हममें शासन-शक्ति नहीं, संगठनशक्ति नहीं, वृत्त नहीं हम लोगों को विश्वास हो गया है कि वास्तव में बात ऐसी ही है और हम लोग हीन हैं।

यह दन्तकथा नहीं वरन् वैज्ञानिक सत्य है। आप इसको स्वयम् जाँचकर सकते हैं। एक तेज़ से तेज़ लड़के से आप सदा यह कहते रहें कि गधा है, मूर्ख है, कुछ नहीं पढ़ता और देखेंगे कि वास्तव में कुछ समय बाद वह गधा हो जायगा। इसके विपरीत एक मूर्ख बालक को आप सदा उत्साहित करते रहें कि शेर है, बड़ा तेज़ है थोड़े दिनों में आप देखेंगे कि वह वास्तव में सिंह हो गया। इङ्गलैंड में पलने पर पड़ा हुआ लड़का सुना करता है कि वह इङ्गलैंड का प्रधान सचिव होगा, वह भारत का वाइसराय होगा, वह शासक होगा वह वही होता है हमारे आपके लड़के सुनते हैं कि वे दफ़्तर के बड़े बाबू होंगे, वह वही होकर रह जाते हैं। यह मायाजाल अब छिन्न भिन्न हो गया है। आज जीवन के सब विभागों में, विद्या की सभी कलाओं में हमारे भाइयों ने संसार को चकित कर दिया है, किसी में यह शक्ति नहीं कि वह कह सकें कि भारतवासियों में शक्ति नहीं। संसार माने या न माने, बहुत से मनुष्यों का हित इसी में है कि इस विश्वास को वे हममें न पैदा होने दें किन्तु हमको इसके कहने में संकोच नहीं कि भारतवासी सब प्रकार से और सब दृष्टि से योग्य हैं। एक मामूली जर्मन, रूसी, इटैलियन, अँगरेज़, जापानी या चीनी किसी प्रकार से भी एक मामूली भारतवासी से किसी बात में बढ़ा हुआ नहीं है। यह बात ही दूसरी है कि दशा और स्थिति के कारण दोनों में किसी विशेष बात में कोई विशेष अन्तर हो। भारतवासियों ने मायाजाल और मोहनिद्रा को छिन्नभिन्न कर दिया है। उन लोगों ने समझ लिया है कि वे सब प्रकार से योग्य और शक्तिसम्पन्न हैं। इतना ही नहीं प्राचीन गौरव और गरिमा का खून फिर उनकी रगों में जोश मारने लगा है और अब वे सुप्तावस्था में नहीं वरन जागृत अवस्था में हैं। उन लोगों को विश्वास हो गया है कि उनका भविष्य उनके हाथों में है। जातियों के संघर्ष और जीवन-संग्राम के कशमकश ने उन्हें सांसारिक इतिहास के समुद्र की मंझधार में ला पटका है और उन लोगों ने समझ लिया है कि उन्हीं के हाथ पैर के चलाने पर उनकी रक्षा और उनका अस्तित्व निर्भर है। जापान का उदय, चीन का जागना, पीतातङ्क का रौला, मुसलमानों के एक साम्राज्य स्थापित करने के स्वप्न ने और अन्तिम किन्तु वास्तव में सबसे प्रधान इस यूरोपीय महाभारत ने उनमें नया जीवन डाल दिया है और वे आंख खोलकर जातियों की दौड़ में सबसे बाज़ी लेने को प्रस्तुत हैं।

भारत के गर्भ में सब कुछ वर्तमान है और आज उन सब वस्तुओं का उपयोग कर फिर वह एक बार अपना किरीट और रत्नजटित मुकुट धारण कर उसके प्रकाश से संसार को चकमित किया चाहता है। वह जानता है कि मानसिक शक्तियों में वह किसी से कम नहीं। आज उसके सुपूत दादाभाई, रवीन्द्रनाथ, जे० सी० बोस, पी० सी० राय, ब्रजेन्द्रनाथ सील, सर गुरुदास, तिलक, सुरेन्द्रनाथ, लाजपति आदि संसार में अपना सिक्का जमाये बैठे हैं। वह जानता है कि जनसंख्या में चीन को छोड़ कोई भी राष्ट्र उसका मुकाबला नहीं कर सकता। सभी साज उसके पास मौजूद हैं, केवल अवसर की उसे आवश्यकता थी। अब इस अवसर के प्राप्त होने का रोकना किसी की शक्ति के बाहर है।

जिनके आंख हो वे इस बात को देख सकते हैं कि भारत अब पुराना भारत नहीं है, और अब उसमें भीषण परिवर्तन हो गया है। इसका सबसे बड़ा सुबूत यही है कि कचेहरियों की क्लर्की का ध्यान छोड़ अब लोग फौज़ में भर्ती होने को लालायित हैं और आज उनकी इस पुकार से—कि सेना में ऊंचे से ऊंचे पद पर भारतवासी नियुक्त किये जायँ—आकाश गूंज रहा है

आज देश में चारो ओर से स्वराज्य की चर्चा सुनाई दे रही है। भारतवासी चारो ओर से कह रहे हैं "ईश्वर ने सब मनुष्यों को एक सा स्वतंत्र पैदा किया है। उसकी इच्छा है कि सब स्वतंत्र रहें, कोई किसी का प्रभु और दास न हो। सब जातियों को अपने २ देश में अपनी स्थिति और आवश्यकता के अनुसार पूर्ण रूप से स्वतंत्रता पूर्वक उन्नति करने का अवसर प्राप्त हो।" भारत आज नया स्वप्न देख रहा है। यह एक बड़े साम्राज्य का स्वप्न है। इसमें भारतवासी स्वतंत्र होंगे, हर प्रकार की स्वतंत्रता उनके हाथों में होगी, उनकी सेना होगी, उनकी नौ-सेना होगी, वे कर लगावेंगे और उसे खर्च करेंगे, उनके साथ साथ होगा स्वतंत्र आयर्लैंड, स्वतंत्र इङ्गलैंड, स्वतंत्र स्काटलैंड, स्वतंत्र कैनेडा और स्वतंत्र आस्ट्रेलिया। सब स्वतंत्र होंगे किन्तु स्वतंत्र होते हुए भी साम्राज्य उनका एक होगा और अङ्गरेज़, आयरिश, स्काच, कैनाडावासी, अफ्रीकन, आस्ट्रेलियन प्रभु और दास की हैसियत से नहीं, गोरे और काले की हैसियत से नहीं, वरन् भाई भाई और बराबरवाले की हैसियत से गले मिलेंगे। वह दिन भारतवासियों के लिए स्वर्णदिवस होगा, उस समय हमारा देश धनधान्य से पूरित होगा, हम क्षीण शरीर न होंगे और न हम आज की तरह जवान होते ही मरेंगे। उसी दिन के शीघ्र लाने का प्रयत्न करना संसार के प्रत्येक मनुष्य का और विशेष कर हमारा और आपका कर्तव्य है। ईश्वर की इच्छा यही है, उसकी प्रेरणा यही है, हीन जातियों को स्वतंत्र करने के लिए और संसार में समता, स्वतंत्रता और स्वराज्य को प्रतिष्ठित करने के लिए ही उसने इस यूरोपीय महाभारत का भीषण आयोजन किया है। स्वराज्य की प्राप्ति के लिए उद्योग न करना केवल सदा अपने को दुःखी रखना, अपने बालबच्चों को द्वार द्वार का भिखारी बनना ही नहीं है वरन वह ईश्वर की इच्छा के प्रतिकूल चलना, उसकी आज्ञा की अवहेलना करना और भीषण पाप करना है। तात्पर्य यह कि स्वराज्य साधन के यज्ञ में हम सब को सम्मिलित होना है और इस यज्ञ की सफलता के लिए सामग्री एकत्र करना हमारा आपका कर्तव्य है। स्वराज्य के लिए सब से पहिली वस्तु जो आवश्यक है वह

शिक्षा है

इसलिए नहीं कि बिना शिक्षा के स्वराज्य नहीं होता वरन इसलिए कि हमारी ज्ञान-चक्षु खुली रहें और इसलिए कि पेट के दर्द से बचने के लिए हम जली या कच्ची रोटियां न खायँ। शिक्षा को फलप्रद और सर्व सुख-देनी बनाने के लिए यह आवश्यक है कि वह कलियुग में सत्यनारायण की कथा के समान थोड़ा ही समय ले, थोड़ा ही धन खर्च करावे किन्तु फल अधिक से अधिक दे। यह तभी हो सकता है जब वह हमको उस भाषा में प्राप्त हो जिसे हम माता के दुग्ध के साथ पीते हैं। मातृभाषा का तिरस्कार कर कोई जाति संसार में स्वतंत्र नहीं हो सकती, इसका कारण है और वह यह है कि हमारा साहित्य ही वह श्रृङ्खला है जो हमारे पूर्वजों से हमें बांधे हुए हैं और जिसके ज्ञान से हममें आत्मसम्मान और अभिमान पैदा होता है। प्राथमिक शिक्षा का देश में प्रचार ही नहीं हो सकता यदि वह अपनी मातृभाषा में न दी जाय। माता, मातृभाषा और देशमाता सर्वश्रेष्ठ और सर्वपूज्य हैं। यह प्रसन्नता की बात है कि आपकी सभा मातृभाषा के प्रचार के काम में लगी हुई है। आपको उचित है, यदि आप भारतमाता के ऋण से मुक्त होना चाहते हैं कि ग्राम ग्राम में अपनी सभा की आप शाखाएँ खोल दें। शाखाओं के साथ ही साथ वाचनालय भी हों। स्वराज्य की एकमात्र कुंजी पुराने साहित्य को

जीवित रखना और आधुनिक साहित्य को सर्वश्रेष्ठ बनाना है। आप लोगों में से जिन भाइयों ने संसार के इतिहास को कुछ भी देखा है उनको मालूम होगा कि किसी जाति को गुलाम बनाने के निमित्त संसार से उसका अस्तित्व मिटाने के लिए पहिला और सबसे प्रबल उपाय यह है कि उस जाति के साहित्य का नाश कर दिया जाय, और उस जाति की भाषा मृतभाषा बना दी जाय। न साहित्य रहेगा न भाषा रहेगी, सब काम हो जायगा, बस न रहेगा बांस न बजेगी बांसुरी। भाषा के मृत होते ही स्वराज्य के चैन की वंशी नहीं बज सकती। इतिहास के पृष्ठों को उलटिये तब आप को पता चलेगा कि मातृभाषा और स्वराज्य में कितना घनिष्ठ सम्बन्ध है। आयरलैंड के इतिहास को देखिये, पोलैंड की शासनप्रणाली पर दृष्टिपात करिये, फिनलैंड की हिस्टरी को पढ़िये तब आपको पता चलेगा कि इन जातियों ने अपनी भाषा के अस्तित्व को बनाये रखने के लिए कितने कष्ट सहे हैं। पोलैंड और फिनलैंड में वहां के निवासी मातृभाषा के स्कूल नहीं खोल सकते थे, मातृभाषा पढ़ानेवालों को सज़ा दी जाती थी और कितने हो मातृभाषा के प्रचारक जेलों में सड़ गये, कितनों ही की हड्डियों का भी साइबीरिया के बर्फिस्तान में पता नहीं रहा। शासक चाहते थे, मातृभाषा का नाश हो जाय क्योंकि वे जानते थे कि जब तक मातृभाषा जीवित है, जाति भी जीती है और वह परतंत्रता की बेड़ी में नहीं जकड़ी जा सकती। आपके मार्ग में कोई ऐसी कठिनाई नहीं, आपसे कोई नहीं कहता कि आप अपनी भाषा का प्रचार न करें। मातृभाषा की हीनता, उसके तिरस्कार का परिणाम जो होता है वह भी हम लोगों से छिपा नहीं। आज बंगाल, मध्यप्रदेश, बिहार, बंबई तथा मद्रास से अपने प्रान्त और पंजाब की दशा की तुलना कर लीजिये। आपका प्रान्त पिछड़ा हुआ क्यों है? क्या इसलिए कि यहां के निवासी बली कम हैं? क्या इसलिए कि वे पराक्रमी कम हैं, धनी कम हैं, वीर कम हैं या मानसिक शक्तियों में कम हैं? नहीं, इसका प्रधान कारण यही है कि उन प्रान्तों में मातृभाषा का जितना प्रचार है, उसकी अपेक्षा हमारे प्रान्त में वह बहुत कम है। संसार में एक अँगरेज़ भी न होगा जो अँगरेज़ी न जानता हो, एक जर्मन न होगा जो जर्मन न जानता हो, एक रूसी न होगा जो रूसीभाषा न जानता हो; अपने ही देश में देखिये कोई भी पठित बंगाली ऐसा नहीं मिलेगा जो बंगला न जानता हो; कोई पठित गुजराती ऐसा नहीं मिल सकता जो गुजराती न जानता हो। कोई महाराष्ट्र ऐसा नहीं जो मराठी न जानता हो, किन्तु दुःख और लज्जा के साथ कहना पड़ता है कि आपको सहस्रों, पढ़े लिखे हिन्दू सन्तान ऐसे मिलेंगे जो हिन्दी न जानते हों। हम लोगों की गिरी दशा का एकमात्र कारण यही है। इस शोचनीय अवस्था के सुधार के लिए आपकी सभा काम कर रही है, प्रान्त में और भी सभाएँ काम कर रही हैं किन्तु कर्तव्यक्षेत्र अभी बहुत विस्तृत है और परिश्रम की अभी बहुत आवश्यकता है। जब तक एक भी पठित हिन्दू इस प्रान्त में ऐसा रहेगा जो हिन्दी न जानता हो, तबतक हमको अपना यत्न और परिश्रम शिथिल न करना चाहिये। कितनों ही को कहते लज्जा नहीं आती कि "भाई हम हिन्दी विन्दी नहीं जानते"। इसका फल क्या होता है? अपने घर को एक भी बात वे नहीं जानते। वे नहीं जानते कि रामायण में क्या है, राम, सीता, लछमण के नाम को या कथा के कुछ अंश के जानने को हम रामायण का ज्ञान नहीं कहते, वे नहीं जानते कि महाभारत में क्या है, जब वे रामायण और महाभारत को ही नहीं जानते तब उनके सम्बन्ध में वाल्मीकि या व्यास की चर्चा ही वृथा है। ऐसे लोगों में जातीयता का भाव या जातीय सद्भिमान कैसे विकाश पा सकता है? इनमें अपने पूर्वजों का अभिमान किस प्रकार आसकता

है और जिनमें यह नहीं वे संसार की जातियों की घुड़दौड़ में बाजी कब मार सकते हैं? अपने सुख के लिए, अपने बाल बच्चों के सुख के लिए, अपने देश के लिए और संसार में सर्वश्रेष्ठ बनने के लिए मातृभाषा का ज्ञान, उसका प्रचार, उसके साहित्य की वृद्धि अनिवार्य रीति से आवश्यक है। इसके प्रति उदासीनता दिखाना, इसके प्रति अपना कर्तव्य पालन न करना, हिन्दी न पढ़ना, अपने बच्चों को हिन्दी न पढ़ाना जातीय पाप का भागी होना है।

यह प्रसन्नता की बात है कि पूर्व की अपेक्षा अब हिन्दी का प्रचार बहुत अधिक हो रहा है किन्तु यह भी अभी सन्तोषप्रद नहीं है।

हिन्दी की हीनता

का एक प्रबल कारण और भी है और वह है सरकार का उर्दू का पक्षपात। न्यायालयों में, सरकारी दफ़्तरों में हिन्दी को उर्दू के समान अधिकार न देना अन्याय है। मि० बर्न सरीखे अंगरेज कौंसिल में जो चाहें कहलें, वे इस समय अधिकार पर हैं और राजा या उसका मंत्री जिसे चाहे, उसी को न्याय कह सकता है, किन्तु

विवेक की कसौटी

पर हिन्दी के विरुद्ध कोई दलील नहीं उपस्थित की जा सकती। सभ्य संसार का नियम है— जहां न्याय का महत्व स्वीकार किया जाता है—कि न्यायालयों में भाषा वही प्रचलित हो जो जनता की भाषा हो। हमको उर्दू से कोई वैर नहीं, हम यह नहीं कहते कि उर्दू अदालतों से निकाल दी जाय। हम यह कहते हैं कि दोनों भाषाओं को समान आदर मिले। उर्दू जाननेवालों को उर्दू के द्वारा काम करने का अधिकार रहे, हिन्दी जाननेवालों को हिन्दी के द्वारा। जो लोग उर्दू अक्षरों में डिगरी या इज़हार आदि की नक़ल मांगें उनको उन अक्षरों में दी जाय, जो नागरी अक्षरों में मांगें उनको नागरी में। ऐसा होने में किसी न्याय चाहनेवाले हिन्दू या मुसलमान को शिकायत का अवसर न रहेगा। जिस भाषा का देश की अदालतों में आदर नहीं उसकी उन्नति नहीं होती। जब इङ्गलैण्ड नारमनों के आधीन था उस समय उसके न्यायालयों में फ्रेंच भाषा प्रचलित थी। इतिहास पढ़नेवाले जानते हैं कि उस समय जो अङ्गरेज़ पढ़ना चाहते थे, वे भी फ्रेंच भाषा ही पढ़ते थे। अङ्गरेज़ी भाषा का न कोई मान था और न उसको कोई पढ़ता ही था। उस समय अङ्गरेज़ कुछ भी उन्नति न कर सके। सन् १३६२ में न्यायालयों में अङ्गरेज़ी भाषा की प्रतिष्ठा हुई, फिर क्या था कुछ ही समय बाद देश में शिक्षा का प्रचार हो गया और इङ्गलैंड का भाग्य चमक उठा। सरकारी विभागों में हिन्दी का समुचित मान न होने से हिन्दी पढ़नेवालों की संख्या घटी हो सो ही नहीं, इसका सबसे नाशकारी प्रभाव यह पड़ा कि प्राथमिक शिक्षा का प्रचार हममें न हो सका। हमारा प्रान्त शिक्षा में बंबई और बंगाल प्रान्त से भी बढ़ा हुआ था किन्तु न्यायालयों में केवल उर्दू की प्रतिष्ठा और हिन्दी का अपमान होने से वह दिन दिन पीछे पड़ता गया। शिक्षा-कमीशन के सामने अपना मत प्रगट करते हुए स्वर्गवासी राजा शिवप्रसाद जी ने कहा था :—

"बङ्गाल की वृद्धि का रहस्य यही है कि उनकी जातीय लिपि का न्यायालयों, महलों, दूकानों, खेतों और झोपड़ों में एक समान मान है। संयुक्तप्रान्त के न्यायालयों में भी हिन्दी की प्रतिष्ठा कर दीजिये और इस वृद्धावस्था में भी मैं इन्स्पेक्टर बनने को तैयार हूँ और यह शर्त करता हूँ

कि शिक्षा के प्रचार में बङ्गाल से यदि हमारा प्रान्त बाज़ी न मार ले तो मैं अपनी पेंशन लेना छोड़ दूँगा।" यदि हम लोगों में शिक्षा का प्रचार करना सरकार का अभीष्ट है और यदि हमलोग चाहते हैं कि हमारी सन्तान शिक्षा प्राप्त कर नक़ल करने के सिवा कुछ अपनी ओर से भी कर सके तो उसके लिए यह सबसे प्रथम आवश्यक है कि न्यायालयों में हिन्दी को उसका उचित आदर प्राप्त हो। सरकार का कर्तव्य है कि वह प्रान्त की दोनों भाषा और दोनों लिपियों को अपने कार्यालयों में समान आदर दे। किन्तु सरकार अपना कर्तव्य करे या न करे, हमको अपना कर्तव्य करना उचित है। हमारा कर्तव्य गुरुतर है क्योंकि हिन्दी हम लोगों को भाषा है और उसी के द्वारा हमारी जाति का उद्धार हो सकता है। सरकार ने बहुत कुछ कर भी दिया है, न्यायालयों में हिन्दी को कुछ स्थान प्राप्त हो गया है यद्यपि जितना हम चाहते हैं उतना अभी नहीं हुआ। हमारा आपका कर्तव्य है कि जितना अवसर हिन्दी को अदालतों में प्राप्त है उसका हम पूरा फायदा उठायें। हमारे वकील भाइयों का, जिनको देश और समाज की उन्नति का कुछ भी ख्याल है, यह धर्म है कि अपने हिन्दू मुवक्किलों का, जो नागरी अक्षरों में परिचय रखते हों, सब काम नागरी अक्षरों ही के द्वारा करें। हमारा आपका यह कर्तव्य है कि हम जो नालिश आदि करें, प्रार्थनापत्र आदि गवर्नमेंट के किसी विभाग में दें, नागरी ही में लिखें। हम आप यदि यह निश्चय करलें तो हिन्दी का प्रचार शीघ्र ही हो सकता है। अब स्वावलम्ब और आत्मपौरुष का युग है। बिना अपने हाथ पैर हिलाये कोई लाभ, कोई सुख नहीं प्राप्त हो सकता। आपकी ओर से न्यायालयों में हिन्दी लिखनेवाले क्लर्क होने चाहियें। सभा से इनको वेतन मिलना चाहिये। इनका काम यह होगा कि वादी-प्रतिवादियों से बिना कुछ लिये हुए उनकी नालिश आदि लिख दें, उनके प्रार्थनापत्र लिख दें। यदि हम आप दृढ़प्रतिज्ञ हो जायँ, यदि हम आप तय कर लें कि हम हिन्दू हैं, हिन्दी हमारी मातृभाषा है और हमारा सब अदालती काम हिन्दी ही के द्वारा होगा तो सरकार चाहे या न चाहे विवश होकर उसे भी हिन्दी के दावे को स्वीकार करना होगा।

हममें से प्रत्येक मनुष्य कुछ न कुछ अवश्य ही कर सकता है। जो कुछ हमारी शक्ति में है यदि वह हम करदें तो हम अपना कर्तव्य पालन कर चुके और हम उतने ही पुण्य और यश के भागी हैं जितना कि एक बड़े साम्राज्य का शासनकर्ता या वह मनुष्य जिसकी प्रशंसा करोड़ों मुख एक साथ करते हैं। किन्तु इस बात का निश्चय होना चाहिये कि हम यथाशक्ति सब कर रहे हैं, ईश्वर की दी हुई शक्ति से हम पूर्ण रीति से काम ले रहे हैं। हमको सचेत रहना चाहिये कि आलस्य को हम असमर्थता का नाम देकर संतुष्ट नहीं हो जाते। विघ्न-बाधाओं से हमको निरुत्साहित न होना चाहिये क्योंकि यदि हम कर्तव्यपालन में लगे हुए हैं तो ईश्वर को भी विवश हो कर हमारा साथ देना होगा।

अब दो एक बातों को सूक्ष्म में कहने के बाद मैं विश्राम लूंगा। जैसा मैं कह चुका हूं देश में चारो ओर जागृति के लक्षण हैं। क्या राजनैतिक और क्या मानसिक क्षेत्र में स्वराज्य और स्वतंत्रता की पुकार है। जिस प्रकार से व्यर्थ की वाह्य रोकटोक और वाह्य कष्टों को दूर करने के लिए राजनैतिक क्षेत्र में स्वराज्य की आवश्यकता है उसी प्रकार मानसिक शक्तियों के विकाश के लिए भी विचारस्वातंत्र्य की आवश्यकता है। राजनैतिक तथा मानसिक स्वतंत्रता का प्रायः घनिष्ठ सम्बन्ध रहता है। कभी कभी और कुछ के अंश में सदा एक के बिना भी दूसरी रह सकती है, किन्तु

पूर्ण विकास दोनों का साथ ही साथ सम्भव है। इसोलिए सब स्वराज्य की कुंजी मेरे विचार में साहित्य ही है। हमारे स्वतंत्र साहित्य से ही राजनैतिक स्वतंत्रता मिलेगी। स्वतंत्र साहित्य तभी होगा जब आप अपनी मातृभाषा से अटल प्रेम रखते हुए उसके गौरव को समझेंगे और उसके द्वारा अपने बालकों को शिक्षा देंगे। हमारे देश की जो स्थिति है उसमें मेरे विचार में हमारी भाषा स्वराज्य का मूलमन्त्र होगी। जो लोग अंगरेज़ों की अन्य बातों के साथ उनकी भाषा को अपने आपस के कामों में स्थान दे रहे हैं, मेरे विचार से वे देश का अहित कर रहे हैं और स्वराज्य की ओर जाने में देश की चाल को रोक रहे हैं। अपनी सब बातों में, अपनी सभाओं में, अपने नित्य के काम में, अपने पत्रव्यवहार में, अपनी विचारशैली में, अपनी शिक्षा में, तात्पर्य यह कि अपने व्यक्तिगत अथवा राष्ट्रीय सब ही कामों में देश-भक्त को अपनी भाषा के गौरव का सदा ध्यान रखना चाहिये। आप अँगरेज़ी पढ़ें, पश्चिमीय विद्याएँ सीखें किन्तु अपनी भाषा द्वारा। इसी में देश का कल्याण है। इस विषय पर कथन करते हुए मुझको हिन्दी साहित्य सम्मेलन की परीक्षाओं का स्मरण आता है। इन परीक्षाओं को स्थापित कर सम्मेलन ने अपनी भाषा द्वारा ऊँची से ऊँची शिक्षा प्राप्त करने का न केवल आदर्श, किन्तु कार्यक्रम हिन्दी संसार के सामने रक्खा है। उसका प्रबन्ध भी इस प्रकार रक्खा गया है कि समस्त भारत के निवासी उससे लाभ उठा सकते हैं। उनमें सम्मिलित होने के लिए युवकों को उत्तेजित करना सभी भाइयों का कर्तव्य होना चाहिये। कहने का तात्पर्य यह कि अपने जीवन का प्रत्येक क्या छोटा क्या बड़ा काम भाषा के रंग में रँग जाना चाहिये, फिर देखिये स्वराज्य और सुख कितनी दूर रह जाता है।

केवल वार्षिक अधिवेशनों और साधारण अधिवेशनों से हमारा मतलब नहीं निकल सकता। उद्देश्य की सिद्धि के लिए यह आवश्यक है कि आपके उपदेशक हों, आपके प्रतिनिधि हों जो तहसील, कसबों और ग्रामों में घूम २ कर पाठशालाएँ स्थापित करायें। कोरे प्रस्तावों को पास करने तथा एक दिन एकत्र होकर कुछ हिन्दी की धूम मचा देने से काम नहीं चलेगा, कोरी बातों का समय नहीं रहा कुछ कर दिखाइये। कर्तव्यक्षेत्र में यदि आये हैं तो आने की लाज रखिये। आजकल स्कूल और कालेज बन्द हैं। क्या यह आशा करना व्यर्थ होगा कि हमारे नवयुवक ग्रामों में घूम घूम कर न सही तो कम से कम आस पास के ग्रामों में पाठशालाओं का प्रबन्ध कर दें। जन्म से लेकर मरण पर्यन्त जो प्रत्येक क्षण आपके साथ रहती है, जिसकी धूलि में लोटकर आप बड़े होते हैं, जिसके जल-वायु और अन्न से आपका शरीर पुष्ट होता है, जो आपको ही नहीं वरन् आपकी माता को भी माता होने योग्य बनाती है क्या उसके लिए आप अपना थोड़ा सा समय भी नहीं दे सकेंगे? क्या उसके लिए आप तनिक सा परिश्रम भी नहीं उठा सकते। माता को अपने पुत्रों को छोड़ और किसका सहारा हो सकता है? आप ही लोगों की आशा पर माता ने अनेकानेक कष्ट सहे हैं। कष्ट के समय सदा यही ध्यान रहता था कि हमारे लड़के योग्य होंगे, एक दिन आवेगा, जब उनकी आंखें खुलेंगी, वे हमारी सेवा में लीन होंगे, हमारा भी दिन फिरेगा और अपनी अन्य बहनों के सामने हमारा सर नीचा न रहेगा। क्या माता की यह आशा भी दुराशा में परिणत होगी। नहीं, मुझे विश्वास है कि आप लोग ऐसा न होने देंगे।

ब्रह्मदेश की वैवाहिक रीति।

[लेखक—श्रीयुत गोपालरामजी।]

ब्रह्मदेश में विवाह की रीति पश्चिम देश की रीति से बहुत कुछ मिलती है। वर-कन्या स्वयम् ही आपस में देख सुनकर एक दूसरे को पसन्द करते और बातचीत कर लेते हैं। केवल मा बाप के पसन्द और चुनाव ही पर वहां का विवाह निर्भर नहीं रहता। जवानी पर पहुँचे बिना यहां स्त्री पुरुषों में विवाह नहीं होता। ब्रह्मदेश में पर्दा नहीं है। स्त्री पुरुष खुल्लमखुल्ला जहां जो चाहे आ जा सकते हैं। इस से उनको आपस में मिलने जुलने और विवाह पक्का कर लेने का अवसर मिलता है।

जब युवक-युवतियों में प्रेम होता है, तब दोनों में उपहार का देन लेन चलने लगता है। उनके मा बाप या और नातेदार इसमें कुछ रोक टोक नहीं करते, यदि युवक युवती के विवाह में उनके माता पिता का कुछ इन्कार होता है तो कन्या, पिता के घर से बाहर होकर अपने प्रेमी के साथ चुपचाप ही कहीं चल देती है और दोनों इस तरह छिपकर कहीं दूर जा रहते हैं। कुछ दिन के बाद जब मा-बाप का क्रोध घट जाता है तो कन्या अपने मनोनीत वर के साथ घर लौट आती है, तब मा बाप, कन्या और दामाद को आदर सत्कार से पधरवाते हैं। इसी तरह के विवाह ब्रह्मदेश में अधिकता से हो रहे हैं। लेकिन इससे कोई यह मतलब न निकाले कि माता पिता की रुचि के अनुसार ब्रह्मदेश में विवाह होता ही नहीं। वैसे विवाह भी बहुत हुआ करते हैं। उस विवाह में नाते रिश्ते के सब लोग नेवता करके जिमाये जाते हैं। यह सब रस्म कन्या ही के घर में पूरी की जाती है लेकिन उसका खर्च वर की ओर से दिया जाता है। विवाह हो जाने के बाद दूलहा ससुराल ही में रहता है। कन्या, स्वामी के घर बहुत नहीं जाती।

ब्याह के बाद दूलहा ससुराल में केवल रहता ही नहीं, बल्कि उसी परिवार का हो जाता है, जैसे यहाँ घरदमदा रखने का दस्तूर है। फ़र्क़ इतना ही है कि यहां घरदमदा रहना बहुत बिरले ही होता है किन्तु ब्रह्मदेश में यह दस्तूर चलनसार है कि ब्याह होने पर दूलहा ससुराल ही का हो जाता है और उसकी सब कमाई पर ससुरालवालों ही का अधिकार रहता है। यदि कोई मातृ-पितृ भक्त पुत्र छिपकर मा बाप को कुछ धन दे तो उसकी स्त्री या सास ख़बर पाने पर उसका कड़ा उपाय भी करती हैं। मतलब यह कि ब्याह होने पर माता पिता से मर्द का नाता टूट जाता है।

हमारे यहां पिता माता का जो काम पुत्र से होता है, वही ब्रह्मदेश में कन्या से होता है। यही कारण है कि उस देश में लोग पुत्र के बदले पुत्री ही पैदा होने की अधिक कामना करते हैं। जिसके जितनी ही अधिक कन्याएँ हों, उसको उतनी ही सुविधा होती है। कन्याएँ दूकान करके और दामाद तरह तरह के काम करके जो पैदा करते हैं, उसीसे गृहस्थी का खर्च चलता है। जिनके कन्या नहीं होती वे बुढ़ापे में दुःख पाने की विभीषिका देखकर अधमरे होते जाते हैं।

ब्रह्मदेश में विवाह-बन्धन एक साधारण अस्थायी सम्बन्ध होता है। जब चाहें तब वे लोग विवाह-बन्धन तोड़कर स्त्री पुरुष के नाते से अलग हो सकते हैं। वहां की समाज और राज-नीति के अनुसार स्त्री पुरुष का नाता तोड़ने में मर्द, औरत दोनों को समान अधिकार है। लेकिन उनमें लड़का लड़की पैदा हो चुके हों तो अलग होने के समय पिता का पुत्र पर और माता का कन्या पर हक़ होता है और दोनों अपना अपना हक़ लेकर अलग हो जाते हैं।

गाँव और नगर के मुखिया को वहां मण्डल कहते हैं। विवाह बन्धन का टूटना उनकी मंजूरी के बाद पक्का होता है। उचित और सङ्गत कारण बताये बिना जो विवाह-बन्धन तोड़ना चाहता है, उसको उचित जुर्माना देना पड़ता है। इस देश में बालविवाह के प्रचार से या कहीं २ ब्याह के पहिले वर कन्या की देखरेख की रोक होने से जो अनुचित जोड़ हो जाता और ब्याह-विभ्राट घटता है, धन की लालच से सन्तान पर निर्दय होकर या पात्र-पात्री के संरक्षकगण कुलमर्यादा बचाने के लिए जिस प्रकार कम उम्र लड़कियों को अयोग्य और बेमेल पात्र के हाथ दान करके कन्याओं की ज़िन्दगी भारी कर देते हैं, वैसा ब्रह्मदेश में एक बार विवाह हो जाने ही से उसके लिए सदा दुःख भोगने का सङ्कट नहीं होता। वहां वर कन्या आपस में मनस्वभाव आदि सब की जांच पड़ताल करके विवाह करते हैं; फिर भी जहां जवानी के कारण या मोह में पड़कर नीच-ऊँच या दोष-गुण विचारने में भूल होती और परिणाम में अनबन का सामना पड़ता है, वहां विवाह-बंधन तोड़ स्त्री पुरुष एक दूसरे से लगातग्गा तोड़-कर दूर हो जाते और जब चाहें तब फिर मन-माना ब्याह कर लेते हैं। बहु-विवाह की रोक न होने पर भी वहां किसी के एक से अधिक पत्नी नहीं देखी जाती।

ब्रह्मदेश की स्त्रियां विदेशी और विधर्मी पुरुषों से भी ब्याह करती हैं लेकिन ऐसा नहीं सुना जाता कि वहां के मर्द ने किसी विदेशी स्त्री से विवाह किया हो। वहां की जिन स्त्रियों ने विदेशियों से ब्याह किये हैं, उनमें सैकड़े निन्नानवे ऐसी ही हैं, जिन्होंने भागकर और पिता माता की बात न मानकर ब्याह किया है। ऐसे विवाह 'लोअर बर्मा' या निम्न ब्रह्म में ही अधिक होते हैं।

ब्रह्मदेश के मर्द बड़े आलसी होते हैं, बहुत बड़ी ज़रूरत पड़े बिना वे मिहनत नहीं करना चाहते। स्त्रियाँ ही कमाकर वहां मर्दों को खिलाती हैं और ब्याह के समय मर्द पहिले इसी पर ध्यान रखता है कि भावी स्त्री कमाकर उसको खिला सकेगी या नहीं? जो स्त्री कमाने में असमर्थ है उसका ब्याह होना बड़ा कठिन हो जाता है। यही कारण है कि बहुतेरी आलसी ब्रह्म महिलाएं इसी अभिलाषा से विदेशियों से ब्याह करती हैं कि उनके साथ रहने से कमाने या मिहनत करने की ज़रूरत न पड़ेगी तथा मर्द ही कमाकर उन्हें खिलायेंगे। मुसलमान, क्रिश्चियन और सिक्ख आदि जिनमें जाति-भेद और खानपान का टिटिम्बा नहीं है, बौद्ध-नारी ब्रह्मवासिनी युवतियों से अकसर विवाह करते हैं।

अनेक अँगरेज़ भी ब्रह्ममहिलाओं से ब्याह करके संसारयात्रा निर्वाह कर रहे हैं। पहिले बहुतेरे ऊँचे पद वाले यूरोपियन ब्रह्मदेशीय स्त्रियों को घर में रखते थे लेकिन अब तो कानून से उनका वैसा करना अनुचित माना गया है।

ऐसा बहुत देखा जाता है कि इस तरह का विवाह करनेवाले स्त्री पुरुष अपने अपने मत पर चले जाते हैं। स्वामी के साथ स्त्री का धर्मविश्वास नहीं मिलता। उनकी सन्तान बहुधा माता के ही पथ पर जाती है। देखने में वे देशी मालूम देते हैं। इस तरह का विवाह वहां बहुत दिनों से प्रचलित है, इससे वहां एक मिश्र जाति उत्पन्न हुई है। जब विदेशीय पुरुषों से इस तरह का ब्याह होता है तब उनसे पैदा हुई औलाद को "गेरवाही" कहते हैं। वहाँ ऐसे गेरवाही कम नहीं हैं। उन गेरवाहियों की बाढ़ से वहां की असल नस्ल का लोप हो जाना अनुमान से बाहर बात नहीं है।

प्रण ।

[लेखक—श्रीयुत दूधनाथ, त्रिपाठी ।]

तब मैं भारतीय कहलाऊँ ।
जननी भारतभूमि हमारी
यहि हित कछु न छिपाऊँ ।
तन मन धन सब विधि अर्पणकरि
मातृ उऋण ह्वै जाऊँ ॥ १ ॥

विद्या विविध पढ़ावन हित बहु
युवक विदेश पठाऊं ।
स्वावलम्ब अरु देशभक्ति का
सम्यक पाठ पढ़ाऊं ॥ २ ॥

विविध कला विज्ञान बड़प्पन
वैभव युक्त बनाऊँ ।
पुनि अति शीघ्र पूज्य भारत को
उच्चासन बैठाऊँ ॥ ३ ॥

अधम दासता कुलीप्रथा की
बेड़ी काटि बहाऊं ।
अभिमानी विदेशवासिन सँग
सम व्यवहार बनाऊं ॥ ४ ॥

नियमबद्ध आन्दोलन करि २
सोवत देश जगाऊं ।
प्रण करि अवशि भारतीयों को
प्राप्त स्वराज्य कराऊं ॥ ५ ॥

आरत भंजन करिय कृपा अब
हम निज प्रण निबहाऊँ ।
भारत आरत कहत किसी को
कबहुं न अस सुनि पाऊं ॥६॥

विद्यार्थियों को छुट्टियां किस तरह बितानी चाहिये ?

विद्यार्थियों को छुट्टियाँ किस तरह बितानी चाहिये—इस पर मैं कुछ विचार प्रकट करना चाहता हूं । ये विचार मेरे निज के ही नहीं हैं ; मैंने शिक्षा से सम्बन्ध रखनेवाले देशप्रेमियों के वक्तव्यों से जो कुछ एकत्रित किया है, उसीका मैं पाठकों को दिग्दर्शन करा देना चाहता हूं ।

हम लोगों का शरीर ठीक एक मशीन के समान है । यदि मशीन से सदा ही काम लिया जाय तो वह थोड़े ही दिनों में घिसकर बेकार हो जायगी । इसलिए समय समय पर उसको विश्राम देकर उसके कल-पुर्ज़ों को ठीक कर देना ज़रूरी होता है । इसी प्रकार यदि हम अपने शरीर अथवा शरीर के किसी अंग से सदा ही काम लिया करें और उसको कभी भी विश्राम न दें तो काल-क्रम से वह कमज़ोर और काम करने के अयोग्य हो जायगा। फिर भी यदि मशीन के कुछ ही भागों से काम लिया जाय और बाक़ी को यों ही बेकार छोड़ दिया जाय तो यह निश्चय है कि जिस भाग से काम नहीं लिया जायगा वह मुर्चा खा जायगा, तथा अन्त में दुर्बल तथा नष्ट हो जायगा और जिन भागों से बराबर काम लिया जायगा वे भी घिसकर कमज़ोर हो जायँगे । ठीक इसी प्रकार, यदि हम सदा दिमाग़ से ही काम लिया करें और शरीर को योंही बेकार छोड़ दें तो उधर हमारा दिमाग़ अविश्रान्त काम करने और इधर शरीर बेकाम रहने के कारण हम कमज़ोर और बेकार हो जायँगे । इसलिए विद्यार्थियों को दिमाग़ी मेहनत करना परम कर्तव्य है, अन्यथा उन्हें शरीर अथवा दिमाग़ किसी एक से हाथ धोना पड़ेगा ।

हमारे देश की शिक्षापद्धति इसी तरह की है कि उसके द्वारा विद्यार्थियों की दिमागी आवश्यकताओं पर बहुत ही कम ध्यान दिया जाता है। इसका फल यह होता है कि एक की तो वृद्धि होती है परन्तु दूसरे का ह्रास । अस्तु इसमें हमारा वश ही क्या है ? परन्तु इससे क्या ? हम अपनी लाभ-हानि आप समझते हैं। अतएव हमारी जिन आवश्यकताओं की पूर्ति स्कूल कालेजों में नहीं होती है, उनकी पूर्ति हमें खुद करनी चाहिये।

स्कूलों और कालेजों में विदेशी भाषा की पुस्तकों का इतना बड़ा बोझ हमारे ऊपर लाद दिया जाता है कि हम कठिनता से अपनी शारीरिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए समय निकाल सकते हैं। लेकिन हमें इससे हताश होकर बैठ न जाना चाहिये ! जब हमें करना है तो उसके लिए उपयुक्त अवसर खोजना चाहिये। स्कूल कालेजों में बड़ी बड़ी छुट्टियां दी जाती हैं। उदाहरण के लिए गर्मी की छुट्टी ही ले लीजिये। यह किसी भी कालेज में ढाई तीन महीने से कम नहीं होती । इन्हीं छुट्टियों में हम भले प्रकार शारीरिक आवश्यकताओं और अन्य ऐसे कामों को, जिनके करने के लिए हमें पढ़ने के समय अवसर नहीं मिलता, पूरा कर सकते हैं।

छुट्टियों के दिनों में भी हमें उसी प्रकार दिमाग से काम नहीं लेना चाहिये जैसा पढ़ाई के दिनों में । छुट्टियों में प्रत्येक विद्यार्थी को आठ नौ घंटे यथा नौ दस बजे से ६ बजे प्रातःकाल तक शयन करना चाहिये । स्वास्थ्य के लिए यह बहुत हितकर होगा। इससे दिमाग को बहुत कुछ विश्राम मिलेगा और उसकी शक्ति बढ़ेगी। शयन के पश्चात प्रातःकाल दैनिक कामों से निपट और कुछ हलका जलपान कर खुले मैदान में टहलने, कुश्ती लड़ने, मोगदर हिलाने, डंड करने तथा अन्य प्रकार की कसरतों में अधिकांश समय बिताना चाहिये । ऐसा करने से उनकी मांस-पेशियां मज़बूत होंगी, हाथ पांव सबल होंगे और शरीर हृष्टपुष्ट तथा सर्दीगर्मी के सहने योग्य होगा। जब गर्मी कुछ तेज़ होने लगे तो उपर्युक्त कार्यों से विश्राम लेना तथा भोजनादि करना चाहिये। जब दुपहर की कड़ी धूप की लू चलने लगे तो किसी शान्तिमय और शीतल स्थान में जाकर प्राचीन भारत के वीरों और ऋषियों के चरित्र और कीर्तियों का मनन करना और उनसे शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये । मनन के बाद कुछ देर तक विचार करना और अर्वाचीन भारत की तुलना प्राचीन भारत से करनी चाहिये। ऐसा करने से यह लाभ होगा कि उन्हें प्राचीन गौरव, सभ्यता और महत्व का ज्ञान होगा और अपनी वर्तमान दशा का चित्र आगे खिंच जायगा, जिसका अवलोकन कर वे अपने प्राचीन गौरव तथा महत्व को प्राप्त करने में दत्तचित्त हो जायँगे।

इसके बाद जब संध्या की ठंडी ठंडी हवा बहने लगे तो उन्हें अपने ग्राम अथवा नगर में घूम घूम कर अपने गरीब भाइयों का दिग्दर्शन करना, यथासाध्य उनकी मदद करना, उन्हें अज्ञान के फंदे से छुड़ाना, उनको विद्या पढ़ने के महत्व और लाभ को बतलाना, उनको अपनी हीन दशा का ज्ञान करा देना और उनके अधिकार तथा स्वत्व उन्हें समझा देना चाहिये। इसके अतिरिक्त प्रत्येक ग्राम में एक वाचनालय (Reading Club) खोलना और उसमें कुछ समाचारपत्र-पत्रिकाओं के मँगाने का प्रबन्ध कर देना और ऐसी ऐसी किताबों को पढ़कर अपने अपढ़ भाइयों को सुनाना चाहिये, जिनसे उन्हें अपने कर्तव्यों का ज्ञान हो जाय । संध्या समय खुले मैदान में टहलना, खेल कूद में स्वयं भाग लेना और छोटे छोटे बालकों को खेल में शरीक करना और किसी शान्तिमय स्थान में जाकर स्थिर चित्त हो प्रकृति देवी की शोभा का अनुभव करना भी ज़रूरी है । संध्या का

सम्पादकीय टिप्पणियां।

ढील ढाल से काम नहीं चलेगा।

स्वराज्य का आन्दोलन अब भारत में स्थायी रूप से उपस्थित हो गया है और दिन दिन वह अपनी जड़ मज़बूत करता जाता है। लखनऊ की कांग्रेस के बाद से देश में चारों ओर यह आन्दोलन प्रबल रूप धारण करता जा रहा है और आशा ही नहीं, वरन् यह विश्वास है कि अब भारत में

स्वराज्य स्थापित होगा।

अभी मद्रास और बम्बई प्रान्त में प्रान्तीय कान्फरेन्सों का अधिवेशन हुआ था। मद्रास में दीवान माधवराव और बम्बई में माननीय श्रीनिवासजी शास्त्री सभापति थे। दीवान माधवराव मैसूर, ट्रावनकोर और बड़ोदा की रियासतों में दीवान रह चुके हैं। इन पर यह लांछन नहीं लगाया जा सकता कि ये अनुभवशून्य कोरी बकबक करनेवाले राजनीतिज्ञ या आन्दोलनकर्ता हैं। इन्होंने स्पष्ट शब्दों में कहा है कि "भारतीय अधिकारी तंत्र" Indian Bureacracy कसौटी पर कसा गया और हीन सिद्ध हुआ है और जिस प्रकार से सन् ५७ के बाद ईस्ट इन्डिया कम्पनी से शासन की बागडोर छीनी जाकर "अधिकारी तन्त्र" के हाथों में समर्पित की गई उसी प्रकार से अब यह इनके हाथों से छीनी जाकर प्रजा के भारतीय प्रतिनिधियों के हाथों में दी जानी चाहिये। "अधिकारी तन्त्र" ने सब प्रकार से अपने को हीन सिद्ध किया, इसका प्रमाण देते हुए दीवान साहब ने कहा कि यदि बात ऐसी न होती तो "मेसोपोटामिया के युद्ध-संचालन का कार्य" महाराज बीकानेर सदृश किसी भारतवासी को सौंपा गया होता और युद्ध के लिए धन, सामग्री तथा मनुष्यों को एकत्र करने का काम प्रजा के प्रतिनिधियों के हाथ में होता। इस युद्ध ने साबित कर दिया है, यदि किसी सुबूत की आवश्यकता थी, कि सरकार भारत में इस समय भी उसी तरह से कार्य संचालन कर रही है जैसे कि एक विदेश पर कब्जा कर कोई केम्प में पड़ी हुई सेना। देश के निवासी विश्वास की दृष्टि से नहीं देखे जाते और भीतरी गड़बड़ से रक्षा का काम भी विदेशियों को सौंपा गया है। देश में अशिक्षा Illeteracy का साम्राज्य है और दिन प्रति दिन खुफ़िया पुलीस का खर्च बढ़ता जा रहा है ········।

तुरन्त विस्तृत सुधार की आवश्यकता है, केवल काट छांट और ढील ढाल से काम नहीं चल सकता। देश में शीघ्र ही

स्वराज्य की स्थापना

होनी चाहिये। मि० शास्त्री ने एक ही शब्द में कह दिया है कि वर्तमान शासन-प्रणाली अब लाभदायी नहीं है। केवल आभ्यन्तरिक सुधारों के लिए ही नहीं वरन् साम्राज्य में जो अपना उचित स्थान भारत लेनेवाला है उसके लिए भी यह आवश्यक है कि वर्तमान प्रणाली में भीषण परिवर्तन किया जाय। भारत, साम्राज्य के अन्य स्वराज्य-प्राप्त अङ्गों के साथ तभी बराबर से बैठ सकता है जब वह भी स्वराज्य के सुखों से पूर्ण और उन्हीं की भांति स्वतन्त्र हो। मि० शास्त्री ने अपनी वक्तृता में कितने ही राजनीतिज्ञों की उक्तियां उद्धृत कर स्वराज्य की श्रेष्ठता सिद्ध की है। ऐसा करते हुए उन्होंने मि० बानरला की आयर्लेंड में स्वराज्य स्थापित करने की दलील को उपस्थित किया है। मि० बानरला ने कहा था:—

I do not agree that the only thing you have to think of with respect to the Government of Ireland is to set up a Government that will govern in the best way. I do not think so at all. I think that *very often a very bad form of Government* if it is with

consent and good-will of the people governed, will work infinitely better than a much better system without that consent and goodwill.

"मैं यह नहीं स्वीकार करता कि आयर्लैंड में एक शासन के स्थापित करने से ही, जो सर्वश्रेष्ठ रीति से शासन करे, काम चल जायगा। मैं इस राय से किसी दृष्टि से भी सहमत नहीं। मेरी राय में प्रायः एक निकृष्ट से निकृष्ट शासन, यदि वह प्रजा की स्वीकृति और स्वेच्छा पर स्तंभित है उस शासन से जो प्रजा की स्वीकृति पर स्तम्भित नहीं, कहीं अच्छा काम करेगा।" इसका अर्थ यह है कि यदि भारतवासी आरम्भ में सर्वश्रेष्ठ शासन न भी स्थापित कर सके तब भी वह इस विदेशी शासन से जो प्रजा की रुचि के अनुकूल नहीं, कहीं अधिक सुखप्रद, लाभदायी और अच्छा काम करनेवाला होगा। आगे चलकर मि० शास्त्री ने कहा कि मातृमंदिर में हम Political power

राजनैतिक शक्ति

चाहते हैं। भारतवासी केवल अब शासन की समालोचना से ही सन्तुष्ट रहना नहीं चाहते। वास्तव में बात भी यही है। "राजनैतिक शक्ति" का प्राप्त करना ही समस्त सुधारों का मूल मंत्र है। हम आशा करते हैं कि प्रत्येक भारतवासी इस बात को सदा ध्यान में रक्खेगा और स्वराज्य की प्राप्ति के लिए आन्दोलन—घोर आन्दोलन—विधिविहित आन्दोलन—करेगा। अब

सोने का समय

नहीं रहा और न पवित्र आकांक्षाओं से ही अब काम चलेगा। समय हमारे साथ है, लहर हमारे पक्ष में है, स्वतन्त्रता की वायु संसार में बवंडर के रूप में बह रही है, लकीर का फकीर, जो निरंकुशशासन का केन्द्र था, वह भी स्वतन्त्र हो गया है। संसार में जिधर दृष्टि फेंकिये सभी स्वतन्त्र दिखाई देते हैं, ऐसी दशा में इतिहास के आदि काल से स्वतन्त्रता का उपासक और प्रतिष्ठापक भारत ही क्या अ[illegible] रह जायगा?

✽

भारतवासी और सेना।

आज से नहीं किन्तु प्रायः गत तीस[illegible] से भारतवासी यह चिल्ला रहे थे कि से[illegible] उच्चपदों के न मिलने से तथा अस्त्रशस्त्र रखने की मनाही होने से भारतवासि[illegible] से वीरोचित गुणों का ह्रास हो रहा है[illegible] दिन दिन जाति क्लीवत्व को प्राप्त हो रही[illegible] कोई सुनवाई नहीं हुई। युद्ध के आरम्भ[illegible] पर जब कि इङ्गलैंड को सैनिकों की आवश्[illegible] थी, जब कि साम्राज्य का अस्तित्व ही सै[illegible] की संख्या पर निर्भर था भारतवासि[illegible] प्रार्थना की थी कि वे

स्वयम्-सैनिक

बनाये जायँ, अस्त्र शस्त्र उनको दिये जायँ सैनिक शिक्षा द्वारा वे इस योग्य बनाये [illegible] कि अपने देश की कम से कम वे रक्षा और शिक्षित सेना को रणक्षेत्र में भेजने के अवसर प्राप्त हो। किन्तु विदेश से आये "टेरीटोरियल सेना" के नवयुवकों को दे[illegible] उनके हृदय को आघात पहुंचा और वे [illegible] रहे। विधि की विडम्बना से कुछ दिनों भारत में अँगरेज़ों के लिए सैनिक सेवा वार्य करना आवश्यक प्रतीत हुआ। एक

इन्डियन डिफ़ेन्स फोर्स

के संगठन की घोषणा की गई। उसके ६ सहस्र भारतीय युवकों की आवश्यकता मि० बीसेन्ट, मि० तिलक, मि० गान्धी, बाबू आदि नेताओं ने प्रयत्न भी किया कि आगे आवें और भर्ती हों किन्तु अब त[illegible] केवल ३०० युवक तैयार हुए हैं,

६००० में ३००।

खेद के साथ कहना पड़ता है कि

...रत में चौदह वर्ष का एक बालक ७ महा-...थियों और उनकी सेना से एक साथ युद्ध कर ...कता था, जिस भारत के वीरों ने बन्दरों और ...लुओं की सहायता से समुद्र पार सोने की ...ा को नष्ट भ्रष्ट किया, उसी भारत में आज ...सहस्र नवयुवक ढूंढ़े नहीं मिलते, विशेषकर जब कि उत्साहित करनेवाले बीसेन्ट, तिलक, गान्धी, से देश के नेता हों। इतना ही मानो काफी न था, भारत सरकार ने अपना चिड़-चिड़ापन दिखाकर, घाव पर निमकसा छिड़क दिया है। भारत सरकार ने एक विज्ञप्ति प्रकाशित की है। पहिले तो इस विज्ञप्ति की कोई आवश्यकता न थी। भारतीय नवयुवक आगे नहीं आरहे हैं, न आवें, यदि वास्तव में इससे उनको या उनके देश को हानि पहुंच सकती है तो उनको और उनके नेताओं को भारत सरकार से अधिक फ़िक्र होगी, भारत की उज्ज्वल कीर्ति का जितना इन लोगों को ख्याल हो सकता है, भारत सरकार भी यह मानेगी कि उतना उसे नहीं हो सकता। भारत सरकार ने यदि अपील करना ही निश्चय किया था तोभी अँगरेज़ नवयुवकों से तुलना कर यह कहने की किसी दृष्टि से भी आवश्यकता न थी कि,

"They asked no questions as to pay or other conditons, they put forward no pretensions or demands".

इन क्लेशजनक बातों का उत्तर देना हम नहीं चाहते। आरम्भ से ही हमने यह निश्चय कर लिया था कि इस सम्बन्ध में हम कोई टीका-टिप्पणी न करेंगे। हम स्वप्न में भी नहीं सोचते थे कि जिनके हाथ में इतने बड़े देश का शासन सौंपा गया है, वे गम्भीरता का त्यागकर बुद्धि को यहां तक खो बैठेंगे कि ऐसी बातों का कहना—जिनसे उद्देश्य का सिद्ध होना तो दूर रहा उलटे क्षति का पहुंचना सम्भव है—आवश्यक समझेंगे। किन्तु जब बात कह दी गई है तो उसका जवाब सूक्ष्म में दे देना ही उचित समझ पड़ता है। यह सत्य है कि अँगरेज़ नवयुवक यह नहीं जानना चाहते और न पूछते ही हैं कि उनको वेतन क्या मिलेगा उनके रहन सहन का कैसा प्रबन्ध होगा, घर पर जिस भांति वे रहते हैं सेना में भर्ती होने पर उसमें कितना अन्तर होगा। यह भी सत्य है कि भारतवासी इन्हीं बातों का ही नहीं वरन् कितनी ही और बातों को—जैसे कि हम ने बी० ए०, एम० ए० पास किया है या करनेवाले हैं, सेना में सम्मिलित होने पर, सब प्रकार से शिक्षा प्राप्त कर लेने पर तथा यह भी कि योग्यता में किसी अँगरेज़ी सैनिक से कम न होने पर हम केवल सिपाही या सूबेदार मेजर ही बन कर रह जायँगे या हम मेजर, कर्नल या कमांडर भी होंगे—पूछते हैं। क्या हम भारतीय सरकार से पूछ सकते हैं कि क्या एक भारतीय और अँगरेज़ युवक की स्थिति में अन्तर ही नहीं विशेष अन्तर नहीं है? क्या यह सत्य नहीं है कि एक अँगरेज़ युवक समझता है कि प्रबन्ध का काम सब उसीके भाई या रिश्तेदारों के हाथ में है? जो कुछ आवश्यक होगा वे स्वयम् ही करेंगे, यदि कहीं कोई त्रुटि रही तो उसके अन्य भाई फ़िक्र कर उसे दूर करेंगे। क्या वह यह नहीं समझता कि यदि सैनिक-जीवन उसे पसन्द आया तो अपने जीवन के ऊँचे से ऊँचे आदर्श को वह उसीमें रह कर सिद्ध कर सकता है? क्या वह सरकार को अपनी सरकार नहीं समझता जो उसके दुख सुख को, उसकी कठिनाइयों को, उसके शरीर और मन की आवश्यकताओं को उतनाही नहीं तो उससे कुछ ही कम दशा में समझ सकती है क्योंकि सरकार उसीके जाति भाइयों का एक समूह है? क्या एक भारतवासी भी, जिसने कुछ शिक्षा प्राप्त की है इन प्रश्नों का उत्तर एक अँगरेज़ नवयुवक की भांति अपने अन्तःकरण से प्राप्त कर सकता है? इस सम्बन्ध में कितनी ही अन्य बातें कही जा सकती हैं। सत्य तो यह

है कि सर्वथा नम्र रीति से भी विज्ञप्ति की प्रत्येक लाइन का उत्तर दिया जा सकता है किन्तु यह समय वाद और परस्पर लांछन का नहीं है। भारतवासी यह भी समझते हैं कि एकदम से, एक मिनट में, एक सप्ताह या एक मास में सब सुधार नहीं हो सकता किन्तु इसके साथ ही साथ उनका कहना है कि सरकार चाहे तो मूल सिद्धान्त की—भारतवासी और अँगरेज़ में कोई भेद या अन्तर न रहेगा—सहज ही में घोषणा कर सकती है। आनुषङ्गिक और विस्तार की बातें समय से तय होती रहेंगी। यह भी आवश्यक है कि सरकार भारतवासियों को पूर्ण विश्वास की दृष्टि से देखे जिसमें भारतवासी भी विवश होकर उसे विश्वास की दृष्टि से देखने लगें। इन सब बातों के साथ ही साथ सरकार को यह भी ध्यान में रखना चाहिये कि जिन्होंने कभी बन्दूक देखा नहीं, उसे छुआ नहीं, जो उससे सदा जुजुआ की भांति डरते रहे हैं वे एक सरकारी विज्ञप्ति से वीर और सैनिक नहीं बनाये जा सकते। प्रेम, उत्साह का प्रदान और विश्वास ही भारतीय युवकों को वीर बना सकता है, विज्ञप्तियां और जली कटी बातें नहीं।

❋

उन्नतिशील इन्दौर।

इन्दौर भी ट्रावनकोर, मैसूर और बड़ौदा की भांति उन्नति की सीढ़ियों पर बराबर चढ़ता जा रहा है। अभी कुछ ही दिन हुए राज्य में विवाह सम्बन्धी नूतन नियम बने हैं, इनके साथ ही साथ "तिलाक या त्याग" का कानून भी जारी होनेवाला है। सामाजिक सुधार के साथ ही साथ शीघ्र ही उस राज्य में

शिक्षा अनिवार्य

होनेवाली है। महाराजा साहब ने स्वीकृति दे दी है, स्कीम तैयार हो रही है और तैयार होते ही महाराज के सामने वह उपस्थित की जायगी। भारत सरकार जिन सुधारों को करने के लिए एक युग विचार करना चाहती है वही सुधार इन रियासतों में धड़ाधड़ होते रहे हैं। हम इन्दौर दरबार को इन सुधारों के लिए बधाई देते हैं और आशा करते हैं कि इसी उत्साह से वह सदा प्रजानुरंजन के कार्य में दत्तचित्त रहेगा।

❋

रूस।

रूस की दशा के सम्बन्ध में अभी कोई बात निश्चित रूप से नहीं कही जा सकती, यद्यपि यह कुछ तय सा मालूम होता है कि वह मित्रदल से अलग होकर अकेला सन्धि न कर लेगा। इसमें सम्भव है कोई उलट फेर भी हो जाय किन्तु जो चाहे हो जाय, रूस का राष्ट्रीय सिद्धान्त निश्चित है। वह किसी अन्य राष्ट्र की स्वतन्त्रता अपहरण न करेगा, वह किसी की भूमि पर कब्ज़ा न करेगा साथ ही वह अन्य राष्ट्रों को अपनी आवश्यकता और इच्छा के अनुसार उन्नति करने देगा। सारांश यह कि सत्यमेव वह

स्वतन्त्रता का पुजारी

होगा। सभी स्वतन्त्रता के प्रेमियों की यही इच्छा है कि अपने उद्योग में उसे पूर्ण सफलता प्राप्त हो और स्वतन्त्रता और समता का नाम ले लेकर अन्याय और अत्याचार का प्रचार करनेवाले उससे शिक्षा ग्रहण करें।

❋

भारतीय डेपूटेशन।

पाठकों को विदित है कि "निखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी" और मुस्लिम-लीग ने इङ्गलैंड को एक डेपूटेशन भेजना निश्चित किया था। जानेवाले नेताओं के नाम भी प्रकाशित हो गये थे किन्तु अब डेपूटेशन न जायगा। विलायत से सर विलियम वेडरबर्न ने सूचित किया है कि इस समय डेपूटेशन का आना लाभप्रद नहीं हो सकता। हम नहीं कह सकते, कौन से विशेष कारण